सार्थक

प्राविधिक शिक्षा परिषद् उ० प्र० द्वारा
स्वीकृत नवीनतम् पाठ्यक्रमानुसार

इण्डस्ट्रियल मैनेजमैन्ट एन्टरप्रनियुरशिप डैवल्पमैन्ट

Industrial Management & Entrepreneurship Development





Jai Prakash Nath Publications
Meerut

Scanned with CamScanner

विषय सूची

क्रम	अध्याय	पृष्ठ संख्या
1.	प्रबन्ध के सिद्धान्त Principles of Management	1—55
2.	मानव-संसाधन विकास Human Resource Development	56—93
3.	मजदूरी एवं प्रेरणाएँ Wages and Incentives	94—109
4.	मानवीय एवं औद्योगिक सम्बन्ध Human and Industrial Relations	110—146
5.	व्यावसायिक नीतिशास्त्र Business Ethics	147—150
6.	विक्रय एवं विपणन प्रबन्ध Selling and Distribution Management	151—180
7.	श्रम विधान अधिनियम (यथा संशोधित) Labour Legislation Act (Amended)	181—222
8.	सामग्री प्रबन्ध Material Management	223—267
9.	वित्तीय प्रबन्धन Financial Management	268—294
10.	उद्यमिता विकास Entrepreneurship Development	295—353
11.	अर्थशास्त्र के मूलभूत तत्व Fundamentals of Economics	354—369
12.	दुर्घटना एवं सुरक्षा Accident and Safety	370—374
	• परीक्षा प्रश्न पत्र • Examination Papers	375—376

Scanned with CamScanner

अध्याय-1

प्रबन्ध के सिद्धान्त
(Principles of Management)

*** प्रबन्ध, कार्य, नियोजन, संगठनीकरण, नेतृत्व, नियन्त्रण, संगठनिक संरचना, प्रकार, अभिप्रेरण, नेतृत्व, समूह भावना को प्रोत्साहन, कार्य, सन्तुष्टि, कार्य संवर्द्धन, प्रबन्धक नेता के रूप में।**

1.1. (a) प्रबन्ध-परिचय (Introduction)

आज का युग स्पर्धा (competition) का युग है। कोई भी व्यवसाय बिना कुशल प्रबन्धन के अपने अस्तित्व को न तो बचाये रख सकता है, और न ही प्रगति कर सकता है। प्रबन्धन की उचित व्यवस्थायें न होने के कारण ही विश्व के बहुत से देश विकसित होने से वंचित रह गये। किसी भी देश की प्रगति उसके प्रबन्धन के कौशन पर निर्भर करती है।

जब मानव सभ्यता का विकास हुआ तो बहुत से सार्वजनिक हित के कार्यों के लिए बहुत सी गतिविधियाँ समूह (group) बनाकर की गईं। इन समूहों की गतिविधियों को सुचारु रूप से चलाने के लिए, दिशानिर्देश देने के लिए, गतिविधियों में सामंजस्य बैठाने के लिए प्रबन्धन की आवश्यकता हुई। मुख्य रूप से व्यापार के क्षेत्र में। प्रबन्ध एक मानसिक एवं बौद्धिक क्रिया है। इसकी आवश्यकता प्रत्येक क्षेत्र (field) अर्थात् व्यावसायिक, पारिवारिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि सभी क्षेत्रों में प्रतीत होती है।

इस प्रकार प्रबन्धन सभी संगठित आर्थिक गतिविधियों में की जाने वाली सार्वत्रिक (Universal) प्रक्रिया है। मानव, मशीन, पदार्थ तथा धन (Men, Machines, Material & Money 4' m's) का सर्वोत्तम सदुपयोग करके अपने उद्देश्यों की पूर्ति करना सभी व्यापारिक गतिविधियों का मुख्य लक्ष्य होता है। आधुनिक समय में प्रौद्योगिकी (technology) के साथ-साथ उद्योग के मानवीय तत्वों पर अधिक ध्यान दिया जाता है। इस दिशा में अभिरुचियों की जागृति युद्धकालीन परिस्थितियों में श्रम का अधिकतम उपयोग करने की इच्छा के कारण हुई जिसके लिए श्रमिकों में उचित सप्रेरणा, सन्तोष तथा मनोबल का पाया जाना आवश्यक समझा गया। प्रबन्धन की पृष्ठभूमि के रूप में निम्न सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है—

"प्रत्येक आर्थिक क्रिया (Economic activity) उपभोक्ताओं को वस्तुओं एवं सेवाओं की पूर्ति करने तथा इन वस्तुओं एवं सेवाओं की पूर्ति करने तथा इन वस्तुओं एवं सेवाओं के क्रय के लिए साधनों का प्राविधान करने के दोहरे समानान्तर उद्देश्यों की ओर निर्देशित होती है।"

प्रबन्ध संगठन को शक्ति देता है। वह व्यवसाय के लक्ष्यों को इनकी प्राप्ति की योजना बनाकर निर्देशित, नियन्त्रित तथा समान्वित प्रयासों के द्वारा प्राप्त करने में सहायता करता है। प्रबन्ध का प्रयत्न सदैव न्यूनतम मानवीय एवं भौतिक संसाधनों का उपयोग करते हुए अधिकतम उत्पादन करना होता है। समाज का कल्याण कुशल प्रबन्ध पर ही निर्भर करता है।

विख्यात प्रबन्ध विशेषज्ञ 'पीटर एफ० ड्रकर' (Peter F. Drucker) के अनुसार, "प्रबन्ध प्रत्येक व्यवसाय का गतिशील तथा जीवन-दायक तत्त्व होता है। इसके नेतृत्व के अभाव में 'उत्पादन के साधन' केवल साधन मात्र रह जाते हैं, कभी उत्पाद नहीं बन पाते।'

Scanned with CamScanner

"The manager is the dynamic, life giving element in every business. Without his leadership, the resources of production remain resources and never become production."

—*Drucker Peter F.*

किसी कार्य विशेष को सफलतापूर्वक एवं मितव्ययी ढंग से सम्पन्न करने की सर्वोत्तम विधि का नाम ही 'प्रबन्ध' है। यह एक मानसिक एवं बौद्धिक क्रिया है। इसकी आवश्यकता प्रत्येक क्षेत्र अर्थात् व्यावसायिक, पारिवारिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि सभी स्तरों पर प्रतीत होती है। जब एवं जहाँ कहीं भी असंख्य व्यक्ति एक साथ एक समूह के अन्तर्गत मिलकर क्रियायें करते हैं, तो इस समूह की क्रियाओं को निर्देशित, संचालित एवं नियन्त्रित करने का उत्तरदायित्व प्रबन्ध के कन्धों पर आ जाता है अत: किसी भी संस्था की स्थापना, सफलता एवं प्रगति में दक्ष व कुशल प्रबन्ध का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

"कोई भी व्यवसाय स्वयं नहीं चल सकता, चाहे वह संवेग की स्थिति में ही क्यों न हो, सके लिए उसके नियमित उद्दीपन की आवश्यकता पड़ती है।"

"No business runs itself, even on momentum .....every business needs repeated stimulus."

—*Prof. Edwin M. Robbinson*

यह उद्दीपन इसे इसके मस्तिष्क 'प्रबन्ध' से प्राप्त होता है। जिस प्रकार मानवीय शरीर मस्तिष्क के बिना एक हाड़-माँस का पुतला मात्र रह जाता है, उसी प्रकार कुशल प्रबन्धन के अभाव में व्यावसायिक संस्था की स्थापना में एकत्रित पूँजी, श्रम तथा अन्य साज-सामान व्यर्थ तथा अनुपादेय पड़ा रह जाता है। अत: व्यवसाय का प्रबन्ध शरीर में प्राण की तरह कार्य करता है।

प्रबन्ध की प्रमुख परिभाषाएँ

(Main Definitions of Management)

प्रबन्ध की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न विद्वानों ने अपने विचार प्रस्तुत किये तथा अपने ढंग से परिभाषित किया। उनमें से कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं—

1. "अच्छा प्रबन्ध मानवीय एवं भौतिक शक्ति तथा सदुपयोग से भागीदार तथा जन साधारण की सन्तुष्टि के लिए सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति करता है।"

"Good Management achieves a social objective with the best use of human and material energy and time with satisfaction for the participants and the public."

—*Mary Cushing Neils*

2. "प्रबन्ध केवल निर्णय करने तथा मानव की क्रियाओं पर नियन्त्रण करने की विधि है ताकि निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हो जाये।"

"Management is simply the process of decision making and control over the action of human being for the express purpose of attaining predetermined goals." —*Stanley Vence*

3. "प्रबन्ध वह कार्य है, जो किसी प्रबन्धक को करना पड़ता है।" —*Allen*

4. "प्रबन्ध मुख्य रूप से विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए दूसरों के प्रयत्नों को नियोजित, समान्वित, प्रेरित तथा नियन्त्रित करने के लिए आर्थिक सिद्धान्तों को प्रयोग में लाया जाता है।"

"Management is principally a task of planning, co-ordinating, motivating and controlling the efforts of others towards a specific objective." —*Lundi James L.*

5. "प्रबन्ध उद्योगों में सम्पन्न किया जाने वाला वह कार्य है जिसका सम्बन्ध प्रशासन द्वारा निर्धारित सीमा के अन्तर्गत नीतियों को क्रियान्वित करने तथा अपने समक्ष उपस्थित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संगठन का उपयोग करने से होता है।"

"Management proper is the function in industry concerned and the execution of policy within the limits set up by administration and the organization for the particular objects set before it." —*Oliver Sheldon*

Scanned with CamScanner

6. "निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मानवीय शक्तियों के प्रयोग एवं निर्देशन की प्रक्रिया प्रबन्ध कहलाती है।"

"Management is a process of releasing and directing human energies towards attaining a definite goal." —***C.W.Wilson***

7. "प्रबन्ध किसी प्रतिष्ठान के कार्य को प्रभावपूर्ण ढंग से नियोजित एवं नियमित करने के उत्तरदायित्व की सामाजिक क्रिया है। इस उत्तरदायित्व में—(i) योजना के अनुसार चलते रहने के लिए उपयुक्त कार्यविधि को तैयार करना और उसको बनाये रखना तथा (ii) प्रतिष्ठान की संरचना करने वाले कर्मचारियों का मार्ग निर्देशन, संगठन तथा निरीक्षण सम्मिलित है।"

"A social process entailing responsibility for the effective planning and regulation of the operations of an enterprise, such responsibility involving : (i) the installation and maintenance of proper procedures to ensure adherence to plans, and (ii) the guidance integration and supervision of the personal comprising the enterprise and carrying out its operations." —***E.F.L. Brech***

8. "प्रबन्ध औपचारिक रूप से संगठित दलों में व्यक्तियों के द्वारा तथा उनको साथ लेकर काम कराने व करने की कला है।"

"Management is the art of getting things done through and with the people of informally organized group." —***Harold Koontz & O' Donnel***

9. "औद्योगिक प्रबन्ध उपलब्ध साधनों के उपयोग द्वारा उद्देश्यों की प्राप्ति से सम्बन्धित है।"

"Industrial Management deals with the achievement of objectives by means of utilizing the available resources."

10. "व्यापक रूप से प्रबन्ध उस कला को कहते हैं, जिसके द्वारा किसी उद्योग में मनुष्यों एवं पदार्थों को नियन्त्रित करने के लिए आर्थिक सिद्धान्तों को प्रयोग में लाया जाता है।"

"Management may be broadly defined as the art of applying the economic principles that underlie the control of man and materials in the enterprise under consideration." —***Dr. Kimbal & Kimbal***

11. "प्रबन्ध एक बहुउददेश्यीय तन्त्र है, जो व्यवसाय का प्रबन्ध करता है, प्रबन्धकों का प्रबन्ध करता है और कार्य करने वालों एवं कार्य का प्रबन्ध करता है।"

"Management is a multi-purpose organ that manages a business and manages managers and manages workers and work." —***Peter. F. Druker***

12. "व्यवसाय एक संस्था है, जो निजी लाभ की प्रेरणा के अधीन समाज को वस्तुयें व सेवायें उपलब्ध कराने के लिए संगठित व संचालित की जाती है।"

"Business is an institution organized and operated to provide goods and services to society under the incentive of private gain." —***Wheeler Bayard O***

व्यवसाय का अर्थ

(Business Management)

व्यवसाय अंग्रेजी शब्द Business का हिन्दी रूपान्तर है, जिसको अर्थ किसी कार्य में व्यस्त रहना है। परन्तु अर्थशास्त्र के अनुसार मनुष्य की वे सभी क्रियायें जिनका सम्बन्ध धनोपार्जन से है, व्यवसाय कहलाती हैं।

आर्थिक दृष्टि से व्यवसाय से तात्पर्य ऐसी क्रियाओं से है, जो प्रकृति प्रदत्त पदार्थों में उपयोगिता का सृजन करती है। यह उपयोगिता रूप बदलकर (गन्ने से गुड़ बनाना, लकड़ी से मेज व कुर्सी बनाना), स्थान परिवर्तन करके (जंगल से घास काटकर शहर में पहुँचाना), स्वामित्व परिवर्तन द्वारा (विद्यार्थी द्वारा पुस्तक विक्रेता से पुस्तक खरीदना), ज्ञान वृद्धि द्वारा (विज्ञापन) समय व संचय द्वारा (सिरका, आसव तथा अनाज का भण्डारण आदि) सृजित की जाती हैं।

Scanned with CamScanner

इसी कारण व्हीलर ने कहा, "मौसम की भाँति व्यवसाय सदैव हमारे साथ रहता है।"

व्यवसाय के अन्तर्गत व्यापार (क्रय-विक्रय); वाणिज्य (यातायात व संवादवाहन, बीमा कम्पनी, विज्ञापन संस्थायें, गोदाम, डाक विभाग आदि), उद्योग (जननिक, निर्माणी, निष्कर्षण, संश्लेष्णात्मक तथा रचनात्मक), वितरण सेवायें एवं प्रत्यक्ष सेवायें आदि का समावेश होता है।

व्यवसाय की परिभाषा

व्यवसाय की अवधारण को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न विद्वानों ने व्यवसाय को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है—

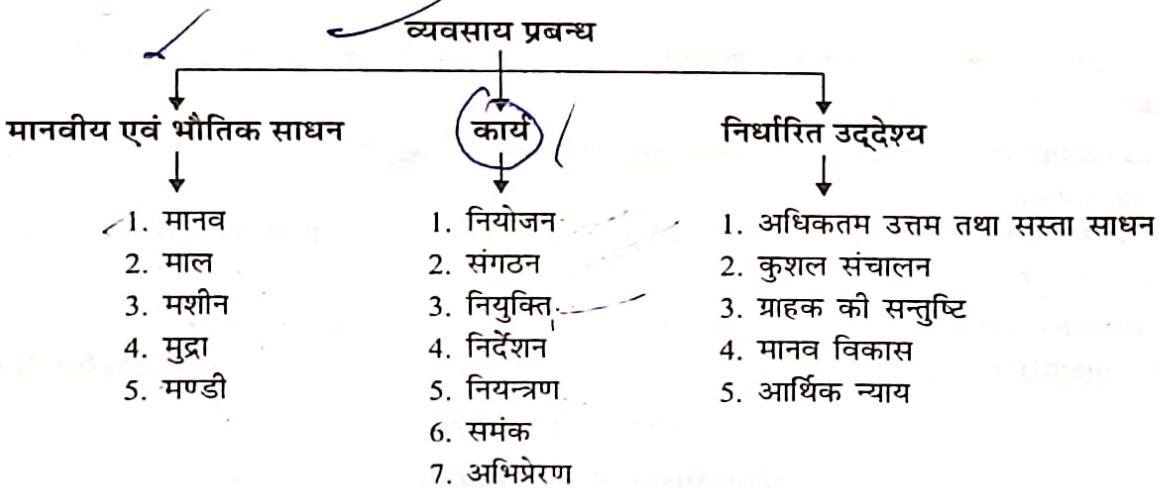
"Business is an institution organised an operated to provide goods and services to society under the incentive of private gain." —***Wheeler Bayard O***

एफ० सी० हूपर के अनुसार—"व्यवसाय से आशय वाणिज्य एवं उद्योग के सम्पूर्ण जटिल क्षेत्र, आधारभूत उद्योगों, प्राविधिक एवं निर्माणी उद्योगों तथा सहायक सेवाओं के वृहत् जाल-वितरण, बैंकिग, बीमा, यातायात आदि से है जो सम्पूर्ण व्यावसायिक जगत की सहायता करते हैं तथा उसमें अन्तर्व्याप्त है।"

उपयुक्त परिभाषा—"व्यवसाय से आशय उन मानवीय आर्थिक क्रियाओं से है, जो वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन एवं वितरण के माध्यम से समाज की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से की जाती है।"

व्यवसाय प्रबन्ध का अर्थ

व्यवसाय और प्रबन्ध दोनों शब्दों के अलग-अलग विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि, "व्यवसाय के विभिन्न अंगों में प्रभावपूर्ण सहयोग स्थापित करने की विशिष्ट प्रक्रिया का नाम ही व्यवसाय प्रबन्ध है।" अन्य शब्दों में, "व्यवसाय प्रबन्ध से आशय किसी संस्था के व्यापारिक उद्देश्यों (न्यूनतम लागत पर श्रेष्ठ किस्म का अधिकतम न्याय आदि) को पूरा करने के लिए तथा मानवीय एवं भौतिक संसाधनों (मानव, माल, मशीन, मुद्रा एवं मण्डी) का अधिकतम उपयोग करने के लिए योजना बनाने, एक शक्तिशाली संगठन का निर्माण करने, कर्मचारियों का प्रबन्ध करने, उन्हें निर्देशन करने तथा संगठन की गतिविधियों को निर्देशित करने से है। व्यवसाय प्रबन्ध को नीचे प्रदर्शित चार्ट द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।



प्रबन्ध व प्रशासन
(Management & Administration)

'प्रबन्ध' तथा 'प्रशासन' दो शब्द हैं, जिनके अर्थ और प्रयोग के बारे में विभिन्न विद्वानों में मतभेद रहा है, जिन्हें स्पष्ट करने के लिए आवश्यक है कि प्रशासन का अर्थ स्पष्ट कर दिया जाए।

Scanned with CamScanner

प्रशासन का अर्थ—कोई भी उपक्रम (Enterprise), चाहे वह औद्योगिक हो अथवा व्यावसायिक, बिना नियन्त्रण के चल पाना संभव नहीं है। प्रशासन का कार्य, उपक्रम में एक निश्चित नियन्त्रण प्रणाली स्थापित करना होता है। इसके अतिरिक्त, "प्रशासन का कार्य वित्त, उत्पादन व वितरण में समन्वय या सामन्जस्य स्थापित करना, संगठन का ढाँचा तैयार करना और उपक्रम के समस्त कार्यों पर नियन्त्रण स्थापित करना है।"

ओलिवर शैल्डन, Oliver Sheldon के अनुसार 'प्रशासन' व्यवसाय का निर्णयात्मक कार्य है जबकि प्रबन्ध इसका क्रियात्मक कार्य है। इनके अनुसार—"प्रशासन का कार्य प्रतिष्ठान या उपक्रय की नीतियों का निर्धारण करना तथा प्रबन्ध का कार्य उन नीतियों को लागू कराना है।" अर्थात् प्रतिष्ठान के लक्ष्यों तथा नीतियों (Policies) के निर्धारण का मुख्य दायित्व प्रशासन का होता है।

जे० एन० शुल्जे के अनुसार—"प्रशासन उद्योग की वह शक्ति है, जो उन उद्देश्यों को निर्धारित करती है, जिनकी पूर्ति हेतु संगठन एवं प्रबन्ध प्रयत्न करते हैं और जिसके अनुकूल ही उनका आचरण होता है।"

कोई भी अधिष्ठान जो लाभ अर्जित करने के लिए अथवा सेवा के लिए हो, नियन्त्रित किया जाना आवश्यक है। अतः प्रत्येक अधिष्ठान में नियन्त्रण (control) प्रणाली होनी चाहिए।

अधिष्ठान का नियन्त्रण प्रशासन और प्रबन्धन के माध्यम से किया गया जाता है। अधिष्ठान के लक्ष्य और नीतियों (Policies) का निर्धारण, प्रशासन-तन्त्र द्वारा किया जाता है।

एक व्यापारिक अधिष्ठान के मुख्य लक्ष्यों में मितव्ययी उत्पादन, उत्पाद की लाभकारी बिक्री तथा अधिष्ठान की तरक्की आदि सम्भावित होते हैं। गैर-व्यापारिक अधिष्ठान में जहाँ व्यापार नहीं होता, लाभ कमाने की अपेक्षा, नीति निर्धारण पर अधिक बल दिया जाता है। अधिष्ठान में प्रशासन (administration) के पास निम्नलिखित कार्य करने के लिए होते हैं।

(अ) अपने द्वारा किये जाने वाले कार्य तथा अधीनस्थों के कार्य को संगठित करना।

(ब) अधीनस्थों की पोजिशन गतिविधियों का मापन, मूल्यांकन और नियन्त्रण करना।

(ग) दायित्वों तथा अधिकारों का प्रतिनिधित्व (delegate) करना।

प्रबन्ध और प्रशासन

प्रबन्ध तथा प्रशासन शब्द में अन्तर को स्पष्ट करने के लिए अधिकांश विद्वानों ने मूलतः दो आधारभूत बातों का सहारा लिया है या इन दो पहलुओं की अदला-बदली करके उनकी पृष्ठभूमि को समझने का प्रयास किया है। ये दो पहलू हैं—

(i) प्रथम—नीतियों का निर्धारण (Determination of Policies),

(ii) द्वितीय—नीतियों का कार्यान्वन (Execution of Policies),

इस सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों द्वारा व्यक्त किये गये विचारों को निम्नलिखित तीन भागों में व्यक्त किया जा सकता है—

1. प्रशासन प्रबन्ध से अधिक विस्तृत है—इस विचारधारा के समर्थक हैं—"श्री ओलिवर शैल्डन, टीड, फ्लोरेंस, विलियम, आर० स्प्रीगल, लैंसबर्ग।

श्री ओलिवर शैल्डन के अनुसार,"प्रशासन व्यवसाय का निर्णायात्मक कार्य है, जबकि 'प्रबन्ध' इसका क्रियात्मक कार्य है। प्रशासन नीतियों तथा कार्यक्षेत्र को निर्धारित करता है जबकि प्रबन्ध नीतियों के क्रियान्वयन का कार्य करता है।"

इसी प्रकार **डॉ० स्प्रीगल एवं लैन्सबर्ग** के अनुसार—"प्रशासन किसी प्रतिष्ठान का वह कार्य है जो नीतियों एवं प्रमुख उद्देश्यों के सामान्य निर्धारण से सम्बन्धित है, प्रबन्ध किसी प्रतिष्ठान का वह कार्य है जो व्यवसाय के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए इसकी विभिन्न क्रियाओं के निर्देशन एवं नियन्त्रण से सम्बन्धित है।"

"Administration is that function of an enterprise which concerns itself with the overall determination of policies and major objectives. Management is that function of an enterprise which concerns itself with the direction and control of the various activities to attain the business objectives."

—Spriegal and Lansburgh

Scanned with CamScanner

2. प्रबन्ध प्रशासन से अधिक व्यापक है—उपयुक्त मत के विपरीत कुछ विद्वानों का मत है कि प्रवन्ध, प्रशासन की तुलना में अधिक व्यापक है। **डॉ० किम्बाल एवं किम्बाल** के अनुसार प्रवन्ध में उपक्रम की स्थापना तथा उसकी नीतियों के निर्धारण सम्बन्धी सभी कार्य सम्मिलित हैं जबकि प्रशासन में उस उपक्रम की नीतियों एवं उद्देश्यों का क्रियान्वयन सम्मिलित है। प्रशासन व प्रबन्ध के अन्तर को स्पष्ट करते हुए ई०एफ०एल०ब्रीच कहते हैं, "प्रशासन' से अभिप्राय नीति निर्धारण में उत्तरदायित्व से है अर्थात् यह औद्योगिक नियन्त्रण के सोचने वाले भाग से सम्बन्धित है। 'प्रबन्ध' से अभिप्राय कार्यों के पर्यवेक्षण से है अर्थात् यह 'सोचने' के स्थान पर 'करने' का प्रश्न है।"

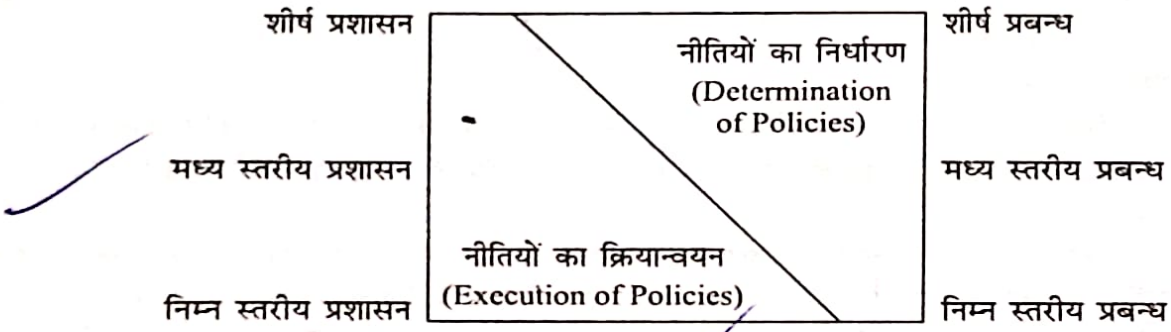
"Administration is held to mean responsibility for the determination of Policy, i.e., it is concerned with the thinking part of industrial control, Management is concerned with the supervision of action i.e., it is a question of 'doing' rather than thinking." —***E.F.L. Brech***

3. प्रबन्ध एवं प्रशासन पर्यायवाची हैं—इस विचारधारा के अन्तर्गत प्रवन्ध व प्रशासन पर्यायवाची है और इन्हें एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग किया जा सकता है। इस विचारधारा के प्रबल समर्थक हैं—श्री हेनरी फैयोल, विलियम, एच० न्यूमैन, डॉ० किम्बाल एवं किम्बाल, थीयोमैन तथा ई० एफ० एल० ब्रीच। श्री किम्बाल एवं किम्बाल के शब्दों में, "प्रबन्ध व प्रशासन का अन्तर भ्रमात्मक है। ये दोनों शब्द एक दूसरे के पर्यायवाची हैं। थीयो हाई मैन के शब्दों में, "प्रशासनिक तथा प्रबन्धकीय कार्यों का निष्पादन करने के लिए दो पृथक् सेविर्गीय समूहों की आवश्यकता नहीं पड़ती। प्रत्येक प्रवन्ध को दोनों प्रकार की क्रियाओं का निष्पादन करना पड़ता है तथा उन्हें अपना कुछ समय प्रशासन एवं कुछ समय प्रवन्ध करने में व्यय करना पड़ता है।"

"The distinction is most confusing, Management and Administration are synonyms."
—***Dr. Kimbal & Kimbal***

"No two separate sets of personnel are required, however, to discharge administrative and managerial function. Each manager performs both activities and spends part of his time administration and part of his time managing." —***Theo Haiman***

उपरोक्त विवेचन के आधार पर पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु 'प्रबन्ध' तथा 'प्रशासन' में अन्तर करना सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों ही पहलुओं से निरर्थक है। प्रवन्ध तथा प्रशासन दोनों के कार्य समान हैं, उनकी प्रक्रिया एक सी है और दोनों का कार्य क्षेत्र एक सा है। दोनों के सिद्धान्त एक से हैं, उनकी प्रयुक्ति का क्षेत्र एक सा है तथा दोनों ही सार्वभौमिक प्रयुक्ति के गुणों से सम्पन्न हैं।



इस विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि उद्देश्य प्राप्ति के लिए नीतियों का निर्धारण तथा उनका क्रियान्वयन साथ-साथ होना आवश्यक है। क्योंकि ये दोनों एक ही गाड़ी के दो पहिये हैं और इन्हें अलग-अलग करना खतरनाक होगा। यदि दोनों में अन्तर हो सकता है तो केवल सीमा का। उदाहरण के लिए शीर्ष प्रबन्ध का कार्य नीतियों का निर्धारण करना अधिक है और क्रियान्वयन का कम। परन्तु नीतियों का निर्धारण अर्थहीन होगा, यदि वे क्रियान्वयन पर उचित ध्यान नहीं देंगे। ठीक इसी प्रकार निम्नस्तरीय प्रबन्ध के अन्तर्गत प्रशासन का कार्य नीतियों के निर्धारण का अधिक और नीतियों के क्रियान्वयन का कम है लेकिन यदि उनकी प्रतिभा का पूरा लाभ उठाना है तो उन्हें अधिक अधिकार देने होंगे।

Scanned with CamScanner

उपयुक्त चित्र से यह स्पष्ट होता है कि "प्रबन्ध तथा प्रशासन' दोनों एक दूसरे से ओत-प्रोत (cross sectional) हैं। जैसे-जैसे प्रबन्ध का ज्ञान बढ़ रहा है, उसी भांति प्रबन्ध तथा प्रशासन के अन्तर की खाई (gap) भी समाप्त होती जा रही है। विकसित देशों में इन दोनों शब्दों के स्थान पर केवल एक ही शब्द का उपयोग किया जाता है। हमारे देश में भी इन दोनों का परस्पर एक-दूसरे के स्थान पर उपयोग किया जाता है।

हमारे देश में भी इन दोनों का परस्पर एक-दूसरे के स्थान पर उपयोग हो रहा है। सरकारी क्षेत्र में जिसे प्रशासन कहा जाता है, उसे निजी एवं व्यावसायिक क्षेत्र में प्रबन्ध कहा जाता है।

प्रबन्ध और संगठन
(Management and Organization)

संगठन एक ऐसी क्रिया है, जिसके द्वारा उत्पत्ति के विभिन्न साधनों-भूमि, श्रम, पूँजी, प्रबन्ध एवं साहस में समन्वय स्थापित किया जाता है। दूसरे शब्दों में, किसी व्यावसायिक संस्था के सामान्य उद्देश्य या उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उत्पत्ति के विशिष्ट साधनों के मैत्रीपूर्ण संयोजन को संगठन कहते हैं। उत्पत्ति के साधनों में पूर्ण समन्वय एक कुशल संगठन द्वारा सम्भव है।

सामान्यत: संगठन किसी सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उत्पादन के विभिन्न घटकों में मैत्रीपूर्ण संयोजन करना कहलाता है। विभिन्न अंगों को एकत्र करके, उपक्रम के लक्ष्य प्राप्ति हेतु कार्य लेना है। संगठन वह प्रक्रिया है, जो उत्पादन सम्बन्धी विभिन्न कड़ियों को एक साथ रखने का कार्य करती है अर्थात् उत्पत्ति के विभिन्न साधनों (भूमि, श्रम, पूँजी एवं प्रबन्ध) में स्थापित वैज्ञानिक सामंजस्य को ही "संगठन" कहते है।

हैरोल्ड कुण्ट्ज व प्रो० डोनेल के अनुसार—"वर्तमान युग में अनेक घटकों के सहयोग से उत्पादन किया जाता है—इन विभिन्न घटकों से प्रभावी सामंजस्य स्थापित करना ही संगठन हैं।"

एल० उरविक के अनुसार—"निश्चित प्रयोजन हेतु किसी कार्य को करने के लिए उपयोग क्रियाओं का निर्धारण करना तथा उन क्रियाओं को सही व्यक्तियों के बीच वितरित करने की व्यवस्था करना ही संगठन है।"

लेन्सबर्ग के अनुसार—"किसी सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक साथ कार्य करने वाले व्यक्तियों में रचनात्मक सम्बन्ध ही संगठन कहलाता है।"

प्रबन्ध का आशय नियोजन, संगठन, समन्वय तथा नियन्त्रण के सम्पादन की उस प्रक्रिया से है जो उपक्रम के निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए मधुर मानवीय सम्बन्धों का विकास करती है। यदि इस परिभाषा के तत्वों का विश्लेषण किया जाए तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्रबन्ध का क्षेत्र विशाल है, जिसमें नियोजन, संगठन, समन्वय, अभिप्रेरणा तथा नियन्त्रण की प्रक्रियायें सम्मिलित है। अत: संगठन को प्रबन्ध का एक भाग कहना ही उचित होगा। इसीलिए शैल्डन ने संगठन को प्रबन्ध की मशीन कहा है, उनके अनुसार—"संगठन प्रबन्ध का वह तन्त्र है जिसे प्रशासन द्वारा निश्चित किये हुए लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु वह उपयोग में लाता है।" इन्होंने एक अन्य स्थान पर लिखा है कि संगठन व्यक्तियों या विभागों द्वारा किये जाने वाले कार्यों को इस प्रकार संयोजित करने की प्रक्रिया है, जिससे कि उपलब्ध साधन तथा प्रयासों को प्रभावपूर्ण तरीके से क्रमबद्ध रूप में व्यवस्थित एवं समन्वित किया जा सके।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि संगठन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें कार्यों का विभाजन किया जाता है, उनका समूहीकरण किया जाता है सम्बन्धित व्यक्तियों को अधिकार प्रदत्त किए जाते हैं तथा व्यक्तियों एवं विभागों के बीच आपसी सम्बन्ध निर्धारित किए जाते हैं ताकि प्रशासन द्वारा निर्धारित लक्ष्य सफलतापूर्वक प्राप्त किए जा सकें। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि "संगठन वह साधन है जिसके माध्यम से प्रशासन अपनी संस्था के लक्ष्यों को प्राप्त करता है।" इसी प्रकार संगठन प्रबन्ध का भी अभिन्न अंग है।

ब्रेच के अनुसार—"संगठन प्रबन्ध का वह भाग है जो उपक्रम में कार्यरत प्रबन्धकीय पर्यवेक्षकीय तथा विशेषज्ञों में उत्तरदायित्वों को विभाजित करने तथा कर्मचारियों के मध्य औपचारिक सम्बन्धों के निर्धारण करने से सम्बन्धित है।"

Scanned with CamScanner

प्रबन्धन, प्रशासन और संगठन में भेद
(Difference between Administration, Management and Organization)

श्री ओलिवर शैल्डन के अनुसार—"प्रशासन संगठन का स्वरूप निर्धारित करता है, जिसका उपयोग प्रबन्ध द्वारा किया जाता है। 'प्रशासन' का कार्य नीति निर्धारण करना और 'प्रबन्ध' का कार्य उसे कार्यान्वित करना है। प्रशासन द्वारा निर्धारित नीतियों एवं उद्देश्यों को कार्यान्वित करने के लिए प्रबन्ध जिस यन्त्र का प्रयोग करता है, उसे 'संगठन' कहते हैं।"

प्रशासन संस्था की नीतियों तथा उद्देश्यों के निर्धारण का कार्य करता है जबकि प्रबन्ध प्रशासन द्वारा निर्धारित नीतियों के क्रियान्वयन का कार्य करता है। संगठन प्रशासन द्वारा निर्धारित नीतियों एवं उद्देश्यों का निष्पादन करने के लिए प्रबन्ध का साधन है। प्रबन्धीय कार्य को मूलतः प्रशासकीय कार्य को संस्था की आन्तरिक तथा बाह्य परिस्थितियाँ भी प्रभावित करती हैं। संगठन का निर्माण प्रशासकीय एवं प्रबन्धकीय दोनों के कार्यों के ध्यान में रखकर किया जाता है।

प्रशासकीय कार्य उच्च स्तरीय प्रबन्धक अधिक करते हैं जबकि प्रबन्धकीय कार्य कार्यकारी प्रबन्धक या मध्यमवर्गीय प्रबन्धक करते हैं। संगठन संरचना का निर्माण प्रशासन तथा प्रबन्धक सभी आपसी सहयोग के आधार पर करते हैं। प्रशासन पूर्व-नियोजन का कार्य करता है, जबकि प्रबन्ध कर्मचारियों के चुनाव, अभिप्रेरणा, निरन्तर समन्वय आदि का कार्य करता है। इसके विपरीत संगठन संस्था के समस्त स्तरों पर कार्य करने वालों के मध्य सम्बन्धों को व्यक्त करता है।

प्रशासन उन सीमाओं का निर्धारण करता है जिनमें प्रबन्ध के कार्य करना होता है जबकि प्रबन्ध प्रशासन द्वारा निर्धारित सीमाओं में रहकर कार्य करता है। संगठन प्रशासन द्वारा निर्धारित अधिकार सीमाओं के अन्तर्गत व्यक्तियों तथा विभागों के बीच परस्पर सम्बन्धों को व्यक्त करता है।

उपयुक्त वाद-विवाद के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रशासन व प्रबन्ध में अन्तर करना उचित नहीं है। इसके तीन कारण हैं—

1. प्रशासन या उच्च स्तरीय प्रबन्ध भी प्रबन्धकीय क्रम व्यवस्था का एक अंग है।
2. व्यावहारिक रूप से हम प्रशासन एवं प्रबन्ध को पृथक् नहीं कर सकते।
3. प्रबन्ध कहा जाने वाला भाग (मध्य एवं निम्न स्तरीय प्रबन्ध) भी नीति निर्धारण का कार्य करता है या उसमें प्रशासन की सहायता करता है।

किम्बाल एण्ड **किम्बाल** के अनुसार—"प्रबन्ध एवं प्रशासन पर्यायवाची हैं और उनमें अन्तर पर्याप्त भ्रमात्मक है।"

हेनरी फैयोल के अनुसार—"प्रशासन तथा प्रबन्ध शब्दों में अन्तर करना सर्वथा व्यर्थ है। शासन के क्षेत्र में उच्च-स्तरीय कार्यकारिणी के लिए 'प्रशासन' शब्द का प्रयोग अधिक होता है जबकि व्यवसाय जगत में 'प्रबन्ध' शब्द का'।

प्रबन्ध के लक्षण अथवा विशेषताएँ (Characteristics of Management)

प्रबन्ध के उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर प्रबन्ध की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. प्रबन्ध सार्वभौम है—प्रबन्ध प्रक्रिया सीमित न होकर सार्वभौम है, अर्थात् यह सभी कार्यों, संस्थाओं एवं देशों में व्याप्त है। यह एक सार्वभौमिक क्रिया है, जो प्रत्येक संस्था में, चाहे वह सामाजिक संस्था हो, धार्मिक हो या व्यावसायिक संस्था हो, समान रूप से सम्पन्न की ज़ाती है।

2. नियन्त्रण—केवल निर्देशन मात्र से न तो सभी व्यक्ति ठीक से काम करते हैं और न समस्याओं की सम्भावना समाप्त हो जाती है। इसके लिए एक ओर कर्मचारियों को निर्देशित किया जाता है तो दूसरी ओर उनके अवांछित या सीमा से बाहर के कार्यों पर नियन्त्रण भी रखना होता है।

3. प्रबन्ध एक प्रक्रिया है—प्रबन्ध एक प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति तक चलती रहती है। विलकिंसन और फोस्टर के अनुसार—"प्रबन्ध एक शब्द है जो कि सामान्य रूप से उस प्रक्रिया का वर्णन करने के लिए प्रयोग किया जाता है, जिसके द्वारा कोई व्यक्ति अपने ऊपर आरोपित सीमाओं के बावजूद एक वांछित लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करता है।" प्रबन्ध किसी कार्य को करने एवं कराने की एक निश्चित प्रक्रिया है जो निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति करने तक चलती रहती है।

Scanned with CamScanner

4. प्रबन्ध समायोजन के रूप में—विभिन्न व्यक्तियों को उनके कार्यों के विषय में निर्देशन देना मात्र ही पर्याप्त नहीं है, किसी भी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए समूह के विभिन्न व्यक्तियों के कार्यों का समन्वय या समायोजन होना चाहिए।

5. प्रबन्ध एक सामूहिक प्रक्रिया है—औद्योगिक उपक्रम यन्त्रों को नहीं बल्कि उन पर काम करने वाले मुनष्य को कहते हैं। इन मुनष्यों को चाहे प्रबन्धकों के द्वारा कितना भी नियन्त्रित, निर्देशित और समायोजित किया जाए उनमें संगठन तब तक नहीं आयेगा जब तक उनमें स्वयं समूह की भावना या प्रेरणा न हो। इसमें प्राय: व्यक्ति विशेष पर नहीं बल्कि समूह पर बल दिया जाता है। यह एक विशुद्ध मानवीय क्रिया है जिसके द्वारा मानव के द्वारा मानवीय क्रियाओं को नियोजित, नियन्त्रित, प्रेरित एवं समन्वित करने का कार्य सम्पन्न किया जाता है।

6. प्रबन्ध एक सामाजिक प्रक्रिया है—ई०एफ०एल०ब्रेच के अनुसार, "मानवीय तत्व की उपस्थिति ही प्रबन्ध को सामाजिक प्रक्रिया का विशेष लक्षण प्रदान करती है।" प्रबन्ध के कार्य मुख्य रूप से सामाजिक मनुष्यों की प्रक्रिया से सम्बन्धित है।

7. प्रयत्नों का निर्देशन—प्रत्येक कर्मचारी को मनचाहे ढंग से कार्य करने देने से अव्यवस्था उत्पन्न होती है। अत: प्रबन्ध में संगठन के प्रत्येक व्यक्ति को कार्य करने के विषय में निर्देशन दिया जाता है।

8. प्रबन्ध अदृश्य शक्ति—प्रबन्ध एक अदृश्य शक्ति है, जिसका ज्ञान प्रयासों की सफलता एवं असफलता के समय होता है। इसे स्पर्श नहीं किया जा सकता, वरन् इसकी उपस्थिति को संस्था में किये गये प्रयासों के परिणामों—व्यवस्था, अनुशासन, उत्पादन की किस्म तथा उत्पादकता के रूप में अनुभव किया जा सकता है।

9. उत्तरदायित्वों का संगठन—प्रबन्ध के लिए यह आवश्यक है कि उपक्रम में काम करने वाले विभिन्न व्यक्तियों के उत्तरदायित्वों को निश्चित कर दिया जाए और उनको परस्पर संगठित किया जाए। प्रबन्ध में व्यक्तिगत प्रयासों के स्थान पर सामूहिक प्रयास किये जाते हैं, परन्तु सामूहिक प्रयास करने के लिए संगठन की आवश्यकता होती है।

10. प्रबन्ध सभी स्तरों पर आवश्यक है—संगठन के छोटे से छोटे स्तर से लेकर बड़े से बड़े स्तर तक प्रबन्ध आवश्यक होता है। प्रत्येक क्षेत्र में प्रबन्ध की आवश्यकता पड़ती है।

11. प्रबन्ध विज्ञान और कला दोनों—प्राय: यह प्रश्न किया जाता है कि प्रबन्ध विज्ञान है या कला। कुछ विद्वान इसे केवल कला मानते हैं तो कुछ इसे विज्ञान की कोटि में रखते हैं। लेकिन सच यह है कि प्रबन्ध विज्ञान भी है और कला भी।

12. प्रबन्ध एक उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है—प्रबन्ध एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें अन्य व्यक्तियों से सुव्यवस्थित रूप से कार्य सम्पन्न कराके संस्था के पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है।

13. माप दण्ड प्रबन्ध का अभिन्न अंग—यह नियन्त्रण किसी प्रबन्धक की इच्छा मात्र पर आधारित नहीं होना चाहिए। किसी भी व्यक्ति के कार्य के उचित या अनुचित का मूल्यांकन करने के लिए कुछ निश्चित प्रभाव होने आवश्यक हैं, ताकि हस्तक्षेप और नियन्त्रण न्यायपूर्ण हो सके।

14. प्रबन्ध का सम्बन्ध कार्य का वातावरण उत्पन्न करने से है—प्रबन्ध का सम्बन्ध कार्य करने से सम्बन्धित अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करने से है, जिससे कर्मचारियों को कार्य करने में सुविधा हो और वे अपनी पूर्ण क्षमता का उपयोग संस्था के लाभ के लिए कर सकें।

प्रबन्ध की प्रकृति
(Nature of Management)

प्रबन्ध ज्ञान की एक विस्तृत शाखा है। प्रबन्ध की प्रकृति का अध्ययन एवं स्पष्टीकरण कठिन, परन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण है। डॉ० एफ० डब्ल्यू टेलर ने इसे 'तकनीकी निश्चयवाद', श्री हैनरी फेयाल ने 'सार्वभौमिकता', श्री पीटर एफ० ड्रकर ने 'आर्थिक पहलू', री ओलिवर शैल्डन ने 'समझौते की भावना', श्री ई०एफ०एल० ब्रीच ने 'सामाजिक प्रक्रिया' तथा श्री एप्पले एवं फोलेट ने 'मानवीय तत्व' कहकर पुकारा है। प्रबन्ध की प्रक्रिया का अध्ययन करने से हमें प्रबन्ध की प्रकृति के सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्यों का पता चलता है—

1. प्रबन्ध का सामाजिक उत्तरदायित्व (Social Responsibility of the Management)—आधुनिक युग में प्रबन्ध सम्पूर्ण समाज का प्रतिनिधि माना जाता है। अत: प्रबन्ध का समाज के प्रति भारी दायित्व है। अपने महत्व के कारण

Scanned with CamScanner

प्रबन्ध आज समाज का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है। बड़ी-बड़ी संस्थाओं के प्रबन्धक अपने निर्णयों से न केवल समाज के आर्थिक पक्ष को प्रभावित करते हैं, बल्कि उसके नैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा संस्थागत पक्ष को भी प्रभावित करते हैं। इसके कारण आज प्रबन्धक के कुछ सामाजिक दायित्व भी पैदा हो गए हैं। प्रबन्धक इन दायित्वों की अनदेखी नहीं कर सकता। प्रबन्धक अपने सामाजिक दायित्व के अन्तर्गत मुख्य रूप से निम्नलिखित पक्षों के प्रति उत्तरदायी होता है—

(i) उपभोक्ताओं के प्रति (Towards Consumers)—उपभोक्ताओं एवं ग्राहकों के प्रति प्रबन्ध के उत्तरदायित्व हैं—उत्तम एवं प्रमाणित किस्म का माल, तिथियों पर सुपुर्दगी देना, उत्पादित माल को उचित मूल्य पर बेचना, माल की निर्धारित वितरण प्रणाली को सुदृढ़ बनाना, उपभोक्ताओं के साथ सौजन्यपूर्ण व्यवहार करना, उपभोक्ताओं की शिकायतों पर उचित ध्यान देना तथा उन्हें दूर करने के लिए उचित उपाय अपनाना, वस्तुओं के विभिन्न उपयोगों के सम्बन्ध में अनुसन्धान करना तथा सभी वर्गों के उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं, रुचियों एवं क्रय-शक्ति को ध्यान में रखते हुए वस्तुओं का निर्माण करना आदि।

(ii) स्वामियों के प्रति (Towards Owners)—स्वामी के प्रति प्रबन्ध का उत्तरदायित्व है—विनियोजित पूँजी पर उचित लाभांश देना, विनियोजित पूँजी की सुरक्षा को बनाये रखना, विनियोजित पूँजी का सदुपयोग करना तथा स्वामी को समय-समय पर व्यवसाय की प्रगति से अवगत कराना।

(iii) समुदाय के प्रति (Towards Community)—समुदाय के प्रति प्रबन्ध के उत्तरदायित्व हैं—एकाधिकारिक शोषण की समाप्ति, स्वस्थ प्रतिस्पर्धा कायम करना, सामाजिक कल्याण सुविधाओं में वृद्धि करना, रोजगार देना तथा समाज को उच्च जीवन स्तर प्रदान करना।

(iv) पूर्तिकर्त्ताओं के प्रति (Towards the Suppliers)—उद्योग में कच्चा माल, मशीनें, यन्त्र व उपकरण तथा अन्य सामग्री के पूर्तिकर्त्ताओं के प्रति प्रबन्ध के उत्तरदायित्व हैं—उनके द्वारा दी गई वस्तुओं के मूल्यों का समय पर भुगतान करना, उनके साथ उचित व्यवहार करना, सभी पूर्ति-कर्त्ताओं को माल देने के लिए उचित समय एवं अवसर प्रदान करना, ग्राहकों की रुचि, आदतों एवं फैशन में होने वाले परिवर्तनों से उन्हें अवगत कराये रखना।

(v) कर्मचारियों के प्रति (Towards Employees)—कर्मचारियों के प्रति प्रबन्ध के उत्तरदायित्व हैं—नौकरी की सुरक्षा दिलाना, प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धतियों को लागू करना, काम करने की स्वस्थ दशायें बनाना, कर्मचारियों के हितों की पूर्ण देखभाल करना, कर्मचारियों को सामाजिक सुरक्षा देना, पदोन्नति के सुअवसर प्रदान करना, कर्मचारियों को लाभ में हिस्सा देना, प्रशिक्षण, शिक्षा व कल्याणकारी कार्यों का विस्तार करना, कर्मचारियों की समस्याओं एवं विवादों का निपटारा करने के लिए उपयुक्त तन्त्र की स्थापना करना तथा कर्मचारियों के साथ मानवीय ढंग से व्यवहार करना। संक्षेप में प्रबन्ध को अपने कर्मचारियों को अधिकतम सन्तुष्टि प्रदान करने का प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि एक सन्तुष्ट कर्मचारी व्यवसाय व उद्योगों का तेजी से विकास करने में सहायक रहता है।

(vi) अपने स्वयं के प्रति (Towards Himself)—अपने स्वयं, व्यवसाय एवं उद्योग के प्रति प्रबन्ध के कर्त्तव्य हैं—व्यवसाय का कुशलतापूर्वक संचालन करना, व्यवसाय एवं उद्योग की लाभार्जन क्षमता को बनाये रखना और उसका निरन्तर विकास करते रहना, संस्था की प्रसिद्धि को बढ़ाना, वांछित बाजारों में प्रवेश करना, उद्योग की भुगतान क्षमता को बनाये रखना तथा सौंपे गये साधनों का अधिकतम उपयोग करना।

(vii) पारस्परिक व्यवसाय सम्बन्ध (Mutual Business Relationship)—प्रत्येक प्रबन्ध का यह पुनीत दायित्व है कि वह पारस्परिक व्यावसायिक सम्बन्धों को पूर्णत: स्वस्थ बनाये रखे।

(viii) सरकार के प्रति (Towards the Government)—सम्पूर्ण समाज की संरक्षक होने के नाते व्यवसाय के लिए आर्थिक एवं राजनीतिक वातावरण तैयार करती है और उद्योगों को सुरक्षा प्रदान करती है। अत: प्रबन्ध के भी सरकार के प्रति कुछ उत्तरदायित्व हैं। ये उत्तरदायित्व हैं—करों का नियमित रूप से भुगतान करते रहना, चोर बाजारी को रोकना, व्यक्तिगत हित के लिए भ्रष्ट तरीकों को न अपनाना, धन अथवा संरक्षण के माध्यम से राजनीतिक संरक्षण प्राप्त न करना, सरकार द्वारा निर्धारित व्यापार नीति का अनुसरण करना तथा देश के आर्थिक विकास में सहयोग प्रदान करना।

2. प्रबन्ध की सार्वभौमिकता (Universality of Management)—जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रबन्ध महत्वपूर्ण स्थान रखता है। चाहे संस्था धार्मिक हो अथवा राजनैतिक हो अथवा व्यावसायिक हो, सभी में प्रबन्ध एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। कुन्ट्ज आदि के अनुसार इसकी जरूरत सभी सामूहिक सहयोग के कार्यों में होती है और उद्यम के सभी स्तरों

Scanned with CamScanner

पर उच्च प्रबन्धकों के स्तर पर भी और फोरमैन सैक्शन ऑफिसर के निम्नस्तर पर पड़ती है। श्री हैनरी फैयोल के शब्दों में, "यह नियम अति आवश्यक है सभी प्रकार की संस्थाओं के लिए चाहे वह वाणिज्य, उद्योग, राजनीति, धर्म, युद्ध या विश्व प्रेम से सम्बन्धित हों प्रबन्ध की क्रिया को किया जाता है और इस क्रिया को करने के लिए सिद्धान्तों का होना अनिवार्य है।" एफ०डब्ल्यू० टेलर के शब्दों में, "वैज्ञानिक प्रबन्ध के प्राथमिक सिद्धान्त सभी मानवीय क्रियाओं अर्थात् एक अति साधारण व्यक्ति की क्रियाओं से लेकर बड़े निगमों की क्रियाओं पर लागू होते हैं।" संक्षेप में कहा जा सकता है कि, 'प्रबन्ध के कार्य' तथा 'प्रबन्ध के सिद्धान्त' सर्वव्यापी प्रकृति के हैं और प्रबन्ध सार्वभौमिक है इसका क्षेत्र अति व्यापक है।

3. प्रबन्ध एक पेशे के रूप में (Management as a Profession)—प्रबन्ध एक पेशा है क्योंकि प्रबन्ध में भी उपयुक्त विशेषतायें पायी जाती हैं। आज प्रबन्ध विज्ञान के समुचित सिद्धान्तों का विकास हो चुका है तथा संचित ज्ञान भी उपलब्ध है। इसके अध्ययन के लिए प्रबन्धकीय प्रशिक्षण संस्थायें निरन्तर स्थापित हो रही हैं। प्रबन्ध को पेशे के रूप से विकसित करने के लिए विभिन्न प्रबन्धकीय संस्थाओं की देश-विदेश में स्थापना हो चुकी है तथा उसके सदस्यों को उसके द्वारा बनायी गयी सामान्य आचार संहिता का पालन करना पड़ता है। एक कुशल प्रबन्ध अपने कार्य के बदले परिश्रमिक तो लेता ही है, किन्तु वह सेवा तत्व को अधिक प्रधानता देता है। पेशे का उद्देश्य निजी भरण-पोषण के साथ-साथ जन-सेवा भी है। उसी प्रकार एक प्रबन्ध में भी सेवा-भाव होना बहुत आवश्यक है। हमारे देश में अनेक स्थानों पर प्रबन्ध की शिक्षा दी जाती है; जैसे—बंगलौर, कोलकाता, दिल्ली, पिलानी आदि। एक योग्य प्रबन्धक बनने के लिए उसमें प्रबन्ध का समुचित ज्ञान, सेवा-भावना, ईमानदारी तथा नैतिक गुणों का होना आवश्यक है। डॉ० मैकफार लैण्ड ने एक पेशे की अग्रांकित पाँच विशेषताएँ बतायी हैं—

(i) व्यावसायिक क्रिया के सम्बन्ध में संगठित सिद्धान्त एवं विशिष्ट ज्ञान का होना।
(ii) सिद्धान्तों के औपचारिक प्रशिक्षण एवं संवहन की व्यवस्था।
(iii) कार्य के पेशेवर विकास के लिए प्रतिनिधि संस्था का होना।
(iv) पेशे के सदस्यों के लिए एक आचार संहिता का होना।
(v) सेवा की प्रकृति और मात्रा के अनुसार पारिश्रमिक की व्यवस्था।

जिस प्रकार एक वकील को कानूनी शिक्षा व ज्ञान की आवश्यकता होती है तथा एक डॉक्टर को चिकित्सा शास्त्र का ज्ञान आवश्यक है उसी प्रकार एक योग्य प्रबन्धक को प्रबन्धकीय शिक्षा का ज्ञान होना आवश्यक है।

4. प्रबन्ध एक जन्मजात प्रतिभा है (Management is Acquired and Inborn Quality)—व्यावसायिक युग के आरम्भ से लेकर औद्योगिक क्रान्ति के युग से पूर्व तक प्रबन्ध को एक जन्मजात प्रतिभा समझा जाता था। इस विचारधारा का सार है—"योग्य तथा सफल प्रबन्धक पैदा होते हैं, बनाये नहीं जाते।' दूसरे शब्दों में कुछ व्यक्ति जन्म से ही इतने अधिक योग्य, कुशल एवं दूरदर्शी होते हैं कि वे दूसरों का नेतृत्व एवं संगठन कर सकें। हमारे देश के औद्योगिक क्षेत्र में प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली इसका ज्वलंत उदाहरण है जिसे सरकार ने एक कानून द्वारा 3 अप्रैल 1970 को समाप्त कर दिया। परन्तु वर्तमान युग में यह विचारधारा सही प्रतीत नहीं होती क्योंकि बहुत अधिक व्यक्ति विदेशों में तथा अपने देश में प्रबन्ध का प्रशिक्षण प्राप्त करके अपने देश में उद्योगों को सफलतापूर्वक चला रहे हैं। आज विश्व के विभिन्न प्रबन्धकीय प्रशिक्षण संस्थानों में प्रबन्धक बनाये जा रहे हैं।

5. प्रबन्ध मानवीय तथा भौतिक साधनों में समन्वय है (Management is Co-ordination in Human and Physical Sources)—सार रूप में प्रबन्ध का मुख्य कार्य संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए इसके मानवीय तथा भौतिक साधनों में समन्वय स्थापित करना है। न्यूमैन व समर के अनुसार—"प्रबन्धकों की आवश्यकता ही मनुष्य मशीन, माल, धन, समय और स्थान के असंगठित संसाधनों को एक उपयोगी तथा प्रभावपूर्ण उद्यम में बदलने के लिए पड़ती है।" प्रबन्धक इन्हें संगठित व समन्वित करता है और एक शक्तिशाली इकाई को जन्म देता है। यह इकाई इसमें शामिल सभी साधनों की व्यक्तिगत शक्ति के योग से भी ज्यादा शक्तिशाली इकाई को जन्म देता है। यह इकाई इसमें शामिल सभी साधनों की व्यक्तिगत शक्ति के योग से भी ज्यादा शक्तिशाली बन जाती है। इसे प्रबन्ध गुणन शक्ति (Multiplying factor) कहते हैं क्योंकि इसके फलस्वरूप व्यावसायिक संस्था में लगे साधनो की कुल उत्पादकता उनकी व्यक्तिगत उत्पादकता से कई गुना ज्यादा बन जाती है।

Scanned with CamScanner

6. प्रबन्ध : एक गतिशील प्रक्रिया के रूप में (Management as a Dynamic Process)—आधुनिक समय में प्रबन्ध पूर्व निश्चित कार्यों को एक निश्चित तरीके से करने की प्रक्रिया तक ही सीमित नहीं है, अपितु यह निरन्तर विश्लेषण, निर्णय तथा कार्य करने की प्रक्रिया तक ही सीमित नहीं है, अपितु यह निरन्तर विश्लेषण, निर्णय तथा कार्य करने की गतिशील सृजनात्मक प्रक्रिया है।

7. प्रबन्ध विज्ञान है अथवा कला (Management is a Science or an Art)—प्रबन्ध दूसरे व्यक्तियों से कार्य कराने की कला है। प्रबन्ध का विकास द्वितीय महायुद्ध से पूर्व तक कला के रूप में ही किया जाता रहा है, परन्तु द्वितीय महायुद्ध के बाद इसका वैज्ञानिक विकास तेजी से आरम्भ हुआ। यह समझने से पहले कि प्रबन्ध विज्ञान है अथवा कला अथवा दोनों, हमें यह समझ लेना आवश्यक है कि विज्ञान और कला से क्या तात्पर्य है?

विज्ञान का अर्थ—विज्ञान शब्द 'विद्' धातु से बना है जिसका अर्थ है जानना। जे० एन० कीन्स के अनुसार—"विज्ञान ज्ञान की वह शाखा है जो प्रस्तुत स्थिति का अध्ययन करते हुए कारण व परिणाम में सम्बन्ध स्थापित करती है और आदर्श उपस्थित करती है।" विज्ञान का मुख्य लक्ष्ण एक निश्चित क्षेत्र में वैज्ञानिक विधि के प्रयोग से किसी ज्ञान को क्रमबद्ध करने से है। प्रो० पोइनकेयर के अनुसार—"विज्ञान तथ्यों से इस प्रकार बना है, जिस प्रकार पत्थरों से एक मकान बनाया जाता है, परन्तु केवल तथ्यों का एकत्रीकरण उसी प्रकार विज्ञान नहीं है, जिस प्रकार पत्थरों का ढेर मकान नहीं है।" विज्ञान दो प्रकार का होता है—1. निश्चित विज्ञान, 2. व्यावहारिक विज्ञान। निश्चित विज्ञान में कार्य एवं कारण में या घटना-समूहों में एक निश्चित सम्बन्ध होता है तथा उससे निश्चित परिणाम निकलते हैं, जो सार्वभौम सत्य होते हैं। व्यावहारिक विज्ञान में कारण और कार्य में एक निश्चित क्रम स्थापित करने पर परिणाम सदैव समान नहीं होते वरन् परिस्थितियों के अनुसार परिणाम बदल जाते हैं। सभी सामाजिक विज्ञान व्यावहारिक विज्ञान हैं क्योंकि उनका विषय क्षेत्र मनुष्य है जिसकी प्रकृति को निश्चित नहीं किया जा सकता है।

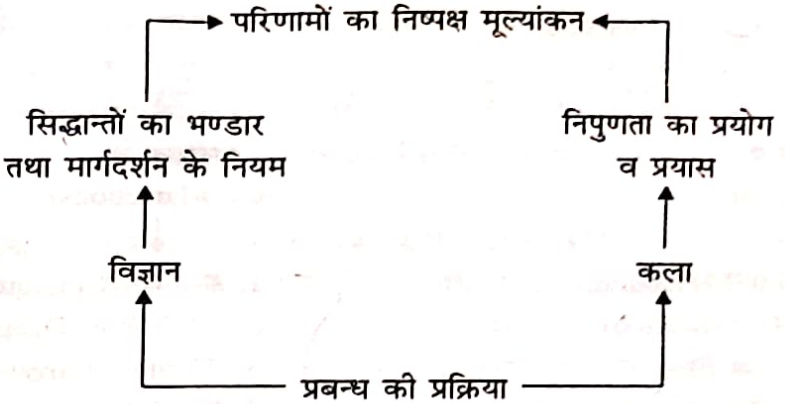
विज्ञान एवं प्रबन्ध—विज्ञान ज्ञान की क्रमबद्ध शाखा है जो प्रस्तुत स्थिति का अध्ययन करते हुए कारण और परिणाम में सम्बन्ध स्थापित करती है। स्थिति अध्ययन के आधार पर इस ज्ञान के द्वारा कुछ सामान्य सत्य प्रतिपादित किये जाते हैं जिनका महत्व एवं प्रयोग सार्वभौमिक होता है। विज्ञान की भाँति प्रबन्ध में भी किसी क्षेत्र से सम्बन्धित स्थिति का अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन के आधार पर अनेक सिद्धान्त खोज लिये गये हैं, जिनका प्राय: सार्वभौमिक महत्व एवं प्रयोग है। अत: प्रबन्ध एक विज्ञान है, किन्तु यह प्राकृतिक विज्ञानों की भाँति सत्य, निश्चित व अटल विज्ञान न होकर मानसिक विज्ञान अथवा सामाजिक विज्ञान की भाँति है।

कला का अर्थ—कला शब्द 'कृत' धातु से बना है जिसका अर्थ है किसी काम को उत्तम ढंग से करना। कीन्स के शब्दों में, "कला एक दिये हुए उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नियमों की एक प्रणाली है।" प्रो० हेमैन के अनुसार—"कला का अभिप्राय यह जानना है कि कोई कार्य किस प्रकार से किया जा सकता है और उसे वास्तव में उसी प्रकार करना।" अर्थात् वैज्ञानिक ज्ञान का लाभदायक प्रयोग करना कला है। जार्ज टैरी के अनुसार—"चातुर्य के प्रयोग से इच्छित परिणाम प्राप्त करना ही कला है।" अन्य शब्दों में, कला से तात्पर्य 'क्रिया' से है अर्थात् यदि किसी भी विषय के ज्ञान को व्यावहारिक रूप दिया जाए तो वह कला है, कला समस्या को हल करने का उपाय बताती है। कला भी क्रमबद्ध ज्ञान का समूह है, जिसका उद्देश्य क्रियात्मक रूप से अपने-अपने लक्ष्य को प्राप्त करना है।

कला एवं प्रबन्ध—कला से अभिप्राय इच्छित परिणाम प्राप्त करने के लिए कौशल एवं ज्ञान के क्रमबद्ध प्रयोग से है। दूसरे शब्दों में किसी कार्य को करने या किसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अनुभव, सिद्ध ज्ञान तथा कौशल का उपयोग करना कला है। प्रबन्ध कला है क्योंकि इसके अन्तर्गत दूसरे व्यक्तियों से कार्य कराया जाता है एवं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इन व्यक्तियों के प्रयासों को निर्देशित किया जाता है।

प्रबन्ध विज्ञान एवं कला दोनों है—प्रबन्ध का विज्ञान, प्रबन्धकों को अपनी व्यावहारिक कुशलता के प्रयोग में आवश्यक मार्ग-निर्देशन उपलब्ध करता है। प्रबन्ध की कला हर तरह की व नई-नई परिस्थितियों का सामना करने में सहायता करती है। प्रबन्ध करने वाला प्रबन्धक एक बढ़ई के समान है, जो सिद्धान्तों की लकड़ी को विशिष्ट परिस्थितियों की मांग के अनुसार भिन्न-भिन्न रूपों में काटता, तराशता तथा जोड़ता है।

Scanned with CamScanner



प्रबन्ध की प्रक्रिया विज्ञान और कला दोनों का योग है।

प्रबन्ध का विज्ञान, प्रबन्ध के व्यवहार से पोषण ग्रहण करता है तथा प्रबन्ध की कला प्रवन्ध के विज्ञान से मार्गदर्शन ग्रहण करती है। व्यवहार में देखा जाए तो प्रबन्ध के पहले दो कार्य नियोजन तथा संगठन वैचारिक कार्य (conceptual work) होने के कारण वैज्ञानिक सिद्धान्तों से ज्यादा बंधे रहते हैं, जबकि अन्तिम दो कार्य-निर्देशन व नियन्त्रण क्रियात्मक कार्य होने के कारण कला पक्ष से ज्यादा प्रभावित होते हैं, कला और विज्ञान के योग को चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है।

1.1 (b) प्रबन्ध के कार्य (Functions of Management)

प्रबन्ध एक विकासशील विज्ञान है। अत: विभिन्न विद्वानों ने प्रबन्ध के कार्यों के सम्बन्ध में विभिन्न विचार व्यक्त किये हैं। कुछ प्रमुख विद्वानों के प्रबन्ध के कार्यों के सम्बन्ध में विचार अग्र प्रकार हैं—

श्री आर० सी० डेविस (R. C. Davis) ने प्रबन्ध के तीन कार्य बताये हैं—(i) नियोजन करना, (ii) संगठन बनाना, (iii) नियन्त्रण करना।

श्री पीटर एफ० ड्रकर (Peter F. Drucker) ने प्रबन्ध के पाँच मुख्य कार्य बताये हैं—(i) उद्देश्य निर्धारित करना, (ii) संगठन करना, (iii) अभिप्रेरण एवं सम्प्रेषण, (iv) कार्य का मूल्यांकन करना, तथा (v) व्यक्तियों का विकास करना।

अर्नेस्ट डेल (Urnest Dell) ने प्रबन्ध के निम्न सात कार्य बताये हैं—

(i) नियोजन, (ii) संगठन, (iii) निर्देशन, (iv) नियुक्तियाँ, (v) नियन्त्रण, (vi) नवाचार, (vii) प्रतिनिधित्व।

प्रो० हैनरी फेयोल (Prof. Henry Fayol) ने प्रबन्ध के पांच कार्य बताये हैं—(i) पूर्वानुमान एवं नियोजन, (ii) संगठन बनाना, (iii) निर्देशन करना, (iv) समन्वय करना, (v) नियन्त्रण करना।

उपयुक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए प्रबन्ध के कार्यों को दो भागों में बाँटा जा सकता है—

1. प्रमुख कार्य,
2. सहायक कार्य।

प्रबन्ध की सम्पूर्ण कार्य प्रणाली को दो भागों में बाँटा जा सकता है जिसे चार्ट द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

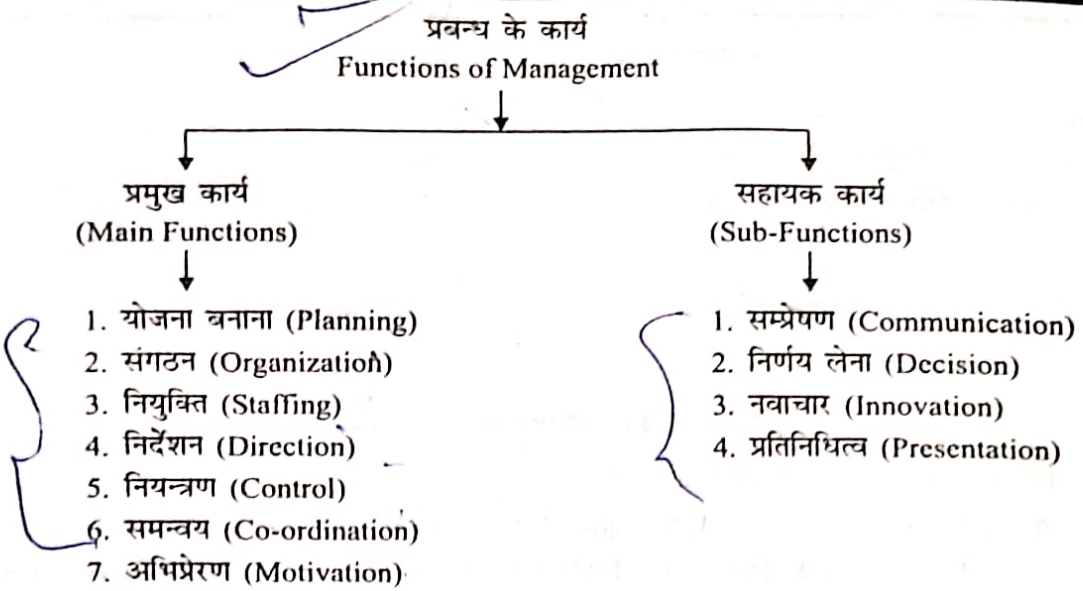
प्रबन्ध के कार्यों का चार्ट द्वारा प्रदर्शन

प्रबन्ध के प्रमुख कार्यों का विस्तृत विवेचना इस प्रकार है—

(c) योजना—शील्ड के शब्दों में, "योजना विभाग (Planning) प्रबन्ध का हृदय है, जिसका एक मात्र कार्य उत्पादन के विभिन्न पहलुओं में कार्यरत कर्मचारियों की आवश्यकता को पूरा करना है।"

नियोजन, निर्णय लेने की विधि है, जिसके अन्तर्गत 'क्या करना है', 'कैसे करना है', 'कब करना है', 'कितनी मात्रा में करना है' आदि के विषय में पहले ही निश्चित कर लिया जाता है ताकि इच्छित उद्देश्यों को अधिक निश्चितता एवं मितव्ययिता से प्राप्त किया जा सके। नियोजन के अन्तर्गत किसी समस्या के समाधान के लिए वैकल्पिक समाधानों में से सर्वोत्तम समाधान

Scanned with CamScanner



का चयन किया जाना भी सम्मिलित होता है, जिससे भविष्य को अधिक निश्चित किया जा सके। अत: प्रत्येक व्यवसाय यह चाहे छोटा हो या बड़ा, नियोजन प्रबन्ध की महत्वपूर्ण क्रिया है। **रुडियार्ड किपलिंग** ने योजना के बारे में लिखा है, "मैं अपनी सेवा में छः ईमानदार व्यक्तियों को रखता हूँ। उन्होंने मुझे सब कुछ सिखाया जिसे मैं जानता हूँ। उनके नाम है—क्या, कहाँ, कैसे कब, क्यों और कौन?" प्रो० जार्ज आर० टेरी के अनुसार—"नियोजन भविष्य के गर्भ में देखने की विधि अथवा कला है—यह भविष्य की आवश्यकताओं का पूर्वानुमान लगाता है जिससे निर्धारित लक्ष्यों की दृष्टि से किये जाने वाले वर्तमान प्रयासों को उनके अनुरूप बनाया जा सके।"

किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व उसके प्रत्येक पहलू पर भली-भाँति विचार कर लेना ही नियोजन है। नियोजन के क्षेत्र में निम्नलिखित क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है—

1.लक्ष्य निर्धारित करना, 2. पूर्वानुमान लगाना, 3. नीति निर्धारण करना, 4. कार्यक्रम निर्धारण करना, 5. नियम बनाना, 6. समय तालिका बनाना, 7. कार्य विधि निर्धारित करना, 8. बजट बनाना, 9. मोर्चाबन्दी करना।

(d) संगठन (Organization)—संगठन का अर्थ—"मैक्फोरलैण्ड" (MacFaland) के अनुसार, "संगठन का आशय व्यक्तियों के समूह से है, जो निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए मिलकर कार्य करते है।" संस्था के सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु एवं नियोजन के कुशल कार्यान्वयन के लिए एक ऐसे संगठन की आवश्यकता होती है, जिसमें संस्था के कर्मचारी अपने-अपने कार्यों को पारस्परिक सहयोग के आधार पर कर सकें। श्री ई० एल० एफ० ब्रीच (E.L.F. Breach) के अनुसार—"संगठन प्रबन्ध का ढाँचा है क्योंकि यह सम्पूर्ण उत्तरदायित्व को प्रभावी निष्पादन के लिए उपयुक्त भागो एवं समूहों में बाँटता है।" एल०एफ० उर्विक (L.F.Urvik) के अनुसार—"संगठन यह निर्धारित करता है कि उद्देश्यो अथवा योजना को प्राप्त करने के लिए क्या-क्या क्रियायें करनी आवश्यक हैं तथा इनकी ऐसे समूहों में क्रमबद्ध करना जिससे कि उन्हें अलग-अलग व्यक्तियो को सौपा जा सके।

हेनरी फेयोल (Henry Fayol) ने संगठन को दो उप-भागों में विभाजित किया है—

(i) मानवीय संगठन (Human Organization)—इसके अन्तर्गत व्यवसाय के लिए श्रमिकों व अन्य कर्मचारियों से सम्बन्धित सभी कार्य सम्मिलित किये जाते है।

(ii) भौतिक संगठन (Material Organization)—इसके अन्तर्गत व्यवसाय के लिए कच्चा माल और सभी आवश्यक साजो-सामान की व्यवस्था निहित है।

सभी कुशल प्रबन्धक इन दोनो ही कार्यों पर विशेष ध्यान देते है। एक अच्छा संगठनकर्त्ता सर्वप्रथम यह निश्चय करता है कि उसे अपने उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए क्या-क्या कार्य करने है, फिर इन क्रियाओं को पृथक-पृथक वर्गों में विभक्त करके

Scanned with CamScanner

उन्हें योग्य व्यक्तियों को सौंप दिया जाता है, और सभी विभागीय प्रबन्धकों को उचित अधिकार देकर उनके परस्पर कार्यों में उचित समन्वय करता है। संगठन में तीन उपक्रियायें भी शामिल की जाती हैं—

(i) व्यावसायिक कार्य को छोटे-छोटे उप-कार्यों में बाँटकर उनका विभागीयकरण करना,
(ii) नियुक्त अधिकारियों को एक-एक वर्ग के कार्य करने का अधिकार तथा उत्तरदायित्व सौंपना।
(iii) प्रत्येक विभाग के कर्मचारियों एवं अधिकारियों के अन्य लोगों के साथ सम्बन्धों की व्याख्या करना एवं उनकी क्रियाओं में समन्वय रखना आदि।

संगठन की वह तन्त्र है जिसके माध्यम से किसी संस्था के उद्देश्य की प्राप्ति होती है, संगठन ही वह आधारभूत ढाँचा है, जिसके माध्यम से प्रबन्ध सब योजनाएँ व्यवहार में लाता है तथा उत्पादन का नियन्त्रण करता है।

3. नियुक्ति करना (Staffing)—जार्ज आर० टेरी (George R. Terry) के अनुसार—"नियुक्तियाँ करना सन्तोषजनक एवं सन्तुष्ट कार्य शक्ति को प्राप्त करने तथा उसे बनाये रखने का कार्य है।"

आधुनिक संगठित व्यवसाय अनेक व्यक्तियों की सहायता से चलाया जाता है। अत: प्रबन्ध व्यावसायिक संस्था के अन्दर विभिन्न उत्तरदायी पद सम्भालने के लिए योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति करता है। इस प्रकार नियुक्तियाँ संगठन के ढाँचे की मानवपूर्ति है। किसी भी उद्योग की सफलता उसके कर्मचारियों की योग्यता, अनुभव व कार्यकुशलता पर निर्भर करती है। अत: प्रबन्ध का 'कर्मचारी की नियुक्ति' का कार्य अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इस कार्य को सम्पन्न करते समय प्रबन्ध अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इस कार्य को सम्पन्न करते समय प्रबन्ध आवश्यक कर्मचारियों की संख्या का अनुमान लगाता है, उनकी योग्यता को निर्धारित करता है, जिनके आधार पर योग्य, अनुभवी व कुशल कर्मचारियों का चयन किया जाता है और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें आवश्यक प्रशिक्षण भी दिया जाता है। श्री कुण्ट्ज ओ' डोनेल के शब्दों में, "नियुक्ति में संगठन संरचना का जन-प्रबन्ध सम्मिलित है, जो कर्मचारियों का उचित एवं प्रभावी चयन, मूल्यांकन तथा नियुक्त व्यक्तियों का विकास करता है। जिससे कि वे संरचनानुसार योगदान प्रदान कर सके।" प्रबन्ध के इस कार्य में निम्नलिखित बातों का समावेश होता है—

(i) कर्मचारियों की नियुक्ति करना तथा उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।
(ii) उन्हें प्रबन्ध के निर्णयों में सम्मिलित करना।
(iii) श्रमिक की कार्य कुशलता में वृद्धि करना।
(iv) कर्मचारियों के बीच सन्देशवाहन की उचित व्यवस्था करना।
(v) उनके लिए सन्तोषजनक परिश्रमिक की व्यवस्था करना।
(vi) उनके कार्य का मूल्यांकन करना। अच्छा कार्य करने वाले कर्मचारियों को पदोन्नति देना तथा ठीक न करने वाले कर्मचारियों को दण्डित करना तथा कार्यमुक्त करना।

4. निर्देशन (Direction)—साधारण बोलचाल में निर्देशन का अर्थ अन्य व्यक्तियों से कार्य कराना है, परन्तु प्रबन्धकीय कार्यों में निर्देशन का अर्थ अधीनस्थ कर्मचारियों का पथ-प्रदर्शन एवं पर्यवेक्षण करना होता है। प्रो० थियो हेमैन (Prof. Theo Haiman) के अनुसार—"निर्देशन के अन्तर्गत उस प्रक्रिया एवं तकनीकों को सम्मिलित किया जाता है जिनका उपयोग निर्देशों को निर्गमित करने और देखने के लिए किया जाता है कि सभी कार्य पूर्व-निश्चित मूल योजना के अनुसार हो रहे हैं या नहीं।" निर्देशन, प्रबन्ध का वह कार्य है जो संगठित प्रयासों को आरम्भ करता है, प्रबन्धकीय निर्णयों का वास्तविकता का चोला पहनता है और व्यवसाय को अपने उद्देश्य प्राप्त करने की दिशा में आगे बढ़ाता है। निर्देशन को सफल तथा सार्थक बनाने के लिए यह आवश्यक है कि आदेश व निर्देश स्पष्ट, व्यावहारिक, सुसंगत एवं उपयुक्त हो। जहाँ तक सम्भव हो सके, निर्देश लिखित रूप में दिये जाने चाहिए जिससे कि उनके पालन एवं अवहेलना पर आवश्यक नियन्त्रण रखा जा सके। इसके लिए प्रबन्ध एक ओर प्रभावीकरण की प्रक्रिया (Influence Process) के द्वारा कर्मचारियों में काम करने की तत्परता और रुचि पैदा करता है, और दूसरी ओर एकीकरण की प्रक्रिया (Integrating Process) के द्वारा कर्मचारियों की जरूरतों और संगठन की जरूरतों में संयोग करता है। निर्देशन का कार्य संगठित प्रयासों को अपने उद्देश्य प्राप्त करने की दिशा में आगे बढ़ाना है। संगठन के सारे कार्य एक दूसरे के चारों ओर घूमते हैं। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के कार्यों मे निर्देशन के द्वारा निरन्तर समन्वय बनाये रखा जाता है। न्यूमैन (Newman) के अनुसार—"निर्देशन एक अधिशासी द्वारा अपने अधीनस्थों के जारी किये गये निर्देशों से सम्बन्ध रखता है। अन्य शब्दों में, निर्देशन से आशय यह है कि विभिन्न नियुक्त कर्मचारियों को यह बताना

Scanned with CamScanner

है कि उन्हें क्या करना है और कैसे करना है तथा यह देखना कि वे व्यक्ति अपना कार्य आदेशों के अनुरूप कर रहे हैं अथवा नहीं। निर्देशन प्रबन्ध का कार्यकारी कार्य (Executive Function) है जो निरन्तर सम्पन्न किया जाता है। निर्देशन की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसके सभी निर्देश स्वयं में पूर्ण स्पष्ट, व्यावहारिक एवं उचित हों। निर्देशन में तीन क्रियायें सम्मिलित की जाती हैं—

(i) आदेश का निर्देश देना।

(ii) अधीनस्थ कर्मचारियों को काम के तरीके बताना और उन्हें प्रशिक्षित करना।

(iii) समय-समय पर यह देखना कि उनका काम योजना के अनुसार चल रहा है अथवा नहीं।

निर्देशन के कार्य को प्राय: चार उप-कार्यों में बाँटा जाता है—

1. नेतृत्व (Leadership)
2. अभिप्रेरण (Motivation)
3. सम्प्रेषण (Communication)
4. पर्यवेक्षण (Supervision)।

प्राय: कुछ विद्वान इन उप-कार्यों को या इनमें किसी एक को प्रबन्ध का एक अलग कार्य भी मान लेते हैं। उदाहरण के लिए **ऐलन** ने निर्देशन कार्य को अभिप्रेरण का नाम दिया है, जबकि **न्यूमैन** व **समर** ने इसे नेतृत्व का नाम दिया है। **मैसी** इन कार्यों को सम्प्रेषण तथा नेतृत्व के अलग-अलग दो कार्य मानते हैं, जबकि **हिल्स** ने इसे अभिप्रेरण तथा सम्प्रेषण के नाम दिये हैं। कुछ अन्य विद्वान इन उप-कार्यों को अलग-अलग कार्यों के रूप में भी प्रस्तुत करते है। **जार्ज हैरी** ने इस कार्य को क्रियान्वयन का संचालन कार्य का नाम देते हैं। लेकिन ध्यान से देखा जाए तो इन कार्यों को निर्देशन के उपकार्यों के रूप में समझना ज्यादा श्रेष्ठ है क्योंकि एक तो ये निर्देशन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं और कोई भी एक कार्य इस व्यापक कार्य का स्थानापन्न नहीं हो सकता और द्वितीय प्रबन्ध के साहित्य में जितना एकमत निर्देशन शब्द के पक्ष में है उतना किसी अन्य शब्दावली के पक्ष में नहीं। निर्देशन निम्न दशाओं में सक्रिय होता है—

(i) जब कम्पनी और कर्मचारियों के उद्देश्यों में साम्य हो।

(ii) जब कर्मचारी केवल एक वरिष्ठ अधिकारी से आदेश प्राप्त करे।

(iii) जब अधिशासी एवं अधीनस्थ में सीधा सम्बन्ध हो।

(iv) जब अधिकारी अधीनस्थ में कर्मचारियों की समस्याओं के प्रति सहानुभूति रखता हो।

(v) जब अधिकारी स्वयं आदेशों के अनुकूल कार्य करता हो।

व्यावसायिक प्रशासन में निर्देशन का बड़ा महत्व है। व्यवसाय में निर्देशन का वही महत्व है जो रेल में गार्ड का, खेल में रेफरी का, फिल्म निर्माण में निर्देशक का होता है। प्रबन्धकों द्वारा अपने अधीनस्थों को बिना निर्देश दिये वांछित परिणामों को प्राप्त करना सम्भव नहीं होता।

5. नेतृत्व (Leadership)—नेतृत्व के लिए कहा जाता है कि यह राजाओं और राजघरानों में ही पायी जाती है, यह उनके खून में होती है और यह वंशजों में परम्परागत हैं परन्तु अब यह ज्ञात हुआ है कि नेतृत्व के गुण अभ्यास करके विकसित किये जा सकते हैं। नेतृत्व किसी व्यक्ति का एक अहम गुण है जिसके द्वारा वह दूसरे व्यक्तियों को प्रभावित करता है और एक समान उद्देश्य के लिए प्रयासों को एक जगह जोड़ता है। इस तर्क के अनुसार प्रबन्धक, किसी संगठन में एक लीडर का कार्य करता है और अपने अधीनस्थों द्वारा किये जा रहे प्रयासों एवं गतिविधियों को संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु जोड़ता है। नेतृत्व एक युक्ति है, जिससे दूसरे व्यक्तियों से अपना मनचाहा कार्य कराने के लिए तैयार कर लिया जाये। नेतृत्व एक मानवीय तत्व है जो मनुष्य के समूह को बाँधता है और लक्ष्य की ओर बढ़ने की प्रेरणा देती हैं। सामान्य अर्थ में नेतृत्व से आशय किसी व्यक्ति विशेष के उस गुण से है, जिसके द्वारा वह अन्य व्यक्तियों का मार्ग दर्शन करता है।

6. नियन्त्रण (Control)—श्री हेनरी फेयोल (Henry Fayol) के शब्दों में, "नियन्त्रण के अन्तर्गत यह शामिल किया जाता है कि सब कुछ प्रयोग में लायी गयी योजना निर्गमित निर्देशों एवं स्थापित सिद्धान्तों के आधार पर होता है या नहीं। इसका उद्देश्य कमजोरियों एवं गलतियों को बताना है, जिससे उनको सुधारा जा सके तथा उसकी पुनरावृत्ति को रोका जा सके।" नियन्त्रण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत ऐसे उपाय अपनाये जाते हैं जिससे व्यवसाय या संस्था की क्रियायें पूर्व-निर्धारित

Scanned with CamScanner

लक्ष्यों, योजनाओं, विधियों आदि के अनुसार चलायी जा सकें। प्रो० थियो हेमैन (Prof. Theo Haiman) के अनुसार—"नियन्त्रण जाँच-पड़ताल द्वारा यह ज्ञात करने की क्रिया है कि कार्य योजना के अनुसार हो रहा है या नहीं, उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में उपयुक्त प्रगति हो रही है या नहीं और यदि कोई विचलन दिखाई दें तो उसको सुधारने के लिए आवश्यक कार्यवाही करना।" नियन्त्रण का उद्देश्य योजना को साकार बनाना और संगठन को सन्तोष प्रदान करना है। जब-जब प्रबन्धक अपना कार्य-भार बढ़ जाने पर अपनी कुछ जिम्मेदारियाँ अपने अधीनस्थों को सौंपता है तब यह जरूरी हो जाता है कि अधीनस्थों के काम और प्रगति की समीक्षा की जाए और उसे योजना और नीतियों के अनुसार नियन्त्रित किया जाए। ब्रेच (Brach) के शब्दों में,"निर्धारित प्रतिमानों से वास्तविक निष्पादन की तुलना करना ही नियन्त्रण कहलाता है।" मेरी कुसिंग नाइल्स (Mary Kusing Niels) के अनुसार—"नियन्त्रण निर्धारित लक्ष्यों और निर्देशों में सन्तुलन बनाये रखना है। यह आयोजना का एक प्रकार है। जहाँ योजना कार्य निर्धारण करती है, नियन्त्रण कार्य प्रणाली से अलग क्रिया को इंगित करता है और त्रुटि सुधार कर निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर प्रयास करता है।" नियन्त्रण का कार्य योजना बनाने के कार्य से अलग नहीं किया जा सकता। जब तक प्रबन्धक संगठन के उद्देश्यों और इनकी प्राप्ति के व्यावहारिक कार्य मार्ग को स्पष्ट रूप से तय नहीं करते, प्रभावपूर्ण नियन्त्रण सम्भव नहीं होता। नियन्त्रण की सबसे उल्लेखनीय बात है—भविष्य को ध्यान में रखना, अर्थात् यदि पिछले काम में कोई कमी रह गई हो या कोई गलती हो गयी हो तो उसे इस प्रकार सुधारना कि निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति में किसी प्रकार की असुविधा न हो। नियन्त्रण के कार्य में प्रबन्धक पुरानी प्रगति का अध्ययन करके, इसमें आने वाली कठिनाइयों, असुविधाओं तथा कमजोरियों को समझ सकता है और भविष्य की कार्यवाही को उसके अनुरूप सुधार सकता है।

नियन्त्रण योजना में निम्नलिखित तत्व सम्मिलित होते हैं—

(i) किस उद्देश्य की प्राप्ति करनी है?
(ii) प्रक्रिया-कैसे, किसके द्वारा तथा कब योजना को प्रशासित किया जाये?
(iii) विधि-अच्छा निष्पादन कैसे सम्भव हो?
(iv) मूल्यांकन कार्य कितनी सफलता से किया गया है?

नियन्त्रण की प्रक्रिया में चार विशिष्ट प्रक्रिया सम्मिलित की जाती हैं—

(i) उत्तरदायित्व का मापदण्ड स्थापित करना जिसके अनुसार काम की प्रगति का मूल्यांकन किया जा सके।
(ii) स्थापित मापदण्डों के अनुरूप वास्तविक प्रगति के विवरण तैयार करना।
(iii) नियोजित तथा वास्तविक प्रगति का अन्तर ज्ञात करना।
(iv) यदि कार्य योजना के अनुसार नहीं हो रहा है तो सुधारक कार्यवाही करना।

अच्छे नियन्त्रण के लिए यह आवश्यक है कि यह योजना पर आधारित हो, और इसको लागू करने के लिए संस्था में नियमित प्रगति रिपोर्ट बनाने की निरन्तर अच्छी व्यवस्था हो।

6. समन्वय (Co-ordination)—ब्रेच के अनुसार," किसी संस्था के विभिन्न सदस्यों के मध्य इस ढंग से कार्यों का आवंटन करना कि उनमें परस्पर सन्तुलन एवं सहयोग बना रहे तथा यह देखना कि कार्य सद्भावना से सम्पन्न हो जाये, समन्वय कहलाता है।" समन्वय किसी उपक्रम द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए की जाने वाली समस्त क्रियाओं में सांमजस्य एवं एकता स्थापित करने की प्रक्रिया है। इस प्रकार समन्वय प्रबन्ध का महत्वपूर्ण कार्य है। समन्वय प्रबन्ध कला का सार है। पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सामूहिक प्रयासों को इस प्रकार व्यवस्थित ढंग से संजोना कि कार्य प्रणाली में एकरूपता लाई जा सके, 'समन्वय' कहलाता है। अन्य शब्दों में समन्वय प्रबन्ध प्रक्रिया का सार है। श्री टीड (Tead) के अनुसार—"कार्यों और शक्तियों के समन्वित संयोग तथा आपसी सहयोग से उद्देश्य की प्राप्ति अधिक प्रभावी ढंग से हो जाती है।" श्री हैनरी फैयोल (Henry Fayol) के अनुसार—"समन्वय से अभिप्राय किसी संस्था की सभी क्रियाओं में एकरूपता स्थापित करना है जिससे उसकी कार्यशीलता तथा सफलता सम्भव हो सके।" श्री मूनी और रैले (Mooney & Ralle) के अनुसार—"सभी उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सामूहिक प्रयासों को इस प्रकार व्यवस्थित ढंग से जोड़ना कि कार्यवाही में एकरूपता स्थापित की जाये।"

समन्वय के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं—

(i) समन्वय निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है।

Scanned with CamScanner

(ii) समन्वय सामूहिक प्रयासों की क्रमबद्ध व्यवस्था है।

(iii) समन्वय का उद्देश्य संस्था के सामान्य उद्देश्यों को प्राप्त करना है।

(iv) समन्वय करना उच्च प्रबन्ध का कार्य है, जो संस्था को नेतृत्व प्रदान करता है।

(v) समन्वय की सफलता के लिए आदेश में एकता होना जरूरी है। एक प्रबन्धक अपने अधीनस्थ कर्मचारियों एवं अधिकारियों के बीच सामूहिक प्रयासों को इस प्रकार व्यवस्थित करता है कि सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति में सभी का योगदान धनात्मक हो। इस प्रकार समन्वय एक ऐसी महत्वपूर्ण क्रिया है जो मानवीय एवं भौतिक साधनों में इस प्रकार का तालमेल बैठाती है कि सब परस्पर सहयोग की भावना से संस्था के लक्ष्यों की पूर्ति करने में सफल हों। इसका उद्देश्य आपसी विरोधाभास को दूर करना तथा पारस्परिक सहयोग को अधिकतम बनाना है। कु० मेरी पार्कर फौलेट के अनुसार समन्वय के चार मूलभूत सिद्धान्त हैं—

(i) प्रारम्भिक अवस्था में उपयोग,

(ii) प्रत्यक्ष सम्पर्क,

(iii) परस्परता,

(iv) निरन्तरता।

व्यावसायिक संस्थाओं के प्रबन्ध में समन्वय की आवश्यकता निम्न कारणों से पड़ती है—

(i) कार्यों की विविधता और उनमें विशिष्टीकरण,

(ii) भिन्न-भिन्न विभागों का अर्द्ध स्वतन्त्र अस्तित्व।

समन्वय दो प्रकार का हो सकता है—

(अ) आन्तरिक समन्वय (Internal Co-ordination)—इसके अन्तर्गत संस्था के विभिन्न विभागों एवं उनकी क्रियाओं में एकरूपता स्थापित की जाती है। आन्तरिक समन्वय के दो रूप हो सकते हैं—

(i) क्षैतिजीय (Horizontal)—जब यह इकाई के विभिन्न विभागों से सम्बन्धित हो,

(ii) लम्बवत (Vertical)—जब यह ऊपर से नीचे अथवा नीचे से ऊपर के प्रबन्धकीय स्तरों से सम्बन्धित हो।

(ब) बाह्य समन्वय (External Co-ordination)—इसके अन्तर्गत संस्था के बाह्य जगत जैसे—ग्राहक, विनियोजक, उपभोक्ता, सरकार तथा सरकारी अधिकारी आदि से सम्पर्क स्थापित किया जाता है।

समन्वय के महत्व पर प्रकाश डालते हुए श्री एल०एफ० उर्विक (L.F.Urvik) ने कहा है, "चूँकि व्यक्ति विशेष औद्योगिक कार्य में बहुत थोड़े अंश का योगदान देता है, मनुष्य को सहयोग के लिए तथा मिल-जुलकर कार्य करने के लिए प्रेरित करना चाहिए जिसे लक्ष्य की प्राप्ति हो सके। इस प्रयास का पर्यवेक्षण एवं निरीक्षण प्रबन्धकीय कार्य है।"

7. अभिप्रेरणा (Motivation)—प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण कार्य यह है कि वह संस्था में कार्यरत कर्मचारियों में स्वेच्छा से कार्य कराने की भावना उत्पन्न करे। मनुष्य एवं मशीन में केवल इतना ही अन्तर है कि मशीन की भाँति श्रमिक से स्विच दबाकर कार्य नहीं कराया जा सकता। अत: उन्हें अभिप्रेरित करना आवश्यक होता है। ई०एफ०एल० ब्रेच (E.F. Brach) के शब्दों में, "अभिप्रेरण एक सामान्य प्रेरणात्मक प्रक्रिया है जो कि टीम के सदस्यों को अपने भार को मिलाकर प्रभावी ढंग से उठाने, समूह के प्रति निष्ठा भाव रखने, अपने कार्यों को ठीक करने तथा समूहों के सामान्य कार्यों में अपनी प्रभावी भूमिका निभाने के लिए तैयार करती है।"

"अभिप्रेरणा प्रबन्ध का हृदय होती है।" यह उत्पादन के विभिन्न साधनों में एक सक्रिय व सजीव साधन है जो कि अन्य निष्क्रिय साधनों को गति देता है।"

माइकल जूसियस (Michael Jucius) के शब्दों में,"अभिप्रेरणा स्वयं को या किसी अन्य व्यक्ति की इच्छित कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करने की क्रिया है अथवा वांछित प्रतिक्रिया प्राप्त करने के लिए सही बटन दबाना है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि अभिप्रेरणा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें अग्रलिखित तीन बातों का समावेश होता है—

Scanned with CamScanner

(i) आकांक्षा (Motive), (ii) आवश्यकता, संवेग, अभिलाषा आदि, (iii) उद्देश्यों की प्राप्ति। इसी उद्देश्य से प्रबन्धक कर्मचारियों को वित्तीय (नकदी के रूप में अधिक मजदूरी, बोनस आदि देना) तथा अवित्तीय (प्रबन्ध में भाग लेना आदि) प्रेरणायें प्रदान करते हैं।

प्रबन्धक के सहायक कार्य

प्रबन्धक के सहायक कार्य निम्नलिखित हैं—

1. निर्णय लेना (Decision)—उपक्रम में उत्पन्न होने वाली विभिन्न समस्याओं के सम्बन्ध में शीघ्र तथा सामयिक निर्णय लेना प्रबन्ध का एक आवश्यक कार्य है। पीटर एफ० ड्रकर (Peter F. Druker) के अनुसार, "एक प्रबन्धक जो भी क्रिया करता है, वह निर्णय पर आधारित होती है।" व्यवसाय का आकार चाहे छोटा हो अथवा बड़ा, सभी में प्रबन्ध को प्रारम्भ से लेकर उसके चालू रहने तक अनेक निर्णय लेने पड़ते हैं। निर्णय द्वारा ही प्रबन्ध उपलब्ध सभी विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चुनाव करता है ताकि व्यवसाय के लक्ष्य न्यूनतम लागत पर अधिकतम कार्यकुशलता के साथ प्राप्त किये जा सकें। उसके द्वारा लिए गये निर्णय जितने सही होंगे, व्यवसाय उतना ही शीघ्रता से प्रगति करेगा।

2. सम्प्रेषण तथा संदेशवाहन (Communication)—संदेश वाहन प्रबन्ध को क्रियात्मक बनाने का एक प्रभावी साधन है। सम्प्रेषण से आशय उन सभी बातों से है, जिनके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को अपनी बात समझाने के लिए अपने विचार प्रकट करना चाहता है। यह दो विचारकों में सन्धि-स्थल का कार्य करता है। अन्य शब्दों में, सम्प्रेषण का आशय कर्मचारियों, ग्राहकों, स्वामियों तथा सामान्य जनता सभी सम्बन्धित पक्षों को औद्योगिक उपक्रम के सम्बन्ध में जानकारी देना है। दूसरे, कर्मचारियों को सभी आदेश समय पर तथा उचित सत्ता द्वारा सम्प्रेषण करना भी इसी के अन्तर्गत आता है। प्रभावी संदेशवाहन के अभाव में आज सभी कार्यों में लाल-फीताशाही दृष्टिगोचर होती है। अतः यदि सन्देशवाहन अच्छा एवं प्रभावी होगा तो अधीनस्थ कर्मचारी अपने कार्य को मन लगाकर करेंगे और उनमें किसी प्रकार की शंका, मन-मुटाव तथा बेचैनी उत्पन्न नहीं होगी। सम्प्रेषण प्रणाली में निम्न प्रक्रिया सम्मिलित की जाती हैं—

(i) समस्या के विचार को स्पष्ट करना, (ii) समस्या निवारण की ओर प्रयास में सहयोग,
(iii) विचारों और निर्णयों का आदान-प्रदान, (iv) निर्णय के अनुसार कार्य के लिए अभिप्रेरित करना,
(v) सम्प्रेषण के प्रभाव को नापना।

सम्प्रेषण के महत्व—

(i) यह निर्देश (Direction), तथा नेतृत्व (Leadership) का आधार है।
(ii) यह प्रबन्ध के नियोजन तथा समन्वय सम्बन्धी कार्यों को पूरा करने में सहायक है।
(iii) यह अधीनस्थ को अधिकारी की इच्छा के अनुकूल कार्य करने के लिए प्रेरित करता है।
(iv) यह पारस्परिक विचार-विमर्श करने, आपसी मतभेद दूर करने और श्रमिकों को सन्तुष्टि प्रदान करने का शक्तिशाली माध्यम है।

प्रत्येक प्रबन्ध प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से उपयुक्त सभी कार्यों को सम्पन्न करता है। हाँ, इनका सापेक्षिक महत्व समय और परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहता है।

3. नवाचार (Innovation)—साधारण भाषा में नवाचार से तात्पर्य उत्पादन के लिए डिजाइनर, एक नई उत्पादन पद्धति अथवा एक नवीन उत्पादन तकनीक से होता है। **पीटर एफ० ड्रकर** के अनुसार—"व्यवसाय का प्रबन्ध करना एक क्रियात्मक कार्य है, न कि अनुकूल कार्य।" समय की गति के साथ चलने के लिए यह आवश्यक है कि प्रबन्ध उत्पादन, विपणन, नियन्त्रण, मानवीय सम्बन्ध, प्रबन्धकीय कला आदि के क्षेत्र में निरन्तर नई-नई पद्धतियों का प्रयोग करें। इस उद्देश्य के लिए बड़े-बड़े व्यावसायिक-गृहों में शोध एवं विकास विभाग स्थापित किये जाते हैं। इस प्रकार नई पद्धति को प्रबन्ध के सहायक कार्यों में सम्मिलित किया जा सकता है।

4. प्रतिनिधित्व (Presentation)—प्रतिनिधित्व करना भी प्रबन्धक का कार्य है। वह सरकार, औद्योगिक संगठनों श्रम-संघों तथा बाह्य जगत के सम्मुख अपने व्यवसाय का प्रतिनिधित्व करता है।

Scanned with CamScanner

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि औद्योगिक जगत में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। प्रबन्ध के कार्यों की यह सूची पर्याप्त नहीं है। प्रत्येक होने वाला परिवर्तन नई समस्याओं को जन्म देता है और वे समस्याएँ प्रबन्ध के नये कार्यों को जन्म देता है और वे समस्यायें प्रबन्ध के नये कार्यों को जन्म देती है। इस प्रकार औद्योगिक विकास के साथ-साथ प्रबन्ध के कार्य भी बढ़ते जा रहे हैं।

1.2. (a) संगठन का अर्थ (Meaning of Organization)

डॉ० विलियम आर० स्प्रीगल (Dr. W.R. Spriegal) के शब्दों में—"संगठन वह तन्त्र है जोकि प्रशासन एवं प्रबन्ध के बीच समन्वय स्थापित करता है।"

संगठन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा उत्पत्ति के विभिन्न साधनों—भूमि, श्रम, पूँजी, प्रबन्ध एवं साहस के मध्य समन्वय स्थापित किया जाता है। अर्थात् उत्पत्ति के विभिन्न साधनों में वैज्ञानिक सामंजस्य ही संगठन कहलाता है। व्यवसाय अथवा उद्योग दोनों को सुचारु रूप से चलाने के लिए संगठन नितान्त आवश्यक है। "संगठन किसी उपक्रम में होने वाली गतिविधियों को परिभाषित करना तथा समूह बनाना और उनके अधिकारों के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने की क्रिया है।" यह एक ऐसी व्यवस्था है जो किसी कारखाने या प्रतिष्ठान का सफल संचालन कर सकें। ओलिवर शैल्डन (Oliver Sheldon) के अनुसार—"प्रशासन द्वारा निर्धारित नीतियों एवं उद्देश्यों को कार्यान्वित करने के लिए प्रबन्ध जिस तन्त्र का प्रयोग करता है, उसे संगठन कहते हैं।"

दूसरे शब्दों में किसी व्यावसायिक संस्था के सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उत्पत्ति के विशिष्ट साधनों में मैत्रीपूर्ण संयोजन को संगठन करते हैं। उत्पत्ति के साधनों में पूर्ण समन्वय कुशल संगठन के द्वारा ही सम्भव है। संगठन से आशय सुव्यवस्था से है। वस्तुत: संगठन वह प्रक्रिया है, जो उत्पादन सम्बन्धी विभिन्न कड़ियों को एक सूत्र में पिरोने का कार्य करती है। संगठन के द्वारा ही न्यूनतम साधनों से अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सकता है। चेस्टर बनार्ड (Chester Barnard) के अनुसार, "समान उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रत्येक मानव एसोसियेशन को संगठन कहते हैं।" एल० उर्विक (L. Urwik) के शब्दों में, "संगठन एक उपक्रम में विभिन्न तथ्यों के मध्य संरचनात्मक सम्बन्ध है।" संगठन के कार्य को सुचारू रूप से चलाने तथा सुव्यवस्थित ढंग से पर्याप्त नियन्त्रण में निष्पादित करने की प्रक्रिया है, जो व्यक्तियों के समूह द्वारा पूरी की जाती है। संगठन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यवसाय से सम्बन्धित समस्या क्रियाओं में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया जाता है जिससे कि उत्पत्ति के सभी साधनों का अधिकतम सहयोग प्राप्त करके न्यूनतम लागत पर श्रेष्ठ किस्म का अधिकतम उत्पादन किया जा सके।

संगठन की विशेषताएँ (Characteristics of Organization)

एक उपयुक्त संगठन की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं—

(i) श्रमिकों अथवा कर्मचारियों के मध्य वाद-विवाद को सुलझाता है।
(ii) संगठन के द्वारा उत्पादन के विभिन्न साधनों में समन्वय स्थापित किया जाता है।
(iii) यह सरल संचार व्यवस्था बनाता है और प्रबन्धकों की मदद करता है।
(iv) संगठन के द्वारा क्रियाओं का सही व योग्यतानुसार संचालन किया जाता है।
(v) उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उत्तरदायित्व तय करता है।
(vi) यह कार्य की पुनरावृत्ति को रोकता है।
(vii) कार्य और गतिविधियों के उचित वितरण में मदद करता है।
(viii) सुदृढ़ संगठन से पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता करता है।
(ix) यह न्यूनतम व्यय पर संसाधनों के अधिकतम इस्तेमाल को सुनिश्चित करता है।
(x) यह अच्छा समन्वय तथा उच्च नैतिकता का वातावरण बनाता है।
(xi) यह बिना अतिरिक्त भार बढ़ाये और पर्याप्त नियन्त्रण के साथ संगठन के विस्तार को सम्भव बनाता है।
(xii) यह वर्तमान ढाँचे में ज्यादा छेड़छाड़ किये बिना ही उसके आकार को छोटा या बड़ा करने में मदद करता है।

Scanned with CamScanner

(xiii) संगठन के द्वारा यह निर्णय लिया जाता है कि किसी कार्य को करने के लिए किन-किन क्रियाओं को किन-किन व्यक्तियों द्वारा सम्पन्न किया जाए। संगठन में लगे हुए व्यक्तियों के अधिकारों एवं उत्तरदायित्वों का भी निर्धारण किया जाता है।

संगठन की आवश्यकता (Need of Organization)

किसी औद्योगिक प्रतिष्ठान के बढ़ते हुए आकार, विनिर्माण के नये और जटिल तरीके, उपक्रमों में बढ़ती प्रतिस्पर्धा तथा श्रमिकों की समस्या ऐसे कारण हैं, जो प्रत्येक औद्योगिक प्रतिष्ठान में संगठन की आवश्यकता को बढ़ाते हैं। सभ्यता के प्रारम्भ में कार्य छोटे पैमाने पर किया जाता था। एक ही व्यक्ति समस्त कार्यों को सम्पन्न कर लेता था, अर्थात् समस्त कार्य एक परिवार के सदस्य ही करते थे। वे सहयोग से वस्तुओं का उत्पादन एवं विक्रय करते थे। जैसे—बढ़ई, नाई, सुनार आदि। किन्तु जैसे-जैसे कार्यों का क्षेत्र विस्तृत होता गया अर्थात् कम्पनी, निगम, सहकारी समिति, साझेदारी संस्था के रूप में कार्य होने लगा। तब से इन सभी कार्यों को अकेले व्यक्ति द्वारा सम्पादित करना कठिन हो गया। अत: अब इस बड़े व्यवसाय को करने में कच्चा माल खरीदने, उत्पादन करने तथा विक्रय करने से सम्बन्धित अनेक कार्यों को करने में विभिन्न व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ने लगी जिसके लिए संगठन की आवश्यकता अनुभव की गई। एक व्यवसाय को सुचारु रूप से चलाने के लिए संगठन की निम्नलिखित बातों में आवश्यकता दर्शायी गयी हैं—

(i) संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग करने के लिए,
(ii) श्रम समस्यायें कम करने के लिए,
(iii) उद्योग में बढ़ती जटिलता को कम करने के लिए,
(iv) बढ़ती प्रतिस्पर्धा के चलते प्रतिष्ठान में लाभ कमाने के लिए,
(v) समन्वय व प्रयासों का सही दिशा व निर्देश देने के लिए,
(vi) सभी कार्यों को कुशल, सुदृढ़ता व प्रभावशाली ढंग से सम्पन्न करने के लिए,
(vii) प्रशासन को सहयोग करने के लिए,
(viii) श्रमिकों अथवा कर्मचारियों में उचित समन्वय के लिए,
(ix) सृजनात्मक विचारों को एकत्र करने के लिए,
(x) अधिकारों व दायित्वों का बँटवारा करने के लिए।

संगठन के सिद्धान्त (Principles of Organization)

किसी भी औद्योगिक या व्यावसायिक उपक्रम के विभिन्न विभागों में सामंजस्य (Co-ordination), बनाये रखना आवश्यक होता है। यह उचित सामंजस्य कुशल संगठन के द्वारा ही लाया जा सकता है। अत: किसी व्यावसायिक उपक्रम की सफलता पर ही व्यवसाय का जीवन निर्भर करता है। सामंजस्य बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि संगठन कुशल एवं दृढ़ हो और उपक्रम के पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए समर्पित हो। संगठन को कुशल एवं सुदृढ़ बनाने के लिए विभिन्न प्रबन्ध विशेषज्ञों ने कुछ सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं जो निम्नलिखित हैं—

1. उद्देश्यों का सिद्धान्त (Principle of Objectives)—उपक्रम का उद्देश्य संगठनात्मक ढाँचे पर प्रभाव डालता है। किसी उद्योग या व्यावसायिक उपक्रम के उद्देश्यों को प्राप्त करने वाला यन्त्र विन्यास (Mechanism) ही संगठन है। इस सिद्धान्त के अनुसार संगठन तथा उपक्रम दोनों के उद्देश्यों में एकरूपता होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त संगठन का प्रत्येक भाग एवं उप-विभाग इकाई के उद्देश्यों से मेल रखता हुआ होना चाहिए। जब उपक्रम व संगठन का एक ही उद्देश्य हो, तब ही उद्देश्यों की प्राप्ति हो सकती है। इसलिए आवश्यक है कि समूचे उपक्रम के, विभाग के तथा संगठन के प्रत्येक पद के उद्देश्य स्पष्ट एवं सुपरिभाषित होने चाहिए। सभी का उद्देश्य उपक्रम के पूर्व-निर्धारित लक्ष्य को न्यूनतम व्यय पर प्राप्त करने का होना चाहिए।

2. निरन्तरता का सिद्धान्त (Principle of Continuity)—संगठन का ढाँचा इस प्रकार बनाया जाना चाहिए जो लम्बे समय तक कार्य करे तथा संगठन की आवश्यकताओं की पूर्ति करें। यह बदली हुई परिस्थितियों में खुद को बदलने की इच्छा रखता हो और उपक्रम के हितों को पूरा करता हो। संगठन ऐसा होना चाहिए जो व्यवसाय की आवश्यकताओं को निरन्तर

Scanned with CamScanner

पूरा कर सकें। पीटर एफ० ड्रकर (Peter F. Druker) के अनुसार—"संगठन का ढाँचा इस प्रकार बनाया जाना चाहिए कि वह पाँच, दस अथवा पन्द्रह वर्षों के पश्चात् भी व्यवसाय के उद्देश्यों की उपलब्धि को सम्भव बना सके।"

3. अपवाद का सिद्धान्त (Principle of Exceptions)—इस सिद्धान्त के अनुसार केवल जटिल समस्याओं को ही प्रबन्धकों तक पहुँचाया जाना चाहिए। रोजमर्रा की समस्याओं को अधीनस्थों द्वारा स्वयं ही निपटा लेना चाहिए। प्रबन्ध के समक्ष सामान्यत: वे ही समस्याएँ आनी चाहिए जो नीति व योजना सम्बन्धी हो तथा सामान्य स्तर से ऊँची हो। सामान्यत: कर्मचारी को अपने कार्य के सम्बन्ध में पूर्ण अधिकार दे देने चाहिए ताकि वे अपने कार्यों को स्वतन्त्र रूप से पूरा कर सकें। संगठन के उच्च स्तर को बड़ी तथा जटिल समस्याओं को समझने एवं उनके निपटारे के लिए अधिक समय की आवश्यकता होती है। अत: वे रोजमर्रा की समस्याओं पर उतना ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाते हैं।

4. अधिकार का सिद्धान्त (Principle of Authority)—एक अच्छे संगठन में संलग्न कर्मचारियों को अपने कार्य क्षेत्र से सम्बन्धित अधिकार स्पष्ट रूप से सौंपे जाने चाहिए। कर्मचारी को एक ही प्रकार के आदेश दो व्यक्तियों से प्राप्त नहीं होने चाहिए। किसी भी उपक्रम के संगठनात्मक ढाँचे में शीर्ष स्तर से लेकर निम्न स्तर तक प्रत्येक के कुछ अधिकार होते हैं, जिनकी मदद से वह अपने अधीनस्थ कर्मचारी से काम करा सकता है और उसकी जवाबदेही सुनिश्चित कर सकता है। कोई कार्य छूट न जाये अथवा कोई कार्य दो बार (repeat) न हो जाये इसके लिए आवश्यक है कि संगठन के प्रत्येक कर्मचारी की सीमा रेखा स्पष्ट एवं सुपरिभाषित हो।

5. आदेशों की एकता का सिद्धान्त (Principle of Command)—एक कर्मचारी को एक ही अधिकारी से आदेश मिलना चाहिए। एक से अधिक अधिकारियों द्वारा दिये गये आदेश एक दूसरे के प्रतिकूल भी हो सकते हैं। इस सिद्धान्त से प्रत्येक को अपनी जिम्मेदारी का भी अहसास होता है तथा विभिन्न अधिकारियों द्वारा दिये गये प्रतिकूल आदेशों के कारण बन सकने वाला टकराव की स्थिति समाप्त हो जाती है।

6. समन्वय का सिद्धान्त (Principle of Co-ordination)—संगठनात्मक ढाँचा ऐसा होना चाहिए कि प्रत्येक विभाग एक दूसरे से समन्वय बनाकर समान उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्य करे। मूलभूत प्रबन्धन क्रियाओं को करने के लिए अर्थात् क्रियाओं की समरूपता के लिए भी समन्वय आवश्यक है।

7. कार्य सौंपने का सिद्धान्त (Principle of Allotment of Work)—प्रत्येक व्यक्ति को अपने कार्य के बारे में जानकारी होनी चाहिए। नियुक्ति के समय ही कर्मचारी के कार्य निश्चित कर देने चाहिए।

8. लोच का सिद्धान्त (Principle of Elasticity)—इस सिद्धान्त के अनुसार बदली हुई परिस्थितियों में संगठन के प्रारूप में फेरबदल करने, संशोधन करने तथा विस्तार करने के लिए पर्याप्त लचक होनी चाहिए।

9. दक्षता का सिद्धान्त (Principle of Efficiency)—एक संगठन ऐसा होना चाहिए जो उपक्रम के उद्देश्यों को न्यूनतम व्यय तथा न्यूनतम प्रयास में हासिल कर सके। वह मानव तथा पदार्थों के संसाधनों के अधिकतम सदुपयोग करने में सक्षम होना चाहिए।

10. क्रमिकता का सिद्धान्त (Principle of Seriality)—संगठन उच्च स्तर से निम्न स्तर तक एक ऊर्ध्वाधर रेखा है, जिसके मध्य निर्देशों की विभिन्न तथा लगातार कड़ियाँ हैं। उच्च स्तर के अधिकार बिना बाधा के निम्न स्तर तक जाने चाहिए।

11. उत्तरदायित्व का सिद्धान्त (Principle of Responsibility)—अधिकार का अर्थ है कि अधिकारी द्वारा अपने अधीनस्थों को निर्देश देने की क्षमता। उदाहरणार्थ अगर किसी अधिकारी को कोई कार्य पूर्ण कराने का दायित्व सौंपा जाता है परन्तु उसको पर्याप्त अधिकार नहीं दिये जाते तो परिणाम के लिए वह अधिकारी जिम्मेदार नहीं होगा। अधिकारों व दायित्वों के मध्य सन्तुलन होना चाहिए, ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। इसके साथ ही प्रत्येक कर्मचारी को यह ज्ञात होना चाहिए। कि अपने कार्य के लिए वह किस अधिकारी के प्रति उत्तरदायी है।

12. प्रभावी संचार का सिद्धान्त (Principle of Effective Communication)—संचार अथवा सम्प्रेषण ऐसा माध्यम है जो उपक्रम के प्रत्येक विभाग को आपस में जोड़कर रखता है। अत: सम्प्रेषण की तकनीक उच्च एवं स्पष्ट होनी चाहिए जिससे कि उच्च स्तर द्वारा दिये आदेश एवं निर्देश निम्न-स्तर तक बिना किसी बाधा के, बिना तोड़े-मरोड़े, स्पष्ट रूप में पहुँचे। निर्णयों का सही क्रियान्वयन हो। इसके लिए जरूरी है कि लिया गया निर्णय सबके पास स्पष्ट रूप से उपलब्ध हो।

Scanned with CamScanner

संगठन के बाहर के लोगों से भी विभिन्न समस्याओं एवं कार्यों के लिए संचार की आवश्यकता होती है। अतः संचार स्पष्ट, भ्रमित न करने वाला तथा प्रभावी होना चाहिए।

13. व्याख्या का सिद्धान्त (Principle of Definition)—प्रत्येक अधिकारी एवं कर्मचारी के कार्य की व्याख्या स्पष्ट रूप से लिखित में होनी चाहिए।

14. नेतृत्व की सुविधा (Facility of Leadership)—संगठन प्रारूप इस प्रकार का होना चाहिए कि प्रबन्ध, उत्साह, लगन एवं अभिप्रेरणा के साथ व्यवसाय को आगे बढ़ा सके और संस्था का नेतृत्व कर सके।

1.2. (b) संगठन की संरचना (Structure of Organization)

संगठन संरचना एक ढाँचा है जो सभी गतिविधियों को सम्बन्धित समूहों में बाँटता हैं, अधिकारी और अधीनस्थों के मध्य सम्बन्ध स्थापित करता है तथा उनके अधिकारों को स्पष्ट करता है। संगठन संरचना में इस बात का स्पष्ट उल्लेख होता है कि व्यवसाय के संगठन का ढाँचा किस प्रकार का होगा। संगठन संरचना संगठन सम्बन्धी सभी क्रियाओं को पूरा करने के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। इसमें कार्यक्रमों एवं कार्यविधियों को निश्चित किया जाता है जिसके अनुसार उस उपक्रम में प्रशासनिक सम्बन्ध स्थापित एवं निश्चित किये जाते हैं।

संगठन संरचना के प्रकार
(Types of Organization Structure)

I. रेखा अथवा रेखीय या सैनिक संगठन (Line or Military Organization)

यह सफलता एवं सबसे पुराना संरचनात्मक ढाँचा है। इस प्रकार के संगठन में अधिकारों की रेखा सीधे सर्वोच्च अधिकारी से निम्नतम स्तर की ओर चलती है तथा दायित्वों की रेखा निम्नस्तर से शीर्ष स्तर तक जाती है। अन्य शब्दों में इसमें संचालन एवं आदेश रेखाबद्ध स्थिति में होते हैं। इसे सैनिक संगठन, क्रम संगठन, विभागीय संगठन, लम्बवत् संगठन आदि नामों से पुकारा जाता है।

प्रो०आर०सी०डरविस के अनुसार,"रेखा संगठन अधिकारियों एवं संलग्न व्यक्तियों के बीच वह क्रम व्यवस्था है जो संस्था के सर्वोच्च अधिकारी से प्रारम्भिक कर्मचारी तक विस्तृत होती है।"

प्रो० रेमाण्ड मिलर के शब्दों में,"रेखा संगठन वह है जिसमें अनुबन्ध की उन शर्तों के अधीन जो कि कर्मचारी को संगठन के प्रति बाध्य करती है, एक अधिकारी को अपने अधीनस्थों पर पूर्ण सत्ता प्राप्त होती है।"

रेखा संगठन की विशेषतायें (Characteristics of line Organization)

1. प्रत्येक छोटा अधिकारी अपने से तुरन्त बड़े अधिकारी के प्रति उत्तरदायी होता है।
2. आदेश तुरन्त बड़े अधिकारी द्वारा दिये जाते हैं।
3. इसमें आदेशों का रेखीय प्रवाह होता है अर्थात् आदेश ऊपर से नीचे की ओर चलते हैं।
4. संगठन के सदस्यों के बीच सम्प्रेषण।
5. प्रत्येक अधिकारी के अधीन कार्य करने वालों की संख्या सीमित होती है।

रेखा संगठन के लाभ (Advantages of line Organization)

1. समन्वय (Co-ordination)—पूरा दायित्व विभाग प्रमुख के हाथ में होने के कारण विभाग में अच्छा समन्वय बना रहता है।

2. सरलता (Simplicity)—यह स्थापित करने में आसान एवं समझने में सरल है। विभाग के प्रमुख के पास विभाग से सम्बन्धित निर्णय लेने के समस्त अधिकार होते हैं। प्रत्येक विभाग प्रमुख के पास समान स्तर के अधिकार होते हैं।

3. शीघ्र निर्णय (Quick Decisions)—क्योंकि समस्त प्रबन्धन, महाप्रबन्धन के पास रहता है, इसलिए होने वाले कार्यों पर शीर्ष निर्णय तथा तीव्र क्रियान्वयन होना सम्भव हो पाता है।

Scanned with CamScanner

4. स्पष्ट अधिकार एवं दायित्व (Clear cut Authority Responsibility)—अधिकारों का प्रतिनिधित्व (Delegation) तथा दायित्वों का बँटवारा (Assignment) स्पष्ट एवं परिशुद्ध है। अधिकारों के टकराव के बदलने का कोई अवसर नहीं होता है।

5. मजबूत अनुशासन (Strong in Discipline)—निर्देशों की समरूपता तथा एकाकी नियन्त्रण (Unified control) में मजबूत अनुशासन बनाये रखने में मदद मिलती है।

रेखा संगठन की हानियाँ (Disadvantages of line Organization)

1. कार्य की अधिकता (Overload of work)—विभाग प्रमुख रोजमर्रा के कार्यों में व्यस्त रहते हैं, जिसके कारण वे प्रबन्धन कार्यों जैसे—योजना बनाना, विकास, बजट आदि पर पूरा ध्यान नहीं दे पाते हैं।

2. कार्यों का दोहराया जाना (Duplication of work)—विभिन्न विभागों की परस्पर विरोधी नीतियों, कार्यों को दोहराये जाने की सम्भावना बढ़ती है।

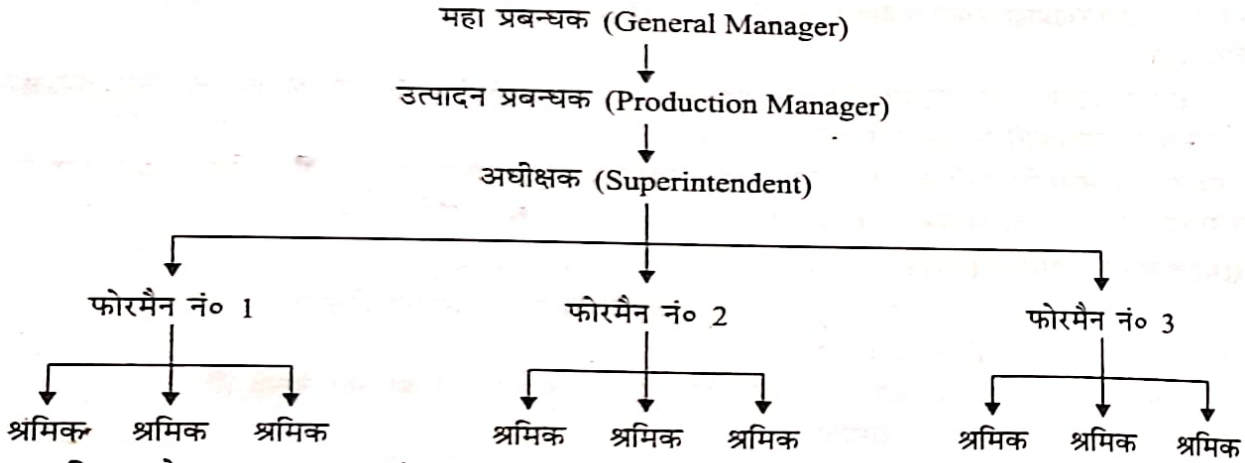
3. बड़े उपक्रमों में अनुपयुक्त (Unsuitable for large concerns)—यह संगठन छोटे उपक्रमों में ही उपयुक्त रहता है। बहुत बड़े उपक्रम के लिए यह उपयुक्त नहीं है।

4. समय तथा पदार्थ की बर्बादी (Wastage of materials and man hours)—अधिकारियों की विशिष्टता में कमी होने से समय और पदार्थ की बर्बादी सम्भव है।

5. अत्यधिक भरोसा (Undue reliance)—इस संगठन में उपक्रम की सफलता अथवा असफलता का पूरा दारोमदर, कुछ विभागों के प्रमुखों की दक्षता तथा लायकी पर निर्भर करता है। किसी भी परिस्थिति में एक अथवा दो प्रमुखों के छोड़कर चले जाने पर उपक्रम मुश्किल में आ सकता है।

रेखा संगठन के प्रकार (Types of Line Organization)

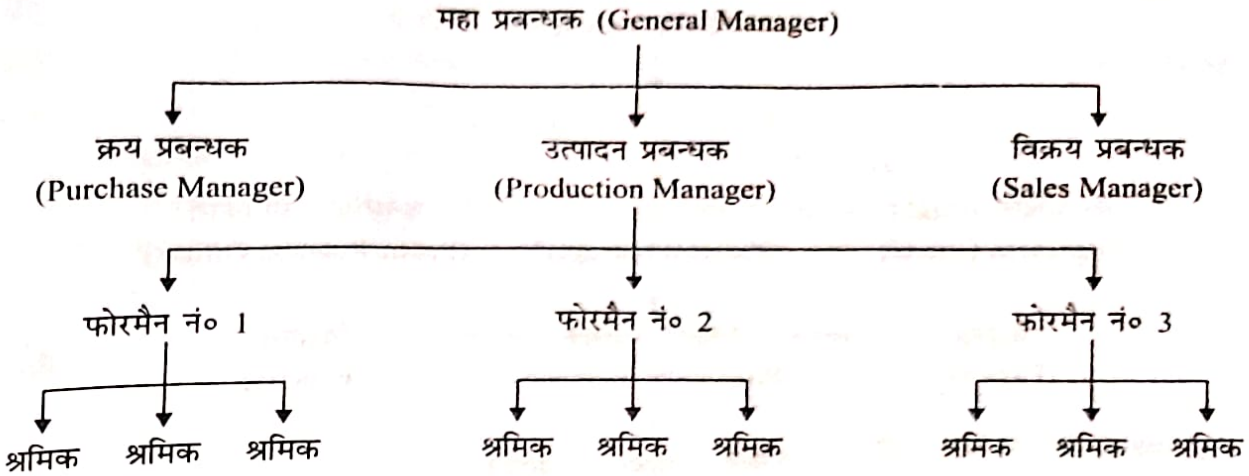
रेखा संगठन मुख्यत: दो प्रकार का होता है—



(A) विशुद्ध रेखा या लम्बवत् संगठन (Pure Line Organization)—इसमें एक स्तर पर प्राय: एक प्रकार की ही क्रियायें की जाती है। विभिन्न वर्गों में कार्यों का विभाजन केवल प्रबन्ध एवं निरीक्षण की सुविधा के दृष्टिकोण से किया जाता है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति को निम्न स्तर से उच्च स्तर तक एक ही प्रकार का कार्य करना पड़ता है। विशुद्ध रेखा संगठन को चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

(B) विभागीय रेखा संगठन (Departmental Line Organization)—इसमें कार्यों का विभाजन विभागीयकरण के आधार पर किया जाता है। इसके कार्यों को कई स्वतन्त्र विभागों में बाँट दिया जाता है। और प्रत्येक विभाग एक उत्तरदायी अधिकारी के अधीन कार्य करता है। जिसे विभागीय अधीक्षक कहते है। सभी विभागीय अधीक्षक उत्पादन प्रबन्ध के अधीन रहते हैं। इसमें उत्तरदायित्व नियन्त्रण, रेखीय होती है। आधुनिक समय में संगठन का यह स्वरूप अधिक प्रचलित है। विभागीय रेखा संगठन को चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

Scanned with CamScanner



(i) रेखा संगठन के अनुपयोग (Applications of Line Organization)

रेखा संगठन निम्न परिस्थितियों में सन्तोषजनक कार्य कर सकता है—

1. जटिलता रहित छोटा उपक्रम,
2. स्वचालित तथा लगातार कार्य करने वाला उद्योग जैसे—कागज, चीनी, कपड़ा, उद्योग आदि।
3. जहाँ रोजमर्रा का कार्य जैसे—सरकारी विभाग होता है।
4. जहाँ श्रमिकों की संख्या कम हो।
5. जहाँ कुछ ही गतिविधियाँ की जानी हों।

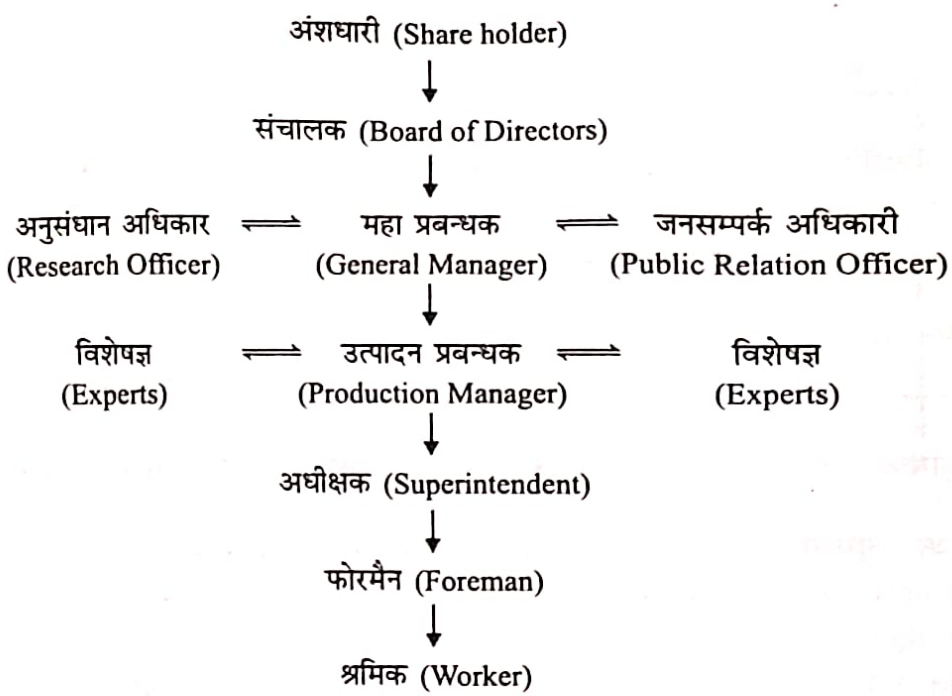
II. रेखा तथा स्टाफ संगठन (Line and Staff Organization)

संगठन के इस प्रारूप के द्वारा विभागीय पद्धति के दोषों को दूर किया जाता है। यदि उपक्रम का आकार बड़ा है, तब प्रबन्धक, प्रबन्धन के प्रत्येक क्षेत्र में ध्यानपूर्वक कार्य नहीं कर पाता है। ऐसी परिस्थिति में अतिरिक्त स्टॉफ कार्य पर लगाया जाता है जो रिसर्च, रिकार्डिंग, छानबीन आदि का कार्य देखते हैं और प्रबन्धक को आवश्यकतानुसार सलाह भी देता है। यह सहायक स्टाफ रेखीय अधिकारी के लिए विशेषज्ञ का कार्य करता है। डॉ० डब्ल्यू० आर० स्प्रीगल के शब्दों में, "विशेषज्ञों की सेवाओं से युक्त रेखा संगठन की वर्तमान उपक्रमों में रेखा व कर्मचारी संगठन होता है।" संगठन की इस प्रणाली द्वारा व्यवसाय की क्रियाओं को अनेक विभागों में विभाजित किया जाता है। प्रत्येक विभाग का एक अध्यक्ष होता है जो अपने विभाग की समस्त क्रियाओं के लिए पूर्णरूप से उत्तरदायी होता है। इसमें अधिकारों एवं आदेशों का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर होता है। इस प्रणाली की मुख्य विशेषता यह भी है कि इसमें विभागीय अध्यक्षों के अतिरिक्त प्रत्येक विभाग के लिए व्यापारिक एवं तकनीकी विशेषज्ञों की नियुक्ति परामर्शदाताओं के रूप में की जाती है क्योंकि बड़ी मात्रा में उत्पादन विभिन्न तकनीकी ज्ञान एवं प्रतिस्पर्धा बढ़ने से विभिन्न समस्यायें पैदा हो जाती हैं। इन विशेषज्ञों का कार्य विभागीय अध्यक्षों को सलाह देना है। लेकिन इनका व्यवसाय प्रबन्ध संचालन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता। ये तो केवल सलाह देने का कार्य करते हैं जबकि अन्तिम निर्णय विभागीय अध्यक्ष लेते हैं। इस प्रकार के संगठन को परामर्शवादी अधिकारी संगठन या शीर्ष तथा समानान्तर संगठन आदि नामों से पुकारा जाता है।

रेखा तथा स्टाफ संगठन का लाभ (Advantages of a Line & Staff Organization)

1. सुनियोजित विशेषज्ञ (Planned Specialization)—यह संगठन दोहरा संगठन है। जिसमें समस्त कार्य को सृजन, योजना तथा क्रिया योजना में बाँट लिया जाता है। सृजन योजना सोचने का कार्य करती है और क्रिया योजना क्रियान्वयन का कार्य करती है। विभाग प्रमुखों या प्रबन्धकों के पास संगठन, नियन्त्रण या उत्पादन प्रक्रिया का प्रभावी निरीक्षण करने के लिए पर्याप्त समय रहता है।

Scanned with CamScanner



2. मितव्ययिता व गुणवत्ता (Economic & Improved Quality)—इसके अन्तर्गत कार्य संचालन की क्षमता में वृद्धि होने से उत्पन्न हुई बचत से अतिरिक्त लागतों की पूर्ति हो जाती है। इस संगठन में पदार्थ की कम बर्बादी तथा उत्पाद की उच्च गुणवत्ता प्राप्त होती है।

3. विशिष्टीकरण को बढ़ावा (Encouragement to Specilization)—संगठन का यह प्रारूप अविभाजित उत्तरदायित्व एवं सत्ता के सिद्धान्त को बताता है और इसके साथ ही स्टाफ को विशिष्टीकरण का अवसर प्रदान करता है।

4. स्पष्ट परिभाषित अधिकारी एवं दायित्व (Well Defined Authority & Responsibility)—रेखा अधिकारियों जैसे—विभागाध्यक्ष या प्रबन्धकों के निश्चित अधिकार तथा दायित्व होते हैं। अधीनस्थ को केवल एक अधिकारी से आदेश प्राप्त होते हैं। इससे अनुशासन बनाये रखने में भी मदद मिलती है।

5. व्यापार में वृद्धि की अनुकूलता (Adaptability to Progressive Business)—इस प्रकार के संगठन तथा क्रियात्मक संगठन दोनों के अच्छे अवयव निहित होते हैं। विशेषज्ञ स्टाफ अपना समय नियोजन, कार्यविधि, आँकड़ों को एकत्र करने में लगा सकता है। इसलिए उन्नतिशील तथा उभरते हुए व्यपार के लिए यह संगठन सर्वोत्तम है। आजकल भारत में बहुत अधिक उद्योग इस संगठन को अपने जरूरत के हिसाब से अपना रहे हैं।

रेखा तथा स्टाफ संगठन से हानियाँ (Disadvantages of Line and Staff Organization)

1. अत्यधिक व्यय (Expensive)—संगठन की यह प्रणाली अधिक व्ययपूर्ण है क्योंकि विशेषज्ञों की फीस बहुत अधिक होती है। विशेषज्ञ स्टाफ के उच्च वेतनमानों के कारण उत्पाद की लागत में वृद्धि होती है।

2. कार्य करने में पहल की कमी (Loss of Initiative)—प्राय: लाइन अधिकारी जैसे—कार्य प्रबन्धक, उत्पादन अधीक्षक, फोरमैन आदि संगठन के इस प्रारूप में विशेषज्ञों पर आश्रित रहना पड़ता है। जब विशेषज्ञ स्टाफ पर बहुत अधिक निर्भर रहते हैं, तो उनके कार्य की पहले करने की इच्छा अथवा उत्साह में कमी आती है।

3. टकराव की सम्भावना (Chances of Friction)—कभी ऐसा अवसर भी आ सकता है जिससे कि प्रबन्धक या विभाग प्रमुखों की राय विशेषज्ञों की राय से अलग होती है जिससे टकराव की सम्भावना हो जाती है।

Scanned with CamScanner

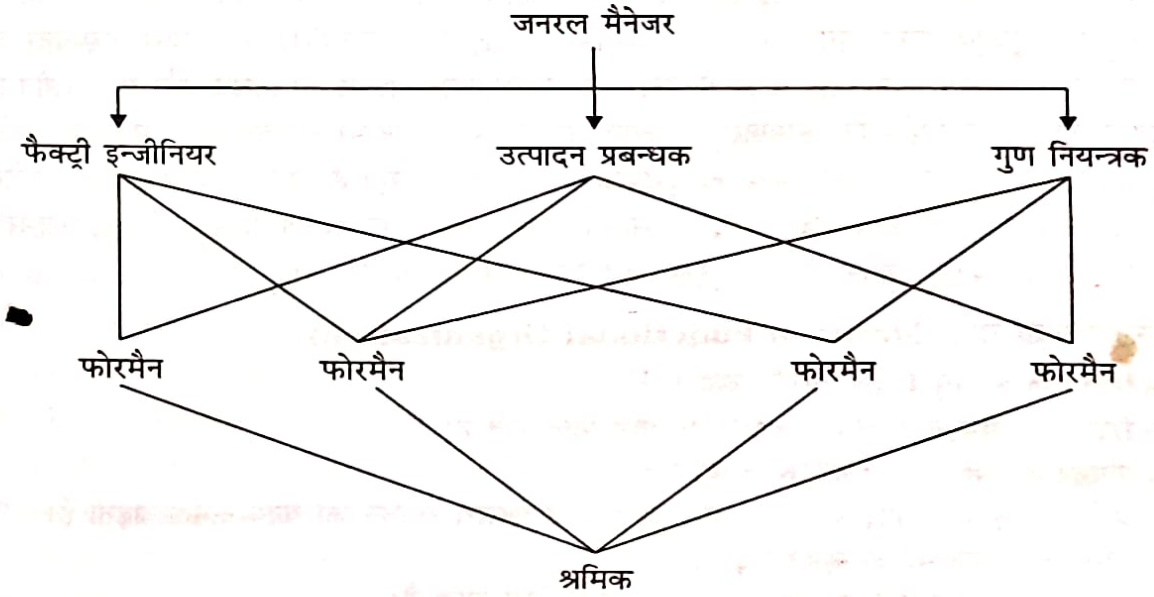
4. प्रबन्धक की अनुपस्थिति में स्टाफ (Ineffective Staff in the Absence of Authority)—सहायक स्टाफ के पास यह अधिकार नहीं होता है कि प्रबन्धक या विभाग प्रमुख की अनुपस्थिति में अपने ही सुझावों का अनुपालन करा सके। संगठन के अन्य अधिकारी उनकी राय मानने के लिए बाध्य नहीं होते।

5. उत्तरदायित्व न होने के कारण आलसी स्टाफ अधिकारी (Lithargic Staff Officer in the Absence of Accountability)—लाइन अधिकारी जैसे कार्य प्रबन्धक या उत्पादन अधीक्षक आदि किसी कार्य के सफल अथवा असफल होने के लिए उत्तरदायी होते हैं। अत: सहायक स्टाफ अधिकारी अलग-थलग पड़ जाता है और सही राय देने से परहेज कर सकता है।

III. क्रियात्मक संगठन (Functional Organization)

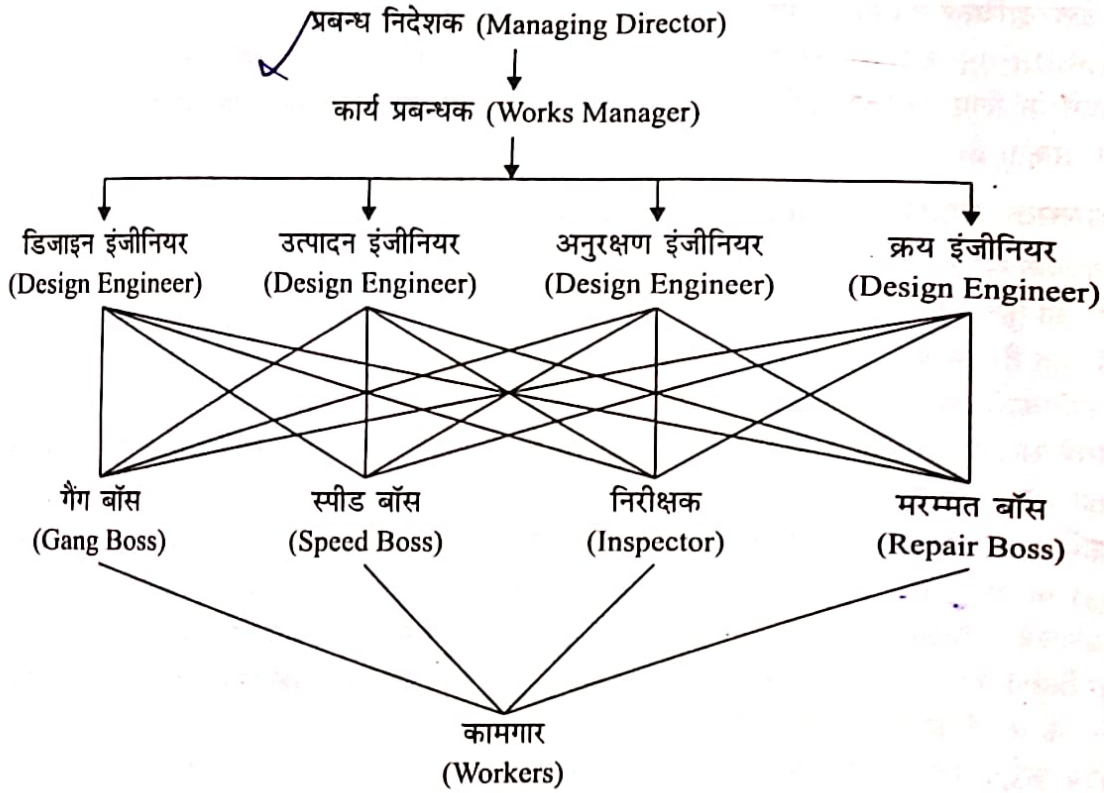
क्रियात्मक संगठन, प्रबन्धन गतिविधियों को इस प्रकार वितरित करता है—प्रत्येक प्रमुख, जो कार्य प्रबन्धक के अधीनस्थ कार्य करेंगे, को कुछ गतिविधियाँ करनी होती हैं, जिससे वह विशेषज्ञ बन जाता है। इससे शीर्ष से नीचे की ओर कुछ अधिकारी वितरित हो जाते हैं। इस प्रकार के संगठन में प्रोड्क्शन इंजीनियर, डिजाइन इंजीनियर, अनुरक्षण (Maintenance) इंजीनियर, तथा क्रय अधिकारी आदि विशेषज्ञ कार्य पर रखे जाते हैं। प्रत्येक विशेषज्ञ दूसरे विभागों के फोरमैन तथा कर्मचारियों को भी कार्य सम्बन्धी सलाह दे सकता है। एफ०डब्ल्यू० टेलर (F.W.Taylor) ने क्रियात्मक संगठन की संकल्पना को प्रस्तुत किया क्योंकि रेखा संगठन के मध्यवर्ती प्रबन्धन में विशेषज्ञ तथा कार्यों के लिए उपयुक्त व्यक्ति का मिलना कठिन होता है।

क्रियात्मक संगठन का मूल सिद्धान्त, कार्य को समवितरित करना (Equal distribution of work) तथा विशेषज्ञों (Experts) के अधिकार (Authority) व उत्तरदायित्वों (Responsibility) के क्रियान्वयन का लाभ भी अर्जित करना है। इस प्रणाली में विशेषज्ञों (Experts) को अपने-अपने कार्य क्षेत्र में उत्तरदायित्व प्रदान करने के साथ-साथ उन्हें अपने विचारों को क्रियान्वित करने का अधिकार भी दिया जाता है संगठन का यह स्वरूप विशिष्टीकरण के सिद्धान्त पर आधारित है। इसमें प्रबन्ध के कार्यों का बँटवारा इस प्रकार किया जाता है कि सहायक अधीक्षक के नीचे के अधिकारियों को यथासम्भव कम से कम कार्य करना पड़े अर्थात् एक व्यक्ति को एक ही प्रकार का कार्य करना पड़े जिसका कि वह विशेषज्ञ हो। इसमें एक व्यक्ति का सम्बन्ध एक अधिकारी तक ही होता है जो आवश्यक सूचनाएँ तथा आदेश देता है। इसमें विशेषज्ञों का सीधा सम्पर्क श्रमिकों से होता है। इसकी कार्य प्रणाली को चित्र से स्पष्ट किया जा सकता है—



Scanned with CamScanner

टेलर ने कार्य स्थल पर निरीक्षण की जिम्मेदारी विभिन्न फोरमैन को दी, जो कार्य के विशेषज्ञ होते हैं तथा कार्यों के इन्चार्ज भी होते हैं। प्रत्येक विशेषज्ञ कामगार को आदेश दे सकने में सक्षम होगा, जिसमें वह विशेषज्ञ है। क्रियात्मक संगठन का एक स्वरूप नीचे चित्र द्वारा प्रदर्शित है—



चित्र से स्पष्ट है कि विशेषज्ञ जैसे—डिजाइन इंजीनियर, प्रोड्क्शन इंजीनियर, अनुरक्षण इंजीनियर, क्रय अधिकारी आदि सभी फोरमैन अथवा सुपरवाइजरों को कार्य सम्बन्धी सलाह दे सकता है और जिस क्षेत्र में उनकी विशेषज्ञता है, उसमें उनका निर्देशन कर सकता है। प्रत्येक शाला-पर्यवेक्षक (Shop supervisor) जैसे—गैंगबॉस, स्पीड बॉस, इंस्पेक्टर तथा मरम्मत बाँस आदि पर्यवेक्षण कर कामगारों की मदद करता है। गैंग फोरमैन मशीन पर औजार को बाँधना और एक मशीन पर दक्षता से पहुँचने में मदद करता है। स्पीड फोरमैन, कामगारों को कर्तन औजार तथा मशीन पर न्यूनतम समय में क्रिया करने के बारे में सिखाता है। इंस्पेक्टर या इंस्पेक्शन फोरमैन कार्य की गुणवत्ता को नियन्त्रित करता है। मरम्मत बॉस मशीन की देखभाल तथा कार्य करने लायक बनाने रखने का कार्य देखता है। इसके साथ ही वह कामगारों को मशीनों को साफ रखने, रोजमर्रा का स्नेहक करने तथा मशीनों को कार्यकारी दशाओं में बनाये रखने हेतु आवश्यक निर्देश देता है।

क्रियात्मक संगठन के गुण (Merits of Functional Organization)

क्रियात्मक संगठन के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं—

(i) क्रियात्मक संगठन में श्रम-विभाजन के लाभ प्राप्त होते हैं।
(ii) संगठन का यह प्रारूप अधिक लोचपूर्ण है।
(iii) प्रत्येक अधिकारी अपने कार्य का विशेषज्ञ होता है जिससे संगठन की कार्य क्षमता बढ़ती है।
(iv) इसमें अनुसंधान को प्रोत्साहन मिलता है।
(v) कर्मचारियों को अपनी योग्यता के अनुसार कार्य मिल जाता है।

Scanned with CamScanner

(vi) क्रियात्मक संगठन द्वारा व्यापार की विकास एवं उन्नति की प्रबल सम्भावना होती है।
(vii) इसमें विभिन्न योग्यता वाले व्यक्तियों को योग्यताओं का लाभ प्राप्त होता है।
(viii) मानवीकरण एवं विशेषज्ञता से मास प्रोड्क्शन करने में मदद मिलती है।
(ix) क्रियात्मक संगठन में बड़े पैमाने पर उत्पादन हो जाता है।
(x) कुशल तथा विशेषज्ञ पर्यवेक्षण से कार्य की गुणवत्ता में सुधार आता है तथा उत्पादन दर बढ़ती है।

क्रियात्मक संगठन के दोष (Demerits of Functional Organization)

क्रियात्मक संगठन के दोष निम्नलिखित हैं—

(i) विशेषज्ञों को उच्च वेतन देना पड़ता है।
(ii) इसमें समन्वय का अभाव पाया जाता है।
(iii) इस संगठन में अनुशासन में शिथिलता रहती है।
(iv) यह प्रणाली छोटे उद्योगों के लिए अनार्थिक है।
(v) इस प्रकार के संगठन में अधिकारियों में अधिकार प्राप्त करने की होड़ लगी रहती है जिसका कर्मचारियों पर बुरा प्रभाव पड़ता है।
(vi) संगठन की यह पद्धति अव्यावहारिक है।
(vii) इसमें उत्तरदायित्व का निर्धारण करने में असुविधा रहती है।
(viii) एक ही श्रमिक पर अनेक अधिकारी हो जाने से वह सदैव उलझन में रहता है।
(ix) विशेषज्ञ जिस क्षेत्र में विशेषज्ञ रखता है, उस क्षेत्र को छोड़कर वह अन्य क्षेत्र में अलग-थलग रहता है, जिसमें समन्वय तथा प्रयासों में कमी आती है।

IV. समिति संगठन (Committee Organization)

डब्ल्यू० एच० न्यूमैन (W.H. Newman) के अनुसार—"एक समिति कुछ प्रशासनिक कार्यों को करने हेतु विशिष्ट रूप से नियुक्त की जाती है, जिसमें व्यक्तियों का एक समूह होता है।" समिति किसी भी संगठन के ढाँचे का औपचारिक हिस्सा होती है और ये सभी बड़ी कम्पनियों के सभी प्रबन्धन स्तरों पर पायी जाती है।

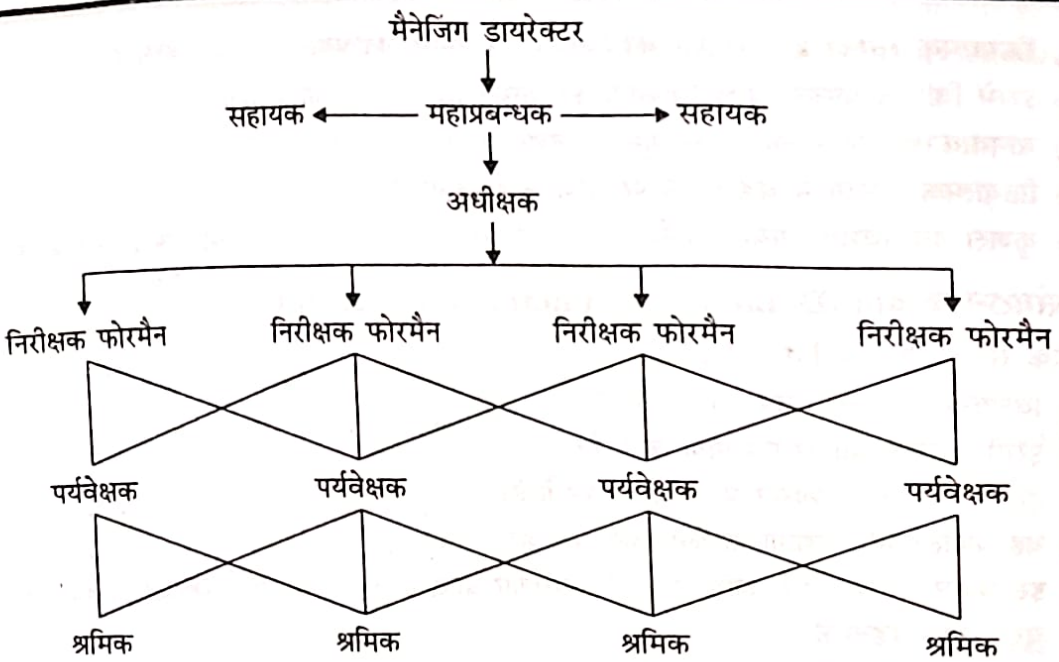
समाज में सभी व्यक्ति मिल-जुल कर कार्य करना पसन्द करते हैं। इसी भावना के कारण समिति-संगठन का उदय हुआ है। समिति-संगठन में व्यावसायिक इकाई के कार्यों की देख-रेख के लिए एक कार्यकारिणी समिति का गठन किया जाता है। इस समिति में एक अध्यक्ष के अतिरिक्त कम से कम तीन व्यक्ति और होते हैं। समिति-संगठन में सभी निर्णय बहुमत के आधार पर लिए जाते हैं। एल० उरविक के अनुसार,"समिति कुछ व्यक्तियों का समूह होती है, जिन्हें इस शर्त पर कुछ कार्य सौंपे जाते हैं, कि मिल-जुल कर तथा सम्मिलित रूप से कार्य करेंगे।"

समिति विभिन्न व्यक्तियों का ऐसा औपचारिक समूह है जो ऐसी समस्याओं को सुलझाने का प्रयास करे जो एक अकेला व्यक्ति नहीं सुलझा सकता है। राल्फ डेविस (Ralph Devis) के अनुसार,"समिति व्यक्तियों का ऐसा समूह है जो किसी समस्या के हल के लिए विभिन्न विचारों को समग्र या एकत्र करने के लिए स्थान पर मिलते हों।" संगठन के व्यक्ति किसी समस्या के हल के लिए बार-बार मिलते हैं, विचार-विमर्श करते हैं, निर्णय लेते हैं तथा अपनी संस्तुति देते हैं।

समिति संगठन से आशय व्यक्तियों के ऐसे समूहों से है जो निश्चित उददेश्य की प्राप्ति हेतु मिल-जुलकर कार्य करते हैं।

1. उपक्रम के कार्यों को कई विभागों में बाँट दिया जाता है।
2. सभी विभागों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण निर्णय समिति के द्वारा लिये जाते हैं।
3. प्रत्येक विभाग एक अधिकारी के अधीन होता है।

Scanned with CamScanner



समितियों के विभिन्न प्रकार (Different Types of Committees)

(i) अस्थायी समिति (Adhoc or Temporary Committee)—किसी अस्थायी समस्या के आकस्मिक रूप से उत्पन्न हो जाने पर इस प्रकार की समिति का गठन किया जाता है।

(ii) अनुशासन समिति (Discipline Committee)—यह समिति उपक्रम में अनुशासन बनाये रखने सम्बन्धी उचित सलाह देती है, इसके साथ ही किसी व्यक्ति विशेष द्वारा जनित होने वाली समस्याओं का निराकरण करने तथा नियन्त्रण बनाये रखने के लिए प्रबन्धकों को उचित सलाह देती है।

(iii) स्थायी समिति (Permanent Committee)—इस प्रकार की समिति का गठन उन परिस्थितियों में किया जाता है जब कोई समस्या बार-बार उत्पन्न हो जाती है। कभी-कभी इसे स्टेन्डिंग कमेटी भी कहते हैं। जैसे—रिसर्च समिति, क्रय समिति, शिक्षा समिति आदि।

(iv) सलाहकार समिति (Advisory Committee)—उपरोक्त के अतिरिक्त एक सलाहकार समिति होती है, जो समस्या उत्पन्न करने वाले कारणों की पहचान करती है तथा उसके निराकरण हेतु उचित सुझाव अधिकारियों जैसे—प्रबन्धक, फोरमैन आदि को देती है।

समिति संगठन के गुण (Merits of Committee Organization)

(i) समिति संगठन में लोकतन्त्र की भावना का विकास होता है।
(ii) समिति संगठन द्वारा लिए गये निर्णय सामूहिक होते हैं। अत: किसी को व्यक्तिगत आलोचना का शिकार नहीं होना पड़ता है।
(iii) इसमें व्यावसायिक क्रियाओं में समन्वय सरल होता है।
(iv) यह नये विचारों, नयेपन, नयी योजना को अपनाने में मदद करता है।
(v) समिति-संगठन में निर्णय भेदभाव रहित व बहुमत के आधार पर लिये जाते हैं।
(vi) विभिन्न विभागों (जैसे—उत्पादन, डिजाइन, विक्रय) के मध्य समिति के माध्यम से अच्छा समन्वय बनता है।
(vii) समिति संगठन को प्रेषण सुविधापूर्वक हो जाता है।
(viii) समिति संगठन में विशेषज्ञ किसी समस्या पर अधिक ध्यान दे सकते हैं और समय लगा सकते हैं जिससे प्रबन्धन का कार्य भार कम किया जा सकता है।
(ix) इसमें सहकारिता की भावना के कारण सदस्यों के सहयोग में वृद्धि होती है।

Scanned with CamScanner

समिति संगठन के दोष (Demerits of Committee Organization)

(i) इस संगठन में गोपनीयता का अभाव रहता है।
(ii) समिति-संगठन में कार्य देरी से प्रारम्भ होता है।
(iii) यह सामूहिक निर्णय होता है। गलत निर्णय के लिए किसी को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है।
(iv) तुलनात्मक रूप से यह संगठन खर्चीला होता है।
(v) इसमें निर्णय लेने में काफी समय लग जाता है।
(vi) अन्तिम समाधान किसी समिति सदस्य को अमान्य हो सकता है।
(vii) यह संगठन बड़े उद्योगों के लिए ही उचित रहता है छोटे उद्योगों के लिए नहीं।

V. मिश्रित संगठन (Mixed Organization)

जब दो या दो से अधिक संगठनों को मिलाकर एक नये संगठन को निर्माण किया जाता है या संगठन के प्रारूप में दो या दो से अधिक संगठनों के प्रकार को सम्मिलित किया जाता है तो वह मिश्रित संगठन कहलाता है। आधुनिक जटिल वैज्ञानिक युग उपक्रम को संगठन के एक प्रारूप के द्वारा संचालित करना कठिन होता है। संगठन की अनेक विधियों में से किसी एक अथवा अधिक विधियों का सम्मिश्रण करके उद्योगों की संचालन नीति बनायी जा सकती है। विभिन्न मिश्रित रूप निम्न प्रकार के हो सकते हैं—

1. लाइन तथा स्टाफ संगठन (Line & Staff Organization)
2. लाइन तथा क्रियात्मक संगठन (Line & Functional Organization)
3. स्टाफ तथा क्रियात्मक संगठन (Staff and Functional Organization)
4. लाइन, स्टाफ तथा क्रियात्मक संगठन (Line, Staff and Functional Organization)

1.3 (a) प्रेरणा, प्रोत्साहन या अभिप्रेरणा (Motivation)

डेल० एस० बीच (Dale S. Beach) के शब्दों में, "अभिप्रेरणा को किसी लक्ष्य या पुरस्कार प्राप्त करने की दृष्टि से अपनी शक्ति का विस्तार करने की तत्परता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"

अंग्रेजी शब्द 'Motivation' लैटिन भाषा के Movere शब्द से बना है। इसका अर्थ है—प्रेरित करना (to move) किसी व्यक्ति की वे इच्छाएँ और भावनाएँ जो उसे किसी कार्य को करने की दिशा में प्रेरित करती हैं, अभिप्रेरणा कहलाती है। अभिप्रेरणा मानव की अन्त: प्रेरणा है जिससे प्रेरित होकर व्यक्ति स्वयं कार्य करने के लिए प्रेरित होता है। "किसी व्यक्ति की वे भावनाएँ अथवा इच्छाएँ, जो उसे किसी कार्य को करने के लिए प्रेरित करती है।" "अभिप्रेरणा" या "प्रोत्साहन" कहलाती है। माइकल जे० जूसियस (Michael J. Jucius) के अनुसार—"प्रोत्साहन किसी व्यक्ति को प्रेरणा देने का कार्य है जो वांछित क्रिया करने के लिए उकसाता है, वांछित क्रिया पाने के लिए सही बटन दबाता है।"

दूसरे शब्दों में, "प्रोत्साहन एक प्रेरणा स्रोत है जिससे अमुक व्यक्ति में कार्य करने की तीव्र इच्छा शक्ति जाग्रत होती है और वह अपनी सामर्थ्य और शक्ति का प्रयोग करके व्यापार अथवा उपक्रम के लक्ष्यों और उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सहयोग करता है।"

प्रोत्साहन किसी एक व्यक्ति को मानसिक तौर पर तैयार और क्रियाशील बनाता है और संगठन के लिए अमुक कार्य करने की इच्छा जागृत करता है। किसी भी व्यक्ति में कार्य करने की योग्यता तो हो सकती है, परन्तु वह कार्य अपनी पूर्ण योग्यता से तब ही सम्पन्न करेगा जबकि उसे कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाये। अत: किसी भी व्यक्ति से कार्य का निष्पादन कराने के लिए अभिप्रेरणा देना अत्यन्त आवश्यक है। केरोल शर्टल (Caroll Shartle) के अनुसार,"किसी निश्चित दिशा में गतिमान होने अथवा निर्धारित लक्ष्य प्राप्त करने के लिए निश्चित प्रेरणा या तनाव ही अभिप्रेरणा है।" स्टेन्ले वेन्स (Stenlay Vense) के शब्दों में, "किसी भी प्रकार की ऐसी इच्छा या भावना जो किसी व्यक्ति की इच्छा व भावनाओं को इस प्रकार बना देती है कि वह कार्य करने की प्रेरित करने को प्रेरित हो जाए, उसे ही अभिप्रेरणा कहा जाता है।" प्रोत्साहन और नेतृत्व किसी

Scanned with CamScanner

उपक्रम के प्रबन्धन में सफलता की कुँजी है। ये मानव संसाधनों के विकास के लिए भी उत्तरदायी हैं। प्रोत्साहन किसी व्यक्ति को कोई कार्य करने के लिए उकसाता है। लोकतन्त्रीय नेतृत्व वित्तीय और गैर-वित्तीय प्रोत्साहनों के द्वारा कर्मचारी के प्रोत्साहन पर बहुत निर्भर करता है। प्रोत्साहन प्राय: श्रमिक के वेतन से अतिरिक्त होते हैं तथा उत्पादन में उसके अपने योगदान के अनुपात में होता है।

प्रोत्साहनों का वर्गीकरण (Classification of Motivation)

आन्तरिक प्रेरणा मनुष्य के अन्दर से उत्पन्न होती है। यह मनोवैज्ञानिक विकार है। मनुष्य की आन्तरिक इच्छायें उसे कार्य करने के लिए प्रेरित करती हैं। प्रोत्साहनों को उनकी प्रकृति के आधार पर निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जा सकता है—

I. आन्तरिक तथा बाह्य प्रेरणा (Internal and External Motivation)

अभिप्रेरणा व्यक्ति की अन्त: प्रेरणा है, अर्थात् यह व्यक्ति के अन्दर से उत्पन्न होती है। वास्तव में कोई भी व्यक्ति अपने जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ही कार्य करने के लिए प्रेरित होता है। आन्तरिक प्रेरणा के उदाहरण हैं—

(i) अपनी इच्छा शक्ति के अनुसार जॉब पाने की इच्छा।
(ii) जॉब को अच्छे से अच्छा पूर्ण करने की भावना।
(iii) स्वत: मूल्यांकन करने और स्वतन्त्र कार्य करने की प्रेरणा।

बाह्य प्रेरणा के स्रोत वेतन, भत्ते, प्रोत्साहन, प्रशंसा, पद, अधिकार आदि द्वारा प्राप्त होती है। सन्तुष्ट व्यक्ति की सोच सदैव नकारात्मक होती है। वह अपने काम में दिमाग लगाने के स्थान पर कुछ भयभीत और चिड़चिड़ा सा रहता है। इसे वर्तमान नौकरी खाने, पदावनत होने अथवा वेतन कम होने का भी भय रहता है।

II. सकारात्मक और नकारात्मक प्रेरणा अथवा धनात्मक और ऋणात्मक प्रेरणा (Positive and Negative Motivation)

धनात्मक अभिप्रेरणा की धारणा पुरस्कार की विचारधारा पर आधारित है।

फिलिप्पो (Filippo) के शब्दों में, "धनात्मक अभिप्रेरणा वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा पुरस्कार की सम्भावना से दूसरों का अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने के लिए प्रभावित किया जाता है।"

फिलिप्पो के अनुसार, धनात्मक अभिप्रेरणाएँ देने की प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित हैं—

(i) प्रतिस्पर्धाएँ आयोजित करना।
(ii) उत्तरदायित्वों का प्रत्यायोजना करना।
(iii) हिस्सा प्रदान करना।
(iv) कार्य के लिए सुझाव देना तथा प्रशंसा करना।
(v) अधिक वेतन देना।
(vi) अधीनस्थों में व्यक्तिगत रूप से रुचि लेना।
(vii) गौरव प्रदान करना।
(viii) सूचनाएँ देना।

कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने की धनात्मक अभिप्रेरणाएँ सबसे प्रमुख विधि है। सामान्यत: इसी विधि का प्रयोग किया जाता है। इससे कर्मचारियों की कार्यक्षमता को सरलतापूर्वक बढ़ाया जा सकता है तथा संस्था के प्रति अपनत्व की भावना का विकास किया जा सकता है। ऋणात्मक अभिप्रेरणाएँ धनात्मक प्रेरणाओं के एकदम विपरीत हैं। ऋणात्मक अभिप्रेरणाओं में कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिए भय और दण्ड का सहारा लिया जाता है। लेकिन फिर भी ऋणात्मक प्रेरणाओं का उद्देश्य अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए अभिप्रेरित करना है। ऋणात्मक अभिप्रेरणाएँ अधिक सफल नहीं हो पातीं। अनेक अध्ययनों तथा शोधों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि ऋणात्मक अभिप्रेरणाएँ केवल अल्पकाल में ही उपयुक्त हो सकती हैं। दीर्घकाल में ये अपना विपरीत प्रभाव दिखाती हैं। लिकर्ट के अनुसार, "दीर्घकाल में ऋणात्मक अभिप्रेरणाएँ उत्पादकता को कम करती हैं।"

Scanned with CamScanner

धनात्मक बनाम ऋणात्मक प्रेरणाएँ (Positive Vs Negative Incentives)

ऋणात्मक प्रेरणाओं की अपेक्षा धनात्मक प्रेरणाएँ अधिक हितकारी होती हैं क्योंकि धनात्मक प्रेरणाओं से श्रमिकों के मनोबल, कार्यक्षमता एवं उत्पादकता में वृद्धि होती है। श्रम-प्रबन्ध सम्बन्ध मधुर होते हैं, उपक्रम की प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है। जबकि ऋणात्मक प्रेरणाओं से वैमनस्य की भावना जोर पकड़ती है। श्रमिक स्वेच्छा से नहीं बल्कि भय से प्रेरित होकर कार्य करता है जिसके फलस्वरूप पर्यवेक्षण पर अधिक व्यय होता है और उत्पादन के क्षेत्र में भी सन्तोषजनक परिणाम प्राप्त नहीं हो पाते हैं। अतएव स्पष्ट है कि उपक्रम में श्रमिकों को अधिक से अधिक मात्रा में धनात्मक प्रेरणाएँ प्रदान की जानी चाहिए।

अभिप्रेरणा को निर्धारित करने वाले घटक (Factors Determining Motivation)

अभिप्रेरणा के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं—

A. मनुष्य को उन्नति के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करने वाले घटक

1. उपलब्धियाँ (Achievement)—अपने जॉब को सरलतापूर्वक पूर्ण करने और व्यक्तिगत तौर पर समस्यायें सुलझाने का सन्तोष व्यक्ति की अपनी उपलब्धि है।

2. दायित्व और अधिकार (Responsibility and Authority)—अपने कार्य से सम्बन्धित दायित्वों व अधिकारों का पूर्ण व सुचारु रूप से प्रयोग करना।

3. पहचान (Recognition)—कार्य को अच्छी प्रकार पूर्णता देने की अपनी पहचान बनाना।

4. कार्य (Work)—कार्य से सम्बन्धित सकारात्मक तथा नकारात्मक घटक श्रमिक को प्रोत्साहित करते हैं या हतोत्साहित करते हैं।

5. विकास (Development)—नये कौशल सीखने का मौका, जो उन्नति के अच्छे अवसर प्रदान करेगा।

6. उन्नति (Advancement)— पदोन्नति से कर्मचारी के मनोबल एवं आत्मविश्वास की बढ़ावा मिलता है।

B. हतोत्साहित करने वाले कारक

1. कार्यकारी दशाएँ (Working Conditions)—कार्यकारी दशाएँ अगर उचित न हों, वातावरण दूषित हो, बिजली-पानी की उचित व्यवस्था न हो तो भी कर्मचारी हतोत्साहित होता है।

2. वेतन (Salary)—उचित वेतन व भत्ता न मिलने पर भी कामगार हतोत्साहित होते हैं।

3. पद, पदवी (Post or Status)—व्यक्ति को उचित पद तथा उससे जुड़े लाभ न मिलने से भी उसके मन में असन्तोष की भावना उत्पन्न होती है।

4. कम्पनी की नीतियाँ और प्रशासन (Company Policy and Administration)—कम्पनी संगठन और प्रबन्धन की खामियों के बारे में विचार।

5. समन्वय न होना (No Co-ordination)—कम्पनी में अपने अधिकारियों एवं अधीनस्थों के साथ उचित समन्वय न होने से भी कर्मचारी हतोत्साहित होता है।

6. व्यक्तिगत परेशानियाँ (Personal Problems)—व्यक्तिगत परेशानियाँ भी कर्मचारी के उत्साह में कमी लाती हैं।

7. सुपरविजन (Supervision)—सुपरविजन करने की क्षमता व तकनीकी योग्यता।

अभिप्रेरणा को प्रेरित करने की विधियाँ (Methods for Improving Motivation)

व्यक्तियों के आचरण को अभिप्रेरित करने वाली अनेक शक्तियाँ होती हैं। अत: प्रबन्ध, कर्मचारियों के कार्य सम्बन्धी आचारण को अभिप्रेरणा प्रदान करने हेतु कई प्रविधियाँ प्रयोग में ला सकता है। कुछ प्रमुख प्रविधियाँ इस प्रकार हैं—

1. प्रतिस्पर्धा की स्वस्थ परम्परा विकसित करने के लिए कर्मचारियों को बढ़ावा देना चाहिए।
2. अधीनस्थ कामगारों को एकल व्यक्ति के रूप में समझाना चाहिए और उसमें व्यक्तिगत रुचि लेनी चाहिए।
3. श्रमिकों के अच्छे कार्यों की प्रशंसा करनी चाहिए।
4. अपने अधीनस्थ कार्य करने वाले कर्मचारियों को अधिकाधिक जिम्मेदारी (Responsibility) वाले कार्य सौपना।
5. अच्छे कार्यकारी परिस्थितियों को बढ़ावा देना चाहिए।

Scanned with CamScanner

6. प्रबन्धन के मामलों में यथासम्भव कर्मचारियों की भागीदारी बनानी चाहिए।
7. पदोन्नति और आगे बढ़ने के लिए अवसर प्रदान करने चाहिए।
8. कर्मचारियों के लिए न्यायोचित वेतन निर्धारित करने चाहिए तथा वेतन के साथ-साथ व्यक्तिगत या ग्रुप प्रोत्साहन (group incentive) भी देना चाहिए।
9. प्रबन्धन नीतियों को स्वच्छ, साफ-सुथरी व न्यायोचित बनाना चाहिए।
10. कर्मचारियों के उचित सुझाव प्राप्त करने की व्यवस्था बनाने चाहिए।
11. कर्मचारियों के लिए उनके कार्यस्थल पर ऐसे तरीके विकसित करने चाहिए कि उन्हें कार्य करने में गर्व अनुभव हों।

उपरोक्त बिन्दुओं द्वारा प्रोत्साहन के सकारात्मक पहलू को बताया गया है। परन्तु आवश्यकता पड़ने पर प्रोत्साहन के नकारात्मक पहलुओं को भी अपनाया जाता है। कुछ नकारात्मक पहलू इस प्रकार हैं—

1. भर्त्सना फटकार, डाँट-डपट (Reprimand)
2. जुर्माना (Fines)
3. पदावनत करना या पद घटाना (Demotion)
4. काम बन्दी, जबरन छुट्टी, कार्य विमोचन (Lay-off)
5. निष्कासन (Discharge)।

प्रबन्धक, एग्जीक्यूटिव या सुपरवाइजर का प्रबन्धन कौशल इस बात में निहित है कि इन दोनों प्रकार की प्रोत्साहन तकनीकों को उचित अनुपात में व कैसे और कब प्रयोग करें।

अभिप्रेरित की सुदृढ़ व्यवस्था के अनिवार्य तत्व (Essentials of a Sound Motivational System)

एक सुदृढ़ अभिप्रेरण व्यवस्था में प्राय: निम्न 6 बातें होनी आवश्यक हैं—

(i) अभिप्रेरणा की लागत, इससे प्राप्त होने वाली अतिरिक्त उत्पादकता से ज्यादा नहीं होनी चाहिए।

(ii) अभिप्रेरणा की अच्छी व्यवस्था वही है जो उत्पादक हो, अर्थात् जो अधीनस्थ कर्मचारियों को ज्यादा कुशलता और परिश्रम के साथ काम के लिए प्रेरित कर सकें। अच्छी अभिप्रेरणा व्यवस्था को लागू करने से कर्मचारियों की उत्पादकता बढ़ सके।

(iii) अभिप्रेरणा की योजना ऐसी होनी चाहिए, जिसमें भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की सभी माँगों और जरूरतों को पूरा किया जा सके और समय के बदलने के साथ-साथ समानुकूल परिवर्तन भी किया जा सके।

(iv) अभिप्रेरणा की व्यवस्था तभी अच्छी मानी जाएगी, जब वह कर्मचारियों में ज्यादा परिश्रम करने की स्पर्धा को जन्म दे।

(v) अभिप्रेरणा की यह योजना संगठन में लगे सभी कर्मचारियों पर समान रूप से लागू होनी चाहिए।

(vi) अभिप्रेरणा की उपयुक्त योजना संगठन में लगे कर्मचारियों की न केवल निम्न स्तर की जरूरतों को पूरी करती हो, बल्कि उच्चस्तरीय जरूरतों जैसे—आत्मसन्तुष्टि की जरूरत, सामाजिक महत्व की जरूरत आदि को भी पूरा करने में समर्थ होनी चाहिए।

प्रलोभन अथवा प्रेरणा (Incentives)

प्रलोभन अथवा प्रेरणा एक पुरस्कार अथवा आकर्षण है जो श्रमिक को उसके कठोर कार्य तथा उसकी दक्षता के लिए दिया जाता है। मनुष्य की आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है जिनमें से कुछ केवल वेतन आदि से पूरी की जा सकती है तो कुछ के लिए अन्य प्ररेणाओं की जरूरत पड़ती है। अभिप्रेरक, संगठन के द्वारा दिये गये प्रलोभन, लाभ, अवसर व सम्मान हैं जो संगठन से जुड़े कर्मचारियों का ज्यादा उत्साह, मनोयोग तथा तत्परता के साथ काम करने के लिए प्रेरित करते है। औद्योगिक प्रतिष्ठानों में कर्मचारियों के व्यवहार, आचार-विचार, आदतों में भिन्नता पायी जाती है। कुछ कर्मचारी विलम्ब से आने के आदी होते हैं। बीमारी का बहाना करके छुट्टी लेते हैं, निम्न कोटि और कम गुण वाले उत्पाद तैयार करते हैं। इन बातों से आभास होता है कि ऐसे कर्मचारियों में प्रेरणा प्रोत्साहन व अभिप्रेरणा की कमी है या बिल्कुल ही नहीं है। अन्य कर्मचारियों की तुलना में यह कर्मचारी कम कार्य करते हैं। इनमें अधिक कार्य करने की ललक व उत्कंठा नहीं होती है। प्रेरणा, प्रोत्साहन

Scanned with CamScanner

ऐसा आधार है जिससे कर्मचारियों का अधिक कार्य करने के लिए उकसाया जा सकता है। उनमें कार्य करने की भावना पैदा की जा सकती है। अर्थात् इस प्रेरणा स्रोत बनाया जा सकता है।

"प्रतिष्ठापन के व्यवस्था-प्रबन्धकों की वे सब क्रियायें जो कर्मचारियों को उत्थान में वृद्धि तथा उत्पादन लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अधिक से अधिक प्रयास करने की प्रेरणा प्रदान करे या उत्साहित करे, प्रोत्साहन कहलाती हैं।"

प्रोत्साहन एक प्रकार का पारितोषिक है जो श्रमिक को उसके द्वारा किये गये कठोर कार्य तथा उसकी दक्षता के बदले में प्रदान किया जाता है। ऐसा पारितोषिक प्रदान करने से श्रमिक को अच्छा तथा अधिक तथा अधिक कार्य करने का प्रोत्साहन मिलता है। प्रोत्साहन श्रमिक के वेतन से अतिरिक्त होते हैं तथा उत्पादन में उसके अपने योगदान के अनुपात में होता है। श्रमिक अधिक से अधिक कार्य व परिश्रम करे इसके लिए उसे अनेक प्रकार के लालच अथवा लाभ दिये जाते हैं। जैसे—पदोन्नति, प्रशंसा पत्र, सार्वजनिक सम्मान, अतिरिक्त वेतन वृद्धि, उत्पादन पर अतिरिक्त बोनस व अतिरिक्त धन आदि। इन्हीं लाभों को प्रलोभन अथवा प्रेरणा (Incentives) कहते हैं।

प्रलोभन अथवा प्रेरणाओं के प्रकार (Types of Incentives)

प्रलोभन अथवा प्रेरणायें चार प्रकार की होती हैं—

(i) वित्तीय प्रेरणायें (Financial Incentives)
(ii) अवित्तीय प्रेरणायें (Non-financial Incentives)
(iii) अर्द्ध-वित्तीय प्रेरणायें (Semi-financial Incentives)
(iv) व्यक्तिगत तथा सामूहिक प्रेरणायें (Individual & Group Incentives)

II. वित्तीय प्रेरणायें (Financial Incentives)—वित्तीय प्रेरणायें भारतवर्ष में उत्पादन बढ़ाने के लिए सबसे प्रभावशाली प्रोत्साहन या प्रलोभन है क्योंकि भारत में रोजगार के प्रत्येक स्तर पर मजदूरी अथवा वेतन बहुत कम है। ऐसे में वित्तीय प्रोत्साहन के रूप मे मिला धन उसकी भौतिक इच्छाओं की पूर्ति करता है। वित्तीय प्रेरणाओं से आशय ऐसी प्रेरणाओं से है जिन श्रमिकों को अधिक कार्य करने के लिए मौद्रिक रूप में प्रेरणा मिलती है। इनको मौद्रिक प्रेरणाएँ भी कहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को अपने व अपने परिवार के जीवनयापन के लिए विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करनी पड़ती है और इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए धन अर्थात् मुद्रा या वित्त की आवश्यकता होती है और इसकी प्राप्ति के लिए व्यक्ति कार्य करता है। अतएव श्रमिकों को अधिक कार्य करने हेतु प्रेरित करने के लिए अधिक प्रभावशाली यन्त्र वित्तीय प्रेरणाएँ ही हैं। इस प्रकार के अभिप्रेरकों में निम्नलिखित अभिप्रेरणाएँ सम्मिलित की गई हैं—

(i) बोनस (Bonus)
(ii) लाभांश (Profit Sharing)
(iii) वेतन (Salary)
(iv) कमीशन (Commission)
(v) प्रीमियम (Premium)
(vi) वित्तीय अनुलाभ (Financial Perquisites)।

यहाँ बोनस का अभिप्राय संस्था के लाभों में से कर्मचारियों को हिस्सा देना है, जबकि प्रीमियम का अभिप्राय कर्मचारी उत्पादकता में वृद्धि होने पर उन्हें उससे प्राप्त बचत में हिस्सा देना है। अधिनियमों के अन्तर्गत कर्मचारियों को प्रतिवर्ष अनिवार्य रूप से दिया जाने वाला वैधानिक बोनस भी वित्तीय अभिप्रेरणा में शामिल माना जाता है। वित्तीय अनुलाभों का अभिप्राय ऐसी सुविधाओं तथा रियायतों से भी है जो एक कर्मचारी को अपने नियोक्ता से प्राप्त होती है। जैसे—किराया मुफ्त मकान, कार, नौकर, सवेतन तथा सपरिवार छुट्टियाँ आदि। वित्तीय अभिप्रेरणाएँ कर्मचारियों की भौतिक, सामाजिक एवं अहंकार सम्बन्धी जरूरतों को सन्तुष्ट करती है।

वित्तीय अभिप्रेरकों के लाभ (Merits of Financial Incentives)

(i) वित्तीय अनुप्रेरकों में ज्यादा लोच पायी जाती है क्योंकि इनको घटाना-बढ़ाना आसान है।
(ii) रुपया मनुष्य की लगभग सभी जरूरतों को पूरा करने में सक्षम है।

Scanned with CamScanner

(iii) इनकी गणना करना सरल है और इनके प्रभाव को तुरन्त जाँचा जा सकता है।

वित्तीय अभिप्रेरकों के दोष (Demerits of Financial Incentives)

(i) ये मनुष्य को सन्तोष देने में सहायक तो हो सकते हैं लेकिन वास्तविक सन्तोष नहीं देते।

(ii) ये समस्या को लागत को बढ़ाते हैं।

वित्तीय अभिप्रेरकों को ज्यादा प्रभावी बनाया जा सकता है यदि इन्हें काम व उत्पादन के साथ सीधा जोड़ा जा सके। उत्पादन होने पर तत्काल चुकाया जा सके तथा कर्मचारियों को लगे कि यह वृद्धि समुचित है।

II. **अवित्तीय प्रेरणाएँ** (Non-financial Incentives)—ये प्रेरणाएँ कर्मचारी को कोई वित्तीय लाभ तो नहीं पहुँचाती है, परन्तु इनको दर्शन में वृद्धि करती हैं तथा उसे प्रोत्साहित करती हैं। यह आवश्यक नहीं है कि श्रमिक को मजदूरी व अतिरिक्त को प्रत्येक दशा में अधिक कार्य करने के लिए पूर्णतया प्रेरित किया जा सके। कभी-कभी कुछ अन्य सुविधा जैसे—पदोन्नति, अधिकार देने अथवा सार्वजनिक रूप से प्रशंसा करने मात्र से ही कर्मचारी और अच्छा व अधिक कार्य करने के लिए प्रेरित होता है। इनका इतना अद्भुत प्रभाव पड़ता है, जो वित्तीय सहायता से कहीं अधिक होता है। उन सभी अवित्तीय और मनोवैज्ञानिक कारणों को, जिनसे श्रमिक को अधिकाधिक कार्य करने की प्रेरणा होती है, अवित्तीय प्रेरणा के अन्तर्गत लेते हैं। अवित्तीय प्रेरणाएँ प्रबन्ध की सूझ-बूझ के अनुसार अनेक रूपों में दी जा सकती है। प्राय: निम्नलिखित को अवित्तीय प्रेरणाओं में सम्मिलित किया जा सकता है—

(i) **न्याय**—कार्य तथा मजदूरी में न्याय किया जाना चाहिए जिससे श्रमिक अधिक कार्य करने के लिए प्रोत्साहित हो।

(ii) **नौकरी में स्थायित्व**—सुरक्षा की भावना एक कर्मचारी के लिए अति आवश्यक है। नौकरी में स्थायित्व सभी कर्मचारी चाहते हैं। इससे उनकी सुरक्षा की भावना बढ़ती है।

(iii) **पदोन्नति**—कोई भी कर्मचारी एक ही स्तर पर कार्य नहीं करना चाहता, वह समय के साथ आगे बढ़ना चाहता है अत: समय-समय पर पदोन्नति से श्रमिकों की कार्य कुशलता में वृद्धि करती है। अत: यह आवश्यक है कि सुयोग्य कर्मचारियों को पदोन्नति के समुचित अवसर हो, जिससे उनका मन काम में लगे।

(iv) **परामर्श में अधिकार**—प्रत्येक श्रमिक अथवा कर्मचारी को अपना मत प्रस्तुत करने का अधिकार होना चाहिए कार्य सम्बन्धी परामर्श देने का अधिकार श्रमिक को प्रदान करने से वह अपना महत्त्व समझने लगता है। इससे उसका मनोबल बढ़ता है जो उसे कार्य करने के लिए प्रेरित करता है।

(v) **निर्भयता**—पिछली मान्यताओं के अनुसार भय दिखाकर कर्मचारियों से अधिक काम लिया जा सकता था। परन्तु अब यह सिद्ध हो गया है कि भय की स्थिति में कर्मचारी असुरक्षित अनुभव करता है और उसकी कार्य क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अत: यह आवश्यक है कि श्रमिक को निर्भय होकर कार्य करने का अवसर मिले।

(vi) **प्रशंसा एवं आदर**—प्रत्येक व्यक्ति की यह इच्छा होती है कि उसके कार्य एवं व्यवहार के लिए उसकी प्रशंसा की जाए व उसे समुचित सम्मान मिले। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जितना ही निम्न श्रेणी का कर्मचारी होगा, उस पर उतना ही प्रशंसा और मान-सम्मान का प्रभाव पड़ेगा और वह अधिक कार्य करने के लिए प्रेरित होगा।

(vii) **प्रबन्ध में भागीदार**—कर्मचारियों को प्रबन्ध में भागीदार बना लेने से उन्हें आत्म-सन्तोष की प्राप्ति होती है तथा वे अधिक आत्मनिर्भर अनुभव करते है और इससे कार्य करने की कुशलता में वृद्धि होती है।

(viii) **नेतृत्व**—अच्छे नेतृत्व के द्वारा प्रबन्धक अपने कर्मचारियों से सम्बन्ध अच्छे कर सकते हैं जिससे परस्पर विश्वास की भावना दृढ़ होती है।

(ix) **कार्य-कलापों से अवगत कराना**—श्रमिकों को कार्यक्षेत्र के कार्यकलापों व गतिविधियों से समय-समय पर अवगत कराते रहने से वे स्वयं व्यवसाय अथवा कार्यक्षेत्र से पृथक् नहीं समझते अपितु वे स्वयं को भी उसका एक महत्वपूर्ण अंश मानते हैं।

(x) **प्रशिक्षण तथा अन्य कल्याणकारी कार्यक्रम**—समय-समय पर श्रमिकों के लिए उसके कार्यक्षेत्र से सम्बन्धित प्रशिक्षण शिविरों व स्वास्थ्य से सम्बन्धित कल्याणकारी कार्यक्रमों का आयोजन करते रहना चाहिए। इससे वे नई पद्धतियों का ज्ञान प्राप्त करके अपनी कार्यकुशलता को बढ़ा सकते हैं।

Scanned with CamScanner

(xi) कर्मचारियों व उनके परिवारों के लिए सुविधाएँ—कर्मचारियों व उनके परिवारों के लिए घर, स्वास्थ्य, शिक्षा व मनोरंजन आदि की बुनियादी सुविधाएँ उपलब्ध करायी जाए, इससे श्रमिकों में सुरक्षा की भावना उत्पन्न होती है जिससे वे अधिक मन लगाकर कार्य करते हैं।

III. अर्द्ध-वित्तीय प्रेरणाएँ (Semi-financial Incentives)—अर्द्ध-वित्तीय प्रोत्साहनों में निम्नलिखित लाभ सम्मिलित होते हैं—

(i) कर्मचारी भविष्य निधि (Employees provident fund) और सेवा निवृत्ति के पश्चात् पेंशन की सुविधाएँ तथा अन्य वित्तीय लाभ-उपलब्ध कराना।

(ii) कर्मचारी को कम दरों पर भोजन, मनोरंजन एवं चिकित्सा सुविधा उपलब्ध करवाना तथा उनके बच्चों के लिए कम दरों पर शिक्षा सुविधाएँ उपलब्ध करवाना।

IV. व्यक्तिगत तथा सामूहिक प्रोत्साहन (Individual & Group Incentives)—वित्तीय प्रेरणाओं का भुगतान कार्य के प्रत्येक स्तर पर अलग-अलग दरों पर अथवा एक समान दर पर, संगठन की नीति के अनुसार किया जा सकता है। जब प्रेरणाएँ अलग-अलग दरों पर भुगतान की जाती हैं, तब बढ़ते हुए स्तर के साथ-साथ भुगतान की दर भी बढ़ जाती है। ये प्रेरणाएँ दो प्रकार की हो सकती हैं—

(i) व्यक्तिगत प्रेरणाएँ (Individual Motives)—व्यक्तिगत प्रेरणाएँ कर्मचारी को उत्पादन में उसकी भागीदारी अथवा उसके द्वारा किये गये कार्यों के अनुकूल दी जाने वाली प्रेरणाएँ हैं। इसमें संगठन या विभाग का कुल उत्पादन क्या है, इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। जो व्यक्ति, विभाग के औसत उत्पादन से अधिक उत्पादन करेगा, संगठन उसे वित्तीय या गैर-वित्तीय प्रोत्साहन कर देता है।

(ii) सामूहिक प्रेरणाएँ (Group Incentives)—सामुहिक प्रेरणाएँ, किसी विभाग में कार्यरत सभी कर्मचारियों को किसी उत्पादन कार्य के लिए सामुहिक रूप से प्राप्त होती है। यह व्यवस्था उन लोगों को प्राय: पसन्द नहीं आती जो अधिक दक्ष या कुशल होते हैं। विभिन्न प्रलोभनों को निम्न तालिका द्वारा दर्शाया गया है—

प्रलोभन (Incentives)

वित्तीय प्रलोभन (Financial Incentives)	अर्द्ध-वित्तीय प्रलोभन (Semi-financial Incentives)	अवित्तीय प्रलोभन (Non-financial Incentives)
1. बोनस (Bonus)	1. भविष्य निधि (Provident Fund)	1. न्याय
2. लाभांश (Profit Sharing)	2. मूलभूत सुविधायें (Basic Facilities)	2. नौकरी में स्थायित्व
3. वेतन (Salary)		3. पदोन्नति
4. कमीशन (Commission)		4. परामर्श में अधिकार
5. प्रीमियम (Premium)		5. निर्भयता
6. वित्तीय अनुलाभ (Financial Perquisites)		6. प्रशंसा एवं आदर
		7. प्रबन्ध में भागीदार
		8. नेतृत्व
		9. कार्यकलापों से अवगत कराना
		10. प्रशिक्षण तथा कल्याणकारी कार्यक्रम
		11. सुविधाएँ

Scanned with CamScanner

प्रलोभन से लाभ (Advantages of Incentives)

प्रलोभन औद्योगिक विकास की रीढ़ होती है। उद्योगों में प्रलोभन का बहुत अधिक महत्व होता है। इसके प्रमुख ल निम्नलिखित हैं—

(i) देश में स्थायी श्रम-शक्ति उपलब्ध होती है।
(ii) श्रत लागत (Cost Labour) में कमी आती है।
(iii) औद्योगिक उत्पादकता में वृद्धि होती है।
(iv) कर्मचारियों के नैतिक तथा भौतिक स्तर में वृद्धि होती है।
(v) प्रलोभनों से औद्योगिक शान्ति (Industrial Peace) स्थापित होती है।
(vi) उद्योगपतियों को श्रमिकों का विश्वास प्राप्त होता है। इससे नियन्त्रण एवं निरीक्षण कार्यों पर होने वाले व्यय बचत होती है।
(vii) औद्योगिक प्रजातन्त्र (Industrial Democracy) एवं कल्याणकारी राज्य (Welfare Stage) की व्याख करना सरल होता है।

प्रलोभनों के प्रयोग में सावधानी (Precautions in the Use Incentives)

औद्योगिक विकास के लिए प्रलोभन आवश्यक है। परन्तु इनके प्रयोग में कुछ सावधानियाँ बरतनी चाहिए अन्य कभी-कभी प्रलोभन विपरीत भी हो सकता है। प्रलोभन को व्यवहार में लाते समय निम्नलिखित सावधानियाँ बरतनी आवश्य हैं—

(i) प्रभावात्मक प्रलोभन (Effective Incentive)—प्रलोभन इस प्रकार का हो कि वह कर्मचारी को अधिक अच्छा कार्य करने के लिए प्रेरित कर सके। प्रलोभन का प्रभाव तुरन्त ही होना चाहिए। पर वह साथ में स्थायी भी होना चाहि जिससे उसका प्रभाव बना रहे।

(ii) पर्याप्त प्रलोभन (Adequate Incentives)—कर्मचारियों को प्रलोभन देते समय इस बात पर विशेष ध्य दिया जाना चाहिए कि जो प्रलोभन दिया जा रहा है वह पर्याप्त मात्रा में हो। साथ ही प्रलोभन का प्रभाव तात्कालिक होना चाहि कर्मचारी हमेशा यही चाहते हैं कि जो भी प्रलोभन इन्हें दिये जायें वे तुरन्त ही दिये जायें। इसका एक कारण तो उनकी कमजो आर्थिक स्थिति है और दूसरा कारण नियोक्ताओं के प्रति विश्वास में कमी उनकी कथनी और करनी में अन्तर।

(iii) प्रलोभन की सीमाएँ (Limitations of Incentives)—प्रलोभन देते समय उसकी सीमाओं एवं कर्मचारि की कार्यक्षमता आदि को ध्यान में रखना चाहिए। प्रलोभन कर्मचारियों की पहुँच के अन्दर हो। उदाहरण के लिए, यदि ए नियोक्ता अपने कर्मचारियों से यह कहे कि जो भी कर्मचारी 6 माह तक 20 घण्टे प्रतिदिन के हिसाब से कार्य करेगा उसे र के लिए मुफ्त मकान दिया जायेगा। परन्तु प्रत्येक कर्मचारी प्रतिदिन 20 घण्टे के हिसाब से कार्य कर सकेंगा, यह सम्भव नहीं

(iv) मनोवृत्ति एवं रुचि के अनुकूल प्रलोभन (Incentives According to Attitudes and Interests)— प्रलोभन ऐसे दिये जाने चाहिए जो कर्मचारियों की मनोवृत्ति एवं रुचि के अनुसार हों। यदि कर्मचारी को बीमारी के का दवाइयों की आवश्यकता हो और उसे पहनने की वर्दी दी जाये तो यह प्रलोभन उपयुक्त नहीं होगा। इसका प्रभाव अधिक अच्छ नहीं होगा।

(v) प्रलोभन प्रणाली की सरलता (Simplicity of Incentive Systems)—प्रलोभन ऐसे हों जिन्हें कर्मच आसानी से समझ सकें अन्यथा वे उन्हें छल-फरेब एवं धोखा मात्र ही समझेंगे। प्रलोभन देने से पूर्व उसकी वास्तविकता, महत्व अच्छाईयाँ आदि उन्हें समझा देना चाहिए।

उपरोक्त सावधानियों के अतिरिक्त प्रलोभन देते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि जो प्रलोभन दिया जा र है उससे सभी कर्मचारियों को सन्तोष है या नहीं। सन्तोष के अभाव में प्रलोभन का कोई महत्त्व नहीं रहेगा।

वेतन, पदोन्नति तथा पारितोषिक (Pay, Promotion and Rewards)

वेतन (Pay)

श्रमिक या कर्मचारी के लिए वेतन उसका जीवन है। (To the labours payments are their life) उन कुशलता पर वेतन का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। अत: औद्योगिक संगठन में वेतन भुगतान प्रणाली का स्थान अत्यन्त महत्व

Scanned with CamScanner

है। वेतन वह पारिश्रमिक है जो कर्मचारियों या श्रमिकों को उनकी मेहनत या कार्य के बदले दिया जाता है। इसका भुगतान निश्चित समय पर तथा निश्चित मान की राशि देकर किया जाता है। किसी कार्य के लिए वेतन का निर्धारण कर्मचारी की योग्यता एवं अनुभव के आधार पर किया जाता है।

वेतन प्रबन्धन तथा कर्मचारी के मध्य सम्बन्धों की सबसे नाजुक तथा महत्वपूर्ण कड़ी है। यह कर्मचारी की सामाजिक प्रतिष्ठा का आधार है। सबसे ज्यादा विवाद, किसी भी उपक्रम में वेतन निर्धारण की विसंगतियों के कारण होते हैं। इस प्रकार उपक्रम में शान्ति बनाये रखने के, उच्च उत्पादन एवं दक्षता बनाये रखने में वेतन प्रणाली का महत्वपूर्ण योगदान है।

निजी क्षेत्र के उपक्रमों में वेतन का निर्धारण मालिक तथा कर्मचारी की आपसी सहमति से होता है। इसके बाद वेतन में वृद्धि तथा अन्य भत्ते, कर्मचारी की मेहनत, ईमानदारी तथा कार्य निष्पादन पर निर्भर करते हैं। वेतन वृद्धि की कोई सीमा नहीं होती बल्कि यह संचार की अपनी योग्यता होती है जो मालिक को अधिकाधिक वेतन देने के लिए मजबूर करती है।

सरकारी एवं सार्वजनिक क्षेत्र में वेतन, कर्मचारी के वेतनमान के अनुसार दिया जाता है। प्रत्येक वर्ग के कर्मचारियों के लिए अलग-अलग वेतनमान (Pay scale) निर्धारित किये जाते हैं। प्रत्येक माह मिलने वाले इस वेतन में मूल वेतन के साथ दैनिक भत्ते, मकान भत्ते, नगर भत्ते आदि शामिल होते हैं। वेतन में प्रत्येक वर्ष एक निश्चित वेतन-वृद्धि का प्रावधान होता है। प्रतिमाह कर्मचारी के वेतन से कुछ कटौतियाँ भी की जाती है। ये कटौतियाँ उसके परिवार के कल्याण के लिए तथा भविष्य सुखमय बनाने के लिए आवश्यक होती है। ये कटौतियाँ हैं सामान्य भविष्य निधि, बीमा निधि, बचत निधि आदि। इस प्रकार निजी क्षेत्र तथा सरकारी क्षेत्र में वेतन निर्धारण की प्रणाली अलग-अलग होती है। वेतन भुगतान प्रणाली में निम्नलिखित गुण होने चाहिए—

(i) न्यूनतम वेतन (Minimum Salary)—एक आदर्श वेतन भुगतान प्रणाली में न्यूनतम वेतन की व्यवस्था होनी चाहिए जिससे पूँजीपति श्रमिकों का शोषण न करें। कर्मचारियों को इतनी मजदूरी या वेतन मिलना चाहिए, जिससे कि वे अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। "वे जीने के लिए काम करें, न कि काम के लिए जियें।"

(ii) प्रेरणा (Motivation)—वेतन भुगतान पद्धति ऐसी होनी चाहिए जिससे श्रमिकों को अपनी कुशलता बढ़ाने की प्रेरणा मिलती रहें, अर्थात् अधिक उत्पादन करने वाले श्रमिकों को, उसके अतिरिक्त उत्पादन पर बोनस या अधिक वेतन देना चाहिए।

(iii) लोच (Elasticity)—आदर्श वेतन भुगतान प्रणाली लोचदार होनी चाहिए जिससे वेतन आवश्यकतानुसार घटाया या बढ़ाया जा सके।

(iv) समयानुकूल भुगतान—श्रमिकों को उचित समय पर वेतन का भुगतान दिया जाना चाहिए। वेतन भुगतान का समय न तो इतना लम्बा हो जिससे श्रमिक मजदूरी पाने के लिए छटपटाता रहे और न इतना छोटा हो कि जिससे फिजूल खर्ची की आदत पड़े।

(v) सरलता एवं सुगमता—वेतन भुगतान पद्धति सरल एवं सुगम होनी चाहिए जिससे प्रत्येक साधारण श्रमिक अपने वेतन का हिसाब आसानी से निकाल सकें एवं पूँजीपति भी श्रम-व्यय (Labour Cost) आसानी से निकाल सके।

(vi) मजदूरी एवं उत्पादनशीलता में सम्बन्ध—मजदूरी भुगतान प्रणाली का सम्बन्ध उत्पादनशीलता से होना चाहिए। जिससे वह उद्योग अपने श्रमिकों को निश्चित मजदूरी दे सकेगा। इसके साथ ही श्रमिकों को पर्याप्त मजदूरी दी जानी चाहिए जिससे वह अपनी सारी आवश्यकतायें पूरी कर सकें। इससे श्रमिकों व पूँजीपतियों के सम्बन्ध अच्छे रहते हैं व दोनों का ही हित होता है।

(vii) दोनों पक्षों के लिए हितकारी—मजदूरी प्रणाली ऐसी होनी चाहिए कि श्रमिक एवं उद्योग दोनों का ही हित हो। मजदूरी न इतनी कम हो कि श्रमिक आवश्यकता की पूर्ति न कर सके और न इतनी अधिक हो कि उद्योग उसको न दे पाये।

(viii) औद्योगिक शान्ति—मजदूरी भुगतान प्रणाली ऐसी होनी चाहिए, जिससे औद्योगिक शान्ति स्थापित हो। इसके लिए श्रमिकों को उद्योग के लाभ का भाग मिलना चाहिए। तथा प्रबन्ध में श्रमिकों का भी भाग रहना चाहिए।

(ix) प्रतिकूल प्रभाव नहीं—वेतन भुगतान पद्धति ऐसी होनी चाहिए। जिसका श्रमिकों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

Scanned with CamScanner

(x) योग्यतानुसार मजदूरी—प्रत्येक कर्मचारी को उसकी योग्यता के अनुसार वेतन दिया जाना चाहिए। गधे-घोड़ों को एक ही लकड़ी से हाँकने का नियम लागू नहीं किया जाना चाहिए। कुशल कर्मचारियों को अकुशल कर्मचारियों की अपेक्षा अधिक वेतन मिलना चाहिए जिससे कर्मचारियों को अपनी कुशलता बढ़ाने का उत्साह रहे।

(xi) सन्देह रहित—वेतन भुगतान की पद्धति ऐसी होनी चाहिए जिससे कर्मचारियों को सन्देह न हो।

(xii) अन्य उद्योगों के अनुरूप वेतन—वेतन अन्य उद्योगों के अनुकूल प्रतियोगी (Competitive) होनी चाहिए, इससे कर्मचारियों को दूसरे उद्योगों में भागने की इच्छा न रहेगी और वे उस उद्योग में ही टिके रहेंगे। उद्योग की प्रगति तथा कर्मचारियों की सन्तुष्टि इसी में है कि समान उद्योगों में इनके वेतन एक दूसरे से कम न हों।

(xiii) मितव्ययी—वेतन भुगतान की पद्धति अधिक व्ययशील नहीं होनी चाहिए।

(xiv) किस्म पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं—वेतन भुगतान की पद्धति ऐसी होनी चाहिए जिसका उत्पादन की किस्म पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

(xv) स्थायित्व—वेतन भुगतान प्रणाली में स्थायित्व होना चाहिए। इससे कर्मचारियों के जीवन में सुरक्षा का अनुभव होगा और वे अपने कार्य को दत्तचित होकर कर सकेंगे। मजदूरी में परिवर्तन करने से श्रमिकों का उसमें विश्वास नहीं रहता तथा वे विरोध भी करते हैं।

(xvi) निश्चित आधार—आदर्श मजदूरी भुगतान की पद्धति में वेतन के निर्धारण का एक निश्चित आधार होना चाहिए।

पदोन्नति
(Promotion)

पदोन्नति से आशय (Meaning of Promotion)

पदोन्नति से आशय कर्मचारी की प्रगति (Advancement) से है। प्रगति के इस क्रम में जब किसी कर्मचारी को ऊँचे पद का कार्य-भार सौंपा जाता है, तो उसे पदोन्नति कहते हैं। पदोन्नति का अर्थ है—पद + उन्नति। इसमें ऊँचा पद मिलता है, पर आवश्यक नहीं है कि साथ ही साथ आय में भी वृद्धि हो ही। पदोन्नति में ऊँचे पद के साथ-साथ सामान्यतया आय में वृद्धि होती है। किसी भी औद्योगिक संस्थान में अच्छे मानवीय सम्बन्धों के विकास तथा कर्मचारियों में मनोबल को उन्नत करने के लिए अच्छा कार्य करने वाले कर्मचारियों को पदोन्नति के समुचित अवसर प्रदान करना अत्यन्त आवश्यक है। यदि किसी संस्थान में पदोन्नति की सम्भावना न हो, तो उसे अच्छे कर्मचारियों की सेवायें प्राप्त करना कठिन होगा। पदोन्नति की आकांक्षा से कर्मचारी कुशलता, ईमानदारी व लगन से कार्य करता है। कर्मचारी के अच्छे कार्य निष्पादन के पुरस्कार स्वरूप तथा इसे प्रोत्साहित करने के लिए पदोन्नति का प्रावधान होता है। पदोन्नति से कर्मचारी के अधिकार व उत्तरदायित्व और अधिक हो जाते हैं तथा उसका कार्यक्षेत्र भी बढ़ जाता है। उसके पद के अनुरूप उसकी जिम्मेदारी व जवाबदेही बढ़ जाती है।

निजी क्षेत्र के व्यावसायिक उपक्रमों में कर्मचारी की पदोन्नति उसकी दक्षता, ईमानदारी, विश्वसनीयता, कार्य के प्रति लगन तथा कार्य निष्पादन के आधार पर दी जाती है। पदोन्नति प्रदान करने के लिए निजी क्षेत्र के उपक्रमों में कोई समय सीमा निर्धारित नहीं की जाती हैं। कुशल, योग्य, दक्ष तथा उच्च कार्य निष्पादन के आधार पर कम अवधि में ही पदोन्नति प्रदान की जा सकती है।

सरकारी एवं सार्वजनिक क्षेत्रों में कर्मचारी की पदोन्नति उसकी सेवा अवधि तथा वरिष्ठता के आधार पर दी जाती है। इन क्षेत्रों में कर्मचारी की पदोन्नति उसकी सेवा अवधि तथा वरिष्ठता के आधार पर दी जाती है। इन क्षेत्रों में कर्मचारी की योग्यता, दक्षता, लायकी तथा कार्य निष्पादन आदि पर ध्यान नहीं दिया जाता है। बल्कि वर्गवार तथा जाति-पांति के आधार पर कर्मचारियों को पदोन्नति में वरीयता दी जाती है। जैसे—अनुसूचित जाति, जनजाति अन्य पिछड़ा वर्ग तथा सामान्य वर्ग के कर्मचारियों को उनके वर्गवार आरक्षण के आधार पर ही पदोन्नति किया जाता है।

अत: पदोन्नति से अभिप्राय कर्मचारियों को एक ऐसा पद मिलने से है जिसके अन्तर्गत पद, आयु, प्रतिष्ठा और उत्तरदायित्व सभी में वृद्धि की जाती है। कभी-कभी पदोन्नति में कर्मचारी के पद, प्रतिष्ठा और उत्तरदायित्व में तो वृद्धि हो जाती है परन्तु आय में वृद्धि नहीं होती, वह उतनी ही बनी रहती है। ऐसी पदोन्नति को शुष्क पदोन्नति कहते हैं।

Scanned with CamScanner

पदोन्नति के उद्देश्य (Objectives of Promotion)

पदोन्नति के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(i) कर्मचारी को अपनी दीर्घकालीन सेवाओं के प्रतिफल में पुरस्कार प्रदान करना, जिससे अन्य कर्मचारी अधिक कुशलता एवं स्थिरता से कार्य कर सकें।
(ii) कर्मचारियों में आवर्तन दर को रोकना एवं उनकी सेवाओं में स्थायित्व लाना।
(iii) नियोक्ता एवं कर्मचारियों के मध्य मधुर-सम्बन्ध स्थापित करना।
(iv) वर्तमान कर्मचारियों की योग्यताओं एवं क्षमताओं को प्रदर्शित करने के लिए सुअवसर प्रदान करना।
(v) प्रशिक्षण के व्ययों में कमी करना।
(vi) उपक्रम की प्रतिष्ठा में वृद्धि करना।
(vii) उपक्रम में योग्य, प्रशिक्षित एवं कुशल व्यक्तियों को आकर्षित करना।
(viii) श्रेष्ठ योग्यता वाले कर्मचारियों को उपक्रम में बनाये रखना।
(ix) उपक्रम में रिक्त उच्च पदों की पूर्ति करना।
(x) कर्मचारियों को अपनी योग्यताओं एवं क्षमताओं का उपयोग करना।
(xi) एक कर्मचारी को उस जगह नियुक्त करना, जहाँ उसकी सेवाओं का अधिक अच्छा उपयोग किया जा सके।
(xii) कर्मचारियों के मनोबल में वृद्धि करना।
(xiii) कर्मचारियों में आवर्तन दर को रोकना एवं उनकी सेवाओं में स्थायित्व लाना।

पदोन्नति के कारण (Causes of Promotion)

(i) रिक्त पदों की पूर्ति करना—व्यावसायिक उपक्रम में समय-समय पर कर्मचारियों के सेवा निवृत्त होने, कार्य के लिए अयोग्य होने तथा उपक्रम छोड़कर चले जाने पर अनेक पद रिक्त होते रहते हैं। इन पदों की पूर्ति दो प्रकार से की जाती है—नये कर्मचारियों की भर्ती करके तथा पुराने कर्मचारियों की पदोन्नति करके। नये कर्मचारियों की भर्ती करने में काफी समय लगता है। पुराने कर्मचारियों को पदोन्नति देकर ही रिक्त पदों की पूर्ति की जाती है ताकि कर्मचारियों को प्रेरणा भी प्राप्त हो, और कार्य भी अच्छी तरह से चलता रहे, और पदों की पूर्ति शीघ्रता से कर सकें।

(ii) कर्मचारियों की योग्यता में वृद्धि करना—कर्मचारियों की योग्यता में वृद्धि करने के उद्देश्य से कम्पनी में पदोन्नति की व्यवस्था की जाती है। पदोन्नति के पर्याप्त अवसर प्राप्त होने से कर्मचारी पदोन्नति की आशा से अपनी योग्यता में वृद्धि करते हैं तथा अपना कार्य-स्तर सुधारने का प्रयास करते हैं।

(iii) कर्मचारियों में स्वामीभक्ति की भावना उत्पन्न करना—कर्मचारियों में स्वामी भक्ति की भावना उसी समय उत्पन्न हो सकती है जबकि स्वामी या नियोक्ता की ओर से कर्मचारियों की भावी उन्नति का समुचित ध्यान रखा जाए। कर्मचारियों की पदोन्नति करने में नियोक्ता का उनके प्रति क्या रूख है, इसका पता चल जाता है।

(iv) स्थायी रूप से बनाये रखना—यह आवश्यक है कि योग्य व अनुभवी कर्मचारी का बराबर पदोन्नत किया जाये अन्यथा उसके अन्यत्र जाने का भय रहता है। इस भय को दूर करने के लिए कर्मचारियों को पदोन्नति का प्रलोभन दे दिया जाता है।

(v) अपनत्व की भावना विकसित करना—कर्मचारियों में अनुशासन की भावना का विकास करने तथा कार्य एवं उपक्रम के प्रति अपनत्व की भावना विकसित करने के लिए पदोन्नति की भावना विकसित की जानी चाहिए।

(vi) पुरस्कार स्वरूप पदोन्नति करना—कुछ कर्मचारी ऐसे होते हैं, जो हमेशा अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हैं। समय का पालन करते हैं। दुर्घटनाओं आदि के विरुद्ध बचाव रखते हैं, अपना कार्य सदैव लगन व परिश्रम से करते हैं। ऐसे कर्मचारियों को पुरस्कार के रूप में पदोन्नति किया जाता है।

(vii) श्रम समस्याओं को सुलझाने के लिए—पदोन्नति करने से कर्मचारियों में सन्तोष की भावना व्याप्त हो जाती है। इस कारण अनेक श्रम प्रबन्ध सम्बन्धी समस्या, जैसे—श्रम बलदोपन तथा श्रम प्रशिक्षण आदि का समाधान सरलता से हो जाता है।

Scanned with CamScanner

(viii) मधुर औद्योगिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए—नियोक्ता और कर्मचारियों के मध्य मधुर सम्बन्ध रह सकें, इसके लिए समय-समय पर कर्मचारियों की तरक्की करते रहना चाहिए। यह उनको सन्तुष्ट रखने का अच्छा उपाय है।

पदोन्नति के प्रकार (Types of Promotion)

विलियम आर० स्प्रीगल (William R. Spriegal) ने पदोन्नति के निम्नांकित तीन प्रकार बतलाये हैं—

(i) विभागीय पदोन्नति, (ii) अन्तर्विभागीय पदोन्नति, (iii) अन्तर्सयन्त्री पदोन्नति।

(i) विभागीय पदोन्नति—जब कभी कोई वरिष्ठ कर्मचारी सेवा निवृत्त होता है अथवा अन्य किसी कारण से पद रिक्त होता है, तो उसकी पूर्ति उस विभाग से निचले कर्मचारी की पदोन्नति करके की जाती है।

(ii) अन्तर्विभागीय पदोन्नति—अन्तर्विभागीय पदोन्नति से अभिप्राय ऐसी पदोन्नति से है, जोकि एक विभाग के कर्मचारी को दूसरे विभाग में दी जाती है। इस प्रकार पदोन्नति की आवश्यकता इस समय पड़ती है जबकि उस विभाग में कर्मचारी कम संख्या में होते हैं।

(iii) अन्तर्सयन्त्री पदोन्नति—इसका अभिप्राय यह है कि कर्मचारी पदोन्नति होने के कारण दूसरे संयन्त्र पर ऊँची स्थिति में काम करेगा। यह उसी समय सम्भव है जबकि दो या दो से अधिक संयन्त्रों में परस्पर कोई समझौता हो अथवा ये विभिन्न संयन्त्र एक ही व्यक्ति या वर्ग के नियन्त्रण में हों।

पदोन्नति को उनकी प्रकृति के अनुसार दो और निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है—

(a) समतल पदोन्नति, (b) लम्बवत् पदोन्नति।

(a) समतल पदोन्नति (Horizontal Promotion)—समतल पदोन्नति से अभिप्राय वर्गीकरण के अन्दर पदोन्नति से है। इसमें कार्यों का भौतिक वर्गीकरण अपरिवर्तित रहता है। उदाहरणार्थ—एक सहायक निरीक्षक को निरीक्षक बना देना।

(b) लम्बवत् पदोन्नति (Vertically Promotion)—इस प्रकार की तरक्की में कर्मचारी की तरक्की मौलिक वर्गीकरण की सीमाओं के बाहर की जाती है। उदाहरण के लिए, एक निरीक्षक को बन्धक बना देना।

पदोन्नति के सिद्धान्त (Principles of Promotion)

"एक पदोन्नति किसी सेवायुक्त या किसी एक ऐसे स्थान पर स्थानान्तरण है, जो अधिक धन देता है, या जो कुछ पूर्वाधिकार स्थिति का उपभोग करता है।"

(A Promotion is the transfer of an employer to the job that pays more money or one that enjoys some preferred status.)

पदोन्नति में जिम्मेदारियाँ बढ़ जाती हैं, अत: पदोन्नति कुछ सिद्धान्तों के आधार पर की जानी चाहिए जो निम्नलिखित हैं—

(i) योग्यता पर आधारित पदोन्नति (Promotion based on Merit)—सिद्धान्त रूप में सभी व्यक्ति मानते हैं कि पदोन्नतियाँ योग्यता पर आधारित होनी चाहिए। पदोन्नति योजना के अन्तर्गत योग्य व्यक्तियों को ही अवसर देना चाहिए। इसमें पक्षपात करना संघर्ष और अव्यवस्था को जन्म देना है। सेवा की दीर्घता को ध्यान में रखना चाहिए। लेकिन केवल इसी बात को ध्यान में रखना पक्षपात की तरह ही दोषपूर्ण है। वास्तव में, योग्यता पर आधारित पदोन्नति प्रेरणादायक होती है।

(ii) वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति (Promotion based on Seniority)—वरिष्ठता कर्मचारियों की सापेक्षिक सेवा की अवधि को बतलाती है। पदोन्नति के लिए वरिष्ठता सिद्धान्त उतना ही प्राचीन है जितनी कि सभ्यता स्वयं। सबसे बड़ा लड़का-प्रधान, राजा, बादशाह, सम्पत्ति के मालिक के रूप में, अपने पिता की सम्पत्ति और अधिकार के उत्तराधिकारी के रूप में पिता का उत्तराधिकारी प्राप्त करता रहा है। इस प्रकार पदोन्नति करने से प्रतियोगिता और संघर्ष होते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से, पदोन्नति की वरिष्ठता पद्धति सफल मानी जानी चाहिए। परन्तु आधुनिक व्यापार में सार्वभौम पदोन्नति के रूप में वरिष्ठता बिल्कुल अपर्याप्त है। यह केवल इसलिए जिन्दा है, क्योंकि अभी तक कोई ऐसी नयी पद्धति का विकास ही नहीं हुआ जो जनता का विश्वास प्राप्त कर सके।

(iii) गिलब्रेथ त्रिस्थितीय पदोन्नति योजना (The Gilbreth Three Positional Promotion Plan)—जिस प्रकार एक जाने की विभिन्न सीढ़ियाँ क्रमबद्ध होती हैं, उसी प्रकार पदों का उचित क्रमांकन होने से पदोन्नति देने की सुविध

Scanned with CamScanner

होती है और प्रत्येक पद अगले पद को तैयार करता है। इस सम्बन्ध में सन् 1916 में **गिलब्रेथ** ने एक त्रिस्थितीय योजना बनायी थी, जिसके अनुसार, किसी संस्था के सभी पदों को शिक्षा एवं शिक्षण ग्रहण की युक्तियों द्वारा उचित क्रम में रखा जाता है। उनकी योजन इस प्रकार है—तीन पद इस प्रकार हैं—**प्रथम** और निरन्तर वह स्थिति या पद है जो व्यक्ति ने पहले संगठन में ग्रहण किया था। **द्वितीय,** वह पद जो व्यक्ति संगठन में अभी धारण किये हुए हैं। **तृतीय,** उच्चतम वह पद है जोकि व्यक्ति आगे भविष्य में धारण करेगा। प्रथम पद के समय कर्मचारी सीखने वालों की स्थिति में होता है। यह पद एक समय में दो व्यक्तियों द्वारा धारण किया जाता है—एक तो वह कर्मचारी जोकि कार्य कर रहा है—जिसे उस पद के कर्त्तव्य को पूरा करने के लिए (आकस्तिक दशा को छोड़कर) कोई विशेष प्रशिक्षण नहीं दिया जाता और दूसरे वह जो कार्य सीख रहा है द्वितीय पद के समय कर्मचारी वास्तव में कार्य का प्रभारी होता है, और इसके बिल्कुल नीचे कर्मचारी का शिक्षक भी होता है, जो आगे अपने से ऊपर वाले व्यक्ति के द्वारा ऊपर पद के कर्त्तव्यों के लिए शिक्षा प्राप्त करता है।

(iv) कर्मचारी की पदोन्नति में उनका पूर्ण विवरण अवश्य देख लेना चाहिए। क्योंकि इनसे तथ्यों की पूर्ण जानकारी हो सकती है।

(v) पदोन्नति के सम्बन्ध में, यदि कर्मचारियों के कुछ दावे हों तो उन पर पहले विचार कर लेना चाहिए।

(vi) कर्मचारियों को यह मालूम होना चाहिए कि अधिकतर पदोन्नति उपक्रम में ही की जायेगी। बाहर के व्यक्तियों को उनके ऊपर नहीं थोपा जायेगा। इसका परिणाम यह होगा कि वे मन लगाकर कार्य करेंगे और उनमें सदैव सन्तोष की भावना बनी रहेगी।

(vii) किसी भी कर्मचारी को अस्थायी काल के लिए ही पदोन्नत करना चाहिए। इस जाँच के समय में यह देखना चाहिए कि वह किस प्रकार कार्य करता है। सन्तोषजनक कार्य होने पर उसे स्थायी कर लेना चाहिए, नहीं तो पहले के पद पर ही स्थानान्तरण कर दिया जाना चाहिए।

(viii) प्रशिक्षण कार्यक्रमों और पदोन्नति योजना में समन्वय रहना चाहिए।

(ix) कर्मचारियों को पदोन्नति देते समय कर्मचारी प्रशासन विभाग में भी विचार-विनिमय कर लेना चाहिए।

(x) कर्मचारियों की पदोन्नति करने की जो सिफारिशें की जायें वे या तो सुपरवाइजर द्वारा की जाये या उनके विभागीय अध्यक्ष द्वारा। इन सिफारिशों पर अन्तिम निर्णय प्रबन्धकों द्वारा ही किया जायेगा।

पारितोषिक (Rewards)

उद्योगों में उत्कृष्ट कार्य करने के लिए समय-समय पर पारितोषिक या पुरस्कार दिये जाते हैं। उद्योग में व्यक्तिगत तथा सामूहिक दोनों प्रकार के ही पारितोषित प्रदान किये जाते हैं। किसी व्यक्ति विशेष को उसके उत्कृष्ट कार्य निष्पादन के लिए व्यक्तिगत पारितोषित दिया जाता है जबकि सामुहिक पारितोषित पूरी टीम या ग्रुप के लिए दिया जाता है। पुरस्कार के अनेक रूप हो सकते हैं। जैसे—व्यक्तिगत एवं पारिवारिक लाभ, सेवा लाभ, वित्तीय लाभ आदि।

कुछ प्रमुख औद्योगिक व व्यावसायिक पुरस्कार निम्न हैं—

I. कार्य क्षेत्र विस्तृत करना (Enlargement of Functional Area)

(i) बैठकों में भाग लेने का मौका,

(ii) सलाह/राय देकर सक्रिय भागीदारी करना,

(iii) ट्रेनिंग का अवसर,

(vi) विशेष कार्य भार सौंपना।

II. सुविधाएँ तथा वित्तीय अनुलाभ (Privileges and Perquisites)

(i) सुविधाएँ जैसे विभिन्न प्रकार के अवकाश,

(ii) वित्तीय अनुलाभ जैसे—किराया मुफ्त मकान, कार, नौकर, चिकित्सा।

III. भौतिक सुख-सुविधाएँ (Physical Facilities)

(i) स्वच्छता एवं खान-पान की स्वास्थ्यवर्धक व्यवस्था,

Scanned with CamScanner

(ii) सन्तोष, स्वास्थ्य एवं सुरक्षा व्यवस्था,
(iii) साफ-सुथरा एवं स्वास्थ्यप्रद कार्य-स्थल,
(vi) कार्य-समय, कार्य गति तथा प्रबन्ध व्यवस्था की उत्तम स्थिति,
(v) श्रेष्ठ औजार एवं उपकरण,
(vi) उचित ले-आउट एवं साज-सज्जा।

IV. धन तथा पदार्थ (Money and Material)

(i) बोनस (Bonus)
(ii) वेतन वृद्धि,
(iii) ईमानी धनराशि।

V. कार्य करने की स्वतन्त्रता (Freedom to do Work)

(i) न्यूनतम पर्यवेक्षण (Minimum Supervision)
(ii) कार्य का विकल्प (Work Choice)
(iii) पर्याप्त धनाकर्षण (Appeal)

VI. समन्वय (Co-ordination)

(i) अच्छा समन्वय,
(ii) सक्रिय सहायता एवं सहयोग।

VII. सेवा अवधि (Service Period)

(i) सेवा में लगातार बने रहने के अवसर,
(ii) सेवा अवधि में वृद्धि के अवसर।

VIII. व्यक्ति प्रशंसा अथवा सहमति (Personal Approval)

(i) आदर योग्य व्यवहार एवं आचरण,
(ii) समूह द्वारा स्वीकार्य,
(iii) प्रशंसात्मक व्यवहार एवं आचारण।

IX. सामान्य सन्तोषजनक सम्बन्ध (General Satisfactory Relationship)

(i) सन्तोषजनक पर्यवेक्षण स्टाफ (Satisfactory Supervisory Staff)
(ii) प्रतिष्ठित कम्पनी,
(iii) अच्छे सम्बन्ध व सहयोगी की भावना,
(iv) अच्छे अधिकारी व सहयोगी।

X. वैयक्तिक उन्नति (Personal Advancement)

(i) वैयक्तिक उन्नति एवं विकास के अवसर,
(ii) सामाजिक स्थिति एवं पद की प्रोन्नति।

1.3.(b) कार्य सन्तुष्टि

कार्य सन्तुष्टि से आशय यह है कि किस प्रकार कार्य आवश्यकता की पूर्ति कर रहा है अथवा कितनी भली-भाँति यह इच्छाओं व आनन्द की पूर्ति व प्राप्ति करा रहा है। कार्य सन्तुष्टि वह मात्रा है जो कर्मचारी सकारात्मक अथवा नकारात्मक रूप से अपने कार्य के विषय में अनुभव करता है।

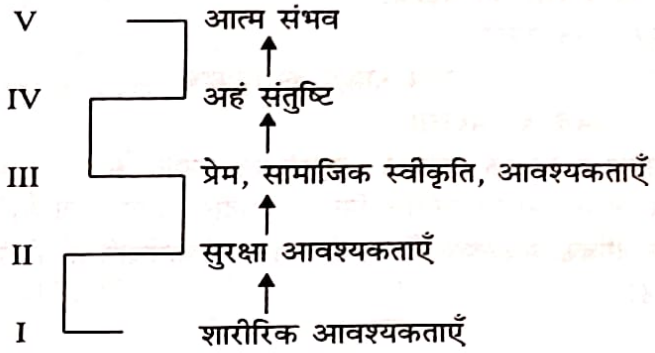
कार्य सन्तुष्टि सिद्धान्त

कार्य सन्तुष्टि के विषय में अग्रलिखित तीन सिद्धान्त महत्वपूर्ण हैं—

Scanned with CamScanner

1. विषय-वस्तु सिद्धान्त,
2. प्रक्रिया सिद्धान्त,
3. पारिस्थितिक सिद्धान्त।

1. विषय-वस्तु सिद्धान्त—इस सन्दर्भ में मॉस्लों के अभिप्रेरण सम्बन्धी सिद्धान्त के विश्लेषण में यह तथ्य प्रमुखता से सामने आता है कि मानव (किसी संगठन में कार्यरत कर्मचारी) आवश्यकताओं से बद्ध होता है तथा इन आवश्यकताओं की पूर्ति प्रत्यक्षत: अथवा परोक्ष रूप से कार्य सन्तुष्टि का कारण बनती है। इस सन्दर्भ में मॉस्लों ने आवश्यकता पद-सोपान का सिद्धान्त दिया जो निम्नवत् हैं—



2. प्रक्रिया सिद्धान्त—प्रक्रिया सिद्धान्त के अन्तर्गत कार्य सन्तुष्टि को अपेक्षाएँ व मूल्य के आधार पर विश्लेषित किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार कर्मचारी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अपने कार्य व्यवहारों का चयन करते हैं।

इस सन्दर्भ में एडम्स एवं विक्टर शूम ने उल्लेखनीय कार्य किया है। एडम्स के अनुसार,"व्यक्ति अपने कार्य को आगत एवं परिणाम (प्राप्ति) की एक शृंखला के रूप में देखते हैं। आगत घटक होते हैं। यथा—अनुभव, कौशल, एवं प्रयत्न जबकि प्राप्ति (परिणाम) में वस्तुएँ तथा वेतन, मान्यता तथा अवसर सम्मिलित होते हैं। यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि कार्य सन्तुष्टि व्यक्ति के इस प्रत्यक्ष सोच कि कार्य में उन्हें अन्य की तुलना में कितनी उचित रीति से व्यवहार प्राप्त होता है, का प्रत्यक्ष परिणाम होती है।

3.पारिस्थितिक सिद्धान्त—यह सिद्धान्त 1992 में तब अस्तित्व में आया जब क्वसटन, मैक्सी एवं ग्लास मैन ने कहा कि "कार्य सन्तुष्टि दो घटकों से निर्धारित होती है—(a) परिस्थितिकीय विशेषतायें तथा (b) परिस्थितिकीय घटना (उपस्थिति)।

(a) परिस्थितिकीय विशेषतायें—वेतन पर्यवेक्षण, कार्य दशाएँ, पदोन्नति अवसर, कम्पनी की नीतियाँ आदि वे घटक हैं जिनके विषय में कर्मचारी कार्य स्वीकार करने के पूर्व विचार करता है।

(b) पारिस्थितिकीय घटना (उपस्थिति)—ये वे घटनायें होती हैं, जो कार्य लेने (स्वीकार) के पश्चात् घटित होती है। ये दृश्य, अदृश्य, सकारात्मक, नकारात्मक हो सकती है।

कार्य-सन्तुष्टि का कर्मचारी के निष्पादन पर प्रभाव

यह निम्नलिखित दो सन्दर्भों में वर्णित किया जा सकता है—

(i) संगठन में सम्मिलित होना एवं उसका सदस्य बने रहना।

(ii) उच्च स्तरीय कार्य निष्पादन की प्राप्ति हेतु कठोर परिश्रम करना।

कार्य-सन्तुष्टि यदि पर्याप्त है तो उत्पादन को सकारात्मक ढंग से प्रभावित करेगी तथा यदि कार्य सन्तुष्टि नहीं है, अपर्याप्त, तो कार्य अनुपस्थिति को बढ़ायेगी।

1.3. (c) कार्य संवर्धन

कार्य संवर्धन प्रबन्ध का सिद्धान्त है, जो प्राय: कार्य जीवन की गुणवत्ता प्राप्त करने एवं उन्नत करने हेतु प्रयोग में लाया जाता है।

Scanned with CamScanner

हर्षबर्ग ने "कार्य संवर्धन को कर्मचारी को अधिक चुनौतीपूर्ण कार्य देने, उत्तरदायित्व तथा विकास के अवसर एवं अपने विचारों के माध्यम से योगदान देने के अधिक अवसर प्रदान करने के रूप में परिभाषित करते हैं।"

कार्य-संवर्धन का सिद्धान्त, हावर्ड बिकोप रिव्यू (1963) के एक लेख 'वन मोर टाइम : हॉउ डू यू मोटिवेट देट इम्पलयिड टू इम्प्रूव मोटिवेशन एण्ड प्रोडक्टिविटी पर आधारित है।

उद्देश्य—

(i) कार्य दोहराव को रोकना,
(ii) कौशल एवं ज्ञान के अवसर को बढ़ाना,
(iii) प्रोन्नति के अवसर प्रदान करना,
(iv) कर्मचारियों की पहचान तथा उपलब्धि भावना का विकास,
(v) आत्म सन्तुष्टि की भावना को बढ़ाना।

कार्य-संवर्धन लम्बवत् होता है जिसके अन्तर्गत (पुनर्संरचना पद्धति के द्वारा) कर्मचारियों को अतिरिक्त अधिकार स्वायत्तता तथा अपने कार्य निष्पादन के ढंग पर अधिक नियन्त्रण प्रदान किया जाता है।

जबकि कार्य-विस्तार एक क्षैतिज संकल्पना है जिसके अन्तर्गत कर्मचारियों को उसी प्रकृति (प्रकार) के कार्य का विस्तार रूप प्रदान किया जाता है।

कार्य-संवर्धन के लाभ

कार्य-संवर्धन के निम्नलिखित लाभ हैं—

(i) अनुपस्थिति स्तर को अल्प करना।
(ii) कर्मचारी कार्य-विरक्ति को कम करना।
(iii) कर्मचारियों को लब्धि कर स्तर बढ़ाने का अवसर प्रदान करना।
(iv) नवीन कार्यों के माध्यम से कर्मचारियों को अपने कौशल बढ़ाने का अवसर प्रदान करना।
(v) पुनरावृत्ति प्रकृति के कारण आने वाली नीरसता को कम/समाप्त करना।
(vi) नवीन कार्य वातावरण का सृजन।

कार्य-संवर्धन से हानि

(i) कर्मचारियों कार्यान्वयन का बोझ,
(ii) निम्न उत्पादकता सम्भव,
(iii) गैर-प्रतिभागियों में ईर्ष्या की भावना को जन्म देना,
(iv) स्तरहीन कार्यों से विश्वास एवं प्रेरणा में कमी।

कार्य-संवर्धन की तकनीकियाँ

निम्नांकित त्रि-स्तरीय प्रक्रिया द्वारा कार्य-संवर्धन तकनीकों को समझा जा सकता है—

(i) कर्मचारी प्रयत्नों को निष्पादन में परिवर्तित करना,
(ii) कर्मचारी निष्पादन को पुरस्कार से प्रत्यक्षत: जोड़ना,
(iii) प्रतिपुष्टि।

(i) कर्मचारी प्रयत्नों को निष्पादन में परिवर्तित करना—इस हेतु निम्न सुझावों को अपनाया जा सकता है—

(a) उद्देश्यों को सुस्पष्ट परिभाषित करना तथा उन्हें कर्मचारियों को सम्प्रेषित करना,
(b) उन्हें आवश्यक संसाधन प्राप्त करना, (सूचना, प्रौद्योगिकी, व्यक्तिगत प्रशिक्षण एवं विकास),
(c) सहयोगात्मक कार्य संस्कृति का निर्माण (प्रबन्ध से सहयोग, सहकर्मी से सहयोग),
(d) सम्प्रेषण एवं कार्य निष्पादन हेतु स्वतन्त्रता प्रदान करना,
(e) कौशल विकास के अवसर प्रदान करना,

Scanned with CamScanner

(f) कार्य-विविधता प्रदान करना (कार्य चक्राक्रमण द्वारा),

(g) कार्य प्रक्रिया का पुर्न-अभिकल्पन (प्रक्रिया, सुविधाओं, सरलीकृत तकनीकी का तथा दोहरावपूर्ण कार्यों का उन्मूलन)।

(ii) कर्मचारी कार्य-निष्पादन को प्रत्यक्षतः प्रतिफल (पुरस्कार) में सन्दर्भित करना

(a) पुरस्कार की स्पष्ट संकल्पना का होना आवश्यक है।

(b) निष्पादन एवं पुरस्कार के सम्बन्ध की स्थापना,

(c) निष्पादन अनुसार कर्मचारी को इनाम,

(d) पुरस्कार न दिये जाने की दशा में उसके औचित्य को बताना।

(iii) त्रुटि पुष्टि—प्रश्नों के उत्तर के माध्यम से यह सुनिश्चित (प्रति-पुष्टि) करना कि कर्मचारी सन्तुष्ट है अथवा नहीं। इस हेतु प्रश्नावली का प्रयोग उत्तम होता है।

1.4 (a) नेतृत्व (Leadership)

नेतृत्व के लिए कहा जाता है कि यह राजाओं और राजघरानों में ही पायी जाती है, यह उनके खून में होती है और यह वंशजों में परम्परागत हैं परन्तु अब यह ज्ञात हुआ है कि नेतृत्व के गुण अभ्यास करके विकसित किये जा सकते हैं। नेतृत्व किसी व्यक्ति का एक अहम गुण है जिसके द्वारा वह दूसरे व्यक्तियों को प्रभावित करता है और एक समान उद्देश्य के लिए प्रयासों को एक जगह जोड़ता है। इस तर्क के अनुसार प्रबन्धक, किसी संगठन में एक लीडर का कार्य करता है और अपने अधीनस्थों द्वारा किये जा रहे प्रयासों एवं गतिविधियों को संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु जोड़ता है। नेतृत्व एक युक्ति है, जिससे दूसरे व्यक्तियों से अपना मनचाहा कार्य कराने के लिए तैयार कर लिया जाये। नेतृत्व एक मानवीय तत्व है जो मनुष्य के समूह को बाँधता है और लक्ष्य की ओर बढ़ने की प्रेरणा देती है। सामान्य अर्थ में नेतृत्व से आशय किसी व्यक्ति विशेष के उस गुण से है, जिसके द्वारा वह अन्य व्यक्तियों का मार्ग दर्शन करता है।

कुन्ट्ज तथा ओ-डोनेल (Koontz and O' Donnel) के शब्दों में, "नेतृत्व किसी प्रबन्धक की योग्यता है जो अपने अधीनस्थों को आत्मविश्वास और जोश के साथ कार्य करने की प्रेरणा देती है।"

जार्ज आर० टेरी (George R. Terry) के अनुसार—"नेतृत्व लोगों को प्रभावित करने की कला है जो खुशी से सामूहिक उददेश्यों को पाने के लिए उद्यम करता है।"

बरनार्ड (Bernard) के अनुसार—"नेतृत्व किसी व्यक्ति विशेष का व्यावहारिक गुण है जिसके द्वारा वह अन्य व्यक्तियों को प्रभावित करके अभीष्ट कार्य कराने में सफल हो जाता है। साथ ही उनका मार्ग-दर्शन भी करता है।"

कीथ डेविस (Keith Devis) के अनुसार—"नेतृत्व एक ऐसा मानवीय गुण है जो किसी समुदाय को संगठित कर लक्ष्यों की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित करता है।"

पीटर एफ० ड्रकर (Peter F. Drucker) के अनुसार—"नेतृत्व व्यक्ति की सोच को ऊँचा उठाता है, व्यक्ति के कार्य निष्पादन को उच्च स्तर पर ले जाता है, व्यक्ति के व्यक्तित्व को सामान्य सीमाओं से ऊपर उठाता है।"

नेतृत्व का अर्थ व विभिन्न परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते हैं कि "नेतृत्व प्रभावित करने की प्रक्रिया है।" नेता अपने समूह को जोड़े रखता है, उसमें प्राण फूँकता है, उसे सतत् लक्ष्यों की तरफ बढ़ाता है। नेतृत्व प्रबन्ध के क्षेत्र में 'व्यक्तियों' की महत्ता को उजागर करता है।

नेतृत्व की आवश्यकता (Need of Leadership)

एक कम्पनी, अधिष्ठान या व्यापारिक प्रतिष्ठान में नेतृत्व की आवश्यकता निम्न उद्देश्यों के लिए होती हैं—

1. कम्पनी के प्रति वफादारी की भावना उत्पन्न करना।
2. टीम-भावना से कार्य करने की प्रेरणा देना।
3. कम्पनी के उद्देश्यों के लिए मेहनत करना, प्रयत्न करना तथा संघर्ष करना।
4. कम्पनी के लक्ष्यों और उद्देश्यों को पूरा करना।
5. ग्रुप-क्रियाकलाप (group activity) के लिए श्रमिकों को तैयार करना।

Scanned with CamScanner

6. कर्मचारियों में विश्वास, सुरक्षा व सन्तोष की भावना जाग्रत करना।
7. कर्मचारियों में कार्य के प्रति लगाव व इच्छाशक्ति उत्पन्न करना।
8. कर्मचारियों को उनके कार्य के प्रति प्रोत्साहित करना।
9. श्रमिकों में कार्य के प्रति ऊर्जा उत्पन्न करना।
10. कम्पनी की नीतियों पर कार्य करना।

नेतृत्व की विशेषताएँ (Characteristics of Leadership)

नेतृत्व की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. निर्देशन की प्रक्रिया (Process of Direction)—नेतृत्व में चार क्रियाएँ शामिल हैं—मार्गदर्शन देना, संचालन करना, निर्देश देना, पहल करना (Guiding, Conducting, Directing and Preceding) नेता अपने दल के उद्देश्यों को परिभाषित करता है तथा उन्हें प्राप्त करने के लिए कार्य मार्ग बतलाता है। वह भिन्न-भिन्न लोगों में काम बाँटकर, उन्हें इस कार्य मार्ग पर चलने में मदद देता है तथा अपने-अपने काम को कुशलतापूर्वक तथा समन्वित रूप में पूरा करने के लिए जरूरी आदेश तथा निर्देश देता है। अन्त में, एक नेता स्वयं आगे बढ़कर उदाहरण पेश करता है, जिससे अनुयायियों में भी आत्मविश्वास पैदा होता है। ये सभी क्रियाएँ निर्देश प्रक्रिया का अंग हैं।

2. क्रियाशील सम्बन्ध (Active Relations)—नेता एवं अनुयायियों के बीच क्रियाशील सम्बन्ध होना अत्यन्त आवश्यक है। किसी भी कार्य को सम्पन्न करने के लिए सबसे पहले नेता को स्वयं कार्य करने के लिए आगे बढ़ना चाहिए तथा उसके बाद उसे अपने अनुयायियों को मार्गदर्शन करना चाहिए।

3. अनुयायी (Followers)—नेता के साथ उसके अनुयायियों का होना भी आवश्यक है क्योंकि बिना अनुयायियों के नेतृत्व के विषय में सोचा तक नहीं जा सकता है। अनुयायियों की संख्या अधिक होने पर नेता का महत्व भी बढ़ जाता है।

4. प्रभावीकरण प्रक्रिया (Influence Process)—कुन्ट्ज तथा ओ' डोनेल ने नेतृत्व को एक प्रभाव के रूप में परिभाषित किया है, "व्यक्तियों को प्रभावित करने की कला या प्रक्रिया, जिससे वे लोग सामूहिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए स्वेच्छा से योगदान दें।" कुछ अन्य विद्वानों ने इसे 'प्रभाव उत्पन्न करने वाली बढ़ोत्तरी' (Influential increment) का नाम दिया है। उनके अनुसार संगठन में लगे कर्मचारी कुछ काम तो इसलिए करते हैं क्योंकि संगठन के ढाँचे में उन्हें कुछ निश्चित कार्य तथा दायित्व सौंपे गए हैं। और उनके काम की कार्यविधि को सोच-समझकर परिभाषित किया गया है, और कुछ काम इसलिए क्योंकि उनके नेताओं ने उनमें अपने काम के लिए उत्साह पैदा किया है।

5. आदर्श आचरण (Ideal Conduct)—अपने आचरण के द्वारा नेता अपने अनुयायियों के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत करता है। वे यह चाहते हैं कि उनका नेता मात्र नेता ही न हो, बल्कि वह एक आदर्श व्यक्ति भी हो जिससे वे उसका अनुसरण कर सकें। उर्विक के अनुसार,"अनुयायियों को यह प्रभावित नहीं करता है कि उनका नेता क्या कहता है और क्या लिखता है, बल्कि वह क्या है, वह कौन से कार्य करता है, वह किस प्रकार का व्यवहार करता है, आदि तथ्य प्रभावित करते हैं।"

6. उत्साह तथा विश्वास का सृजन (Creation of Enthusiasm and Confidence)—नेतृत्व कर्मचारियों में उत्साह तथा विश्वास का सृजन करता है। उत्साह का अर्थ है—

गर्मजोशी, सच्चाई तथा पुरजोशी के साथ काम में लग जाना, जबकि विश्वास का अर्थ है अपने पूरे अनुभव तथा तकनीकी योग्यता पर भरोसा करना। नेता अपने दल को सामूहिक उद्देश्यों की पूर्ति में अपनी सारी योग्यताओं के प्रयोग से अधिकतम योगदान देने में सहायता देता है।

7. हितों की एकता (Unity of Interests)—प्रत्येक नेता को चाहिए कि वह अपने उद्देश्यों के अनुरूप ही, अपने अधीनस्थों को कार्य करने के लिए प्रेरित करे। अच्छे नेतृत्व के लिए नेता और अधीनस्थों के उद्देश्यों अथवा हितों में एकता होना आवश्यक है। जार्ज आर० टेरी के अनुसार—"नेतृत्व पारस्परिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए लोगों को स्वेच्छा से प्रयत्न करने के लिए प्रभावित करने की क्रिया है।"

1.4. (b) नेतृत्व के कार्य (Functions of Leadership)

सफल नेतृत्व के लिए दो बातें आवश्यक हैं—

Scanned with CamScanner

(a) मानवीय भावनाओं की बेहतर समझ होनी चाहिए अर्थात् सामूहिक व्यवहार, मानवीय सम्बन्ध तथा प्रबन्धकीय कुशलता का सामान्य ज्ञान होना चाहिए।

(b) उपरोक्त गुणों का प्रयोग करने का प्रशिक्षण।

नेतृत्व के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं—

(i) सबको एकत्र करने तथा निर्देशन करने वाला (Integrating and Directing)—संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सामूहिक प्रयासों को एक साथ लाना और उनको निर्देशित करना नेतृत्व का मुख्य कार्य है। अपने व्यक्तिगत प्रभाव व व्यवहार से एक अच्छा लीडर अपने अधीनस्थों में आत्मविश्वास पैदा करता है, उन्हें आवश्यक सलाह देता है और अच्छे परिणाम के लिए प्रेरित करना है।

(ii) मध्यस्थ (Arbitration)—जब समूह विचार-विमर्श करता है तो एक दूसरे के विचारों में टकराहट सम्भव है। ऐसे में एक अच्छा लीडर मध्यस्थ की भूमिका निभाता है और एक निर्णय पर पहुँचने में मदद करता है।

(iii) प्रोत्साहन (Motivation)—यदि लीडर अपने समूह के सदस्यों को प्रोत्साहित करता है और उनके कौशल का संगठन के हित में सदुपयोग करता है तो संगठन का विकास सुनिश्चित हो जाता है।

(iv) टीम भावना विकसित करना (Develops team Spirit)—एक प्रभावी लीडर टीम भावना में विश्वास करता है। अच्छे परिणाम प्राप्त करने के लिए अपने अधीनस्थों के मध्य टीम भावना से कार्य करने की इच्छा विकसित करता है।

(v) शीर्ष प्रबन्धन एवं कामगारों के मध्य सम्पर्क बनाना (To Make a Healthy Link between Top Management & Workers)—एक अच्छा नेतृत्व कामगारों के सामने प्रबन्धन का पक्ष प्रस्तुत करता है तथा प्रबन्धन के सामने कामगारों का पक्ष प्रस्तुत करता है। संगठन की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि लीडर कितने प्रभावकारी ढंग से यह कार्य कर पाता है।

(vi) अधिकारों का प्रयोग (Use of Power)—एक लीडर अपने अधीनस्थों से धनात्मक व्यवहार पाने के लिए कभी-कभी अपने अधिकारों और शक्ति का भी प्रयोग करता है।

(vii) कार्य का माहौल बढ़ाना (To Develop Environment Conducive to Work)—एक सकारात्मक सोच और परस्पर सहयोग की भावना जागृत करके उपक्रम में कार्य करने के अनुकूल माहौल तैयार करता है।

(viii) सलाहकार की भूमिका निभाता (Act as a Counsellor)—एक लीडर को कभी-कभी अपने समूह के सदस्यों के जोश को बढ़ाने का कार्य करना पड़ता है। किसी बाधा को समाप्त करना और साथियों के लिए उत्प्रेरण का कार्य करना भी एक अच्छे लीडर की पहचान है।

अच्छे नेता के गुण (Traits of a Good Leader)

अब प्रश्न यह है कि एक अच्छे नेता में कौन-कौन से गुण होने चाहिए? या कौन-कौन से गुण आवश्यक हैं? इसकी एक निश्चित सूची तैयार करना सम्भव नहीं है। विभिन्न प्रबन्ध विचारकों ने अच्छे नेता के गुणों को विभिन्न प्रकार से स्पष्ट किया है। कुछ महत्वपूर्ण गुण निम्नलिखित हैं—

1. **साहस** (Bravery)—साहस का गुण होना एक नेता के लिए अति आवश्यक है। प्रबन्ध के क्षेत्र में एक नेता को अनेक विपत्तियों, समस्याओं तथा संगठन के सदस्यों की अलोचनाओं का सामना करना पड़ता है। ऐसी कठिन परिस्थितियों में साहस ही ऐसी युक्ति है, जो विषम परिस्थितियों को भी अनुकूल बना देती है। नेता को अपनी सही बात पर अडिग रहना चाहिए, उसकी नीतियाँ या विचारधारा भी एकरूप ही होनी चाहिए।

2. प्रसन्नता, उत्साह और सामाजिकता (Cheerfulness and Socialness)—एक नेता, मुखिया या लीडर हमेशा प्रसन्न मुद्रा में रहता है, मित्रता जल्दी कर लेता है और लोगों के साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार करता है।

3. खुली मानसिकता (Open Mindedness)—नेता की खुली मानसिकता, उसे स्वार्थरहित और भावनारहित निर्णय लेने में सहायक होती है जो केवल अधिष्ठान के हित में होते हैं।

4. आत्मविश्वास (Self Confidence)—स्वयं पर भरोसा करने वाला, आत्मनिर्भर, स्वावलंबी व्यक्ति एक अच्छा नेता बन सकता है। उर्विक के अनुसार—"अपने अधीनस्थों को विश्वास में लेने के लिए नेता में प्रबल आत्म-विश्वास होना चाहिए।"

Scanned with CamScanner

5. लचीलापन (Flexibility)—लचीला स्वभाव एक नेता का महत्वपूर्ण गुण है। एक अच्छा मुखिया बदलते हुए परिवेश में स्वयं को शीघ्र ढाल लेता है।

6. स्फुर्ति और क्षमता (Speed and Capacity)—स्फूर्ति, चैतन्य, सजगता का मिश्रण तथा सहिष्णुता का ही दूसरा नाम नेता होता है। एक नेता में यह गुण होना आवश्यक है जिससे वह समय रहते निर्णय ले सके व समस्याओं का समाधान कर सके।

7. शिक्षा (Education)—एक नेता को भली प्रकार शिक्षित होना चाहिए जिससे वह व्यावहारिक और तकनीकी शिक्षा का प्रचार-प्रसार कर सके।

8. तीक्ष्णता या प्रखरता (Acuteness)—मुखिया को मानसिक व शारीरिक रूप से स्वस्थ, चपल व होशियार होना चाहिए। उसे निर्देशों को तत्काल समझने और पालन करने के लिए तत्पर रहना चाहिए।

9. सामाजिक चेतना (Social Awareness)—एक नेता में सामाजिक चेतना होनी चाहिए। नेता इतना जागरूक होना चाहिए कि ज्यों ही सामाजिक परिवेश में कोई परिवर्तन हों, अपने आपको तथा अपने संगठन को उसके अनुरूप ढ़ाल सकें।

10. दृष्टि (Vision)—दूरदर्शिता, नवीन सम्मान (new trends) और अवसर, भविष्य की सम्भावित घटनाओं आदि के लिए भी लीडर में समुचित सोच होती है।

11. परिपक्वता (Maturity)—परिस्थितियों में जूझना, निर्णय लेना, भावनात्मक स्थिरता बनाये रखना और निराशाजनक स्थितियों से बचे रहना, परिपक्व व्यक्ति के गुण होते हैं।

12. सत्यनिष्ठा (Truthfulness)—एक नेता के लिए यह आवश्यक है कि वह सत्यनिष्ठ हो। सद्भावना, निष्कपटता एवं ईमानदारी से कार्य करें। उसकी नैतिकता एवं ईमानदारी पर अधीनस्थों अथवा अनुयायियों को किसी प्रकार की शंका नहीं होनी चाहिए। सद्भावना एवं ईमानदारी से अनुयायियों पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है एवं वे निर्देशों का तत्परता से अनुसरण करते हैं।

प्रभावी नेतृत्व
(Effective Leadership)

हर्से और ब्लेनचार्ड ने अपने प्रतिरूप में बताया है कि किसी नेतृत्व शैली के चयन को सबसे प्रभावशाली ढंग से परिस्थित्यात्मक कारक के रूप में अनुयायियों की तत्परता का स्तर प्रभावित करता है। तत्परता स्तर में अधीनस्थों की कार्य करने की दक्षता और उनकी अभिप्रेरणा को संयोजित किया गया है। प्रबन्धक इसका मूल्यांकन इस आधार पर कर सकता है कि अधीनस्थों को कार्य की जानकारी कितनी है, उनमें कौशल और योग्यता कितनी है तथा उनमें उत्तरदायित्व उठाने की उत्सुकता और उसे स्वतन्त्र रूप से सम्पादित करने की क्षमता कितनी है। उपयुक्त मार्गदर्शन कार्य करने का अनुभव बढ़ने और सहकारी व्यवहार के लिए प्रतिकूल मिलने की आशा के कारण उनका समुचित विकास होता है। हर्से और ब्लेनचार्ड नेता के कार्य-अभिमुखी और सम्बन्ध-अभिमुखी व्यवहारों के संयोजन से चार प्रमुख नेतृत्व शैली का प्रतिपादन करते हैं—विक्रयी, सहभागी, कथनी और भारार्पी। उनके विचारों में ये शैलियाँ उत्तरोत्तर वृद्धिमान तत्परता स्तर के अनुरूप होना चाहिए।

हर्से और ब्लेनचार्ड ने अपने प्रतिरूप को तर्क संगत ठहराते हुए यह भी कहा कि हमें प्रतिरूप और सिद्धान्त में अन्तर जान लेना चाहिए। सिद्धान्त इस बात की व्याख्या करता है कि कोई चीज क्यों होती है। इसका प्रारूप घटनाओं को फिर से दोहराने के लिए बनाया जाता है। यदि शैली उपयुक्त है तो यह कर्मचारियों को न केवल अभिप्रेरित करती है, बल्कि उन्हें उच्च तत्परता स्तर की ओर बढ़ने में सहायता भी करती है।

1.4.(c) प्रभावशाली नेतृत्व के कारक (Factors of Effective Leadership)

प्रभावी नेतृत्व के प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं—

1. आदर्श आचरण L. F. Urwik के अनुसार, "अधीनस्थों को सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु मार्गदर्शन प्रदान करता है एवं उन्हें अपना अनुसरण करने के लिए प्रेरित करता है। इस बीच नेता अनुयायियों द्वारा नेता कहना या लिखना प्रारम्भ नहीं करवाता है, अपितु वह क्या है, कौन से कार्य करता है, तथा किस प्रकार का आचरण करता है—के द्वारा नेता का निर्धारण

Scanned with CamScanner

होता है।'' अत: नेता में एक आदर्श व्यक्ति के सभी गुण विद्यमान होने चाहिए जिससे कि उससे अनुयायी उसके आचरण की प्रशंसा कर सकें। नेता ईमानदार, निस्वार्थी एवं परिश्रमी होना चाहिए।

2. नेतृत्व एक गतिशील प्रक्रिया है—किसी उपक्रम में नेतृत्व एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। व्यावसायिक प्रतिष्ठान की स्थापना से लेकर जब तक प्रतिष्ठान विद्यमान रहता है तब तक नेतृत्व की प्रक्रिया विद्यमान रहती है।

3. क्रियाशीलता—नेता एवं अनुयायियों के बीच क्रियाशीलता सम्बन्ध होना अति आवश्यक है। किसी भी कार्य को सम्पन्न करने के लिए सबसे पहले नेता को स्वयं कार्य करने के लिए आगे बढ़ना चाहिए तथा उसके बाद उसे अपने अनुयायियों का मार्ग दर्शन करना चाहिए।

4. हितों की एकता—प्रत्येक नेता को चाहिए कि वह अपने उद्देश्यों के अनुरूप ही अपने अधीनस्थों के उद्देश्यों अथवा हितों में एकता स्थापित करें। जार्ज आर० टेरी (George R. Terry) के अनुसार,''नेतृत्व पारस्परिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए लोगों की स्वेच्छा से प्रयत्न करने के लिए प्रभावित करने की प्रक्रिया है।

5. यथार्थवादी दृष्टिकोण—नेता को यथार्थवादी दृष्टिकोण रखना चाहिए अर्थात् उसे कभी भी आदर्शवाद की अपेक्षा में निराश नहीं होना चाहिए।

6. अनुयायियों का होना—नेतृत्व की सफलता उसके अनुयायियों की संख्या पर निर्भर करती है। जिस व्यक्ति के जितने अधिक अनुयायी होंगे, वह व्यक्ति उतना ही सफल नेता होगा। अत: नेतृत्व के लिए अनुयायियों का होना परम आवश्यक है।

7. सामान्य उद्देश्य या लक्ष्य—नेतृत्व के अन्तर्गत नेता अपने अनुयायियों को उपक्रम के सामान्य उद्देश्यों की जानकारी देता है, इन लक्ष्यों को स्पष्ट रूप में परिभाषित करता है और उन लक्ष्यों की प्राप्ति में आने वाली सम्भावित बाधाओं व समस्याओं को दूर करने का प्रयास करता है।

8. परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्तन—नेतृत्व परिस्थितियों के साथ परिवर्तनशील होना चाहिए। उसे निरंकुश न होकर जनतान्त्रिक विधि से कार्य करना चाहिए।

1.4. (d) प्रबन्धक एक नेता के रूप में

समूह भावना को प्रोत्साहन—निम्नलिखित दस ढंग से प्रबन्धक एक नेता के रूप में समूह (दल) भावना को प्रोत्साहित कर सकता है—

(i) मार्ग-दर्शक के रूप में—प्रबन्धक को अपने समूह के सदस्यों की मार्ग-दर्शक की भूमिका निभानी चाहिए। उसे सामूहिक रूप से निर्णय लेने चाहिए तथा समूह लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु समर्पित होना चाहिए। समूह सदस्यों के मनोभावों एवं दृष्टि के सम्प्रेषण हेतु सुदृढ़/प्रभावकारी सम्प्रेषण कौशल होना आवश्यक है। अत: प्रबन्धक में इन गुणों का होना आवश्यक है।

(ii) प्रत्येक समूह सदस्य को महत्व देना—प्रत्येक सदस्य को संगठन में अपनी महत्व को पहचानना चाहिये तथा प्रबन्धक को भी अपने सदस्यों की महत्ता को स्वीकार करना चाहिए। प्रबन्धक को विशिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु विशिष्ट कार्यों/दायित्वों को सौपा जाना चाहिए। प्रबन्धक को अपने कर्मचारियों को लक्ष्य की प्राप्ति हेतु कार्य-अधिकार प्रदान करना चाहिए एवं लक्ष्य प्राप्त करने पर कर्मचारी (समूह) के सदस्य को पुरस्कार प्रदान करना चाहिए।

(iii) समूह की समस्याओं का सभा में समाधान—समूह की जो भी समस्या हो उसको सभा में समस्त सदस्यों के सम्मुख प्रस्तुत कर उसके समाधान हेतु विचार/सुझाव आमन्त्रित करना चाहिए।

(iv) समूह आधारित लक्ष्य—प्रबन्धक को अपने समूह सदस्यों हेतु चुनौतीपूर्ण लक्ष्यों का निर्धारण करना चाहिए जिससे वे अपनी वास्तविक प्रतिभा को जान सकें।

(v) विमर्श एवं विचार-विनिमय की सुगमता—प्रबन्धक को एक ऐसे क्षेत्र का निर्माण/व्यवस्था करनी चाहिए जहाँ बैठकर समूह के सदस्य आपस में विचार-विमर्श कर सकें। विचारों का आदान-प्रदान कर सकें।

(vi) समूह भावना को प्रोत्साहन—प्रबन्धक को चाहिए कि वह समूह के सदस्यों के भीतर समूह भावना का विकास एवं वर्द्धन करें। उन्हें यह अनुभव कराया जाना चाहिए कि 'एकता में ही शक्ति है।' समूह में ही यह शक्ति है कि वह पूर्व-निर्धारित लक्ष्यों को सुगमता से प्राप्त कर सके। अकेले रहने, कार्य करने की भावना अनुचित है।

Scanned with CamScanner

(vii) समूह गत्यात्मकता का विकास—समूह के सदस्यों को यह अवसर प्रदान किया जाना चाहिए कि वे इस पर विचार-विमर्श कर सकें कि वे किस प्रकार और श्रेष्ठ ढंग से कार्य कर सकते हैं। विमर्श से कर्मचारियों में सकारात्मक भावना का संचार होता है।

(viii) प्रश्नों, सुझावों एवं टिप्पणियों का स्वागत—कर्मचारियों (समूह के सदस्यों) के प्रश्नों, सुझावों, टिप्पणी आदि के माध्यम से नवीन विचारों तथा उन्नति को प्राप्त किया जा सकता है।

(ix) प्रशिक्षण, मार्गदर्शन एवं परामर्श प्रदान करना—समूह के सदस्यों को पर्याप्त प्रशिक्षण, मार्गदर्शन एवं परामर्श प्रदान किया जाना चाहिए। उपरोक्त से कर्मचारियों (समूह के सदस्यों) की मनोभावना तथा निष्पादन में उन्नत स्तर को प्राप्त किया जा सकता है।

(x) समूह-कार्य को मान्यता एवं पुरस्कार—समूह के प्रयास, कार्यों को पहचानना, मान्यता प्रदान की जानी चाहिए तथा उनके श्रेष्ठ कार्यों हेतु उन्हें पुरस्कार भी प्रदान किया जाना चाहिए।

Scanned with CamScanner

26. संगठन के सिद्धान्तों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
27. एक संगठन बनाने की प्रक्रिया को क्रमबद्ध लिखिए।
28. एक अच्छे संगठन के लाभों का वर्णन कीजिए।
29. औद्योगिक प्रबन्धन में निम्न प्रकार के संगठनों पर टिप्पणी लिखिए—
    (i) रेखीय संगठन (Line Organization)
    (ii) क्रियात्मक संगठन (Functional Organization)
    (iii) रेखा तथा स्टाफ संगठन (Line & Staff Organization)
30. रेखा संगठन के गुण व दोष बताइये। इसके अनुप्रयोग भी बताइये।
31. क्रियात्मक संगठन से आपका क्या आशय है? इसके गुण-दोष भी बताइए।
32. कर्मचारी (Staff) एवं रेखा (Line) संगठन के गुण-दोष बताइए तथा इसके अनुप्रयोग भी बताइये।
33. समिति संगठन को समझाइये। इसके गुण व दोष भी बताइये।
34. एक व्यवसायिक संगठन के सर्वश्रेष्ठ स्वरूप का चयन करते समय कौन-कौन से बातें विचारणीय हैं? समझाइये।
35. "नेतृत्व" को परिभाषित कीजिए तथा इसके महत्त्व प्रकाश डालिए।
36. एक अच्छे नेतृत्व के गुण बताइये।
37. एक सफल नेतृत्व के कार्यों पर प्रकाश डालिए।
38. नेतृत्व कितने प्रकार का होता है? प्रत्येक का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
39. "संचार" को परिभाषित कीजिए। इसके महत्त्व को समझाइये।
40. उद्योग में संचार व्यवस्था के लिए आप किन-किन बातों पर विचार करेंगे?
41. संचार सम्प्रेषण प्रक्रिया के विभिन्न चरणों को समझाइये।
42. संचार की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिए।
43. औपचारिक तथा अनौपचारिक संचार को समझाइए।
44. संचार व्यवस्था में कौन-कौन सी बाधाएँ उत्पन्न हो सकती है? समझाइए। ***(U.P. 2007, 10)***
45. अधोमुखी, शीर्षामुखी, तथा क्षैतिज संचार में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
46. संचार के विभिन्न लक्षणों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
47. संचार व्यवस्था को प्रभावी बनाने और बाधाओं को दूर करने के उपाय बताइये।
48. प्रोत्साहन से आप क्या समझते हैं? समझाइये।
49. "प्रोत्साहन" को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक कौन-कौन से हैं? समझाइये। ***(U.P. 2008, 10)***
50. अभिप्रेरकों की क्या आवश्यकता है? अभिप्रेरकों के प्रमुख रूपों का उल्लेख कीजिए।
51. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—
    (i) आन्तरिक तथा बाह्य प्रेरणा, (ii) सकारात्मक तथा नकारात्मक प्रेरणा।
52. अच्छी प्रोत्साहन प्रणाली की आवश्यकताओं पर प्रकाश डालिए।
53. प्रोत्साहन के मूल तत्त्वों से आप क्या समझते हैं?
54. प्रलोभन (incentives) से आप क्या समझते हैं?
55. विभिन्न प्रकार की प्रेरणा अथवा प्रलोभन का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
56. वित्तीय तथा अवित्तीय प्रेरणाओं में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
57. व्यक्तिगत एवं सामूहिक प्रेरणाओं में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
58. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—
    (i) वेतन, (ii) पदोन्नति (iii) पारितोषिक।

Scanned with CamScanner

अध्याय-2

मानव संसाधन विकास

(Human Resource Development)

*** परिचय, मानव संसाधन विकास विभाग के कार्य, उद्देश्य, भर्ती, चयन की विधियाँ, प्रशिक्षण रणनीति, मानव संसाधन प्रबन्ध के उत्तरदायित्व, कार्य मूल्यांकन, योगदान अंकन।**

"We do not build automobiles, aeroplanes, refrigerators, radios, shoes, strings but men and the men-built products." —***'According to the Board Secretory of America'***

2.1 (a) परिचय (Introduction)

भारत में औद्योगिक सम्बन्धों को लेकर मालिक और नौकर के बीच अपवाद उत्पन्न होना, विरोधाभास होना, संघर्ष होना, जैसी परिस्थितियाँ सामान्यतया विभिन्न कारणों से उत्पन्न होती रही हैं। लगातार यह क्रम जारी रहा है, जिस कारण उद्योगों में कर्मचारियों की छंटनी, कामबंदी आदि कार्य होते हैं। किसी भी व्यापारिक संगठन में एक ही अवयव अनिवार्य रूप से पाया जाता है—मानव संसाधन। एक सफल उद्योग के लिये, मानव संसाधनों का विकास किया जाना अति आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण है। किसी भी राष्ट्र की प्रगति भौतिक संसाधनों अथवा पूँजी पर ही निर्भर नहीं करती बल्कि इसके मानव संसाधनों पर भी निर्भर करती है। यह केवल मानव ही है जो दूसरे स्रोतों से भी कार्य का निष्पादन करा सकता है। कोई भी मशीन कितनी ही ऑटोमेटिक क्यों न हो, उस मशीन को बनाने तथा चलाने वाले हाथ तो मानव के ही होंगे। ये मानव ही है जो किसी उद्योग को चलाने के लिये पूँजी की व्यवस्था करता है, प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग करता है, मशीनों का प्रयोग करता है और उत्पादन करता है। किसी व्यावसायिक उपक्रम की सफलता एवं उत्पादकता उसके मानवीय संसाधनों की श्रेष्ठता एवं कार्य कुशलता पर ही पूर्णतया आश्रित होती है। मानव प्रयासों में कमी आ जाने से उद्योग चौपट हो जाते हैं। इसलिए सफल उद्योग के लिये मानव संसाधन का विकास किया जाना अति आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। अमुक उद्योग में, जिस प्रकार मशीन, उपकरण, साज-सज्जा आदि जैसे संसाधनों के विकास की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार उनके आपरेशन के लिए मानव संसाधन विकास की भी आवश्यकता होती है। किसी भी देश का आर्थिक विकास प्रशिक्षित एवं विद्वान शिक्षाविदों, इंजीनियरों, डॉक्टरों, वैज्ञानिकों, अर्थशास्त्रियों, लेखाकारों, प्रबन्धकों, विधिवेत्ताओं आदि के विकास में निहित है। ये सभी मानव संसाधन के अभिन्न अंग होते हैं। यही कारण है आधुनिक औद्योगिक युग में प्रत्येक देश और व्यावसायिक संस्थायें अपने मानव संसाधनों को शिक्षित एवं प्रशिक्षित करके उसके विकास पर जोर दे रहे हैं। तीव्र आर्थिक विकास के लिए मानव संसाधनों का गहन अध्ययन किया जाता है। उन्हें किस प्रकार के शिक्षण/प्रशिक्षण की आवश्यकता है तथा किस कार्य के लिये कौन कर्मचारी उपयुक्त है, उसकी कार्य कुशलता को किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है तथा उसके लिए किस प्रकार की कार्य दशाएँ हों, जिससे वह अपना सर्वोत्तम कार्य निष्पादन कर सकें, यही मानव संसाधन विकास (Human Resource Development) कहलाता है। प्रो० फ्रैड्रिक (Prof. Fredric) के अनुसार, "राष्ट्र की सम्पत्ति का मूल आधार मानव संसाधन है जबकि पूँजी अथवा भौतिक साधन तो उत्पादन के मात्र निष्क्रिय साधन हैं।"

Scanned with CamScanner

मानव संसाधन का भावार्थ (Meaning of Human Resource Development or HRD)

मानव संसाधन विकास अपने आप में एक सम्पूर्ण भावार्थ है जिसका अर्थ यह प्रदर्शित करता है कि मानव संसाधनों को विभिन्न प्रयोजनों के लिए ज्ञान, विज्ञान, कौशल और मनुष्य के रुख, रवैये या अभिवृत्ति के सन्दर्भ में किस प्रकार विकसित किया जाये जिससे मानव संसाधन वांछित लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक बन सके। यह अनुभव किया गया है कि मनुष्य में ज्ञान, विज्ञान और कौशल का विकास तो आवश्यक प्रशिक्षण देकर पूर्ण किया जा सकता है परन्तु उसके रुख, रवैये या अभिवृत्ति में सुधार तथा परिवर्तन लाना सरल नहीं है और यह कार्य प्रशिक्षण सैमिनार आयोजित करने से पूरा नहीं होता। मनुष्य की अभिवृत्ति को महसूस करके समझा जा सकता है, इसे जीवन में उतारकर और विचारों के आदान-प्रदान द्वारा विकसित किया जा सकता है। औद्योगिक सम्बन्धों के परिपेक्ष में मनुष्य की अभिवृत्ति महत्वपूर्ण रोल अदा करती है। यदि प्रशिक्षण, मानव संसाधन विकास की अंतर्आत्मा है तो मनुष्य का उसके कार्य और जीवन के प्रति, सकारात्मक औद्योगिक सम्बन्धों की अंतर्आत्मा है। मानव संसाधन विकास के अनेक पहलू हैं। इसके कुछ पहलू औद्योगिक सम्बन्धों से तो कुछ मानव संसाधन विकास (Personnel management) से जुड़े हैं। मानव संसाधन विकास ऐसी व्यापक गतिविधियों को संचालित करता है जो कि नियुक्त किये गये कार्मिकों से जुड़ी होती हैं। परन्तु औद्योगिक सम्बन्धों (IR) का संचालन कार्मिकों की कार्य परिस्थितियों से जुड़ा होता है। इस प्रकार HRD व्यापक अर्थों में विशिष्ट श्रेणी का विशेषज्ञता प्राप्त कार्य है।

मानव संसाधन का महत्व (Importance of Human Resource)

किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिए उसके मानव संसाधनों का विकास आवश्यक है। मानव ही औद्योगिक विकास की सोच रखता है, उसके लिए पूँजी की व्यवस्था करता है। प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करता है, औद्योगिक संगठन बनाता और विकास करता है और आर्थिक विकास में अपना योगदान देता है। मानव संसाधन का विकास उसकी कार्य कुशलता एवं योग्यता के विकास में ही निहित हैं। मानवीय साधनों से अभिप्राय उत्पादन के मानवीय संसाधनों अर्थात् श्रम की कार्यकुशलता तथा योग्यता से है, मानवीय संसाधनों में किया गया निवेश ही मानवीय पूँजी कहलाता है। आर्थिक विकास की क्रिया में मानवीय संसाधनों का बहुत अधिक महत्व है। पीटर एफ० ड्रकर (Peter F. Drucker) के अनुसार, "व्यावसायिक संगठन में जिन साधनों का विस्तार किया जा सकता है, वे केवल मानवीय साधन ही है। अन्य साधन या तो और अच्छी तरह से उपयोग किये जा सकते हैं या इससे बुरी तरह इस्तेमाल किये जा सकते हैं लेकिन उनसे उत्पादन उतने से अधिक नहीं हो सकता जितना उनमें विनियोग किया गया है।

उपलब्ध भौतिक साधनों में से केवल मनुष्य ही ऐसा है जिसका विकास विस्तार किया जा सकता है। मानवीय संसाधनों के सहयोग के बिना उत्पादन के अन्य सभी साधन केवल साधन रह जाते हैं, उत्पादन नहीं बन पाते। मानवीय संसाधनों का महत्व बताते हुए एक अमेरिकी निगम के अध्यक्ष ने कहा है, "हम वायुयान, फ्रिज, ओटोमोबाइल्स, मशीनें, रेडियो, जूते एवं अन्य उत्पादों का निर्माण नहीं करते, बल्कि हम मानव (प्रशिक्षित मानव) एवं मानव निर्मित उत्पादों का निर्माण करते हैं। किसी राष्ट्र के आर्थिक विकास की दर अन्तिम रूप में उसके भौतिक साधनों अथवा पूँजी पर निर्भर नहीं करती बल्कि उसके मानवीय साधनों पर निर्भर करती है।

प्रो० फ्रेड्रिक हर्बिसन (Prof. Fredrick Herbison) के अनुसार, "राष्ट्रों के धन का अन्तिम आधार मानवीय संसाधन है, पूँजी तथा प्राकृतिक साधन उत्पादन के निष्क्रिय साधन हैं इसके विपरीत मानवीय संसाधन सक्रिय है। आर्थिक विकास की क्रिया में मानवीय संसाधन पूँजी को जुटाते हैं, प्राकृतिक साधनों का विदोहन करते हैं, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक संगठनों का निर्माण करते हैं, व्यापार प्रणाली को बढ़ावा देते हैं।"

मानव संसाधन का विकास, उसकी कार्य कुशलता एवं योग्यता के विकास में ही निहित है। किसी औद्योगिक संगठन की पहचान एवं साख, संगठन के प्रत्येक स्तर पर कार्यरत कर्मचारी की योग्यता एवं कार्य कुशलता पर निर्भर करती है। अत: विभिन्न औद्योगिक संगठनों के अपने मानव संसाधनों के विकास के लिए एक अलग विभाग "कार्मिक प्रबन्धन" बनाया है। यह विभाग कर्मचारियों की भर्ती से लेकर शिक्षण/प्रशिक्षण आदि की योजना बनाता है, संगठित करता है तथा नियन्त्रण करने का कार्य करता है। यह अपने कर्मचारियों के विकास का भी ध्यान रखता है।

Scanned with CamScanner

मानव संसाधन के विकास के विभिन्न स्वरूप
(Different forms of Development of Human Resource)

मानवीय संसाधन विकास अथवा मानवीय पूँजी निर्माण के अनेक रूप हैं, जिनमें प्रमुख हैं—

1. शिक्षा एवं प्रशिक्षण (Education and Training)—मानवीय संसाधनों के विकास के लिए शिक्षा एवं प्रशिक्षण का बहुत महत्व है। प्रशिक्षित श्रमिक एवं कर्मचारी ही राष्ट्र के आर्थिक विकास के लिए आधारशिला प्रदान करते हैं। शिक्षा एवं प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य देश के प्राकृतिक एवं मानवीय साधनों तथा उनकी क्षमता व शक्तियों का समुचित प्रयोग करना है। मानवीय साधनों का सही प्रयोग करके तथा उनकी क्षमताओं का विस्तार करने के लिए शिक्षण एवं प्रशिक्षण बहुत आवश्यक है, अत: प्रत्येक कार्य एवं संस्थान में प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए। प्रशिक्षण केवल नये कर्मचारियों एवं श्रमिकों के लिए ही आवश्यक नहीं है बल्कि पुराने कर्मचारियों एवं श्रमिकों को भी प्रशिक्षण दिया जाना आवश्यक है। शिक्षित तथा प्रशिक्षित कर्मचारी ही किसी औद्योगिक संगठन के विकास में अहम् भूमिका निभाते हैं। अत: यह आवश्यक है संगठन का प्रत्येक कर्मचारी शिक्षित/प्रशिक्षित हो तभी वह संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति में अपना योगदान कर पायेगा। शिक्षण एवं प्रशिक्षण के प्रसार का प्रमुख उद्देश्य राष्ट्र के उपलब्ध प्राकृतिक व मानवीय संसाधनों को विकसित करके उनका सदुपयोग करना होता है। शिक्षा से मनुष्य का ज्ञान बढ़ता है जिससे उसके आत्मविश्वास में वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त मनुष्य का व्यक्तित्व भी निखरता है। प्रशिक्षण द्वारा मनुष्य की कार्य कुशलता बढ़ती है जिससे उसके कार्य-निष्पादन में सुधार होता है। कार्य करने में समय-समय आने वाली विभिन्न कठिनाईयों को समझने तथा उनका समाधान करने की योग्यता आती है। शिक्षित एवं प्रशिक्षित कर्मचारी अपनी टीम का कुशलतापूर्वक नेतृत्व कर सकता है। कार्यक्षमता में वृद्धि कर सकता है तथा उत्पादकता में बढ़ावा दे सकता है। इसके ठीक विपरीत अशिक्षित व अकुशल कर्मचारी अपनी अज्ञानता के कारण सदैव अपने तथा अपने साथियों के लिए सदैव कोई न कोई समस्या खड़ी कर देता है। कभी-कभी तो इस अज्ञानता के कारण दुर्घटना भी हो जाती है जिसमें जानमाल का भारी नुकसान होता है। इसलिए आवश्यक है कि संगठन का प्रत्येक कर्मचारी शिक्षित एवं प्रशिक्षित हो।

भारत में शिक्षा के विकास का दायित्व राज्य-सरकारों को सौंपा गया है। राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखकर केन्द्रीय सरकार द्वारा समय-समय पर अनेक कदम उठाये गये हैं। शिक्षा का व्यवसायीकरण करने के लिए प्रयत्न किये जा रहे हैं। नई शिक्षा नीति में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात देश में तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने वाली शिक्षण संस्थाओं की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई है। शिक्षण एवं प्रशिक्षण के विकास के लिए समय-समय पर अनेक शिक्षण-संस्थाओं एवं अनुसन्धान प्रयोगशालाओं की स्थापना की गई हैं। इनमें अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् (All India Council for Technical Education) जिसकी स्थापना 1946 में हुई, राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् (National Productivity Council) जिसकी स्थापना 1958 में हुई, राष्ट्रीय बेसिक शिक्षा संस्थान (National Basic Education Institute) जिसकी स्थापना 1956 में हुई, आर्थिक-वृद्धि संस्थान (Institute F. Economic Growth), भारतीय सांख्यिकी संस्थान (Indian Statistical Institute), भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान (Indian Council for Agricultural Research), टाटा सामाजिक विज्ञान संस्थान (Tata Institute of Social Science), भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (Indian Institute of Technology) आदि प्रमुख हैं। प्रबन्धकीय क्षमता विकसित करने के लिए अखिल भारतीय प्रबन्ध परिषद् (All India Management Association) की स्थापना की गई। इसके अन्तर्गत स्थानीय एवं क्षेत्रीय अनेक प्रबन्ध परिषदें कार्यरत हैं। कोलकाता, अहमदाबाद, पुणे, इंदौर, लखनऊ आदि में भारतीय प्रबन्ध संस्थानों (Indian Institute of Management) की स्थापना की गई है।

औद्योगिकरण के विस्तार के लिए मानवीय संसाधनों को प्रशिक्षित करने के लिए केन्द्रीय सरकार ने निम्नलिखित संगठनों की स्थापना की है, जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं—

केन्द्रीय लघु उद्योग संगठन (Central Small Industry Organization) इसकी स्थापना उद्योग एवं वाणिज्य मंत्रालय के अन्तर्गत 1955 में की गई। इसका विस्तार करते हुए लघु उद्योग विस्तार प्रशिक्षण संस्थान (Small Industry Extension training Institute) की स्थापना वाणिज्य मन्त्रालय के अन्तर्गत 1962 में हैदराबाद में की गई। इसके बाद पिलानी, खड़गपुर, मुम्बई, दिल्ली, कोयम्बटूर आदि में भी औद्योगिक प्रशिक्षण के लिए संस्थानों की स्थापना की गई है।

Scanned with CamScanner

II. स्वास्थ्य (Health)—मानव संसाधनों की क्षमताओं को विकसित करने वाले विभिन्न पहलुओं में से एक महत्वपूर्ण पहलू "स्वास्थ्य" है। कहा भी जाता है कि "स्वस्थ दिमाग, स्वस्थ शरीर में ही वास करता है।" अर्थात् अगर कर्मचारी स्वस्थ नहीं होगा तो न वह अच्छा सोच पाता है और न ही अच्छा कर पाता है। उसका स्वभाव भी चिड़चिड़ा हो जाता है और कहीं-न-कहीं, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वह संगठन को हानि पहुँचाने लगता है। हमारे देश में स्वास्थ्य सेवाओं का स्तर बहुत निम्न है जिसका प्रतिकूल प्रभाव हमारे मानव संसाधनों पर पड़ रहा है। अच्छे स्वास्थ्य व बेहतर चिकित्सा सुविधाओं के अभाव में मानव संसाधन की कार्य क्षमताओं में ह्रास होता है। भारत में निम्न स्वास्थ्य स्तर के प्रमुख कारण हैं—

(i) उच्च जन्म दर तथा अधिक जनसंख्या निम्न स्वास्थ्य दर का मूल कारण है।

(ii) पर्यावरण प्रदूषण, बिगड़ता हुआ प्राकृतिक सन्तुलन, बिगड़ती हुई मानव दिनचर्या, दूषित फल-सब्जियाँ भी इसका कारण हैं।

(iii) प्रदूषित वातावरण, दूषित पेयजल, दूषित हवा भी इसका कारण हैं।

(iv) अपर्याप्त चिकित्सा सुविधायें, स्त्रियों का बार-बार गर्भ धारण करना, खान-पान में लापरवाही बरतना, आवश्यक टीकाकरण न कराना भी निम्न स्वास्थ्य स्तर का एक कारण है। परन्तु लापरवाही और अज्ञानता के चलते लोग इन सुविधाओं का लाभ भी नहीं उठाते हैं।

शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं को बेहतर बनाने के लिये अनेक कार्यक्रम बनाये हैं जिनका उद्देश्य देश में फैलने वाले रोगों की रोकथाम, उन्मूलन तथा स्वास्थ्य के स्तर को सुधारना होता है। परन्तु यदि लोग इन स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ नहीं उठायेंगे तो उनका स्वास्थ्य निम्न स्तर का बना रहेगा।

III. पोषण (Nutrition)—भारत में समय-समय पर किये गये सर्वेक्षणों से यह ज्ञात हुआ है कि भारत में 70% व्यक्ति कुपोषण का शिकार है। सन्तुलित आहार का मानवीय संसाधनों की कार्यक्षमता पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इन साधनों की उत्पादकता में कमी का मुख्य कारण पौष्टिक भोजन की कमी होना है। भारत में उपलब्ध होने वाले सामान्य भोजन में पौष्टिक पदार्थों जैसे—प्रोटीन, खनिज, विटामिन आदि का अभाव पाया जाता है। पौष्टिक पदार्थों को बढ़ाना भारत के आर्थिक विकास पर निर्भर है। विभिन्न राज्यों में स्त्रियों, विद्यार्थियों, औद्योगिक मजदूरों को पौष्टिक खाद्य पदार्थ दिलाने के सम्बन्ध में विभिन्न राज्यों में पोषण विकास खण्डों की स्थापना की गई है। इसके प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं—

(i) पोषण से सम्बन्धित शिक्षा के कार्यक्रम का प्रचार और विस्तार करना।

(ii) जनसंख्या के विभिन्न वर्गों में पौष्टिकता के अभाव को जानना।

(iii) पोषण कार्यक्रमों की देखभाल करना।

IV. जल आपूर्ति एवं स्वच्छता (Water Suppy and Sanitation)—मानव संसाधन का एक महत्वपूर्ण पहलू जल आपूर्ति एवं स्वच्छता की व्यवस्था करना है। भारत में 1954 में राष्ट्रीय जल आपूर्ति तथा सफाई कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया था। इस कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए स्वास्थ्य विशेषज्ञों को प्रशिक्षण दिया जाता है, विश्व बैंक की सहायता से भी इस कार्यक्रम को सफल बनाया जा रहा है। बहुत सी बीमारियाँ स्वच्छ जल एवं स्वच्छता का अभाव होने के कारण होती है। प्रत्येक शहर अथवा गाँव में पीने का पानी और स्वच्छता की समुचित व्यवस्था सुनिश्चित करने के लिए भारत सरकार ने राज्य सरकारों के साथ मिलकर अनेक कार्यक्रम चलाये हैं। राज्यों को भी अपनी-अपनी योजनायें बनाने तथा उन्हें क्रियान्वित करने में परामर्श देने के लिए केन्द्रीय लोक स्वास्थ्य इंजीनियरिंग संगठन की स्थापना की गई हैं। हमारी सरकार अधिक से अधिक गाँवों में जल-आपूर्ति की व्यवस्था के लिए प्रयत्नशील है।

मानवीय संसाधनों के विकास की समस्यायें व बाधाएँ
(Problems in Human Resources Development)

मानव संसाधनों के विकास में आने वाली मुख्य समस्यायें निम्नलिखित हैं—

(i) निजी क्षेत्र की उदासीनता (Indifference of Private Sector)—निजी क्षेत्र मानव संसाधनों के विकास में कोई खास रुचि नहीं रखते हैं और यह मानते हैं कि यह कार्य सरकार का है। यही संकीर्ण विचारधारा उन्हें उदासीन बना देती है। वास्तव में यह कार्य इतने बड़े स्तर का है कि कोई भी सरकार अकेले यह कार्य नहीं कर सकती है। अत: निजी क्षेत्र को भी मानवीय संसाधन के विकास में अपना पूर्ण योगदान करना चाहिए। राष्ट्र को अच्छे मानव संसाधन तैयार करने में मदद करनी चाहिए।

Scanned with CamScanner

(ii) अपर्याप्त वित्त (Insufficient funds)—मानवीय संसाधनों की क्षमता का विस्तार करने के लिए उचित धन की व्यवस्था नहीं की जाती, जिसके परिणामस्वरूप देश में अब तक भी अनेक कुरीतियाँ जैसे—अज्ञानता, बेकारी, दुर्बलता आदि में विशेष कमी नहीं हो सकी है। धन की कमी के चलते मानव संसाधनों का वांछित विकास नहीं हो पाता है। जब देश आर्थिक रूप से समृद्ध होगा तभी मानव संसाधनों का विकास सम्भव हो पायेगा।

(iii) जनसंख्या में वृद्धि (Growth in Population)—भारत की जनसंख्या में हो रही अत्यधिक वृद्धि ने मानव संसाधनों के विकास में बहुत बड़ी बाधा खड़ी कर दी है। इस वृद्धि ने सरकार द्वारा मानव संसाधनों के विकास के लिए किये जा रहे सभी प्रयासों को निरर्थक साबित कर दिया है।

(iv) प्रतिभा पलायन (Brain Drain)—देश में पर्याप्त सुविधाओं का अभाव धन की कमी, जातिगत भेदभाव, भ्रष्ट राजनीति तथा अनेक अन्य कारणों के चलते देश के योग्य, प्रशिक्षित एवं विलक्षण प्रतिभाओं को उचित अवसर नहीं मिल जाता है। अधिकतर योग्य एवं प्रशिक्षित व्यक्ति उन्नति की सम्भावनाओं को देखते हुए विदेश चले जाते हें। देश इन व्यक्तियों के प्रशिक्षण पर जो धन व्यय करता है, उसका लाभ दूसरे देश उठाते हैं। स्वयं के देश के आर्थिक विकास में इनका कोई योगदान नहीं होता। देश के डॉक्टरों, इंजीनियरों, वैज्ञानिकों आदि प्रतिभाओं को तैयार करने में जो धन हमारे देश ने उन पर खर्च किया है, उसका लाभ दूसरे देशों को मिलता है। यह बड़ी विडम्बना है और इस देश का दुर्भाग्य है। देश में ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्तियों को उन्नति के भरपूर मौके मिलने चाहिए जिससे कि वह देश में रहकर देश की सेवा कर सकें।

(v) रोजगार परामर्श सेवाओं का अभाव (Lack of Employment Guidance Services)—आज हमारे देश का युवा वर्ग प्राय: भ्रमित रहता है। उसको अपने कैरियर के विषय में सही जानकारी नहीं होती है। रोजगार की समस्याओं के चलते यह स्थिति और विकट हो गयी है। इसलिए आवश्यक है कि छात्र/छात्राओं को उनके कैरियर से सम्बन्धित आवश्यक दिशा निर्देश तथा सलाह उपलब्ध करायी जाये। इसके लिए रोजगार परामर्श सेवाओं की सहायता ली जा सकती है, परन्तु हमारे देश में यह सेवाएँ बड़े शहरों तक ही सीमित हैं। इन सेवाओं के अभाव में नवयुवकों को उचित दिशा निर्देश नहीं मिल पाता और वे प्रगति के अवसरों से वंचित रह जाते हैं।

(vi) क्षेत्रीय विषमतायें (Regional Imbalances)—मानवीय संसाधनों के विकास की अनेक सुविधायें देश के विभिन्न क्षेत्रों में असन्तुलित रूप से वितरित हैं। ग्रामीण क्षेत्रों की स्थिति शिक्षा, स्वास्थ्य, जल-आपूर्ति तथा सफाई के सम्बन्ध में शहरों की तुलना में बहुत खराब है। हमारे देश के अनेक भाग पिछड़े और अति-पिछड़े हुए हैं। इसी प्रकार शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में मानव की मूलभूत सुविधाओं में भारी अन्तर है। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा, जल, आदि सुविधाओं के अभाव के कारण देश में मानव संसाधनों का पर्यात विकास नहीं हो पा रहा है।

(vii) मानव शक्ति या जनशक्ति नियोजन का अभाव (Lack of Manpower Planning)—मानव शक्ति नियोजन मानव संसाधन के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु महत्वपूर्ण कदम है। जब किसी नई कम्पनी के अपना उपक्रम की स्थापना होती है तो प्रबन्ध के विभिन्न क्षेत्रों जैसे—पदार्थ, उत्पादन, वित्त, मार्केटिंग तथा कार्मिक आदि की आवश्यकताओं को संकलित कर लिया जाता है। उन आवश्यकताओं का विश्लेषण करके कार्मिक का स्तर, उनकी संख्या, योग्यता, कुशलता तथा अनुभव क्या हो, यह तय कर लिया जाता है। एक सुचारु रूप से तैयार की गई जनशक्ति योजना में न्यूनतम आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए योजना तैयार की जाती है। ऐसी योजनाओं में औद्योगिक सम्बन्धों में हो सकने वाले विवादों, सेवा शर्तों, कल्याण सुविधाओं में आने वाली समस्याओं आदि से निपटने की पर्याप्त गुजाइंश होती है। दुर्भाग्यवश हमारे देश में मानव शक्ति का नियोजन प्राय: ठीक प्रकार से नहीं किया जाता है जिससे श्रमिकों की उत्पादकता लगातार घट रही है। देश में बढ़ती हुई बेरोजगारी तथा प्राकृतिक संसाधनों का गैर-नियोजित तथा अन्धाधुन्ध दुरुपयोग भी इसी कारण है। इन समस्याओं के निराकरण के लिए आवश्यक है कि मानव शक्ति का नियोजन भली-भाँति किया जाये।

2.1 (b) मानव संसाधन विकास के लक्ष्य अथवा उद्देश्य (Aims or Objectives of Personnel Management)

सेविवर्गीय प्रबन्ध के उद्देश्यों व लक्ष्यों को दो वर्गों में बाँटा गया है—सामान्य (General) उद्देश्य और विशिष्ट (Specific) उद्देश्य।

Scanned with CamScanner

1. सामान्य उद्देश्य (General Aims)—एल० पी० अलफोर्ड और एच० आर० बीटी के अनुसार, सेविवर्गीय प्रबन्ध के दो सामान्य उद्देश्य हैं—श्रेष्ठ कर्मचारी नीतिमत्ता प्राप्त करके सेवाओं में सुधार करना और दूसरे सबके मस्तिष्क में यह विचार भर देना कि औद्योगिक उपक्रम सर्वोत्तम सेवा कर रहा है। संक्षेप में सेविवर्गीय प्रबन्ध के सामान्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(a) संगठन के सभी सदस्यों में क्रियाशील सम्बन्धों का विकास।
(b) प्रत्येक कर्मचारी की सेवाओं का अधिकतम उपयोग।
(c) मानव साधनों का विकास और उपलब्ध साधनों का उपयोग।

2. विशिष्ट उद्देश्य (Specific Aims)—उपरोक्त सामान्य उद्देश्यों के अतिरिक्त सेविवर्गीय प्रबन्ध के कुछ विशिष्ट उद्देश्य भी हैं जिसमें मुख्य निम्नलिखित हैं—

(a) सेविवर्गीय प्रबन्ध को और भी अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए इनमें सदैव नये-नये अनुसंधान को प्रोत्साहित किया जाता है।
(b) कर्मचारियों में लगन और प्रेरणा बढ़ाना।
(c) कर्मचारियों को विभिन्न प्रकार की सवैतनिक आर्थिक सुविधायें प्रदान करना जिससे उनमें प्रेरणा और नीतिमत्ता बनी रहे। इन सुविधाओं में चिकित्सा और स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधायें, प्रोवीडेन्ट फण्ड, ग्रेच्युटी, सवेतन अवकाश, शिक्षा प्रशिक्षण, और मनोरंजन आदि की सुविधायें तथा समाज कल्याण और श्रम कल्याण की सुविधायें, सेवानिवृत्त होने पर प्रतिफल दिलाने की व्यवस्था इत्यादि सम्मिलित हैं।
(d) चुने हुए कर्मचारियों का उचित प्रशिक्षण और निर्देशन।
(e) सेविवर्गीय प्रबन्ध द्वारा संघों और कर्मचारियों तथा प्रबन्धकों में परस्पर सहयोग और विश्वास उत्पन्न करने का प्रयास किया जाता है।
(f) औद्योगिक संस्थाओं को चलाने के लिए कर्मचारियों का चुनाव।
(g) सेविवर्गीय प्रबन्धक का एक विशिष्ट उद्देश्य उपक्रम के विभिन्न पदाधिकारियों और कर्मचारियों से सम्बन्धित समस्याओं को सुलझाना है, जैसे—पदोन्नति, पदच्युति, स्थानान्तरण, मुआवजा, बोनस इत्यादि की समस्यायें।
(h) कर्मचारियों को उचित पारिश्रमिक दिलाने के लिए सुदृढ़ प्रशासन। सेविवर्गीय प्रबन्ध के सामान्य और विशिष्ट उद्देश्यों के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इससे कर्मचारियों, प्रबन्धकों और सेवायोजकों, संक्षेप में औद्योगिक उपक्रम के सभी अंगों में अधिकतम सहयोग और विश्वास उत्पन्न करके उनकी योग्यता और कुशलता से अधिकतम लाभ उठाने का प्रयास किया जाता है, जिससे अन्त में उद्योग के सभी अंगों का कल्याण साधन होता है।

2.1 (c) मानव संसाधन विकास के कार्य
(Functions of Human Resource Development Management)

मानव संसाधन विकास का कार्य विषय "मानव" है। मानवीय क्रियाओं पर नियन्त्रण करके उद्योग में अधिक लाभ अर्जित किया जा सकता है। इसी सच्चाई को स्वीकार करते हुए एक अमेरिकी उद्योगपति का विचार है कि—"हम ऑटोमोबाइल, हवाई जहाज, रेफ्रिजेरेटर, रेडियो अथवा जूते नहीं बनाते हैं बल्कि हम व्यक्तियों का विनिर्माण/उत्पादन करते हैं तथा बदले में वे सामान का उत्पादन करते हैं।"

मानव संसाधन विकास का कार्य, सेवाओं अथवा उत्पाद का लाभदायक उत्पादन प्राप्त करने के लिए प्रभावी कार्य बल तैयार करना तथा उसे बनाये रखना है। इसके अन्तर्गत कर्मचारी का नियोजन, चयन अथवा भर्ती जैसी गतिविधियाँ की जाती हैं तथा उनकी क्षमताओं, योग्यताओं तथा कार्य कुशलताओं का परीक्षण किया जाता है तथा आवश्यकतानुसार शिक्षण/प्रशिक्षण भी दिया जाता है।

Scanned with CamScanner

कर्मचारी अपने कार्य से सन्तुष्ट हो तथा वह मन-मस्तिष्क लगाकर काम करे, इसके लिए उसका वेतन, कार्य-घण्टे, कार्य परिस्थितियों, कर्मचारी के लाभ, स्वास्थ्य एवं सुरक्षा तथा कर्मचारियों के आपसी सम्बन्ध आदि का प्रबन्धन भी मानव संसाधन विकास का ही एक अंग है। इस प्रकार मानव संसाधन विकास अथवा मानव संसाधन प्रबन्धन एक प्रबन्धन प्रक्रिया है जो सलाहकार, कार्यपालक तथा प्रशासन की जिम्मेदारी निभाती है। इसके प्रमुख कार्य निम्न हैं—

(i) मानव शक्ति का नियोजन। संगठन के लक्ष्य तथा उद्देश्यों की पूर्ति हेतु मानव संसाधनों की आवश्यकताओं का आकलन करना।

(ii) मानव शक्ति का प्रशिक्षण एवं विकास।

(iii) वेतन तथा मजदूरी/भत्तों का प्रबन्धन।

(iv) श्रमिक संघों के साथ सामूहिक सौदेबाजी में भाग लेना।

(v) सभी कार्मिकों का रिकार्ड रखना।

(vi) कार्मिक नीतियों का निर्धारण करना। इन नीतियों की मदद से कार्यपालक अथवा प्रबन्धक, कार्मिक प्रशासन से जुड़ी जिम्मेदारियों एवं कर्त्तव्यों को निभाते हैं।

(vii) कार्य का विश्लेषण करना, विवरण तैयार करना तथा आगणन करना।

(viii) प्रोन्नति, स्थानान्तरण तथा सेवानिवृत्ति जैसे मामलों को तय करना।

(ix) कर्मचारियों द्वारा किये गये कार्य के लिए उचित पारिश्रमिक तथा पारितोषिक आदि का निर्धारण करना तथा कर्मचारी को उसके द्वारा किये गये कार्यों में त्रुटियों अथवा कमियों के बारे में बताना तथा उनका निवारण करना।

(x) कर्मचारियों के विवादों का हल निकालकर आपसी सौहार्द कायम करना।

(xi) कल्याण तथा सुरक्षा के उपायों को खोजना तथा उसके अनुरूप कार्यक्रम बनाना।

(xii) मानव शक्ति का चयन अथवा भर्ती। उपयुक्त कर्मचारी को आकर्षित करना, चयन करना तथा नियोजन करना मानव संसाधन विकास का ही कार्य है।

2.1 (d) मानव संसाधन विकास का क्षेत्र (Scope of Human Resource)

सेविवर्गीय प्रबन्ध का कार्यक्षेत्र काफी व्यापक है, जिसमें कर्मचारियों से सम्बन्धित सभी विषयों, समस्याओं को सम्मिलित किया जाता है। प्रारम्भ में व्यावसायिक इकाइयों का क्षेत्र सीमित होने के कारण सेविवर्गीय प्रबन्ध का क्षेत्र भी सीमित था, लेकिन बढ़ती हुई व्यावसायिक जटिलताओं एवं मानवीय समस्याओं के कारण सेविवर्गीय प्रबन्ध का विकास काफी तीव्र गति से हुआ है। आज तो प्रबन्ध के सभी क्षेत्रों पर (उच्च, मध्यम एवं निम्न स्तर पर) कर्मचारी नीतियों एवं कार्यक्रमों के निर्धारण एवं नियोजन को व्यापक महत्व प्रदान किया जाता है। अब तो यहाँ तक माना जाने लगा है कि प्रबन्ध से आशय वास्तव में सेविवर्गीय प्रबन्ध से ही है।

इस प्रकार अमेरिकी मैनेजमैंट इन्जीनियर्स एसोसियेशन ने सेविवर्गीय प्रबन्ध के क्षेत्र में निम्न बातें सम्मिलित की हैं—

(i) सेविवर्गीय प्रशासन क्षेत्र—इसमें सेविवर्गीय नीतियों एवं कार्यक्रमों का विकास तथा उनका प्रशासन करना सम्मिलित किया जाता है ताकि संगठन का ढाँचा प्रभावी बन सके, कार्यकर्त्ता कुशल हो सकें तथा उन्हें पर्याप्त प्रगति के अवसर प्राप्त हो सकें।

(ii) सेविवर्गीय कार्य एवं उपकार्य—इसमें कर्मचारी नियोजन, संगठन तथा निर्देशन सम्मिलित किया जाता है। विस्तृत अर्थ में इसमें निम्नांकित कार्य सम्मिलित किये जाते हैं—

I. सेवायोजन—इसमें निम्नलिखित बातें सम्मिलित की जाती हैं—

A. भर्ती,

B. चयन,

Scanned with CamScanner

C. प्रारम्भिक प्रशिक्षण,

D. पदोन्नति तथा स्थानान्तरण,

E. वर्गीकरण।

II. वेतन एवं मजदूरी प्रशासन—यह सेविवर्गीय प्रबन्ध का एक प्रमुख कार्यक्षेत्र है, जिसमें कर्मचारियों को उचित पारिश्रमिक देने तथा संगठन के हित में उनका अधिकतम सहयोग प्राप्त करने से सम्बन्धित विषय सम्मिलित किये जाते हैं। अन्य शब्दों में, इससे कर्मचारियों में सन्तुष्टि बनी रहती है, कार्यक्षमता में वृद्धि होती है तथा संगठन के हित में उनका अधिकतम उपयोग करना सम्भव होता है।

वेतन एवं मजदूरी प्रशासन के लिए निम्न विधियाँ काम में ली जाती हैं—

A. कर्मचारी वर्गीकरण,

B. दर निर्धारण,

C. योग्यता अंकन,

D. अतिरिक्त क्षतिपूर्ति (जैसे—बोनस तथा अन्य प्रेरणात्मक योजनायें)

E. कार्य-सूची नियन्त्रण,

F. औद्योगिक सम्बन्ध।

अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध बनाये रखने के लिए प्रबन्धक निम्न उपाय अपनाता है—

A. प्रभावी सम्प्रेषण की व्यवस्था करना,

B. सामूहिक सौदेबाजी,

C. सेविवर्गीय अनुशासन,

D. सेविवर्गीय शोध—(सेविवर्गीय आयोजन एवं विकास) जन-शक्ति विकास, प्रशिक्षण आदि।

III. कर्मचारी सेवायें—इसमें श्रम-कल्याण से सम्बन्धित कार्य सम्मिलित किये जाते हैं जैसे—

A. चिकित्सा सेवायें,

B. मनोरंजन सेवायें,

C. व्यक्तिगत सेवायें,

D. सुरक्षा एवं प्रतिरक्षा सेवायें।

स्ट्रार एवं सेयल्स (Strar & Seyals) ने अपनी पुस्तक "Personnel : The Human Problems of Management" में सेविवर्गीय प्रबन्ध के क्षेत्र में निम्न बातें स्पष्ट की हैं—

(i) कर्मचारियों की भर्ती, चयन एवं उपयुक्त स्थान पर नियुक्ति।

(ii) कार्य-विश्लेषण, कार्य वर्णन एवं कार्य मूल्यांकन।

(iii) मूल्यांकन योजनायें।

(iv) सेविवर्गीय लेखे।

(v) सेविवर्गीय कल्याणकारी कार्यक्रम।

(vi) विशिष्ट सेवायें, जैसे—सुरक्षा, निरीक्षण, नियन्त्रण आदि।

(vii) प्रशिक्षण एवं शिक्षण कार्यक्रम।

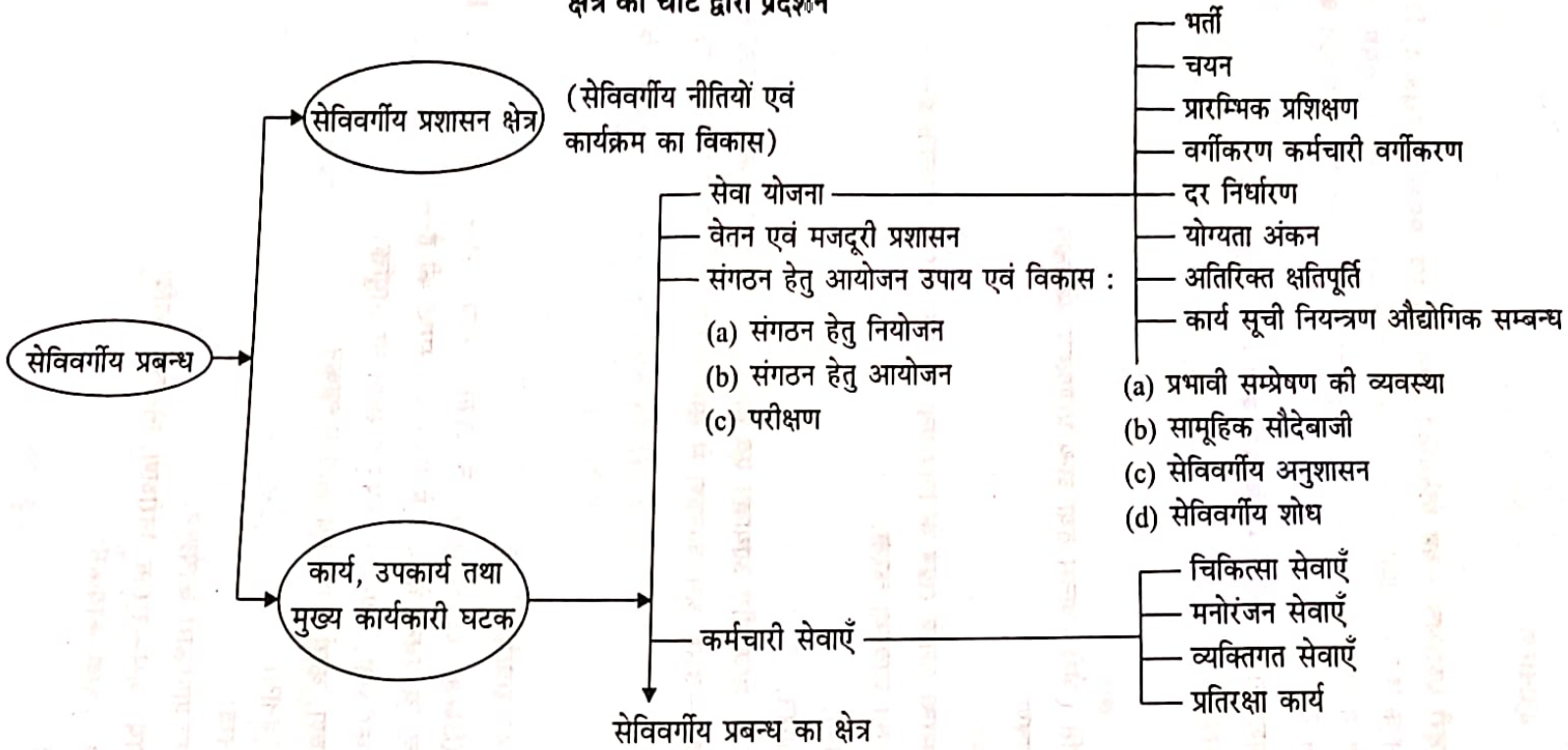
(viii) श्रम-सम्बन्ध।

(ix) जनसम्पर्क।

(x) सेविवर्गीय नियोजन एवं मूल्यांकन आदि।

Scanned with CamScanner

क्षेत्र का चार्ट द्वारा प्रदर्शन



Scanned with CamScanner

मानव संसाधन विकास प्रबन्धक के उत्तरदायित्व

सेविवर्गीय प्रबन्धक एक संगठन के उच्च प्रवन्ध समूह का सर्वोच्च अधिकारी होता है। वास्तव में आजकल सेविवर्गीय समस्याएँ ही संगठन में हर प्रकार की जटिल समस्याओं को उत्पन्न करने का कारण होती हैं। ऐसी स्थिति में सेविवर्गीय प्रवन्धक का प्रमुख दायित्व यह है कि वह प्रबन्धकों को संगठन में उत्पन्न समस्या से तुरन्त अवगत कराए तथा वह सभी स्तरों पर प्रवन्ध की सेविवर्गीय समस्याओं को हल करने में सहायता प्रदान करे।

जे० डब्ल्यू० हेनन (J. W. Henon) ने सेविवर्गीय प्रवन्धक के उत्तरदायित्वों को निम्न प्रकार विभाजित किया है—

(i) सेविवर्गीय तन्त्र के प्रति दायित्व (Responsibility towards Personnel System)—सेविवर्गीय प्रवन्धक का मुख्य दायित्व कर्मचारियों के चयन, नियुक्ति, साक्षात्कार, कर्मचारियों का विभाजन प्रशिक्षण एवं विकास, कार्य मूल्यांकन एवं निर्देश, पदोन्नति नीति, स्थानान्तरण नीति, श्रम कल्याण, अभिप्रेरणा तथा मनोवल आदि के प्रति होता है।

(ii) अभिलेख रखना (Record Keeping)—सेविवर्गीय प्रवन्धक का यह भी प्रमुख उत्तरदायित्व है कि वह कर्मचारियों के विषय में विभिन्न अभिलेख जैसे सेवा पुस्तिका, व्यक्तिगत फाइल आदि तैयार कराए और उन्हें सुरक्षित रखने की व्यवस्था करें।

(iii) औद्योगिक शान्ति की स्थापना (Establishment of Industrial Peace)—सेविवर्गीय प्रवन्धक, कर्मचारी वर्ग तथा प्रवन्धक वर्ग के बीच मध्यस्थ का कार्य करता है, स्वस्थ श्रम-संघ आन्दोलन के विकास की चेष्टा करता है, परिवाद-निवारण की उत्तम व्यवस्था करता है और कर्मचारियों को प्राप्त सेविवर्गीय सुविधाएँ दिलाने की व्यवस्था करता है।

(iv) उच्च प्रबन्धन के प्रति दायित्व (Responsibility towards Top Management)—सेविवर्गीय प्रबन्धक, उच्च प्रबन्ध को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं व्यावसायिक परिवर्तनों से ही अवगत नहीं कराता अपितु कर्मचारी सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं हेतु उच्च अधिकारियों, विभागीय प्रबन्धकों आदि को उपयुक्त सलाह भी देता है, जिससे संगठन का कार्य निर्बाध चल सके।

(v) लागत तथा व्यय नियन्त्रण के प्रति उत्तरदायित्व (Responsibility for cost and Expenditure Control)—कार्य विभाजन करना, श्रमिकों की कुशलता का अधिकतम उपयोग करना, श्रम-अपव्यय पर प्रभावी नियन्त्रण रखना आदि का उत्तरदायित्व सेविवर्गीय प्रबन्धक का है।

(vi) भृत्ति एवं वेतन प्रशासन (Wages & Salary Administration)—कार्यानुसार भृत्ति (मजदूरी) तथा वेतन की दरों का निर्धारण, इस सम्बन्ध में नियमों, अधिनियमों एवं परिनियमों का अध्ययन एवं उनका अनुपालन, पारितोषिक पद्धति (Reward System) को सुदृढ़ एवं सन्तुलित बनाना सेविवर्गीय प्रबन्धक का ही उत्तरदायित्व है।

(vii) भौतिक एवं वित्तीय साधनों के प्रति उत्तरदायित्व (Responsibility for Physical & Financial Resources)—भौतिक साधनों के सन्दर्भ में सेविवर्गीय प्रबन्धक का यह उत्तरदायित्व है कि वह यह देखे कि उपक्रम में कार्यरत मशीनों, संयन्त्रों एवं औजारों आदि भौतिक साधनों का अधिकतम उपयोग किया जा रहा है अथवा नहीं। इसके अतिरिक्त वित्तीय साधनों के प्रति उत्तरदायित्व में चिकित्सा, प्रशिक्षण, यातायात, विज्ञापन, सुरक्षा आदि मदों पर किए जाने वाले व्यय पर नियन्त्रण करना है।

(viii) मानव संसाधन विकास प्रबन्धक के अन्य उत्तरदायित्व (Other Responsibility as of Human Resource Manager) —मानव संसाधन विकास प्रबन्धक के कुछ अन्य उत्तरदायित्व निम्न प्रकार हैं—

(a) कर्मचारी सेवाएँ उपलब्ध कराना।
(b) सेविवर्गीय नीतियों, पद्धतियों तथा कार्यक्रमों को तैयार करना तथा उनके क्रियान्वयन में सहायता प्रदान करना।
(c) मानव की प्रकृति के सम्बन्ध में शोध करना।
(d) भावी ऋणशक्ति की आवश्यकता की योजना बनाना।
(e) मानवीय साधनों पर आधारित सभी समस्याओं के सम्बन्ध में प्रबन्ध के विभिन्न स्तरों पर परामर्श देना।
(f) नियोक्ता-कर्मचारी सम्बन्धों को सुदृढ़ करना।
(g) प्रभावी संदेशवाहन की व्यवस्था उपलब्ध कराना।

Scanned with CamScanner

(h) सेविवर्गीय प्रशासन सम्बन्धी विभिन्न कार्यक्रमों का मूल्यांकन करना।

2.2 (a) भर्ती (Recruitment)

कर्मचारियों की भर्ती से आशय उस व्यवस्था से है जो किसी उपक्रम में आवश्यक कर्मचारियों का चुनाव करने के लिए काम में लायी जाती है। व्यावसायिक उपक्रमों में आये दिन विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए कर्मचारियों की नियुक्ति की आवश्यकता होती है। इसकी पूर्ति के लिए बाह्य व्यक्तियों की भर्ती की जाती है। भर्ती से आशय उन व्यक्तियों को यह बताना है कि अमुक संस्था में पद रिक्त है तथा इसकी पूर्ति के लिए लोगों को आवेदन पत्र प्रस्तुत करने हेतु प्रोत्साहित करना होता है। इसके अन्तर्गत निर्धारित किया जाता है कि किन-किन व्यक्तियों का चुनाव किया जा सकता है। भर्ती में इन सभी अपेक्षित व्यक्तियों को आवेदन पत्र प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित किया जाता है।

फ्लिप्पो के अनुसार—"भर्ती का आशय भावी कर्मचारियों की खोज करना तथा उपक्रम में कार्य करने के लिए आवेदन करने हेतु प्रेरणा देना एवं प्रोत्साहित करना है।"

इस प्रकार भर्ती से आशय एक ऐसी प्रक्रिया से है जिसके द्वारा कार्य करने के योग्य तथा तत्पर व्यक्तियों का पता लगाया जाता है तथा उन्हें उपक्रम के कार्य करने के लिए आवेदन पत्र प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित किया जाता है।

भर्ती का महत्व (Importance of Recruitment)

कर्मचारी चयन में सुविधा—भर्ती कर्मचारी चयन कार्यक्रम का प्रारम्भिक चरण होता है। भर्ती के अभाव में यह निर्धारित करना कठिन होता है कि किस-किस पद पर किस-किस व्यक्ति का चुनाव किया जाना चाहिए।

बाजार का विस्तार—वर्तमान व्यावसायिक जागरूकता के युग में प्रत्येक उपक्रम अपने बाजारों को विकास करने का प्रयास करता है। बाजार का विस्तार हो जाने से एक तरफ तो उत्पादन का कार्य बढ़ जाता है और दूसरी तरफ विपणन कार्यों को सम्पन्न करने हेतु अनेक कर्मचारियों को नियुक्त करना होता है।

श्रम आवर्तन—सामान्य तौर पर प्रत्येक संगठन में कर्मचारियों का आवागमन विभिन्न कारणों से बना रहता है।

संस्था का विकास—जब एक व्यावसायिक उपक्रम का विकास और विस्तार होता है तो अधिक संख्या में कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। पूँजी में वृद्धि होने या उत्पादन में वृद्धि होने से उपक्रम का विकास होता है।

तकनीकी परिवर्तन—जब संस्था में तकनीकी परिवर्तन होते हैं तथा नयी-नयी मशीनों की स्थापना की जाती है तो इसके लिए पुराने कर्मचारियों को प्रशिक्षण दिया जाता है। जब पुराने कर्मचारियों को प्रशिक्षण देना असम्भव हो या प्रशिक्षण से कर्मचारियों में अपेक्षित योग्यता का विकास करना कठिन हो तो नये कर्मचारियों की नियुक्ति की आवश्यकता होती है।

भर्ती की विशेषताएँ

योग्यता का आधार—एक अच्छी चयन नीति वही है जो योग्यता के आधार पर भर्ती करे न कि किसी सिफारिश, सम्बन्ध आदि के आधार पर भर्ती करें।

वैज्ञानिक आधार पर योग्यता का निर्धारण—भर्ती नीति योग्यता के आधार पर बनाया जाना चाहिए। इसके अन्तर्गत कार्य विवरणों जो कि कार्य विश्लेषणों पर आधारित हो, इनके माध्यम से भर्ती की योग्यता का आधार निर्धारित किया जाना चाहिए।

अनुभवी व्यक्तियों द्वारा कार्यवाही—एक अच्छी भर्ती नीति में इस बात को शामिल करना चाहिए कि उसकी सम्पूर्ण कार्यवाही अनुभवी कर्मचारियों द्वारा कार्यान्वित हो जिससे इन पर अनुचित दबाव न डाला जा सके।

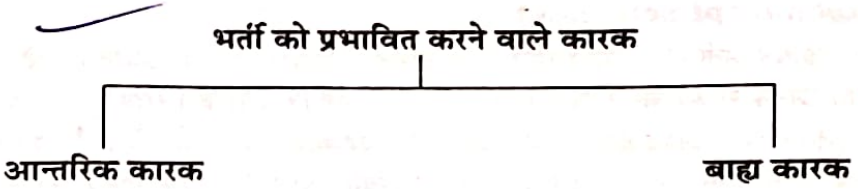
योग्यताओं का मिलान—एक अच्छी भर्ती नीति में प्रार्थियों की योग्यताओं का मिलान कार्य अपेक्षित योग्यताओं तथा आवश्यकताओं से किया जाना चाहिए। इससे उपयुक्त कर्मचारियों की भर्ती में सहायता मिलती है।

स्त्रोतों का तुलनात्मक अध्ययन—**भर्ती नीति** के अन्तर्गत समय-समय पर इसके स्त्रोतों का अध्ययन करते रहना चाहिए।

संगठन तथा सामाजिक उद्देश्यों के अनुकूल—एक अच्छी भर्ती नीति उसे कहा जाता है जो संगठन के आवश्यक उद्देश्यों की प्राप्ति करने के साथ ही सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करे।

Scanned with CamScanner

लोचपूर्ण नीति—भर्ती की नीति लोचपूर्ण होनी चाहिए जिससे उपक्रम की आवश्यकतानुसार नियन्त्रित करने में सुविधा रहे।

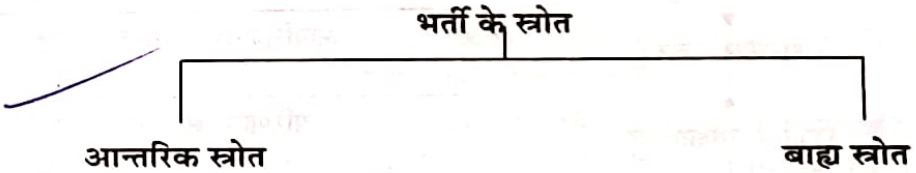


आन्तरिक कारक

1. संगठनात्मक नीतियाँ
2. कम्पनियों द्वारा प्रदान किया जाने वाला अनुषंगिक लाभ
3. संगठन की ख्याति
4. संगठन की प्रतिष्ठा

बाह्य कारक

1. सामाजिक, आर्थिक एवं संस्कृति घटक
2. श्रम बाजार में विशिष्ट कुशलता की पूर्ति तथा मांग
3. आर्थिक घटक
4. देश में उद्योगों के विकास की स्थिति
5. राजनैतिक तथा वैधानिक घटक



I. आन्तरिक स्त्रोत

भर्ती के आन्तरिक स्त्रोत से आशय कम्पनी की विद्यमान श्रम शक्ति से ही पदोन्नति द्वारा उच्च पदों की पूर्ति करना होता है।

विशेषताएँ—

1. पदोन्नति से कर्मचारियों को विकास के अवसर प्राप्त होते हैं।
2. कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने पर होने वाला खर्च बचता है।
3. इससे श्रम आवर्तन में कमी आती है।

II. बाह्य स्त्रोत

व्यावसायिक संगठन अपने समस्त मानव आवश्यकता की पूर्ति आन्तरिक स्त्रोत से नहीं कर सकते।

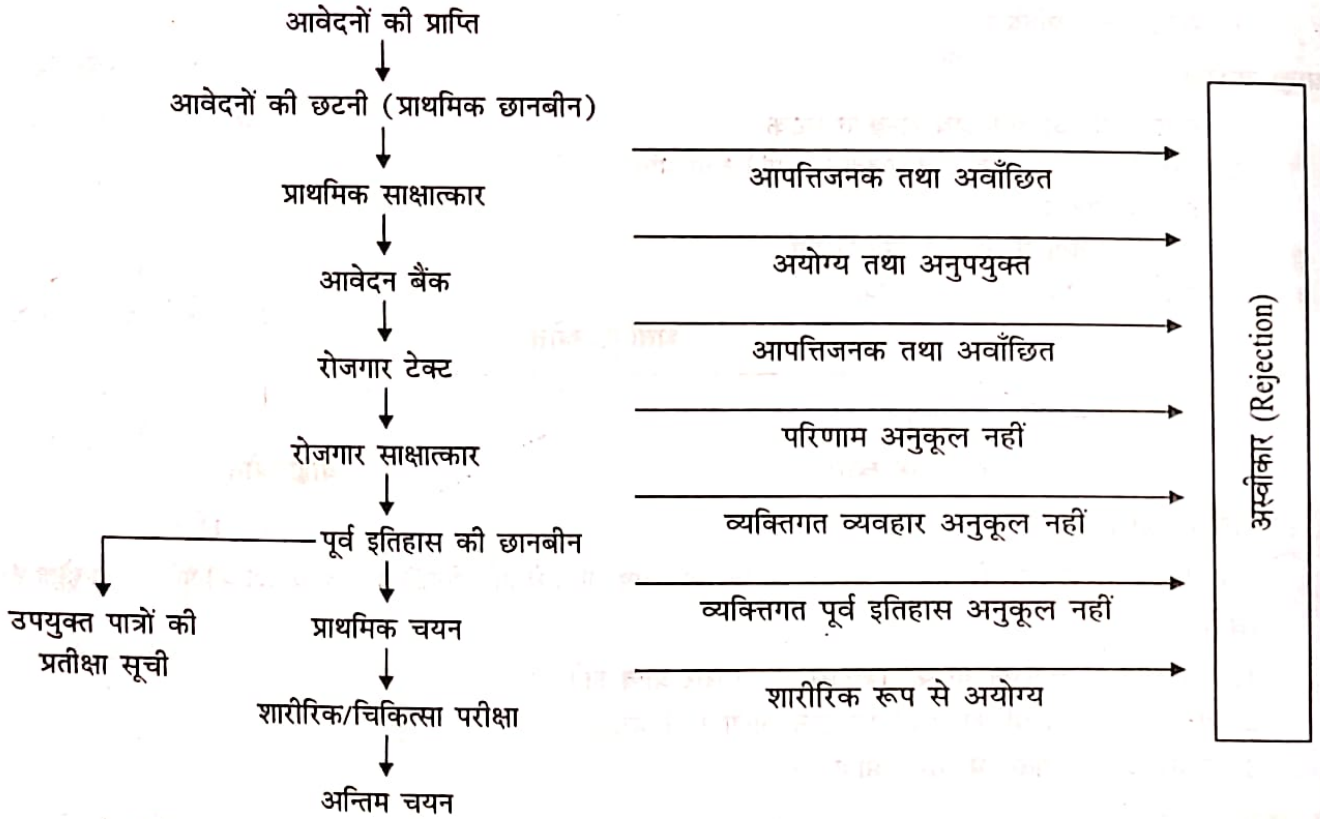
- नियोजन एवं रोजगार कार्यालय
- कर्मचारियों के मित्र एवं रिश्तेदार
- समाचार-पत्रों में विज्ञापन
- संस्था के भूतपूर्व कर्मचारी
- श्रम संघों द्वारा भर्ती
- कम्पनी द्वार पर भर्ती
- प्रत्याशियों द्वारा स्वेच्छा से भेजे गये आवेदन पत्र

Scanned with CamScanner

2.2 (6) चयन (Selection)

चयन का अर्थ (Meaning of Selection)

चयन से हमारा तात्पर्य भर्ती के विभिन्न स्त्रोतों (आन्तरिक व बाह्य) से प्राप्त आवेदन-पत्रों में से विभिन्न क्रियाओं द्वारा कुशल कर्मचारियों को छाँटने से है। चयन प्रक्रिया एक ऐसा औजार (Tool) है जिसकी मदद से प्रबन्धन विभिन्न तकनीकों जैसे—लिखित परीक्षा, साक्षात्कार आदि द्वारा योग्य तथा अयोग्य आवेदकों में अन्तर करता है। यह एक निर्णय लेने की प्रक्रिया है जिसमें प्रबन्धन कुछ नियम तथा शर्तें निर्धारित करता है। ये नियम तथा शर्तें ही एक मानक का कार्य करते हैं और योग्य तथा अयोग्य पात्रों में अन्तर स्पष्ट करते हैं। एक वैज्ञानिक चयन प्रक्रिया द्वारा अमुक जॉब के लिए सुयोग्य पात्र का चयन किया जाता है। चयन प्रक्रिया से सम्बन्धित परिभाषा को डेल योडर (Dale Yoder) ने इस प्रकार समझाया है—"चयन वह प्रक्रिया है जिससे नियुक्ति के इच्छुक प्रत्याशियों को दो वर्गों में बाँट दिया जाता है—वे जिन्हें नियुक्त किया जाता है तथा वे जिन्हें अस्वीकृत किया जाना है।"



कर्मचारियों का चयन करना वास्तव में एक निर्णय सम्बन्धी प्रक्रिया है। अत: इस सम्बन्ध में निर्णय लेते समय बहुत ही सावधानी से कार्य करना चाहिए। चयन को एक विभेदात्मक क्रिया कहा जा सकता है, जिसमें योग्य कर्मचारियों की नियुक्ति कर ली जाती है और अनुपयुक्त (अयोग्य) प्रार्थियों को छोड़ दिया जाता है। चयन करते समय अधिकारियों को कार्य एवं कर्मचारी को योग्यताओं में समन्वय स्थापित करना होता है। चयन प्रक्रिया से सम्बन्धित प्रमुख पदों को निम्न प्रकार चार्ट द्वारा चित्र में प्रदर्शित किया गया है।

चयन प्रक्रिया का विस्तृत विवरण इस प्रकार है—

प्रत्येक संस्था के लिए कर्मचारियों का सही चुनाव करना अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। सही चुनाव करने से संस्था की कार्य कुशलता मे वृद्धि होती है, कर्मचारियों में स्थायित्व की भावना पनपती है, उनका मनोबल ऊँचा होता है तथा इससे संस्था अपने लक्ष्यो को आसानी से प्राप्त कर सकती है। एक वृहत् आकार के उद्योग में कर्मचारियों का चुनाव करते समय अग्रलिखित प्रक्रियाये अपनायी जाती हैं—

Scanned with CamScanner

(i) आवेदन प्राप्त करना तथा उनकी जाँच करना (Security of Applications)—सर्वप्रथम प्रार्थियों से आवेदन-पत्र मँगाए जाते हैं। इसमें प्राय: निम्न जानकारी होती हैं—(I) जीवन सम्बन्धी जानकारी स्वयं व माता-पिता का नाम, जन्म तिथि व स्थान, आयु, लिंग, नागरिकता, शारीरिक माप, चिह्न, वैवाहिक स्तर तथा अन्य पारिवारिक जानकारी। (II) शैक्षणिक जानकारी—शिक्षा, विषय, तकनीकी ज्ञान तथा कार्य पर प्रशिक्षण, यदि कोई प्राप्त किया हो आदि। (III) कार्य अनुभव—पूर्व कार्य का अनुभव, पदों की संख्या, कार्य की प्रकृति, कार्यकाल, वेतन, वेतनमान व पद छोड़ने के कारण, पूर्व नियोक्ता के नाम व पते आदि। (IV) वेतन तथा अन्य सुविधायें—जो अपेक्षित हैं। (V) व्यक्तिगत रुचि-संघों आदि की सदस्यता, रुचियाँ, अतिरिक्त कार्य, खेलकूद में रुचि, विशिष्ट योग्यता। (VI) अन्य बातें—सन्दर्भ तथा अन्य सूचनायें जो भी संस्था चाहे। ऐसी सूचनायें व्यक्ति की सफलता का अनुमान लगाने में व भविष्य के लिए आवश्यक रिकॉर्ड रखने में सहायक होती है। ऐसे प्रार्थी जो दी गयी सूचनाओं के योग्य समझे जायेंगे, उनको ही साक्षात्कार के योग्य समझा जायेगा।

(ii) प्रारम्भिक साक्षात्कार (Preliminary Interview)—यह चयन प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसके द्वारा व्यक्ति के उत्तरदायित्व, उसके व्यवहार एवं गुणों का पता लगाया जाता है। इसमें चयनकर्ता एवं आवेदक आमने-सामने बैठकर विचार-विमर्श करते हैं। चयनकर्त्ता व्यक्ति के सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त करते हैं व आवेदन पत्र में दी गयी सूचनाओं की पुष्टि करते हैं अथवा स्पष्टीकरण प्राप्त करते हैं। दूसरी ओर, आवेदक भी यदि चाहे तो कार्य, कम्पनी आदि के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी प्राप्त कर सकता है।

साक्षात्कारकर्त्ता ऐसी बातों की भी जानकारी प्राप्त कर सकता है जोकि आवेदन-पत्र में नहीं लिखी हैं।

(iii) रिक्त आवेदन पत्र (Blank Application forms)—प्राथमिक जाँच पड़ताल के पश्चात् संस्था प्रार्थियों को एक छपा हुआ खाली आवेदन-पत्र द्वारा योग्यता, अनुभव, वर्तमान कार्य का स्थान, वर्तमान वेतन, अपेक्षित वेतन आदि के बारे में अनेक बातें लिखित रूप से पूछती है। आवेदन-पत्र जहाँ तक सम्भव हो संक्षिप्त तथा स्पष्ट होना चाहिए, जिससे प्रार्थी सही-सही सूचना दे सके। जब ये फार्म भर कर संस्था द्वारा निर्धारित चयन योग्यता प्रमाप से कम होते हैं, उनको अस्वीकार कर दिया जाता है, यदि फिर भी आवेदकों (प्रार्थियों) की संख्या आवश्यकता से अधिक होती है तो चयन योग्यता प्रमाप के स्तर को ऊँचा उठाकर संख्या को संस्था की वांछित संख्या के बराबर कर लिया जाता है।

(iv) मनोवैज्ञानिक परीक्षण (Psychological Tests)—यह भी एक महत्वपूर्ण चयन विधि है। कुछ विशेषतायें जोकि आवेदन-पत्रों के विश्लेषण एवं साक्षात्कार द्वारा मालूम नहीं हो पाती हैं, उन्हें इन मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा मालूम किया जाता है। ब्लूम के अनुसार, "परीक्षण या जाँच व्यक्तिगत व्यवहार, कार्यकुशलता तथा कार्य रुचियों का नमूने के तौर पर ज्ञान प्राप्त करना है।" परीक्षण द्वारा आवेदकों की छिपी हुयी विशेषताओं का पता लगाने में सहायता प्राप्त होती है। ये परीक्षण निम्न प्रकार के होते हैं—वृद्धि परीक्षण, समान परीक्षण, रुचि परीक्षण, व्यक्तित्व परीक्षण तथा उपलब्धि परीक्षण।

(v) व्यक्तित्व परीक्षण (Personality Test)—व्यक्तित्व परीक्षण सबसे जटिल होता है। इस परीक्षण से व्यक्ति के गुणों की जाँच की जाती है कि वह अपने सहयोगियों के साथ कैसा व्यवहार करता है। उसमें नेतृत्व (Leadership) के गुण हैं या नहीं। इस परीक्षण का प्रयोग पर्यवेक्षकों तथा उच्च श्रेणी के व्यक्तियों के चयन के लिए किया जाता है।

(vi) साक्षात्कार (Interview)—विभिन्न प्रकार के परीक्षणों के पश्चात् सफल प्रार्थियों को साक्षात्कार के लिए बुलाया जाता है। साक्षात्कार चयन करने की अत्यन्त लोकप्रिय तथा प्रचलित प्रणाली है। साक्षात्कार में प्रार्थियों को सामने बैठाकर प्रश्न पूछे जाते हैं। साक्षात्कार का उद्देश्य प्रार्थी की मुद्रा, बातचीत करने का तरीका, हाव-भाव, जागरूकता, हाजिरजवाबी, परिपक्वता आदि की जाँच करना है। यदि साक्षात्कार करने वाले कुशल एवं अनुभवी व्यक्ति हैं तो वे प्रार्थी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की जाँच कर सकते हैं।

चयन नीति (Selection Policy)

चयन तो चयन प्रक्रिया की अन्तिम कड़ी है। प्रार्थियों में उपयुक्त का चयन विभेदात्मक दृष्टिकोण का परिचायक है। यह जाँचने, परखने का कार्य है। चयन के लिये नीति का निर्धारण होता है। वैसे चयन रोजगार नीति का ही अंग है, फिर भी पदोन्नति, पदावनति, स्थानान्तरण, सेवामुक्ति, विकास, प्रशिक्षण के साथ ही चयन नीति का निर्धारण किया जाना चाहिए।

चयन नीति में चयन के लिए परीक्षाओं का आयोजन, विषय प्रश्न-पत्र, साक्षात्कार तथा उनके लिये प्रदान किया जाने वाला निर्धारित भार सम्मिलित किया जाता है। चयन मण्डल का गठन किया जाता है तथा चयन के मापदण्ड तय किये जाते हैं।

Scanned with CamScanner

चयन नीतियाँ उपक्रम के सामान्य सिद्धान्तों एवं नीतियों के अनुकूल ही होनी चाहिए। चयन नीतियाँ स्पष्ट तथा लोचशील होनी चाहिए, समय-समय पर चयन नीतियों की जाँच कर उनमें आवश्यकता अनुसार संशोधन किये जाने चाहिए। नीतियों का दृढ़तापूर्वक पालन भी किया जाना चाहिए।

एक उत्तम चयन नीति के लिए आवश्यक है कि वह निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित हो—

(i) चयन का कार्य योग्य व्यक्तियों द्वारा किया जाये।
(ii) यह कार्य एक व्यक्ति के बजाय मण्डल द्वारा सम्पादित किया जाये।
(iii) चयन निर्धारित मानदण्डों के आधार पर हो।
(iv) चयन के लिए आन्तरिक तथा बाह्य दोनों स्रोत प्रयोग में लिये जायें।
(v) चयन में व्यक्ति को महत्व न दिया जाकर उसकी योग्यता अनुभव को महत्व दिया जाये।
(vi) चयन प्रक्रिया का प्रत्येक चरण महत्वपूर्ण माना जाये।
(vii) अलग-अलग पदों के लिए अलग-अलग चयन विधियों का प्रयोग हो।
(viii) चयन नीति उपक्रम की सामान्य नीतियों के अनुरूप हो।
(ix) चयन के समय देश, समाज, कानून आदि को मध्य नजर रखा जाना चाहिए।
(x) चयन नीति सरल, स्पष्ट तथा न्याय संगत हो।
(xi) चयन नीति रोजगार उन्मुख हो।
(xii) चयन नीति मार्गदर्शन में भी सहायक होनी चाहिए।
(xiii) चयन निष्पक्ष हो।

भर्ती एवं चयन में अन्तर (Difference between Recruitment and Selection)

भर्ती के अन्तर्गत भावी कार्य को करने के लिए इच्छुक व्यक्तियों की खोज करके उन्हें आवेदन प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित किया जाता है जबकि चयन के अन्तर्गत, जिन व्यक्तियों ने नौकरी के लिए आवेदन किया है, उन व्यक्तियों में से सर्वोत्तम एवं उपयुक्त व्यक्ति का चुनाव किया जाता है। भर्ती तथा चयन में भेद को नीचे तालिका द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

तालिका (भर्ती एवं चयन में भेद)

क्रम संख्या	अन्तर का आधार	भर्ती (Recruitment)	चयन (Selection)
1.	अर्थ	भर्ती से आशय भावी कर्मचारियों की खोज करने तथा उन्हें संस्था में आवेदन करने के लिए प्रेरित करने से है।	चयन से आशय उन प्रत्याशियों में से श्रेष्ठतम प्रत्याशियों के चयन से है जिन्होंने संस्था में नौकरी के लिए आवेदन किया है।
2.	उद्देश्य	भर्ती का उद्देश्य अधिक से अधिक प्रत्याशियों को संस्था में आवेदन करने के लिए आकर्षित करना होता है।	चयन का उद्देश्य श्रेष्ठतम प्रत्याशियों का चयन करना होता है।
3.	संख्या	भर्ती में प्रत्याशियों की संख्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं रखा जाता।	चयन के अन्तर्गत पूर्व निश्चित संख्या में प्रत्याशियों का चयन किया जाता है।
4.	क्रम	पहले भर्ती की जाती है, भर्ती किये बिना चयन सम्भव नहीं है।	चयन भर्ती के पश्चात् किया जाता है।
5.	प्रकृति	भर्ती की प्रक्रिया धनात्मक होती है।	चयन की प्रक्रिया ऋणात्मक होती है।

Scanned with CamScanner

2.2 (c) प्रशिक्षण की नीतियाँ (Training Strategies)

नीतियुक्त प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रशिक्षण की सभी विशेषताओं एवं सिद्धान्तों का समावेश होता है। ऐसा कार्यक्रम कर्मचारियों की प्रवृत्तियों, निपुणताओं एवं योग्यताओं में अभिवृद्धि करके उनकी कार्य क्षमता, उत्पादकता एवं मनोबल में वृद्धि करने में अहम भूमिका निभाता है। प्रशिक्षण देना संगठन की नीतियों का एक हिस्सा होता है जिससे कर्मचारी का सर्वोत्तम कार्य निष्पादन प्राप्त किया जा सके। ऐसे में प्रशिक्षण कार्यक्रम का निर्देशन ऐसे व्यक्ति के हाथों में होना चाहिए जिसे प्रशिक्षण नीतियों का पूर्ण ज्ञान हो। एक सुयोग्य प्रशिक्षक को निम्न मुख्य नीतियों का ज्ञान होना आवश्यक है—

(i) कार्य आदेश प्रशिक्षण (Job Instruction Training)—इस नीति के अन्तर्गत प्रशिक्षकों को आदेश देने की प्रक्रिया से भली-भाँति परिचित कराया जाता है ताकि उनमें प्रशिक्षण प्रदान करने की इस कला का विकास हो सके।

(ii) कार्यक्रम विकास प्रशिक्षण (Programme Development Training)—प्रशिक्षण की इस नीति के अन्तर्गत प्रशिक्षण अनुदेशकों को प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा नवीनतम योजनाओं के क्रियान्वयन का प्रशिक्षण दिया जाता है ताकि वह प्रभावी ढंग से प्रशिक्षण कार्य सम्पादित करा सके।

(iii) कार्यविधि प्रशिक्षण (Job Method Training)—इस नीति के अन्तर्गत प्रशिक्षकों को कार्य करने की नवीनतम व श्रेष्ठतम विधियों से अवगत कराया जाता है जिससे वे ये विधियाँ कर्मचारियों को सिखा सकें।

(iv) प्रशिक्षु-सम्बन्ध प्रशिक्षण (Trainee-Relation Training)—इस नीति के अन्तर्गत प्रशिक्षकों को यह बताया जाता है कि प्रशिक्षण के दौरान-प्रशिक्षार्थियों के साथ सदैव मधुर सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया जाये जिससे प्रशिक्षण कार्य प्रभावी ढंग से किया जा सके।

2.2 (d) जीवन वृत्ति विकास (Career Development)

परिचय (Introduction)

मानव जीवन की तीन मूलभूत आवश्यकतायें रोटी, कपड़ा और मकान हैं जिनकी उपलब्धता जीवन यापन के लिए अति आवश्यक एवं अपरिहार्य है। सर्वप्रथम तो मनुष्य इन्हीं मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रयासरत रहता है। इसके बाद वह सदैव उन भौतिक संसाधनों को जुटाने का प्रयास करता है जो उसे सुखी और समृद्ध सामाजिक स्तर प्रदान कर सके। इस प्रकार यदि व्यक्ति का जीवन सुखी और समृद्ध सामाजिक स्तर प्रदान कर सकें। इस प्रकार यदि व्यक्ति का जीवन सुखी और समृद्ध हो, इसके लिए जरूरी है कि व्यक्ति अपनी जीवन वृत्ति के विकास पर विशेष ध्यान दे। जीवन वृत्ति के सफल विकास के लिए आवश्यक हे कि मनुष्य पहले अपनी जीवन वृत्ति का सुनियोजन कर ले, उसके बाद अपनी योग्यताओं, कुशलताओं, प्रवृत्तियों में आवश्यक सुधार कर जीवन वृत्ति के दायित्वों का सफलतापूर्वक निर्वाह करे। इससे मनुष्य के व्यक्तिगत हित तथा महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति यथासम्भव हो सकती है। आज के इस अर्थ-प्रधान युग में व्यक्ति के विकास के सर्वांगीण् विकास में जीविकोपार्जन के पर्याप्त संसाधनों की उपलब्धता की बहुत ही अहम भूमिका होती है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकता रोटी, कपड़ा और मकान है, जिनकी उपलब्धता, जीवन यापन के लिए परमावश्यक एवं अपरिहार्य है। यही कारण है कि हर व्यक्ति सर्वप्रथम अपनी इन मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने का प्रयास करता है और अन्य संसाधन जो कि एक सुखी व समृद्ध सामाजिक स्तर प्रदान करने में सहायक होते हैं, उन्हें जुटाने में व्यक्ति अनवरत रूप से सदैव प्रयासरत रहता है। अत: व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन सुखमय व्यतीत हो और आवश्यकताओं की पूर्ति करने में वह पूर्णत: सक्षम बने, इसके लिए बहुत जरूरी है कि व्यक्ति अपनी जीवन वृत्ति के विकास की ओर विशेष ध्यान दे। जीवन वृत्ति के सफल विकास के लिए अपनी प्रवृत्तियों, निपुणताओं एवं योग्यताओं में अभिवृद्धि करके भविष्य निर्माण के उद्देश्य से जीवन वृत्ति का सुनियोजन (Well planning) उत्तरदायित्व पूर्ण ढंग से किया जाना अत्यन्त आवश्यक होता है ताकि व्यक्तिगत हित एवं महत्वकांक्षाओं की यथा पूर्ति हो सके।

जीवन वृत्ति नियोजन (Career Planning)

जीवन वृत्ति नियोजन को भविष्य नियोजन के नाम से भी उद्घोषित किया जा सकता है। जीवन वृत्ति नियोजन या भविष्य निर्माण योजना को मानव संसाधन विकास (Human Resource Development) का मुख्य एवं आवश्यक अंग समझा जाता है। इस नियोजन द्वारा ही जीवन वृत्ति विकास संभव है। इससे मनुष्य के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होता है जिसके

Scanned with CamScanner

फलस्वरूप व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है। इस नियोजन से व्यक्ति अपनी योग्यताओं एवं कार्यक्षमताओं का सही प्रदर्शन करके सफलता प्राप्त कर सकता है। जीवन वृत्ति नियोजन से व्यक्ति की आय तथा मनोबल में भी वृद्धि होती है। इतना ही नहीं, उसकी महत्वाकांक्षायें काफी हद तक पूर्ण हो जाती हैं और व्यक्तिगत हितों के अतिरिक्त संगठनात्मक हित केवल उस सीमा तक पूरे होते हैं जहाँ तक कि प्रत्येक मानवीय संसाधन को विकास का अवसर प्रदान किया जाता है और संगठन की योग्यता व विश्वास के अनुकूलतम स्तर तक संगठनात्मक लक्ष्यों एवं उद्देश्यों के प्रति अंशदान (Contribute) देने का अवसर दिया जाता है। जीवन वृत्ति नियोजन एक विभाजित उत्तरदायित्व है जो कि व्यक्तिगत हित और महत्वाकांक्षायें पूर्ण करने का एक सोपान है, जिसके माध्यम से व्यक्ति चर्मोत्कर्ष तक पहुँचने के लिए स्वतन्त्र है अर्थात् जीवन वृत्ति नियोजन की ओर जितनी तन्मयता से ध्यान आकर्षित किया जायेगा उतना ही जीवन वृत्ति का विकास होगा तथा तद्नुसार ही व्यक्ति का व्यक्तिगत हित एवं महत्वाकांक्षायें पूर्ण होंगी।

जीवन वृत्ति नियोजन के लाभ (Advantages of Career Planning)

जीवन वृत्ति नियोजन अथवा भविष्य निर्माण नियोजन से मुख्यत: निम्नांकित लाभ होते हैं—

(i) भविष्य निर्माण की योजनाओं के माध्यम से कर्मचारियों को अग्रिम रूप से अभिप्रेरित किया जा सकता है ताकि वे प्रशिक्षण सुविधाओं का लाभ प्राप्त कर सकें और साथ ही अपनी सम्भावित योग्यताओं को विकसित करने हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रमों में उद्देश्यपूर्ण तरीके से सहभागी भी बन सकें।

(ii) भविष्य निर्माण योजनाओं के द्वारा प्रशिक्षण कार्यक्रमों की विषय-सूची और प्रशिक्षण की विधियों का नियोजन सम्भव होता है।

(iii) यदि मानवीय संसाधन विकास प्रयास के रूप में प्रबन्ध तन्त्र द्वारा भविष्य नियोजन लागू किया जाता है तो इससे कर्मचारियों की कर्त्तव्यपरायणता और संगठन के प्रति वफादारी का आश्वासन उपलब्ध हो सकता है।

(iv) भविष्य निर्माण की योजनायें तथा विकास के अवसर कर्मचारी के मनोबल को बढ़ाने में सहायक होते हैं।

(v) यदि भविष्य योजनाओं तथा उन्नति के अवसरों के परिप्रेक्ष्य में परामर्श प्रदान किया जाता है, तो यह कर्मचारियों के लिए अपेक्षाकृत अधिक लाभकारी सिद्ध होगा।

(vi) इन योजनाओं से मानव संसाधन विकास के रूप में कर्मचारी के दायित्वों का एक स्तर निर्धारित किया जा सकता है, जहाँ तक उन्हें ऊपर उठाना है इससे कर्मचारियों की पदोन्नति योग्यताओं का मूल्यांकन करना भी सम्भव हो जाता है।

(vii) भविष्य निर्माण योजनाओं के द्वारा प्रशिक्षण कार्यक्रमों की सूची बनाना तथा प्रशिक्षण विधियों का नियोजन करना सम्भव होता है।

2.3 उत्तरदायित्व, नीतियाँ एवं कार्य (Responsibility, Policies and Work)

सेविवर्गीय नीतियों का प्रमुख संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उपक्रम में कार्य कर रहे कर्मचारियों का मार्गदर्शन करना है। सेविवर्गीय नीति की सफलता अथवा असफलता की कसौटी यह है कि उससे उन उद्देश्यों की पूर्ति किस सीमा तक की गयी जिसके लिये उनका निर्माण किया गया है। यदि सेविवर्गीय नीति अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में असफल रहती है तो सेविवर्गीय प्रबन्धक एवं अन्य उच्चाधिकारियों का यह कर्त्तव्य है कि उसमें आवश्यक संशोधन एवं परिवर्तन करे जिससे कि सेविवर्गीय नीति अपने उद्देश्य के अनुरूप बन सके। अत: सेविवर्गीय नीतियों की क्षमता को उसके उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य से देखना होगा। एक सेविवर्गीय नीति के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(i) मधुर श्रम सम्बन्ध—श्रमिकों एवं नियोजकों के मध्य मधुर सम्बन्ध की स्थापना करके उसे बनाये रखना सेविवर्गीय नीति का एक प्रमुख उद्देश्य है। अधिकतम व्यक्तिगत विकास एवं मानवीय प्रसाधनों का अधिकतम उपयोग इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति भी तभी सम्भव है जबकि श्रम एवं पूँजी के सम्बन्ध मधुर बने रहें। टेलर (Taylor) ने अपने वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्तो में मानसिक क्रान्ति पर अधिक बल दिया है। उनके अनुसार, "वैज्ञानिक प्रबन्ध में तात्विक दृष्टि से श्रमिक एवं व्यवस्थापको के प्रति पूर्ण मानसिक क्रान्ति समाविष्ट है।" अर्थात् दोनों पक्षों में एक-दूसरे पर विश्वास करने की भावना होनी चाहिए।

Scanned with CamScanner

(ii) कर्मचारियों का अधिकतम विकास—सेविवर्गीय नीति के अनेक उद्देश्यों की अनुसूची में व्यक्तियों अर्थात् उपक्रम में कार्य कर रहे कर्मचारियों का अधिकतम विकास करना सर्वोपरि उद्देश्य है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सेविवर्गीय नीति का निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि कर्मचारियों में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का तथा अधिकतम सहयोग की भावना का विकास हो। टेलर ने वैज्ञानिक प्रबन्ध का विकास करते समय व्यक्तियों के अधिकतम विकास की घोषणा को अधिकतम महत्व प्रदान किया है।

(iii) मानवीय संसाधनों का अधिकतम उपयोग—सेविवर्गीय नीति का तीसरा मुख्य उद्देश्य मानवीय साधनों का अधिकतम एवं श्रेष्ठतम उपयोग करना है। श्रमिकों का विकास करने के साथ-साथ उनकी योग्यता का पूरा लाभ उठाना भी आवश्यक है। श्रमिकों के अधिकतम विकास एवं उनकी योग्यता का पूरा लाभ उठाना ही आवश्यक है। श्रमिकों के अधिकतम विकास एवं उनकी योग्यताओं का भरपूर उपयोग ये दोनों क्रियायें साथ-साथ चलती रहनी चाहिये और ये दोनों क्रियायें साथ-साथ तभी चल सकती हैं, जबकि कर्मचारियों की नियुक्ति एवं उनके मध्य कार्य का विभाजन वैज्ञानिक तरीके से किया जाये।

(iv) अन्य उद्देश्य—उपरोक्त उद्देश्यों के अतिरिक्त सेविवर्गीय नीति के कुछ अन्य उद्देश्य भी हैं, जैसे—

I. कार्य के प्रति सुरक्षा प्रदान करना।
II. श्रम एवं पूँजी के हितों की रक्षा करना एवं उनके कार्य को मान्यता प्रदान करना।
III. उचित वित्तीय एवं अवित्तीय प्रेरणाओं का विकास करना।
IV. अभिप्रेरणा एवं मनोबल में वृद्धि करना तथा उन्नति के अवसर प्रदान करना।

सेविवर्गीय नीति में सम्मिलित बातें

I. औद्योगिक सम्बन्धों में स्पष्ट जानकारी।
II. संयुक्त परामर्श समितियों एवं पद्धतियों की पूर्ण विवेचना।
III. अपनाई गई अथवा अपनायी जाने वाली सेविवर्गीय नीति से कम्पनी के नाम, इतिहास, विकास का पूर्ण परिचय तथा प्रबन्ध के बारे में पर्याप्त जानकारी का बोध हो।
IV. जन सम्पर्क के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी।
V. सेविवर्गीय नीति में कर्मचारियों की भर्ती के स्त्रोत चयन, प्रक्रिया तथा तकनीकों का उल्लेख होना चाहिए।
VI. नवीन कर्मचारियों तथा विद्यमान कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों, योजनाओं तथा प्रशिक्षण उद्देश्यों से सम्बन्धित जानकारियाँ।
VII. श्रमिकों एवं अधिकारियों के मध्य आदेशों एवं प्रार्थनाओं के सम्प्रेषण के क्रम का विवरण।
VIII. सामूहिक सौदेबाजी के सम्बन्ध में पूर्ण विवरण अर्थात् सामूहिक सौदेबाजी के लिए श्रम-प्रतिनिधि कौन होगा इस बात का स्पष्ट उल्लेख।
IX. सेविवर्गीय नीति में कार्य दशाओं, अवकाश, कार्य घण्टे, पदोन्नति, सेविवर्गीय वरिष्ठ अधिकारी आदि बातों का उल्लेख होना चाहिए।
X. श्रम कल्याण एवं सामाजिक सुरक्षा से सम्बन्धित योजनाओं का उल्लेख।
XI. दुर्घटनाओं, अनुचित रूप से कर्मचारियों को निकालना, अनुशासन को बनाये रखना एवं स्थायी आदेशों के सम्बन्ध में लागू होने वाला नियम एवं उपनियमों का स्पष्ट उल्लेख।
XII. परिवेदना के अर्थ का स्पष्टीकरण, परिवेदना पद्धति का विस्तृत उल्लेख जिससे परिवेदना को दूर करने के लिए उचित अधिकारी व क्रम आदि का स्पष्टत: उल्लेख।

एक वृहत् स्तरीय उपक्रम सेविवर्गीय नीति में उक्त वर्णित बातों का उल्लेख होना चाहिए। उपक्रम के आकार के हिसाब से उक्त वर्णित बातें कम तथा संशोधित रूप में हो सकती हैं।

Scanned with CamScanner

2.3 (b) प्रशिक्षण (Training)

फ्लिप्पो (Flippo) के अनुसार, "प्रशिक्षण किसी विशिष्ट कार्य को करने के लिए एक कर्मचारी के ज्ञान व कौशल में वृद्धि करने की प्रक्रिया है।"

सामान्यत: प्रशिक्षण शब्द से आशय व्यक्ति में कार्य की आवश्यकताओं को पूरा करने की निपुणता अथवा उसे विशिष्ट ज्ञान प्रदान करना है। किसी भी औद्योगिक संगठन की क्रियाओं के सफल संचालन एवं निष्पादन के लिए कर्मचारियों में एक विशेष प्रकार के सैद्धान्तिक ज्ञान व व्यावहारिक योग्यता, निपुणता एवं कौशल की परमावश्यकता होती है। कर्मचारी में सैद्धान्तिक ज्ञान का प्रादुर्भाव सामान्य शिक्षा द्वारा होता है, जबकि किसी विषय का व्यावहारिक ज्ञान, योग्यता, निपुणता व कौशल का कर्मचारी में समावेश केवल प्रशिक्षण द्वारा ही सम्भव होता है। अत: प्रशिक्षण एक ऐसी विधिवत् एवं योजनाबद्ध प्रक्रिया है जिसका मुख्य उद्देश्य अध्ययनात्मक अनुभव देना है, जिससे कर्मचारी में संगठन के निर्धारित उद्देश्यों को पूरा करने एवं विकास करने की क्षमता पैदा होती है। किसी भी औद्योगिक संगठन की गतिविधियों के सफल संचालन के लिए आवश्यक है कि कर्मचारी शिक्षित हो और उसे अमुक कार्य को करने के लिए पर्याप्त प्रशिक्षण दिया गया है। प्रशिक्षण द्वारा ही कर्मचारी को अपने कर्त्तव्यों का व्यावहारिक ज्ञान, योग्यता, कौशल एवं निपुणता हासिल हो पाती है। प्रशिक्षण के सम्बन्ध में कुछ परिभाषायें निम्न हैं—

मैथिस (Mathis) के अनुसार, "अध्ययन की वह प्रक्रिया जिसके द्वारा लोग लक्ष्य प्राप्ति के लिए कुशलता (Skills), मुद्रा (Attitude), संकल्पना (Concept) या ज्ञान (Knowledge) प्राप्त करते हैं।"

डेल एस० बीच (Dale S. Beach) के अनुसार, "प्रशिक्षण एक ऐसी क्रमबद्ध प्रक्रिया है, जिसके द्वारा लोग किसी निश्चित उद्देश्य के लिए ज्ञान और चातुर्य सीखते हैं।"

जूसियस (Jucious) के अनुसार, "एक ऐसी प्रक्रिया, जिसके द्वारा विशिष्ट कार्यों के सम्पादन हेतु कर्मचारियों की प्रवृत्तियों, निपुणताओं एवं योग्यताओं में अभिवृद्धि की जाती है, प्रशिक्षण कहलाती है।"

प्लेंटी, फोर्ड एवं पीटरसन (Plenty, Ford & Peterson) के अनुसार, "प्रशिक्षण सभी स्तर के कर्मचारियों के उस ज्ञान, उन चातुर्यों तथा अभिवृत्तियों का सतत् एवं विधिवत् विकास है जो उनके एवं कम्पनी के कल्याण में योगदान प्रदान करते हैं।"

इस प्रकार संक्षेप में हम कह सकते हैं कि "प्रशिक्षण नये ज्ञान और कुशलता को सिखाने की एक सोची-समझी तथा सुनियोजित प्रक्रिया है जिससे कि कर्मचारी तुरन्त अथवा भविष्य में आने वाली चुनौतियों का सामना, अधिक दक्षता व प्रभावशाली तरीके से करने के लिए तैयार हो सके।"

प्रशिक्षण का महत्व/आवश्यकता (Importance/Need of Training)

प्रशिक्षण के माध्यम से कर्मचारियों में कार्य करने की क्षमता में वृद्धि, कौशल सुधार तथा अभिवृत्ति परिवर्तन जाग्रत कर उनके व्यावहारिक ज्ञान को विकसित किया जाता है ताकि वे अपने निर्धारित कार्य को दक्षतापूर्ण एवं प्रभावशाली ढंग से पूरा कर सकें। किसी भी व्यावसायिक उपक्रम में बिना प्रशिक्षण के कर्मचारी भली-भाँति कार्य को सम्पन्न नहीं कर पाते, इसलिए यह आवश्यक है कि उन्हें वैज्ञानिक ढंग से प्रशिक्षण प्रदान किया जाए। प्रशिक्षण के अभाव में उत्पादन कार्य में व्यवधान उत्पन्न होता है, साथ ही अनेक समस्यायें भी। अत: उत्पादन कार्य में उत्पन्न व्यवधान को दूर करने तथा समस्याओं का निराकरण करने में प्रशिक्षण का बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। प्रत्येक व्यावसायिक उपक्रम में कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता इसलिए होती है ताकि—

(i) कर्मचारियों में बहुमुखी प्रतिभाओं को विकसित करने के लिए, जिससे कि वे आवश्यकता पड़ने पर दूसरों का कार्य भी कर सकें, प्रशिक्षण आवश्यक है।

(ii) तकनीकी क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों एवं नवीन आयामों के प्रति कर्मचारी में सूक्ष्म व स्पष्ट समझने की क्षमता उत्पन्न हो सके।

(iii) टीम वर्क (Team work) को प्रोत्साहित किया जा सके।

Scanned with CamScanner

(iv) संगठन की स्थिरता (Stability of Organization) को कायम रखा जा सके और उसके लचीलेपन (Flexibility) में वृद्धि की जा सके।

(v) व्यापार में तेजी से होने वाले परिवर्तनों के चलते प्रशिक्षण का महत्व/आवश्यकता बढ़ी है। ये परिवर्तन निम्न हैं—

- जॉब में परिवर्तन,
- प्रक्रियाओं तथा विधियों में परिवर्तन,
- तकनीक में तेजी से परिवर्तन,
- व्यापार के आकार में परिवर्तन, तथा
- उत्पाद में परिवर्तन।

उपरोक्त परिवर्तन बहुत तेजी से होते हैं। अत: कर्मचारियों और अधिकारियों में परिवर्तनों को समझने एवं अपनाने के लिए ज्ञान, कौशल, प्रवृत्ति तथा समझ का होना आवश्यक है। इसके लिए समय-समय पर प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

(vi) उद्योग के प्रत्येक कर्मचारी की कार्य-निष्पादकता को सुधार कर ऐसे स्तर पर लाया जा सके जहाँ वह अपने कार्य को अधिकतम दक्षतापूर्ण ढंग से सम्पन्न कर सकें और उनकी कार्य क्षमता में वृद्धि हो सके, ताकि वह और अधिक जिम्मेदारीपूर्ण पदों को सम्भालने के योग्य बन सके।

(vii) कर्मचारियों को मानकीकृत कार्यविधियों (Standardized work methods) को सिखाया जा सके।

(viii) दुर्घटना दर को कम किया जा सके।

(ix) कर्मचारियों को संगठन की परम्पराओं, उत्पादन विधियों तथा मशीनों के संचालन इत्यादि की जानकारी के बारे में पर्याप्त ज्ञान कराया जा सके।

(x) नवीन अवसरों को नवीन आवश्यकताओं के प्रति कर्मचारी के दृष्टिकोण को समायोजित किया जा सके।

(xi) पुराने कर्मचारियों की कार्य कुशलता को बढ़ाने के लिए भी प्रशिक्षण आवश्यक है।

(xii) व्यापार के विस्तार के समय नयी भर्तियाँ करनी पड़ती हैं जिनको कार्य समझाने एवं अपनाने के लिए व उद्योग की गतिविधियों को बताने के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

(xiii) व्यापार में कई कार्य निर्धारित लक्ष्य के होते हैं तथा जो अपने आप में एकांकी तथा चुनौतपूर्ण होते हैं। ऐसे कार्य के लिए उचित प्रशिक्षण आवश्यक है।

(xiv) प्रशिक्षित कर्मचारियों की कल्पना (Imagination), निर्णयशीलता एवं कार्य-कुशलता से उत्पादकता (Productivity) में वृद्धि की जा सके तथा उत्पाद की गुणवत्ता (Quality) को सुधारा जा सके।

(xv) प्रबन्ध तथा कामगारों के मध्य मधुर सम्बन्ध तथा सहयोग की भावना को विकसित किया जा सके।

(xvi) संसाधनों की मितव्ययी व दक्षता उपयोग करके उत्पाद की लागत को कम किया जा सके।

(xvii) कर्मचारियों के मनोबल को ऊँचा उठाया जा सके।

(xviii) कर्मचारियों की कार्य से जी चुराने अथवा अनुपस्थित हो जाने की प्रवृत्ति को कम किया जा सके।

(xix) कर्मचारियों की थकान तथा शिथिलता को कम किया जा सके।

(xx) कर्मचारियों में कार्य करने की अच्छी आदतों में प्रभाविकता उत्पन्न की जा सके।

(xxi) उद्योग के सभी स्तर पर प्रशिक्षित कर्मचारी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो सकें।

(xxii) सामग्री की निष्प्रयोज्य दर (Scrap Rate) को कम किया जा सके।

(xxiii) श्रमिक टर्न ओवर को कम किया जा सके।

(xxiv) कार्य के प्रति कर्मचारी की उपयुक्तता की परख की जा सके।

प्रशिक्षण के उद्देश्य (Objectives of Training)

जब कोई कम्पनी/संगठन प्रशिक्षण तथा विकास का कार्य बनाता है तो उसका लक्ष्य उद्देश्य की पूर्ति करना होता है। प्रशिक्षण के तीन मुख्य उद्देश्य अग्र हैं—

Scanned with CamScanner

(i) ज्ञान का विस्तार करना,
(ii) कौशल का विकास करना, तथा
(iii) व्यवहार में बदलाव लाना।

प्राय: किसी संगठन में प्रशिक्षण के एक या अधिक उद्देश्य हो सकते हैं—

- कर्मचारी का बेहतर कार्य निष्पादन,
- अधिक मितव्ययी कार्य विधियों का विकास,
- जॉब को अधिक सन्तुष्टि,
- सहयोगपूर्ण टीम वर्क,
- नये कर्मचारियों को कम्पनी के कार्यों, नियोजन से अवगत कराना तथा पुराने कर्मचारियों के साथ मिलकर काम करने की आदत बनाना।
- नई तकनीकों को सीखना।

प्रशिक्षण कार्यक्रम की विशेषताएँ (Characteristics of Training Programme)

किसी भी व्यावसायिक संगठन या उपक्रम में यदि कर्मचारियों को एक क्रमबद्ध तथा श्रेष्ठ प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रशिक्षित किया जाये तो वह उपक्रम विकास के पथ पर बढ़ता ही जायेगा। इससे व्यापार भी बढ़ेगा और भविष्य भी उज्ज्वल होगा।

एक अच्छे प्रशिक्षण कार्यक्रम की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं—

(i) सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक (Theoretical as well as Practical)—एक अच्छा प्रशिक्षण वही समझा जाता है जो कि कर्मचारियों के सैद्धान्तिक व व्यावहारिक ज्ञान को समान रूप से विकसित कर सके। यह तभी सम्भव होगा जबकि प्रशिक्षण कार्यक्रम के निर्माण में सैद्धान्तिक व व्यावहारिक दोनों ही पहलुओं पर समान रूप से ध्यान दिया गया हो। कर्मचारियों को पूर्ण रूपेण प्रशिक्षित करने के लिए केवल सैद्धान्तिक प्रशिक्षण प्रदान करना ही पर्याप्त नहीं होता। व्यावहारिक प्रशिक्षण का भी महत्व उतना ही होता है जितना कि सैद्धान्तिक प्रशिक्षण का। अत: दोनों प्रशिक्षणों पर समान रूप से ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

(ii) उद्देश्य परक (Objective oriented)—एक अच्छा प्रशिक्षण सर्वथा उद्देश्य परक होना चाहिए जोकि व्यावसायिक उपक्रम तथा उसके कर्मचारियों के हितों की रक्षा कर सके। उद्देश्य विहीन प्रशिक्षण व्यावसायिक उपक्रम व कर्मचारी दोनों के लिए हानिप्रद एवं निरर्थक होता है।

(iii) लोचपूर्ण (Flexible)—प्रशिक्षण कार्यक्रम सर्वथा लोचपूर्ण होना चाहिए ताकि उसमें आवश्यकतानुसार यथासम्भव परिवर्तन किया जा सके।

(iv) सभी कर्मचारियों के लिए (For all Employees)—प्रतिस्पर्धायुक्त आधुनिक युग में प्रशिक्षण की आवश्यकता सभी कर्मचारियों के लिए अपरिहार्य हो गई है, चाहे वह किसी भी स्तर का कर्मचारी क्यों न हो। इसीलिए प्रशिक्षण कार्यक्रम में सभी कर्मचारियों को सम्मिलित किया जाना चाहिए अन्यथा अप्रशिक्षित कर्मचारियों में हीन भावना पैदा हो सकती है।

(v) वित्तीय स्थिति के अनुरूप (According to the financial position)—प्रशिक्षण कार्यक्रम का विस्तृतीकरण, व्यावसायिक उपक्रम की आर्थिक स्थिति के अनुरूप ही किया जाना चाहिए ताकि उपक्रम प्रशिक्षण सम्बन्धी खर्चों का सुगमतापूर्वक वहन कर सके।

(vi) पूर्ण प्रशिक्षण (Complete Training)—प्रशिक्षण कार्यक्रम इस प्रकार से तैयार किया जाना चाहिए ताकि उसे पूर्णरूपेण अपनाया जा सके ताकि कर्मचारियों को पूर्ण प्रशिक्षण प्राप्त हो सकेगा। अधूरा या अपूर्ण प्रशिक्षण व्यावसायिक उपक्रम के लिए सर्वथा अहितकर सिद्ध होता है।

(vii) निरन्तरता (Continuity)—कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहनी चाहिए, ताकि व्यावसायिक उपक्रम के नये व पुराने कर्मचारियों का सतत् विकास सम्भव हो सके।

Scanned with CamScanner

(viii) अनुभवी एवं वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा प्रदत्त प्रशिक्षण (Training conducted by the experienced and senior officers)—प्रशिक्षण कार्यक्रम के संचालन की व्यवस्था अनुभव एवं वरिष्ठ अधिकारियों के हाथों में होनी चाहिए, ताकि समस्त अधीनस्थ कर्मचारियों का विश्वास प्रशिक्षण कार्यक्रम बना रहे।

(ix) नियोजित एवं सुव्यवस्थित (Planned and well organized)—एक अच्छे प्रशिक्षण को भली-भाँति नियोजित एवं सुव्यवस्थित होना चाहिए ताकि न्यूनतम समय में यथासम्भव अधिकतम कर्मचारियों को प्रशिक्षण प्रदान किया जा सके।

(x) आधुनिकतम तकनीकों का समावेश (Inclusion of Latest Techniques)—एक अच्छा प्रशिक्षण वही होता है जिसके प्रशिक्षण कार्यक्रम में आधुनिकतम तकनीकों को समावेशित किया गया हो, क्योंकि आधुनिकतम तकनीकों से युक्त प्रशिक्षण कार्यक्रम ही कर्मचारियों को औद्योगिक क्षेत्र की नवीनतम उपलब्धियों से परिचित कराने में सहायक होता है।

प्रशिक्षण के लाभ (Benefits of Training)

किसी भी व्यावसायिक उपक्रम में प्रशिक्षित कर्मचारियों के अनेक लाभ होते हैं। वास्तव में प्रशिक्षित कर्मचारी संगठन की महत्वपूर्ण सम्पत्ति (Asset) कहे जा सकते हैं। प्रशिक्षण के प्रमुख लाभ निम्न हैं—

(i) कर्मचारी का उच्च आत्मविश्वास (Higher Employee Morale)—प्रशिक्षण से कर्मचारी का कौशल और दक्षता बढ़ती है और उसमें अधिक चुनौतीपूर्ण कार्यों को कर सकने का आत्मविश्वास पनपता है।

(ii) संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग (Optimum Utilization of Resoures)—प्रशिक्षण से कर्मचारियों, मशीनों एवं पदार्थों का अनुकूलतम प्रयोग किया जा सकता है।

(iii) संगठन की स्थिरता में वृद्धि (Increased Organizational Stability)—स्थिरता का अर्थ है कि महत्वपूर्ण व्यक्ति के संगठन छोड़कर चले जाने के बावजूद भी संगठन का स्थिर रहना।

(iv) उत्पादकता में **वृद्धि** (Increase in Productivity)—एक क्रमबद्ध प्रशिक्षण कार्यक्रम द्वारा कर्मचारी के कौशल और उसकी दक्षता में वृद्धि की जा सकती है। इससे उत्पादक की गुणवत्ता, संख्या तथा उत्पादकता में वृद्धि होती है।

(v) सुपरविजन में कमी (Reduced Supervision)—एक प्रशिक्षित कर्मचारी आत्म अनुशासन एवं आत्मनिरीक्षण के उच्च स्तर को बनाये रखता है। प्रशिक्षित कर्मचारी होने पर प्रबन्धन भी लचीला रुख अपनाता है और ऐसे कर्मचारियों के प्रोत्साहन के लिए नये-नये तरीके खोजता है। ऐसे कर्मचारियों के कार्यों के बार-बार निरीक्षण की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

(vi) दुर्घटनाओं में कमी (Reduced Accidents)—प्रशिक्षण से कर्मचारियों में अपने कार्य को सुरक्षित ढंग से करने और मशीनों आदि का परिचालन सुरक्षित ढंग से करने की प्रवृत्ति बढ़ती है।

(vii) कर्मचारियों की आय में वृद्धि (Increase in the Earning of the Employees)—जब प्रशिक्षित कर्मचारी अधिक उत्पादन करेगा तो स्वत: ही उसकी आय में वृद्धि हो जायेगी।

(viii) ब्रेक डाउन में कमी तथा कम अनुरक्षण लागत (Reduction Break down Maintenance Cost)—निवारण अनुरक्षण (Preventive Maintenance) में प्रशिक्षण तथा उन्नत विधियों को अपनाकर मशीनों की बेहतर देखभाल तथा अनुरक्षण किया जा सकता है। इनके साथ ब्रेकडाउन में तथा अनुरक्षण लागत में कमी आती है।

(ix) अदला-बदली तथा अनुपस्थिति में कमी (Reduced turnover and Absenteeism)—प्रशिक्षण से कर्मचारी में आत्मविश्वास बढ़ता है तथा कार्य के प्रति सन्तुष्टि में वृद्धि होती है। इससे शिकायतों में कमी, अदला-बदली तथा अनुपस्थिति में कमी आती है।

(x) निष्प्रयोज्य तथा बेकार सामग्री में कमी (Reduction in waste or Scrap Material)—प्रशिक्षित कर्मचारी/श्रमिक गलतियाँ कम करता है जिससे बेकार और त्रुटिपूर्ण एवं निष्प्रयोज्य उत्पादों की संख्या में कमी आती है।

(xi) स्व-विकसित अनुकरणीयता एवं चपलता (Self development versatility and adaptability)—स्वचालन तकनीकों में तेजी से होता परिवर्तन तथा कम्प्यूटर की बढ़ती उपयोगिता में आवश्यक हो गया है कि कर्मचारी अपने आपको इन परिवर्तनों के लिए मानसिक रूप से तैयार रखे और चपलता के साथ नयी तकनीक अथवा परिवर्तनों का अनुकरण

Scanned with CamScanner

करे। इसके लिए कर्मचारी को प्रशिक्षण की आवश्यकता पड़ती है तथा प्रशिक्षित कर्मचारी आसानी से इन परिवर्तनों को समझकर तदनुसार ही कार्य करता है।

प्रशिक्षण के सिद्धान्त (Principles of Training)

प्रशिक्षण के सिद्धान्तों का वर्णन विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से किया है, जिनमें फिलिप्पों तथा **मॉरिस बी० कर्मिंग** के नाम उल्लेखनीय हैं। सभी का विवेचन करने के उपरान्त निष्कर्षत: प्रशिक्षण के निम्नलिखित सिद्धान्त प्रतिपादित किये जा सकते हैं—

(i) व्यावहारिक प्रशिक्षण का सिद्धान्त (Principle of Practical Training)—व्यावहारिक प्रशिक्षण का सिद्धान्त प्रशिक्षण का मूल आधार है जो कि प्रशिक्षार्थियों में व्यावहारिक ज्ञान एवं कर्माभ्यास का प्रादुर्भाव करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रशिक्षण कार्यक्रम में केवल सैद्धान्तिक शिक्षा पर ही नहीं, अपितु व्यावहारिक शिक्षा पर भी विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए ताकि प्रशिक्षार्थियों में प्रदत्त कार्य के सम्बन्ध में व्यावहारिक ज्ञान एवं कर्माभ्यास में प्रवीणता प्राप्त हो सके।

(ii) पुन: प्रवर्तन का सिद्धान्त (Principle of Reinstigation)—यह सिद्धान्त इस बात की पुष्टि करता है कि प्रशिक्षण के समापन के बाद प्रशिक्षार्थियों को जो-जो लाभ देने का आश्वासन दिया है, उन्हें अवश्यमेव दिया जाना चाहिए ताकि प्रशिक्षार्थी उत्प्रेरित होकर मन से कार्य में रुचि ले सके।

(iii) टीम भावना उन्नत करने का सिद्धान्त (Principle of Promoting Team Work)—इस सिद्धान्त के अनुसार प्रशिक्षण कार्यक्रम में टीम भावना उन्नत करने पर विशेष बल दिया जाना चाहिए। इससे उपक्रम की उत्पादकता में आशातीत वृद्धि होती है।

(iv) उचित कार्यविधि का सिद्धान्त (Principle of Proper Work Method)—इस सिद्धान्त के अनुसार प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रशिक्षार्थियों को कार्य करने की सही व उचित कार्यविधि से पूर्णरूपेण अवगत कराया जाना चाहिए जिससे कि वे भविष्य में अपना कार्य उचित कार्यविधि से कर सकें।

(v) सहयोग का सिद्धान्त (Principle of Cooperation)—इस सिद्धान्त के अनुसार प्रशिक्षण कार्यक्रम आकर्षक, सन्तुष्टिदायक, मितव्ययी एवं प्रभावी होना चाहिए जो सभी कर्मचारियों में उद्देश्य प्राप्ति की मनोवृत्ति को एकाग्र (concentrate) करने में सर्वथा सक्षम हो। इस सिद्धान्त का मूल उद्देश्य प्रशिक्षार्थियों को प्रशिक्षित करने के साथ-साथ उनका पूर्ण सहयोग प्राप्त करना भी है।

(vi) अभिप्रेरणा का सिद्धान्त (Principle of Motivation)—इस सिद्धान्त के अनुसार प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रशिक्षार्थियों के प्रोत्साहन पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। अर्थात् प्रशिक्षण के प्रति कर्मचारियों को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से उन्हें कोई उचित प्रलोभन देकर उन्हें आश्वास्त किया जाना चाहिए कि सफल प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात् निश्चित रूप से प्रगति के अनुसार उन्हें दिये गये आश्वासन की पूर्ति भी की जायेगी। ऐसे आश्वासन से कार्य के प्रति कर्मचारियों को प्रोत्साहित किया जा सकता है।

(vii) उद्देश्य प्राप्ति का सिद्धान्त (Principle of Achieving Objectives)—प्रशिक्षण का सिद्धान्त मूलत: उद्देश्यपरक होना चाहिए। यदि प्रशिक्षण कार्यक्रम द्वारा व्यावसायिक उपक्रम के अभीष्ट उद्देश्यों की पूर्ति सम्भव नहीं हो पाती तो उस पर व्यय होने वाला धन तथा समय दोनों ही व्यर्थ हो जाते हैं। इसीलिए प्रशिक्षण कार्यक्रम में उपक्रम के उद्देश्य ध्यान में रखना नितान्त आवश्यक है।

(viii) प्रगति प्रतिवेदन का सिद्धान्त (Principles of Progress Reporting)—इस सिद्धान्त का मूल मन्तव्य यह पता करना है कि प्रशिक्षार्थी ने कार्य के सम्बन्ध में कितना सीखा अर्थात् उसकी कार्य-प्रगति कितनी हुई। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रशिक्षार्थियों के प्रशिक्षण के दौरान उनके सीखने के ढंग पर भी प्रशिक्षक को पूर्ण दृष्टि रखनी चाहिए तथा उनकी प्रगति एवं त्रुटियों से उन्हें भली-भाँति अवगत कराया जाना चाहिए।

(ix) अभ्यास का सिद्धान्त (Principle of Practice)—अभ्यास का सिद्धान्त यह बताता है कि प्रशिक्षण अवधि में सीखे गये कार्य का बार-बार अभ्यास किया जाना चाहिए, क्योंकि किसी भी प्रशिक्षण को एक बार प्राप्त कर लेना पर्याप्त नहीं होता। पूर्णत: निपुणता तभी प्राप्त होती है जबकि सीखे गये कार्य की कई बार पुनरावृत्ति की जाए।

Scanned with CamScanner

(x) पश्च-पुष्टि का सिद्धान्त (Principle of Feedback)—इस सिद्धान्त के अनुसार कर्मचारियों की पश्च-पुष्टि पर ध्यान दिया जाता है। अर्थात् प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात् यदि कोई त्रुटि रह जाये तो उसे दूर करने की दिशा में उचित प्रयास किया जाना चाहिए तथा उनकी जिज्ञासा पर उन्हें सही ढंग से कार्य करने की सही विधि को भली-भाँति समझा दिया जाना चाहिए।

प्रशिक्षण की नीतियाँ (Training Strategies)

नीतियुक्त प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रशिक्षण की सभी विशेषताओं एवं सिद्धान्तों का समावेश होता है। ऐसा कार्यक्रम कर्मचारियों की प्रवृत्तियों, निपुणताओं एवं योग्यताओं में अभिवृद्धि करके उनकी कार्य क्षमता, उत्पादकता एवं मनोबल में वृद्धि करने में अहम भूमिका निभाता है। प्रशिक्षण देना संगठन की नीतियों का एक हिस्सा होता है जिससे कर्मचारी का सर्वोत्तम कार्य निष्पादन प्राप्त किया जा सके। ऐसे में प्रशिक्षण कार्यक्रम का निर्देशन ऐसे व्यक्ति के हाथों में होना चाहिए जिसे प्रशिक्षण नीतियों का पूर्ण ज्ञान हो। एक सुयोग्य प्रशिक्षक को निम्न मुख्य नीतियों का ज्ञान होना आवश्यक है—

(i) कार्य आदेश प्रशिक्षण (Job Instruction Training)—इस नीति के अन्तर्गत प्रशिक्षकों को आदेश देने की प्रक्रिया से भली-भाँति परिचित कराया जाता है ताकि उनमें प्रशिक्षण प्रदान करने की इस कला का विकास हो सके।

(ii) कार्यक्रम विकास प्रशिक्षण (Programme Development Training)—प्रशिक्षण की इस नीति के अन्तर्गत प्रशिक्षण अनुदेशकों को प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा नवीनतम योजनाओं के क्रियान्वयन का प्रशिक्षण दिया जाता है ताकि वह प्रभावी ढंग से प्रशिक्षण कार्य सम्पादित करा सके।

(iii) कार्यविधि प्रशिक्षण (Job Method Training)—इस नीति के अन्तर्गत प्रशिक्षकों को कार्य करने की नवीनतम व श्रेष्ठतम विधियों से अवगत कराया जाता है जिससे वे ये विधियाँ कर्मचारियों को सिखा सकें।

(iv) प्रशिक्षु-सम्बन्ध प्रशिक्षण (Trainee-Relation Training)—इस नीति के अन्तर्गत प्रशिक्षकों को यह बताया जाता है कि प्रशिक्षण के दौरान-प्रशिक्षार्थियों के साथ सदैव मधुर सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया जाये जिससे प्रशिक्षण कार्य प्रभावी ढंग से किया जा सके।

प्रशिक्षण की तकनीकें (Techniques of Training)

श्रेष्ठ प्रशिक्षण की प्रमुख तकनीकें, जिनके माध्यम से प्रभावी एवं सफल प्रशिक्षण प्रदान किया जा सकता है, निम्नांकित हैं—

(i) समय तालिका (Time Schedule)—प्रशिक्षण कार्य को अधिक बोधगम्य एवं सुगम बनाने के लिए प्रशिक्षण की क्रियाविधि के प्रारम्भ करने से पूर्व एक समयबद्ध प्रशिक्षण तालिका बनायी जाती है जिसकी सहायता से एक सुनियोजित ढंग से प्रभावी प्रशिक्षण प्रदान करना बहुत आसान हो जाता है।

(ii) व्यक्तिगत स्पर्श (Personal Touch)—प्रभावी प्रशिक्षण के लिए यह बहुत आवश्यक है कि प्रत्येक प्रशिक्षार्थी प्रशिक्षक को अपने सन्निकट ही अनुभव करे, साथ ही प्रत्येक प्रशिक्षार्थी पर व्यक्तिगत रूप से प्रशिक्षक का प्रभाव भी परिलक्षित होता रहे।

(iii) क्रमबद्ध जानकारी (Systematic Knowledge)—किसी भी कर्मचारी को प्रशिक्षण द्वारा सारी जानकारी एक ही दिन में दे देना औचित्यपूर्ण नहीं होता, क्योंकि कोई भी प्रशिक्षार्थी एक ही दिन के प्रशिक्षण से दक्ष कारीगर कदापि नहीं बन सकता। अत: पूर्ण दक्षता प्राप्त करने के लिए प्रत्येक बात एवं तथ्य को धीरे-धीरे क्रमबद्ध तरीके से भली-भाँति समझाया जाना चाहिए।

(iv) स्वावलम्बी निर्णय (Independent Decision)—इस तकनीक के द्वारा प्रशिक्षार्थी को आत्मविश्वासी एवं स्वावलम्बी निर्णय लेने योग्य बनाया जाता है। इसके लिए आवश्यक है कि कार्य का ज्ञान होने पर कर्मचारी को स्वतन्त्र रूप से कार्य करने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए जिससे उसमें आत्मविश्वास की वृद्धि हो सके तथा वह कार्य से सम्बन्धित कोई भी आवश्यक निर्णय भी ले सके।

(v) कार्य का विभाजन (Distribution of Work)—प्रशिक्षण के दौरान प्रशिक्षार्थियों को कब क्या सिखाना है, यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए। इसके लिए प्रत्येक उप-कार्य को सुनियोजित समय-तालिका के अनुसार काल-श्रेणी में इस

Scanned with CamScanner

प्रकार बाँट लिया जाना चाहिए कि अमुक कार्य अमुक समय में प्रशिक्षार्थियों को सिखाया जाना है। इस प्रकार कार्य विभाजन की तकनीक से प्रशिक्षण कार्य सुगम हो जाता है।

(vi) मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि (Psychological Background)—इस तकनीक की भी प्रशिक्षण को प्रभावी बनाने में अहम् भूमिका होती है। सदैव यही प्रयत्न किया जाना चाहिए कि प्रशिक्षार्थी सदैव प्रसन्नचित्त रहे। यदि प्रशिक्षार्थी प्रशिक्षण के दौरान किसी तनाव में होंगे तो उनका ध्यान प्रशिक्षण की ओर न होकर अन्यत्र होगा। इसीलिए यह आवश्यक है कि प्रशिक्षण देने से पूर्व प्रशिक्षणदाता द्वारा मनोवैज्ञानिक ढंग से ऐसा वातावरण तैयार किया जाना चाहिए जिससे सभी प्रशिक्षार्थियों का ध्यान अन्यत्र से हटकर केवल प्रशिक्षण ग्रहण करने की ओर ही हो जाए।

(vii) आद्योपन्त अथवा सम्पूर्ण प्रस्तुतिकरण (Up to date or Complete Demonstration)—प्रशिक्षणदाता को प्रशिक्षण देते समय काफी संयम बरतना चाहिए और कार्य से सम्बन्धित सभी तथ्यों को भली-भाँति स्पष्ट करते हुए प्रशिक्षार्थियों के समक्ष समस्त क्रियाविधि को तन्मय होकर धैर्य के साथ आद्योपन्त समझाना चाहिए, ताकि प्रशिक्षार्थियों में किसी प्रकार का भ्रम पैदा न हो सके।

(viii) गतिविधियों पर ध्यान (Attention on Activities)—यह प्रशिक्षण की एक ऐसी तकनीक है जिसके माध्यम से प्रशिक्षणदाता प्रशिक्षण देते समय प्रशिक्षार्थियों की गतिविधियों पर विशेष ध्यान देता है। प्रशिक्षण के दौरान कोई प्रशिक्षार्थी किसी प्रकार की गलती करता है तो उसी समय इस गलती में आवश्यक सुधार कर दिया जाता है। यदि कार्य से सम्बन्धित कोई तथ्य स्पष्ट रूप से प्रशिक्षार्थी की समझ में नहीं आता तो प्रशिक्षणदाता उसे भली-भाँति समझाता है, साथ ही स्पष्टता की पुष्टि होने तक उससे बार-बार कार्य कराकर देखता है।

प्रशिक्षण विधियाँ (Training Methods)

प्रशिक्षण के लिए अपनाई जाने वाली प्रमुख विधियाँ निम्न हैं—

(i) प्रदर्शन विधि (Demonstration Method)—मशीन पर किस कार्य को कैसे करना है यह कला सिखाने के लिए प्रदर्शन विधि प्रयोग की जाती है। इससे प्रशिक्षुओं को हस्त कौशल का महत्व पता चलता है। उदाहरणतया: ड्रिलिंग मशीन पर जॉब को कैसे बाँधते हैं। टूल कहाँ पर पकड़ा जाता है तथा ड्रिलिंग क्रिया कैसे सम्पन्न होती है।

(ii) ग्रुप निर्देशन (Group Instructions)—इस विधि में प्रशिक्षुओं के ग्रुप को जॉब के सम्बन्ध में सैद्धान्तिक निर्देश दिये जाते हैं। जैसे—अमुक कार्य को करने के लिए अपनाई जाने वाली नई तकनीक के बारे में जानकारी देना।

(iii) मौखिक अनुदेश (Oral Instruction)—संक्षिप्त रूप से सूचनायें तत्काल प्रदान करने के उद्देश्य से मौखिक अनुदेश विधि अपनायी जाती है। उदाहरणतया जब कोई कर्मचारी कोई नया कार्य करता है तो कार्य के मूल सिद्धान्त मौखिक अनुदेश देकर समझाये जाते हैं।

(iv) एकल निर्देशन (Individual Instruction)—अमुक कर्मचारी पर व्यक्तिगत ध्यान देकर जटिल कार्यों को सिखाने की प्रक्रिया को एकल निर्देशन कहते हैं। जैसे—अमुक प्रकार की मशीन को चालू करना, मशीन पर कार्य करना तथा बन्द करना आदि के निर्देश देना।

(v) बैठक (Meating)—सूचनाओं के आदान-प्रदान, समस्याओं का तत्काल हल खोजने तथा कार्यकारी समूह के विचार प्राप्त करने के लिए बैठकों का आयोजन किया जाता है। उदाहरणतया, सुरक्षा उपायों पर बुलायी गयी बैठक में कर्मचारियों तथा सुपरवाइजर से किस मशीन तथा आपरेशन विधि को कैसे सुरक्षित बनाया जा सकता है, पर विचार-विमर्श करके उचित समाधान निकाला जाता है तथा दुर्घटनाओं में कमी लायी जाती है।

(vi) व्याख्यान विधि (Lecture Method)—विशिष्ट विषयों पर आवश्यक जानकारी देने की यह एक आधारभूत एवं प्रभावी प्रशिक्षण विधि है। जैसे—लेथ टूल की ज्यामिति बताना या उस पर लगने वाले बलों का आकलन करना आदि।

(vii) लिखित अनुदेश विधि (Written Instructional Method)—प्रशिक्षुओं को महत्वपूर्ण सूचनायें जो स्थाई तौर पर, तात्कालिक प्रयोग हेतु या भविष्य में प्रयोग के लिए आवश्यक होगी, दिये जाने की विधि को लिखित अनुदेश विधि कहते हैं। उदाहरणतया किसी जॉब को तैयार करने के लिए मानक प्रैक्टिस के इंस्ट्रक्शन मैनुअल प्रदान करना।

Scanned with CamScanner

(viii) सम्मेलन (Conference)—प्रशिक्षण देने की यह विधि काफी लचीली है। सम्मेलन बुलाकर सार्वजनिक समस्यायें जैसे अभिवृत्ति में परिवर्तन लाना, समस्याओं को सुलझाना, स्क्रैप को कम करना, अनुपस्थित रहने की आदत पर लगाम लगाना आदि पर विचार किया जाता है। इस विधि में समस्याओं का हल आपसी विचार-विमर्श द्वारा तथा पिछले अनुभवों को संज्ञान में रखकर किया जाता है। सम्मेलन अथवा सैमिनार प्रशिक्षण के दौरान सम्मेलन में भाग लेने वाले सभी व्यक्ति आमने-सामने बैठकर किसी समस्या पर अपने-अपने विचार प्रस्तुत करते हैं। सामान्यत: इन सम्मेलनों को निम्नांकित तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है—

(1) निर्देशित सम्मेलन (Directed Conference)—इस सम्मेलन में कार्य से सम्बन्धित महत्वपूर्ण पहलुओं पर प्रशिक्षक अपने विचार प्रशिक्षार्थियों के समक्ष इसी आशा से प्रस्तुत करता है कि सभी प्रशिक्षार्थी उसके विचारों को भली-भाँति ग्रहण करेंगे। प्रशिक्षक द्वारा अपने विचार प्रस्तुत करने के बाद सभी प्रशिक्षार्थियों को विचार-विमर्श करने के उद्देश्य से आमन्त्रित किया जाता है। इस सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रशिक्षार्थियों की संख्या सीमित ही रखी जाती है ताकि सभी प्रशिक्षार्थी विचार-विमर्श में पर्याप्त भाग ले सकें तथा उन्हें भली-भाँति प्रशिक्षित भी किया जा सके।

(2) परामर्शदात्री सम्मेलन (Consultative Conference)—परामर्शदात्री सम्मेलन में प्रबन्धकों या आयोजकों द्वारा परामर्श के आधार पर निर्णय लिये जाते हैं और अन्तिम प्रबन्धकों की इच्छा पर ही निर्भर होता है कि वे सम्मेलन के परामर्श को माने या न माने। परामर्शदात्री सम्मेलन में प्रबन्धक उपस्थित समूह के साथ विचार-विमर्श करके विभिन्न विचारधाराओं में उचित सामंजस्य स्थापित करके समस्या का सर्वश्रेष्ठ हल निकाल लेते हैं। चूँकि यह हल सभी के परामर्श के आधार पर होता है, अत: यह सर्वमान्य भी होता है।

(3) समस्या निवारक सम्मेलन (Problem Solving Conference)—इस प्रकार के सम्मेलन की प्रकृति निर्णयात्मक होती है क्योंकि सम्मेलन में भाग लेने वाले सभी व्यक्तियों के द्वारा निर्णायक की भूमिका को निभाया जाता है। समस्या निवारक सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य समस्या विशेष पर विचार-विमर्श करना और उसका उचित निराकरण होता है। सम्मेलन का नेता उपस्थित समूह के समक्ष अपने विचार प्रस्तुत करता है, समस्या को सही रूप से सभी को समझाने की पूर्ण चेष्टा करता है, साथ ही विचार आकर्षित करता है और सभी को अपने विचार प्रस्तुत करने के लिए उन्हें प्रोत्साहित भी करता है और सभी उपस्थित व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत विचारों में उचित समन्वय स्थापित करके सर्वसम्मति से निर्णय लिया जाता है।

प्रशिक्षण की सीमाएँ (Limitations of Training)

(i) प्रशिक्षण एवं कर्मचारी में सीखने की अभिरूचि का गहरा सम्बन्ध है। प्रशिक्षण ऐसे कर्मचारी को कोई लाभ नहीं पहुँचा सकता जो स्वयं सीखने का इच्छुक न हो।

(ii) प्रशिक्षण केवल सिखाने का एक माध्यम है। प्रशिक्षण द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक बात नहीं सिखायी जा सकती है।

(iii) प्रशिक्षण से कर्मचारियों की भर्ती एवं चयन पद्धति के दोषों को दूर करना सम्भव नहीं है।

(iv) प्रशिक्षण से संगठन के दोषों का भी निवारण नहीं किया जा सकता है।

(v) प्रशिक्षण से संगठन के नियमित कार्यक्रम में बाधा पहुँचती है।

(vi) प्रशिक्षण की योग्यता प्रशिक्षण को प्रभावित करती है। प्रशिक्षण प्रदान करना एक कठिन कार्य है तथा प्रशिक्षक की अयोग्यता प्रशिक्षण की उपयोगिता को समाप्त कर सकती है।

(vii) कार्यक्षमता में वृद्धि कर्मचारी के स्वयं प्रयासों पर निर्भर करती है, न कि प्रशिक्षण पर।

(viii) प्रशिक्षण एक खर्चीली प्रक्रिया है तथा बड़े उपक्रम ही इसके बोझ को सहन कर सकते हैं।

उपरोक्त सीमाओं से यह आशय नहीं है कि प्रशिक्षण व्यर्थ है। प्रशिक्षण के अनेक लाभ हैं और उपरोक्त सीमाओं पर विजय पायी जा सकती है।

2.3. (ब) कार्य मूल्यांकन एवं योग्यता अंकन (Job Evaluation)

एक अच्छी वेतन प्रशासन प्रणाली का मुख्य उद्देश्य हे कि एक समान अथवा भिन्न संगठनों में एक ही स्तर पर अर्थात् एक जैसा कार्य करने वाले श्रमिकों अथवा कर्मचारियों को एकसमान वेतन मिले। एक जैसा कार्य करने वाले कर्मचारियों के वेतनों में किसी भी प्रकार का पक्षपात (Inequity) अथवा भिन्नता कर्मचारियों के मन में रोष या असन्तोष की भावना उत्पन्न

Scanned with CamScanner

कर देता है। इससे कर्मचारी अपना कार्य मन लगाकर नहीं करता है तथा कार्य छोड़कर दूसरी जगह जा सकता है। इससे श्रमिक के फेर बदल (Turnover) में वृद्धि होती है। किसी कार्य को करने के लिए अनुभवी तथा कुशल कर्मचारी का अभाव बना रहता है जिससे संगठन की उत्पादकता तथा उत्पाद की गुणवत्ता दोनों पर बहुत बुरा असर पड़ता है। इस विषय परिस्थिति से बचने के लिए श्रमिकों अथवा कर्मचारियों द्वारा किये जा रहे कार्यों की सुनियोजित तुलना अथवा आकलन करने की परमावश्यकता होती है। यह तुलना अथवा आकलन उनके वेतन निर्धारण तथा मजदूरी दरों को सुनिश्चित करने में सहायक होता है। कार्य मूल्यांकन का सम्बन्ध केवल कार्य से होता है जबकि योग्यता अंकन द्वारा कर्मचारियों के तुलनात्मक गुणों की जानकारी प्राप्त की जाती है।

कार्य मूल्यांकन एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत किसी उपक्रम में एक कृत्य (Job) की तुलना अन्य कृत्यों से की जाती है। आधुनिक औद्योगिक युग में एक ही संगठन में विभिन्न प्रकार के कृत्य होते हैं जिनमें विभिन्न व्यक्ति कार्य करते हैं। इन कृत्यों का तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है। ऐसे अध्ययन के आधार पर ही विभिन्न कृत्यों की मजदूरी ढाँचे की संरचना का निर्माण किया जाता है। कृत्यों की तुलना विभिन्न प्रकार के घटकों के आधार पर की जाती है, जैसे—कर्त्तव्य, दायित्व, कार्यदशाएँ प्रयत्न आदि। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कार्य मूल्यांकन विधि के द्वारा किसी विशिष्ट कृत्य का अन्य कृत्यों की तुलना में पारिश्रमिक निर्धारण किया जाता है। कुछ व्यक्ति कार्य मूल्यांकन को "कार्य दर निर्धारण" भी कहते हैं।

अल्फर्ड एवं **बीटी** के अनुसार—"कार्य मूल्यांकन से आशय मजदूरी एवं प्रशासन के सम्पूर्ण क्षेत्र से है।"

मॉरिस बी० कर्मिंग के अनुसार—"कार्य मूल्यांकन प्रत्येक कार्य का सम्पूर्ण संगठन में अन्य कार्यों की तुलना में मूल्यांकन करने की तकनीक है।"

अमरिन एवं **हुले** के अनुसार—"कार्य मूल्यांकन संगठन में उनके कार्यों के सापेक्षिक मूल्य-निर्धारण तथा समुचित भृत्ति संरचना की स्थापना की एक व्यवस्थित पद्धति है।"

किम्बाल एवं किम्बाल के अनुसार—"किसी संयत्र में प्रत्येक कार्य का सापेक्षिक मूल्य मालूम करने तथा ऐसे कार्य के लिए उचित आधारभूत मजदूरी का पता लगाने का प्रयत्न ही कार्य मूल्यांकन है।"

डेल योडर के अनुसार—"कार्य मूल्यांकन एक व्यवहार है जो कि एक संगठन में तथा इसके समान संगठनों में विभिन्न कृत्यों के तुलनात्मक मूल्य का माप ज्ञात करने में एक दृढ़ता प्रदान करता है। यह मुख्य रूप से कृत्य श्रेणीयन विधि (Job rating Process) है जो कर्मचारी के श्रेणीयन से भिन्न नहीं है।"

एडविन बी० फिलिप्पो के अनुसार, "संगठन के अन्तर्गत किसी का मूल्यांकन करने की व्यवस्थित तथा नियमित विधि कार्य मूल्यांकन कहलाती है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि, "किसी संस्था के विभिन्न कार्यों की आपेक्षिक तुलना करके प्रत्येक का मूल्य निर्धारण करना ही कार्य मूल्यांकन है, ताकि एक समुचित मजदूरी एवं वेतन नीति का निर्धारण किया जा सके।" अन्य शब्दों में, "प्रत्येक कार्य के लिए दी जाने वाली मजदूरी वेतन या पारिश्रमिक का निर्धारण करना ही कार्य मूल्यांकन है।"

कार्य मूल्यांकन के उद्देश्य (Objectives of Job Evaluation)

(i) समान कार्य के लिए वेतन में असमानताओं को समाप्त करना।
(ii) भविष्य में किये जाने वाले जॉब के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता को पहचानना।
(iii) इसका मुख्य उद्देश्य एक उचित एवं एकसमान वेतन ढाँचा तैयार करना है।
(iv) कार्य सन्तुष्टि प्रदान करके श्रमिक टर्न ओवर कम करना।
(v) जॉब से जुड़े अधिकारों और कर्त्तव्यों को स्पष्ट करना।
(vi) एक संगठन में विभिन्न जॉब का तुलनात्मक मान (Values) ज्ञात करना तथा उसके अनुसार उनमें वेतन का अन्तर स्थापित करना।
(vii) औद्योगिक विवादों एवं श्रमिक असन्तोष के कारणों को न्यूनतम करना।
(viii) कर्मचारियों के स्थानान्तरण (Transfer), प्रोन्नति, भर्ती तथा चयन के लिए आधार तैयार करना।

Scanned with CamScanner

एक यथार्थ एवं उपयोगी जॉब अध्ययन करने के लिए एक चार बिन्दु जॉब विश्लेषण सूत्र का प्रयोग किया जाता है। ये चार बिन्दु हैं—

(i) कर्मचारी को क्या करना है?
(ii) वह इसको कैसे करेगा?
(iii) वह इसको क्यों करेगा?
(iv) इसको करने के लिए क्या कौशल होना चाहिए?

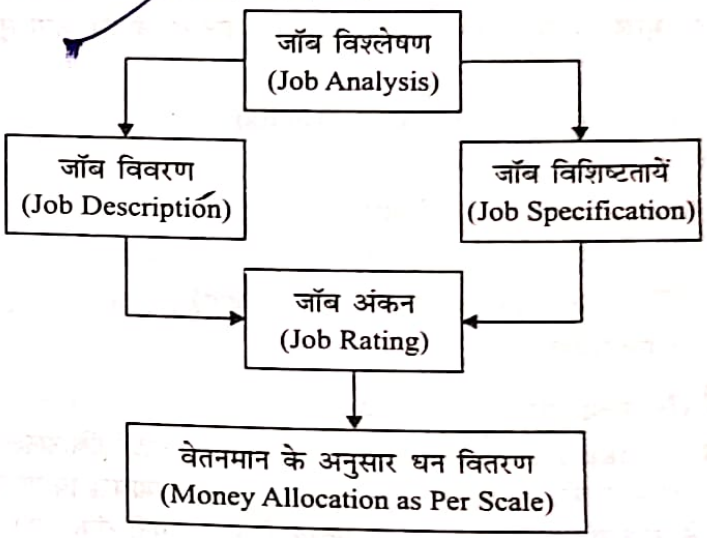
एक विश्लेषक को जॉब की सम्पूर्ण सीमाओं (Scope) को स्थापित करना चाहिए और कर्मचारी द्वारा की जाने वाली सभी मानसिक एवं शारीरिक गतिविधियों को दृष्टिगत रखना चाहिए।

विश्लेषक को कर्मचारी द्वारा प्रयोग किये जाने वाली भौतिक विधियों, मशीनों, औजारों उसका मानसिक एवं शारीरिक प्रयोग का भी अवश्य अध्ययन करना चाहिए।

"क्यों करेगा" का अर्थ है कि कार्य अथवा जॉब को करने का ओवर-ऑल उद्देश्य क्या है?

"कौशल का अर्थ है जॉब को करने में आने वाली कठिनाईयों एवं चुनौतियों का सामना करने की योग्यता। विश्लेषक को कौशल का अध्ययन करते समय कार्य परिस्थितियाँ और जॉब से जुड़े खतरों को भी ध्यान में रखना चाहिए।

कार्य मूल्यांकन के विभिन्न अवयव चित्र द्वारा प्रदर्शित है—



कार्य मूल्यांकन के सिद्धान्त (Principles of Job Evaluation)

ए० एल० क्रेस (A.L. Kress) ने कार्य मूल्यांकन के सम्बन्ध में 8 सिद्धान्त बताये हैं, जो इस प्रकार हैं—

(i) कार्य का निष्पक्ष मूल्यांकन (Fair Evaluation of the Job)—कार्य की आवश्यकतायें स्थिर एवं निश्चित रहती हैं। प्रशिक्षण के लिए चयनित व्यक्ति, कार्य की अपेक्षा कम अथवा अधिक योग्य हो सकता है, अत: व्यक्ति विशेष को महत्व न देकर कार्य का निष्पक्ष मूल्यांकन करना चाहिए। कार्य का मूल्यांकन पक्षपात रहित एवं विवेक के साथ किया जाना चाहिए।

(ii) फोरमैनों का सहयोग (Formen's Co-operation)—कार्य मूल्यांकन में फोरमैनों को अवश्य सहयोग देना चाहिए, क्योंकि वह अन्य कर्मचारियों से कार्य कराते हैं तथा उन्हें प्रत्येक कर्मचारी के कार्य का सही अनुमान रहता है।

(iii) समझ की समरूपता (Uniformity of Understanding)—किसी कार्य की सफलता पूर्णतया समझ की समरूपता पर निर्भर करती है। प्रत्येक अवयव पूर्ण परिभाषित (Well defined) होना चाहिए।

(iv) तत्त्वों का कम एवं विश्लेषण योग्य होना (Factors in few numbers and analysable)—कार्य मूल्यांकन के उद्देश्य से जिन तत्त्वों को चुना जाये उनकी संख्या अधिक नहीं होनी चाहिए तथा वे ऐसे होने चाहिए जिनका आसानी से विश्लेषण सम्भव हो सके।

Scanned with CamScanner

(v) मौद्रिक मूल्यों की गोपनीयता (Secrecy of Monetary Values)—मौद्रिक मूल्यों के सम्बन्ध में पूर्ण गोपनीयता बरतनी चाहिए, जिससे किसी झगड़े व विवाद की सम्भावना न बने।

(vi) कर्मचारियों द्वारा स्वीकार्य मूल्यांकन (Self Evaluation by the Employees)—कर्मचारियों को अपने कार्य का स्वयं मूल्यांकन करने का अवसर दिया जाना चाहिये, ताकि उन्हें स्वयं के प्रति निष्पक्ष रहने का सुअवसर प्राप्त हो सके।

(vii) कार्य मूल्यांकन योजना का सम्प्रेषण (Communication of Job rating Plan)—कर्मचारियों में कार्य मूल्यांकन योजना के बारे में प्रभावी सम्प्रेषण किया जाना चाहिए जिससे कि कर्मचारियों अथवा सुपरवाइजरों को यह योजना पूर्णत: समझ में आये और किसी को कोई संशय न रहे।

(viii) तत्त्वों का सही चुनाव (Proper Selection of Factors)—कार्य मूल्यांकन हेतु जो भी तत्त्व रखे जायें उनका चुनाव बड़ी ही सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए एवं उनकी स्पष्ट रूप से व्याख्या की जानी चाहिए।

(ix) मजदूरी की न्यायपूर्ण दरें (Reasonable Rates of Wages)—कार्य मूल्यांकन करते समय इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए कि मजदूरी की निर्धारित दरें अत्यधिक न हों। इससे उपक्रम पर वित्तीय भार बढ़ जाता है।

कार्य मूल्यांकन की विधियाँ (Methods of Job Evaluation)

कार्य मूल्यांकन तकनीक का मुख्य उद्देश्य विभिन्न कार्यों का मूल्यांकन करना है। कार्य मूल्यांकन की विभिन्न विधियाँ निम्नलिखित हैं—

A. **गैर-संख्यात्मक विधियाँ** (Non-quantitative methods)
   (i) श्रेणी विभाजन विधि (Ranking method)
   (ii) वर्गीकरण विधि (Classification method)

B. **संख्यात्मक विधियाँ** (Quantitative methods)
   (i) घटकों की तुलना विधि (Factors comparison method)
   (ii) बिन्दु विधि (Point method)

A. गैर-संख्यात्मक विधियाँ (Non-quantitative methods)

(i) श्रेणी विभाजन विधि (Ranking Method)—कार्य मूल्यांकन की यह विधि सरलतम एवं प्राचीन है। इस विधि में कार्यों को सबसे अधिक महत्वपूर्ण से लेकर सबसे कम महत्वपूर्ण कार्य तक श्रेणीबद्ध किया जाता है। प्रत्येक विभागाध्यक्ष अपने विभाग के कार्यों को महत्ता के क्रम में व्यवस्थित करता है। प्रत्येक विभाग अपनी रेंकिंग केन्द्रिक समिति को भेजता है जो कार्यों का ग्रेड के अनुसार समूह बना देते हैं। श्रेणीबद्ध करते समय निम्न बिन्दुओं पर विचार किया जाता है—

(i) कार्य की मात्रा (Amount),
(ii) आवश्यक पर्यवेक्षण,
(iii) आवश्यक उत्तरदायित्व की सीमा,
(iv) कार्य सम्पादन में आने वाली कठिनाइयाँ,
(v) कार्य की नीरसता,
(vi) आवश्यक कार्य परिस्थितियाँ, तथा
(vii) आवश्यक ज्ञान तथा अनुभव।

लाभ (Advantages)

श्रेणी विभाजन विधि के प्रमुख लाभ निम्न हैं—

(i) यह विधि सरलतम एवं द्रुत है।
(ii) यह कम खर्चीली है।
(iii) यह सुगमता से नियन्त्रित व अनुशासित की जा सकती है।

Scanned with CamScanner

(iv) यह विधि छोटे संगठनों के लिए अधिक उपयोगी है जहाँ कम संख्या में कार्यों (Jobs) का मूल्यांकन करना होता है।

(v) इसके लिए विशेष ज्ञान एवं योग्यता की आवश्यकता नहीं होती है।

दोष (Disadvantages)

यह विधि के प्रमुख दोष निम्न हैं—

(i) यह विधि अन्य विधियों की तुलना में अधिक यथार्थ नहीं होती।

(ii) इसमें वास्तविक जानकारियों का अभाव रहता है। ये केवल उच्चतम एवं निम्नतम मानों को दर्शाता है लेकिन एक जॉब से दूसरे जॉब में कितना अन्तर है, यह इसमें पता नहीं चल पाता है।

(iii) यह बड़े संगठनों के लिए सर्वाधिक अनुपयुक्त है।

(iv) यह किसी वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित नहीं होती। अत: इसमें सुदृढ़ता का अभाव रहता है।

(v) इसमें कोई जॉब 'A' किन्हीं कारणों से जॉब 'B' से बेहतर हो सकता है तथा अन्य कारणों से जॉब 'B' जॉब 'A' से बेहतर हो सकता है। अत: यह निर्धारित करना कठिन है कि कौन-सा जॉब बेहतर है।

(ii) वर्गीकरण विधि (Classification Method)—इस विधि में सर्वप्रथम सभी कार्यों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त की जाती है; इसके बाद कार्यों को समान कौशल, कठिनाइयों, दायित्वों, महत्व तथा अन्य आवश्यकताओं के आधार पर विभिन्न समूहों में वर्गीकृत कर दिया जाता है। यह चाहे उत्पादन कार्य हो या सेल्स कार्य अथवा ऑफिस कार्य, सबको ग्रेडिंग की जाती है। इस ग्रेडिंग अथवा मजदूरी की दरों का निर्धारण किया जाता है। इस विधि में मुख्य पद निम्न हैं—

(i) कार्य विवरण तैयार करना।

(ii) ग्रेड की संख्या निर्धारित करते हैं (पाँच, छ: आदि)।

(iii) कार्य विवरण की तुलना ग्रेडस्तरीय विवरणों से करते हैं तथा कार्य का ग्रेड तय करते हैं।

(iv) मूल्यांकन किये जाने वाले कार्यों को पहचान कर सूचीबद्ध करना।

(v) ग्रेड की स्तर का विवरण लिखते हैं।

लाभ (Advantages)

वर्गीकरण विधि के निम्न लाभ हैं—

(i) यह विधि अपेक्षाकृत विश्वसनीय है।

(ii) यह विधि सरल है तथा इसे लागू करना आसान है।

दोष (Disadvantages)

इस विधि के दोष निम्न हैं—

(i) कार्य के वर्गीकरण की प्रक्रिया जटिल है तथा इसे अधिक समय लगता है।

(ii) यह विधि भी विशाल संगठनों के लिए उचित नहीं है।

(iii) इस विधि से कर्मचारी के वर्तमान वेतन के साथ कार्य का वर्ग निर्धारण करना उस समय मुश्किल हो जाता है जब श्रमिक कार्य के वर्ग निर्धारण से अधिक वेतन पा रहा हो।

(iv) इसमें कार्य-विश्लेषण का विस्तृत अध्ययन नहीं किया जाता है।

B. संख्यात्मक विधियाँ (Quantitative Methods)—इसे बेंग योजना (Benge Plan) के नाम से भी जाना जाता है, क्योंकि इस विधि की खोज सन् 1928 में यूजीन बेंग (Eugene Benge) ने की थी। इस विधि में निम्नलिखित चरणों में कार्य मूल्यांकन किया जाता है—

(i) प्रमुख घटकों का चयन (Selection of Key Factors)—घटकों की तुलना विधि में सर्वप्रथम प्रमुख घटकों का चयन किया जाता है। यह विधि इस मान्यता पर आधारित है कि प्रत्येक कृत्य के कुछ घटक होते हैं। इसमें कुछ प्रमुख घटकों का चयन कर लिया जाता है। कुछ प्रमुख घटक इस प्रकार हैं—

Scanned with CamScanner

(i) चातुर्य (Skill), (ii) उत्तरदायित्व (Responsibilities), (iii) प्रयत्न (Efforts), (iv) कार्य दशाएँ (Working Conditions)

(a) प्रमुख कृत्यों का चयन (Selection of Main Key Jobs)—प्रमुख घटकों का चयन करने के बाद इस विधि में प्रमुख कृत्यों का चयन किया जाता है। किसी भी उपक्रम में उसके कृत्यों में से कुछ कृत्य चुन लिए जाते हैं। उदाहरणार्थ माना कि ये कृत्य A, B, C, D तथा E हैं।

(b) प्रमुख कृत्यों की मजदूरी दर का निर्धारण (Determination of Rate of Wages for Main Key Jobs)—प्रमुख कृत्यों का चुनाव कर लेने के पश्चात् उन कृत्यों की मजदूरी का निर्धारण किया जाता है। मजदूरी का निर्धारण कृत्य के महत्व के आधार पर किया जाता है। जो कृत्य सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है उसे सर्वोच्च मजदूरी दी जाती है। जो कृत्य उससे कम महत्वपूर्ण होता है उसे उससे कम मजदूरी दी जाती है। इसी क्रम में अन्य कृत्यों को मजदूरी दरें निर्धारित की जाती हैं। उदाहरणार्थ A, B, C, D और E कृत्यों की निम्न प्रकार मजदूरी दर निर्धारित की जाती है—

Jobs	Wage Rate per Hour (Rs.)
A	4.00
B	3.50
C	3.00
D	2.50
E	2.00

(c) प्रमुख घटकों को विभिन्न कृत्यों के मध्य श्रेणीयन करना (To Classify Main Key Factors Among Various Jobs)—प्रत्येक कृत्य की मजदूरी दर का निर्धारण करने के बाद कृत्य के प्रमुख घटकों का श्रेणीयन किया जाता है। यह श्रेणीयन कृत्य के महत्व के आधार पर किया जाता है। उदाहरणार्थ—

Rank	Skill	Responsibilities	Efforts	Working Conditions
I	A	B	E	D
II	B	A	B	C
III	C	C	D	E
IV	D	D	C	A
V	E	E	A	B

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि चातुर्य (Skill) कृत्य A में सबसे अधिक है, उसे बाद B, C, D एवं E में है। इसी तरह उत्तरदायित्व (Responsibilities), प्रयत्न (Efforts) एवं कार्य दशाओं (Working Conditions) के अन्तर्गत विभिन्न कृत्यों का श्रेणीयन उनके महत्व के अनुसार किया जाता है।

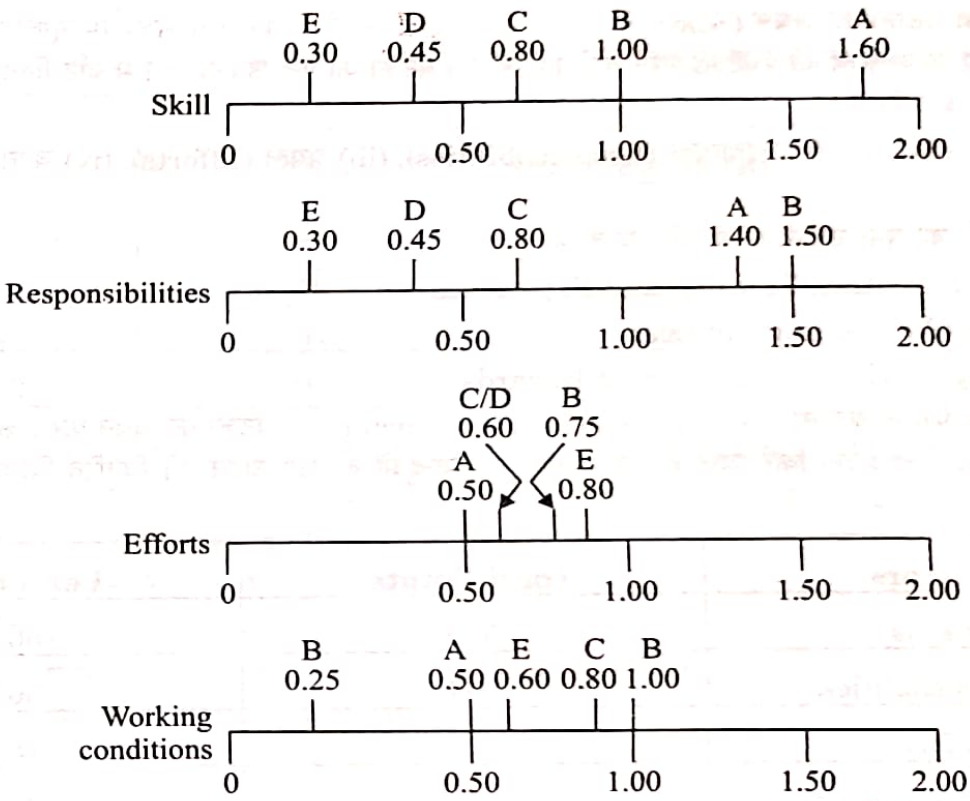
(d) प्रमुख कृत्यों की मजदूरी दर का प्रमुख घटकों के आधार पर विभाजन (Classification of Rates of Wages of Main Key Jobs on Basis of Main Key Factors)—इसके बाद प्रमुख कृत्यों की निर्धारित की गई मजदूरी दर को विभिन्न प्रमुख घटकों में बाँट दिया जाता है, जिसका स्पष्टीकरण निम्न तालिका में किया गया है—

Factors	A (Rs)	B (Rs)	C (Rs)	D (Rs)	E (Rs)
Skill	1.60	1.00	0.80	0.45	0.30

Scanned with CamScanner

Responsibilities	1.40	1.50	0.80	0.45	0.30
Efforts	0.50	0.75	0.60	0.60	0.80
Working conditions	0.50	0.25	0.80	1.00	0.60
Total	4.00	3.50	3.00	2.50	2.00

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि प्रत्येक कृत्य की प्रति घण्टा मजदूरी का विभाजन विभिन्न घटकों के महत्व के आधार पर कर दिया गया है, जैसे कि कृत्य A का विभिन्न घटकों के महत्व के आधार पर श्रेणीयन किया गया था जिसमें चातुर्य सबसे अधिक था तथा फिर उत्तरदायित्व, प्रयत्न तथा कार्य दशाओं का क्रम था। इसी क्रम के अनुरूप कृत्य A की कुल प्रति घण्टा मजदूरी दर का विभाजन उनके घटकों के महत्व के क्रम के अनुसार किया गया है। इसके बाद उपर्युक्त आधार पर मजदूरी पैमाना (Wages Scale) नीचे दिये अनुसार बनाया जाता है।



(e) अन्य कृत्यों की तुलना करना (Comparison of Other Jobs)—इस मजदूरी पैमाने के आधार पर ही अन्य कृत्यों की तुलना की जाती है। उदाहरणार्थ, किसी कृत्य X से तुलना करनी है जिसमें चातुर्य B के समान, उत्तरदायित्व C के समान, प्रयत्न A के समान तथा कार्य दशाएँ E के समान हैं तो कृत्य Y की मजदूरी का मूल्यांकन इस प्रकार होगा—

Job X	Skill	Responsibilities	Efforts	Working condition	Total Wages of Job X per Hour
Like	B	C	A	E	Rs
Rate	1.00	0.80	0.50	0.60	2.90

इस प्रकार कृत्य X की मजदूरी दर Rs. 2.90 प्रति घण्टा होगी।

Scanned with CamScanner

गुण (Merits)—इस विधि के प्रमुख गुण निम्न प्रकार हैं—

(i) इसमें कृत्यों का मूल्यांकन सरलता से किया जा सकता है।

(ii) इसमें कृत्यों का विश्लेषण करके चालू दरों के आधार पर कृत्य की दर का निर्धारण किया जाता है।

(iii) यह विधि लोचपूर्ण है अर्थात् इसमें आवश्यकतानुसार समायोजन किए जा सकते हैं।

(iv) इसमें मजदूरी व वेतन की दरों का निर्धारण वैज्ञानिक आधार पर किया जाता है।

दोष (Demerits)—इस विधि के प्रमुख दोष निम्न प्रकार हैं—

(i) यह विधि उपर्युक्त पहली दो विधियों की तुलना में जटिल है।

(ii) इस विधि में समय एवं धन का अधिक व्यय होता है।

(iii) इसमें उच्च प्रबन्धकों को तकनीकी विशेषज्ञों पर निर्भर रहना पड़ता है।

(iv) बिन्दु विधि (Point Method)—यह विधि आज के युग में सर्वाधिक लोकप्रिय विधि है। इस विधि के अन्तर्गत एक कृत्य को महत्व के अनुसार बिन्दु प्रदान किए जाते हैं। इस विधि से निम्नलिखित चरणों में कार्य मूल्यांकन किया जाता है।

(a) मुख्य घटकों का चयन (Selection of Key Factors)—बिन्दु विधि में सर्वप्रथम मुख्य घटकों का चयन कर लिया जाता है। ये घटक कृत्य को प्रभावित करने वाले होते हैं। इन घटकों को पुन: उप-घटकों में बाँट लिया जाता है। सामान्यत: चार घटक चुने जाते हैं—

(i) चातुर्य (Skill), (ii) उत्तरदायित्व (Responsibilities), (iii) प्रयत्न (Efforts), (iv) कार्य दशाएँ (Working Conditions)

इन घटकों को पुन: उपघटकों में बाँटा जाता है—

Skill = Education, Training and Experience

Efforts = Mental and Physical

Working Conditions = Risks and Hazards

(b) घटक पैमाना बनाना (Preparation of Scale of Factors)—घटकों का चयन करने के बाद उन घटकों का महत्व के अनुसार बिन्दु प्रदान किये जाते हैं। इसके बाद उन बिन्दुओं को उप-घटकों में वितरित किया जाता है।

उदाहरणार्थ—

Factors	Total Points	Percentage
Skills	500	50%
Responsibilities	300	30%
Efforts	150	15%
Working conditions	50	05%
Total	1000	100%

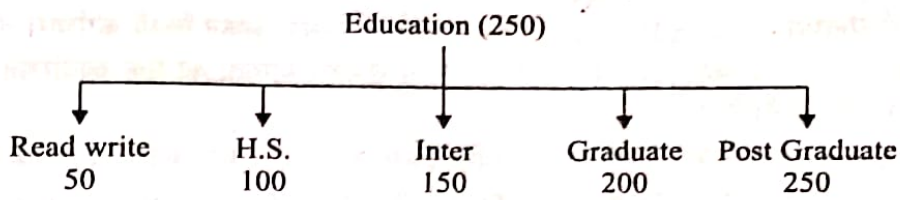
उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि चातुर्य को सबसे अधिक महत्व दिया गया है तथा फिर क्रमश: उत्तरदायित्व, प्रयत्न एवं कार्य दशाओं को महत्व प्रदान किया गया है। अब उन्हें पुन: घटकों में वितरित किया जाएगा। उदाहरणार्थ: चातुर्य को उप-घटकों में निम्नलिखित रूप में बाँटा जा सकता है—

Sub-factors of Skill	Points	Percentage
Education	250	50%
Training	150	30%

Scanned with CamScanner

Experience	100	20%
Total	500	100%

शिक्षा को पुनः इस प्रकार उप-घटकों में विभाजित किया जा सकता है—



जिसके आधार पर कृत्यों का मूल्यांकन किया जाता है। यह केवल शिक्षा घटक का पैमाना है। इसी प्रकार अन्य घटकों एवं उप-घटकों के आधार पर पैमाना बना लिया जाता है।

(c) मजदूरी का निर्धारण (Determination of Wages)—मजदूरी का निर्धारण मजदूरी सर्वेक्षण करके किया जाता है। बाजार दरों के आधार पर समान कृत्यों के लिए समान मजदूरी देने का प्रयत्न करना चाहिए। फिर उन दरों को बिन्दुओं के आधार पर तय करना चाहिए बिन्दुओं के आधार कृत्यों का श्रेणीयन करके मजदूरी दर निकाली जाती है। इस विधि को निम्न तालिका से स्पष्ट किया गया है—

Points	Grade	Basic Wages (Rs)	Jobs
100–200	I	200	A
200–300	II	300	B
300–400	III	400	C
400–500	IV	500	D

उपर्युक्त तालिका के आधार पर जिन कृत्यों के बिन्दुओं का योग 100–200 के बीच होगा, उन पर 200 रु० वेतन दिया जाएगा। यदि A कृत्य के बिन्दु का योग 150 है तब यह इसी श्रेणी में आएगा और उसकी मजदूरी 200 रुपये होगी। इसी तरह अन्य कृत्यों का मूल्यांकन करके मजदूरी दर निर्धारित कर ली जाती है।

दोष (Demerits)—इस विधि के प्रमुख अवगुण इस प्रकार हैं—

(i) कर्मचारियों को इस विधि को समझाना एक जटिल कार्य है।

(ii) पैमाना गलत बनने पर सम्पूर्ण कार्य मूल्यांकन गलत हो जाता है।

(iii) पैमाना तैयार करने में त्रुटि रहने की सम्भावना रहती है।

योग्यता अंकन
(Merit Rating)

कर्मचारी की योग्यता अंकन को निष्पादन आकलन Performance evaluation) भी कहते हैं। यह श्रमिक के निष्पादन तथा उद्योग में उसकी योग्यता का आकलन है। कार्य मूल्यांकन में कार्य का आकलन किया जाता है जबकि योग्यता अंकन में कृषि करने वाले व्यक्ति की योग्यता का आकलन किया जाता है। योग्यता अंकन से यह पता चलता है कि एक कर्मचारी किस हद तक कार्य की आवश्यकताओं को पूरा कर सकता है। यह गतिविधियों के पुनर्वलोकन और नियन्त्रण करने की विधि है।

जिस प्रकार हम समय-समय (Periodically) पर मशीनों तथा उपकरणों को जाँचते तथा परखते हैं। जिससे वे अपना कार्य भली-भाँति और पूरी क्षमता से निष्पादित कर सके, उसी प्रकार हम कर्मचारियों/श्रमिकों का भी निरीक्षण करते हैं, जिससे वे कार्य की किसी भी चुनौती का सफलतापूर्वक सामना करने में सक्षम बने रहे। एक प्रभावी योग्यता अंकन प्रणाली एक उपक्रम

Scanned with CamScanner

में उपलब्ध मानव शक्ति का सर्वोत्तम उपयोग सुनिश्चित करती है। योग्यता अंकन को कुछ विद्वानों ने निम्न प्रकार से परिभाषित किया है।

किम्बाल एवं किम्बाल (Kimbal & Kimbal) के अनुसार, "योग्यता अंकन का सम्बन्ध कर्मचारी के सापेक्षिक महत्व को एक विशेष कृत्य से सम्बद्ध करना है।"

एडविन बी० फिलिप्पो (Edwin B. Flippo) के अनुसार, "योग्यता अंकन किसी कर्मचारी को उसको वर्तमान कार्य के सम्बन्ध में योग्यता का और उच्चतर कार्य की दृष्टि से उसकी संभाव्य योग्यता का एक व्यवस्थित, सामयिक तथा यथा-सम्भव एक निष्पक्ष मूल्यांकन है।"

स्प्रीगल (Spriegal) के अनुसार, "संगठन में कार्यरत किसी कर्मचारी की योग्यता अंकन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी कार्य की आवश्यकताओं के सन्दर्भ में उस कर्मचारी के कार्य निष्पादन (Work Performance) का मूल्यांकन किया जाता है।"

एलफोर्ड एवं बीटी (Alford & Beaty) के शब्दों में, "योग्यता अंकन से आशय कम्पनी के किसी कर्मचारी की सेवाओं का सापेक्षिक मूल्य पता करने के लिए समीक्षा करना होता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषणात्मक अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि "योग्यता अंकन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा कर्मचारियों की निष्पादन सम्बन्धी व्यक्तिगत क्षमताओं एवं गुणों का मूल्यांकन किया जाता है।"

योग्यता अंकन के उद्देश्य (Objects of Merit Rating)

योग्यता अंकन के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं—

(i) कर्मचारियों के तुलनात्मक गुणों की जानकारी प्राप्त करना।
(ii) अधिक योग्य कर्मचारी को पुरस्कृत करना।
(iii) एक ही कार्य के लिए विभिन्न व्यक्तियों की योग्यता के अनुसार भिन्न-भिन्न मजदूरी दरों का औचित्य सिद्ध करना।
(iv) प्रशिक्षण कार्यक्रमों की सफलताओं का मूल्यांकन करना।
(v) पदोन्नति एवं स्थानान्तरण के सम्बन्ध में योजना बनाना।
(vi) कर्मचारियों को अधिक कार्य करने के लिए प्रेरित करना।
(vii) नियोक्ता एवं श्रमिकों के मध्य मधुर सम्बन्ध स्थापित करना।

योग्यता अंकन की विधियाँ (Methods of Merit Rating)

योग्यता अंकन की प्रमुख विधियाँ निम्न प्रकार हैं—

(i) युग्म तुलना विधि (Paired comparison method)
(ii) व्यक्ति से व्यक्ति तुलना विधि (Man to man comparison method)
(iii) रेंकिंग विधि (Ranking method)
(iv) जाँच सूची विधि (Check list method)
(v) स्केल प्लान विधि (Scale plan method)

(i) युग्म तुलना विधि (Paired Comparison Method)—इस विधि में प्रत्येक व्यक्ति की तुलना प्रत्येक दूसरे व्यक्ति से (एक बार में एक) की जाती है। तुलना एक लक्षण (अर्थात् कार्य निष्पादन की योग्यता) के लिए की जाती है। उदाहरण के लिए माना 'A' निष्पादन की तुलना 'B' से की जाती है तथा यह निर्धारित कर लिया जाता है कि कौन बेहतर है। अब A की तुलना अन्य अर्थात् C, D, E आदि से की जाती है। तब B की तुलना भी इन्हीं से की जाती है और वही तुलना के लिए वही आधार प्रयोग किया जाता है। यह क्रिया अन्य कर्मियों के लिए भी अपनाई जाती है। प्रत्येक बार एक श्रमिक अन्यों से एक बिन्दु पर बेहतर साबित होता है। एक बार सभी सम्भव योजनाओं पर विचार करके प्रत्येक कर्मचारी को प्राप्त अंकों को जोड़ते हैं। प्रत्येक कर्मचारी को अन्य कर्मचारियों को प्राप्त अंकों से तुलना करके रैंक प्रदान करते हैं। तुलनाओं की संख्या निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात की जाती है—

Scanned with CamScanner

$$\text{तुलनाओं की संख्या} = \frac{N(N-1)}{2}$$

जहाँ N = आकलित कर्मचारियों की संख्या

यह विधि भी बड़े संगठनों के लिए उपयुक्त है। यह विधि भी कर्मचारी की सामर्थ्य तथा कमजोरियों को स्पष्ट नहीं करती है।

(ii) व्यक्ति से व्यक्ति तुलना विधि (Man to Man Comparison Method)—इस विधि का प्रयोग U.S.A. में सेना अधिकारियों की रेटिंग में होता है। अत: इस विधि को बहुधा "सेना रेटिंग स्केल" (Army Rating Scale) के नाम से भी जाना जाता है। इस विधि के निम्न पाँच मूल लक्षण हैं—

(a) शारीरिक गुणवत्ता (Physical qualities)
(b) वैयक्तिक गुणवत्ता (Personal qualities)
(c) बुद्धिता (Intelligence)
(d) सेवा की सामान्य उत्कृष्टता (General value of service)
(e) नेतृत्व (Leadership)

उपरोक्त लक्षणों का उप-विभाजन करके पाँच डिग्री/ग्रेड में वर्गीकृत किया जाता है तथा प्रत्येक डिग्री का मूल्य व्यक्ति विशेष के लिए उसका अध्ययन के उपरान्त निर्धारित किया जाता है। अब व्यक्ति से व्यक्ति की तुलना करके उसकी रेटिंग का आकलन किया जाता है। इसलिए इस विधि को व्यक्ति से व्यक्ति तुलना विधि कहा जाता है।

(iii) रेंकिंग विधि (Ranking Method)—यह प्राचीनतम, सरलतम तथा सबसे परम्परागत विधि है। इस विधि में श्रमिकों को सर्वोत्तम अथवा उत्कृष्ट से लेकर खराब अथवा निष्कृष्ट तक के रैंक में व्यवस्थित किया जाता है। यद्यपि यह विधि दो श्रमिकों में अन्तर स्थापित करने वाले बिन्दु (Point of Difference) को स्पष्ट नहीं करती और न ही उनकी सामर्थ्य और कमजोरियों को स्पष्ट करती है। यह विधि उन संगठनों में प्रयोग की जाती है जहाँ श्रमिकों की संख्या कम हो।

इस विधि के प्रयोग का दूसरा तरीका यह भी है कि पहले उपक्रम अथवा उद्योग में कार्यों को उनके कौशल के स्तर तथा उत्तरदायित्वों के पदों में वर्गीकृत करके रैंक देते हैं। फिर उसके अनुसार ही श्रमिकों को रैंक दिये जाते हैं।

(iv) जाँच सूची विधि (Check List Method)—इस विधि के अन्तर्गत कार्य निष्पादन के लिए कर्मचारी के गुणों की सूची बनाई जाती है। मूल्यांकनकर्त्ता गुणों की सूची में दिए गए प्रत्येक गुण के आधार पर प्रत्येक कर्मचारी के गुणों की माप करता है। यदि कर्मचारी में गुण पाया जाता है तो उस गुण के सामने धनात्मक चिह्न (+), यदि गुण नहीं पाया जाता है तो उसके सामने ऋणात्मक चिह्न (–) और यदि संशय रहता है तो प्रश्नवाचक चिह्न (?) तत्सम्बन्धी गुण के सामने लगा दिया जाता है। इन चिह्नों के आधार पर ही कर्मचारियों की योग्यता का अंकन किया जाता है। जाँच सूची का नमूना निम्न प्रकार है—

योग्यता अंकन की जाँच सूची
(Checking List of Merit Rating)

	प्रश्न	हाँ (+)	नहीं (–)	संशय (?)
1.	क्या कर्मचारी अपने कार्य के प्रति तकनीकी ज्ञान रखता है?	+		
2.	क्या कर्मचारी में अपने काम के प्रति अभिरुचि है?	+		
3.	क्या कर्मचारी की उपस्थिति सन्तोषजनक है?		–	
4.	क्या कर्मचारी का स्वास्थ्य ठीक है?			?
5.	क्या कर्मचारी आदेशों व निर्देशों का पालन करता है?	+		
6.	क्या कर्मचारी व्यवहारकुशल है?	+		

Scanned with CamScanner

7.	क्या कर्मचारी अपने कार्यों का निष्पादन सही ढंग से करता है?		–	
8.	क्या वह कभी अपने उत्तरदायित्वों का उल्लंघन करता है?			?

(v) स्केल प्लान विधि (Scale Plan Method)—यह विधि उद्योगों में बहुधा प्रयोग की जाती है। स्केल प्लान की बहुत-सी चर राशियाँ होती हैं और सभी लक्षणों की एक सूची से सम्बद्ध होते हैं। प्रत्येक का एक पैमाना (स्केल) होता है जो श्रमिक की रेटिंग के लिए होता है।

(a) आंशिक पैमाने का प्रतिशत (Percentile of Numerical Scale)—इस पैमाने में (उदाहरण के लिए व्यक्तित्व) की डिग्री को दर्शाने के लिए अंकों का प्रयोग किया जाता है।

10%	20%	30%	40%	50%	60%	70%	80%	90%	100%

(b) विवरण पैमाना (Description Scale)—यह लक्षण (अर्थात् व्यक्तित्व) की डिग्री के विवरण को दर्शाता है—

खराब (Poor) — अच्छा (Good) — बहुत अच्छा (Very Good) — उत्तम (Excellent)

(c) वर्णमाला पैमाना (Alphabetical Scale)—इस विधि में वर्णमाला का प्रयोग, लक्षण (अर्थात् व्यक्तित्व) की डिग्री दर्शाने के लिए किया जाता है।

D — C — B — A

रेटिंग विधि पर विचार करते समय बहुत से विचारकों का सोचना है कि रेटिंग के वितरण की मान्यताओं को मानने का तरीका सर्वपरिचित सामान्य वितरण वक्र (Normal Distribution Curve) का रूप लेता है। यदि प्रत्येक कारक की रेटिंग के लिए 5 डिग्री प्रयोग की जाती है तो प्रत्येक रेटिंग के लिए श्रमिकों का प्रतिशत वितरण, निम्नतम समूह से उच्चतम समूह तक क्रमश: 4%, 24%, 44%, 24% तथा 4% मापा जा सकता है।

1. **उच्च ग्रेड**—अनुकरणीय उद्यमीपन, उत्सुक एवं ज्ञानवान कर्मचारी।
2. **निम्न ग्रेड**—आलसी तथा अनिच्छापूर्ण कर्मचारी, काम से जी चुराने वाले।
3. **औसत ग्रेड**—मध्यम ज्ञानी तथा मेहनती कर्मचारी।
4. **औसत से अच्छा ग्रेड**—अच्छा एवं उत्सुक कर्मचारी, तृतीय ग्रेड से बेहतर।
5. **निम्न ग्रेड से अच्छा परन्तु औसत से कम**—इस गुण में वे कर्मचारी आते हैं जो अनिच्छापूर्वक कार्य करते हैं।

कार्य मूल्यांकन एवं योग्यता अंकन में अन्तर
(Difference Between Job Evaluation and Merit Rating)

1. कार्य-मूल्यांकन कार्य का मूल्यांकन करना है जबकि योग्यता-अंकन कार्य करने वाले व्यक्ति के निष्पादन (Performance) का मूल्यांकन करना है।
2. कार्य-मूल्यांकन से कार्य के लिए उपयुक्त मजदूरी ढाँचा प्राप्त होता है जबकि योग्यता-अंकन से वेतन के अतिरिक्त, योग्यता के आधार पर कर्मचारी को पारितोषिक प्राप्त होता है।
3. कार्य मूल्यांकन, कार्य में किसी कर्मचारी विशेष के निष्पादन (Performance) की पहचान नहीं करता। यह कार्य (Job) के लिए मजदूरी तथा वेतन का स्तर तय करता है। योग्यता अंकन किसी कार्य के लिए व्यक्तियों के निष्पादन में अन्तर स्थापित करता है। कोई भी दो व्यक्ति एक जैसा कार्य निष्पादन नहीं कर सकते हैं और योग्यता अंकन इनमें अन्तर को स्पष्ट करता है।

Scanned with CamScanner

प्रश्नावली

1. मानव संसाधन विकास से आप क्या समझते हैं?
2. मानव संसाधन विकास का अर्थ तथा महत्त्व समझाइये।
3. मानवीय संसाधन विकास के विभिन्न स्वरूप कौन से हैं? सविस्तार समझाइये।
4. मानव संसाधन विकास के कार्यों का वर्णन कीजिए।
5. मानव संसाधन विकास में आने वाली बाधाओं का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
6. चयन तथा भर्ती को परिभाषित कीजिए तथा अन्तर स्पष्ट कीजिए।
7. भर्ती के विभिन्न स्रोतों का वर्णन कीजिए।
8. चयन प्रक्रिया में सफल होने के लिए व्यक्ति में क्या-क्या गुण होने चाहिये। *(U.P. 2000)*
9. चयन प्रक्रिया के विभिन्न पदों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
10. भर्ती तथा चयन प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिए।
11. जीवन वृत्ति विकास का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
12. जीवन-वृत्ति नियोजन से क्या आशय है? संक्षेप में बताइये।
13. जीवन वृत्ति नियोजन तथा उसके लाभों पर प्रकाश डालिये।
14. जीवन वृत्ति विकास से आप क्या समझते हैं?
15. प्रशिक्षण से क्या अभिप्राय है? इसे परिभाषित कीजिए।
16. प्रशिक्षण के महत्त्व को समझाइये।
17. प्रशिक्षण तथा विकास से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिए।
18. अच्छे प्रशिक्षण की क्या-क्या विशेषताएँ हैं?
19. प्रशिक्षण के प्रमुख सिद्धान्तों का सविस्तार वर्णन कीजिए।
20. प्रशिक्षण की रणनीतियाँ (कौशल-कलाएँ) क्या होती हैं?
21. प्रशिक्षण की प्रमुख तकनीकों को समझाइये।
22. प्रशिक्षण की विभिन्न विधियों का सविस्तार वर्णन कीजिए। *(U.P. 2008)*
23. प्रशिक्षण से क्या लाभ है?
24. निम्नलिखित प्रशिक्षण विधियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—
    (a) जाल पर प्रशिक्षण
    (b) जाल से अन्दर प्रशिक्षण
    (c) द्वारा प्रकोष्ठ प्रशिक्षण
    (d) प्रशिक्षण केन्द्रों पर प्रशिक्षण
    (e) प्रशिक्षार्थी प्रशिक्षण
    (f) प्रदर्शन विधि
    (g) संयुक्त प्रशिक्षण
    (h) भूमिका निर्वाह प्रशिक्षण,
    (i) इन बास्केट प्रशिक्षण
    (j) सम्मेलन तथा सेमिनार प्रशिक्षण,
    (k) फोरमैन द्वारा प्रशिक्षण।
25. कार्य-मूल्यांकन से क्या आशय है? कार्य मूल्यांकन की विभिन्न पद्धतियों का वर्णन कीजिए।
26. कार्य मूल्यांकन एवं योग्यता अंकन को परिभाषित करते हुए इनके मध्य अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
27. कार्य मूल्यांकन के उददेश्य व कार्य क्या है? इस प्रक्रिया में बाधक तत्त्वों का वर्णन कीजिए।
28. कार्य मूल्यांकन की सीमाओं का वर्णन कीजिए।
29. योग्यता अंकन की विभिन्न विधियाँ क्या हैं?
30. योग्यता अंकन विधि निर्धारित करने वाले प्रमुख कारकों का वर्णन कीजिए।
31. संक्षिप्त टिप्पणी—
    (i) श्रेणी-विभाजन विधि, (ii) वर्गीकरण विधि, (iii) घटकों की तुलना विधि, (iv) अंक विधि।

Scanned with CamScanner

अध्याय-3

मजदूरी एवं प्रेरणाएँ
(Wages and Incentives)

** परिभाषा, मजदूरी निर्धारक घटक, मजदूरी भुगतान पद्धतियाँ, मजदूरी प्रेरक, प्रेरकों के प्रकार, मजदूरी विभेद, प्रेरक एवं बोनस, पर्यवेक्षक के प्रेरक, कार्य-मूल्यांकन एवं योग्यता अंकन।*

3.1 (a) मजदूरी एवं वेतन प्रशासन (Wages & Salary Administration)

मजदूरी या वेतन शायद सबसे प्रमुख एवं जटिल अकेला ऐसा कारक है जो प्रबन्धन तथा श्रमिकों के मध्य सम्बन्धों का प्रभाव डालता है। इसका महत्व इस बात से ही पता चलता है कि यह समाज के एक ऐसे वर्ग से जुड़ा है जो संख्या में बहुत बड़ा है तथा जो वर्तमान आर्थिक ढाँचे से हमेशा असन्तुष्ट रहता है। किसी भी अन्य क्षेत्र की तुलना में वेतन तथा मजदूरी में विवादों अथवा असन्तोष कहीं अधिक पाया जाता है। अत: औद्योगिक शान्ति, उच्च असन्तोष कहीं अधिक पाया जाता है। इसे रखने के लिए वेतन प्रणाली का सन्तोषजनक होना आवश्यक है। उद्योगों में वेतन की भुगतान प्रणाली उतनी ही पुरानी है जितना कि उद्योग। आधुनिक युग के उद्योगों में नई वेतन प्रणालियाँ विकसित की गई हैं जो अधिक स्पष्ट तथा विश्वसनीय है।

श्रमिकों के लिए वेतन, उनके श्रम के एवज में प्राप्त होने वाला आय का प्रमुख स्रोत है। किसी कर्मचारी का वेतन उसके जीवन स्तर को बताता है, यह उसकी क्रय करने की शक्ति को बताता है जिससे कि वह अपने जीवन की सामान्य तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। नियोक्ता के लिए वेतन, उत्पादन अथवा वितरण लागत का एक महत्वपूर्ण अंग है। उच्च वेतन से उत्पादन लागत में वृद्धि तथा लाभ में कमी आती है। अत: नियोक्ता का हित इस बात में है कि श्रम लागत प्रति उत्पाद नियन्त्रण में रहें तथा उसमें कमी आयी हालांकि कम वेतन से श्रमिकों में असन्तोष उत्पन्न होता है तथा उनकी दक्षता और कार्य की गुणवत्ता में कमी आती है। उचित मजदूरी या पारिश्रमिक का भुगतान करने से नियोक्ता तथा श्रमिकों के मध्य सम्बन्ध मधुर बने रहते हैं तथा कम श्रम व्यय में अधिकतम उत्पादन प्राप्त होता है।

आदर्श मजदूरी भुगतान प्रणाली के गुण (Essentials of An Ideal Wage Payment System)

श्रमिकों के लिए मजदूरी उनका जीवन है (To the labours wages are their life)। उनकी कुशलता पर मजदूरी का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। अत: औद्योगिक संगठन में मजदूरी भुगतान प्रणाली का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसलिए मजदूरी का निर्धारण इस प्रकार से किया जाना चाहिए कि उसमें निम्नलिखित विशेषतायें हों या एक आदर्श मजदूरी भुगतान प्रणाली में निम्नलिखित गुण होने चाहिए—

(i) न्यूनतम मजदूरी (Minimum Wages)—एक आदर्श मजदूरी प्रणाली में न्यूनतम मजदूरी की व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे पूँजीपति श्रमिकों का शोषण न कर सके। श्रमिकों को इतनी मजदूरी अवश्य मिलनी चाहिए कि वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। "वे जीने के लिए काम करें, न कि काम के लिए जीयें।"

Scanned with CamScanner

(ii) प्रेरणा (Inspiration)—मजदूरी भुगतान पद्धति ऐसी होनी चाहिए जिससे श्रमिकों को अपनी कुशलता बढ़ाने की प्रेरणा मिलती रहे अर्थात् अधिक उत्पादन करने वाले श्रमिकों को उसके अतिरिक्त उत्पादन पर बोनस या अधिक मजदूरी देनी चाहिए।

(iii) औद्योगिक शान्ति (Industrial Peace)—मजदूरी भुगतान प्रणाली ऐसी होनी चाहिए, जिससे औद्योगिक शान्ति स्थापित हो। इसके लिए श्रमिकों को उद्योग के लाभ का भाग मिलना चाहिए तथा प्रबन्ध में श्रमिकों का भी भाग रहना चाहिए।

(iv) लोच (Flexibility)—आदर्श मजदूरी भुगतान प्रणाली लोचदार होनी चाहिए, जिससे मजदूरी आवश्यकतानुसार घटाई-बढ़ाई जा सके।

(v) स्थायित्व (Stability)—मजदूरी भुगतान प्रणाली में स्थायित्व होना चाहिए। इससे श्रमिकों को जीवन में सुरक्षा का अनुभव होगा और वे अपने कार्य को दत्तचित्त होकर कर सकेंगे। मजदूरी में परिवर्तित करने से श्रमिकों का उसमें विश्वास नहीं रहता तथा वे विरोध भी करते हैं।

(vi) योग्यतानुसार मजदूरी (Payment according to the Ability)—प्रत्येक श्रमिक को उसकी योग्यतानुसार मजदूरी दी जानी चाहिए। गधे-घोड़ों को एक ही लकड़ी से हाँकना का नियम लागू नहीं किया जाना चाहिए। कुशल श्रमिकों को अकुशल श्रमिकों की अपेक्षा अधिक मजदूरी मिलनी चाहिए, जिससे श्रमिकों को अपनी कुशलता बढ़ाने का उत्साह रहे।

(vii) प्रतिकूल प्रभाव नहीं (No side effects)—मजदूरी भुगतान की पद्धति ऐसी होनी चाहिए जिसका श्रमिकों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

(viii) सन्देह रहित (Without doubt)—मजदूरी भुगतान की पद्धति ऐसी होनी चाहिए जिससे श्रमिकों को सन्देह न हो।

(ix) सरलता (Simplicity)—मजदूरी भुगतान पद्धति सरल एवं सुगम होनी चाहिए, जिससे प्रत्येक साधारण श्रमिक अपनी मजदूरी का हिसाब आसानी से समझ सकें एवं पूँजीपति भी श्रम-व्यय आसानी से निकाल सकें।

(x) मजदूरी एवं उत्पादनशीलता में सम्बन्ध (Relationship between Productivity and Wages)—मजदूरी भुगतान प्रणाली का सम्बन्ध उत्पादनशीलता से होना चाहिए, जिससे वह उद्योग अपने श्रमिकों को निश्चित मजदूरी दे सकेगा। इसके साथ ही श्रमिकों को पर्याप्त मजदूरी दी जानी चाहिए जिससे यह अपनी सारी आवश्यकतायें पूरी कर सकें। इससे श्रमिकों एवं पूँजीपतियों के सम्बन्ध अच्छे रहते हैं।

(xi) दोनों पक्षों के लिए लाभप्रद (Beneficial for both Employees and Employer)—प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जो श्रमिक एवं स्वामी दोनों के लिए लाभप्रद हो, अर्थात् दोनों पक्षों को इससे सन्तोष प्रदान हो। ऐसा तब ही सम्भव है, जबकि मजदूरी भुगतान की पद्धतियाँ श्रमिकों के सहयोग से अपनाई जाएँ।

(xii) मितव्ययी (Economic)—पद्धति ऐसी होनी चाहिए जिसमें—

(i) प्रति इकाई श्रम व्यय कम रहे।

(ii) उपलब्ध सामग्री और श्रम का समुचित प्रयोग हो।

(iii) पद्धति को कार्यान्वित करने में न्यूनतम लागत की आवश्यकता हो।

मजदूरी के प्रकार
(Types of Wages)

मजदूरी मुख्य रूप से निम्न प्रकार के होते हैं—

1. मुद्रा मजदूरी या सांकेतिक मजदूरी (Money wages or Nominal wages)
2. वास्तविक मजदूरी (Real wages)
3. न्यूनतम मजदूरी (Minimum wages)
4. निर्वाह मजदूरी (Living wages)

Scanned with CamScanner

5. उपयुक्त या न्यायोचित मजदूरी (Fair wages)

उपरोक्त मजदूरियों का संक्षिप्त विवरण अग्र हैं—

1. मुद्रा या सांकेतिक मजदूरी (Money or Nominal wages)—सांकेतिक मजदूरी, श्रमिक की वह कमाई है जो उसे धन या मुद्रा के रूप में प्राप्त होती है। यह मजदूरी नकद भुगतान द्वारा दी जाती है तथा इसमें अन्य लाभ सम्मिलित नहीं होते।

हमारे देश में श्रमिकों को उनके पारिश्रमिक का भुगतान रुपये/पैसे में किया जाता है क्योंकि हमारे देश की मुद्रा रुपये/पैसे है। इसीलिए इसे मुद्रा पारिश्रमिक भी कहते हैं।

2. वास्तविक मजदूरी (Real Wages)—इसे निम्न सूत्र से स्पष्ट किया जाता है—

वास्तविक मजदूरी = नकद मजदूरी + अन्य सुविधाएँ श्रम के बदले में सेवायोजक (Employer) द्वारा श्रमिक को दी गई अन्य सुविधाएँ तथा नकद मजदूरियों के कुल योग को वास्तविक मजदूरी कहते हैं। अन्य सुविधाओं से आशय है नि:शुल्क आवास, सस्ता अनाज, नि:शुल्क चिकित्सा, बच्चों की नि:शुल्क शिक्षा आदि।

3. न्यूनतम मजदूरी (Minimum Wages)—एक श्रमिक अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति जितने कम से कम पारिश्रमिक से करवा सकता है तथा जीवनयापन के लिए आवश्यक वस्तुओं को जुटा सकता है। वह उसकी न्यूनतम मजदूरी कहलाती है।

श्रमिक की न्यूनतम मजदूरी न केवल उसकी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आवश्यक हो बल्कि उसकी कुछ अन्य आवश्यकताओं जैसे—बच्चों की शिक्षा, आवास, चिकित्सा तथा अन्य सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी कर सकें। अत: जीवनयापन के मूल्यों को दृष्टिगत रखते हुए ही न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण किया जाना चाहिए। इसी को मद्देनजर रखते हुए विश्व के अधिकतर देशों ने न्यूनतम मजदूरी देने के लिए बाध्य हो तथा मजदूरी के हितों की रक्षा की जा सके।

भारत में न्यूनतम मजदूरी अधिनियम—1948 देश के सभी भागों में लागू है। इस अधिनियम के तहत किसी भी श्रमिक को एक निर्धारित न्यूनतम मजदूरी से कम मजदूरी का भुगतान नहीं किया जा सकता है। यदि कोई उद्योग श्रमिक को न्यूनतम मजदूरी देने में असमर्थ है तो वह उद्योग चलाये रखने के योग्य नहीं होगा। न्यूनतम मजदूरी के भुगतान के निम्न उद्देश्य हैं—

(i) औद्योगिक शान्ति स्थापित करने के लिए।
(ii) जीवनयापन के सामान्य मानकों तथा श्रमिक कल्याण के कार्यक्रमों को स्थापित करना।
(iii) श्रमिकों में होने वाले शोषण पर अंकुश लगाना तथा उनके कार्य के अनुसार उन्हें मजदूरी का भुगतान कराना।
(iv) कर्मचारियों के कमजोर तबके अर्थात् श्रमिकों के हितों की रक्षा करना जो अनपढ़, अलग-थलग, उपेक्षित, असंगठित होते हैं और सामूहिक सौदेबाजी में कमजोर अथवा असमर्थ होते हैं।

4. निर्वाह मजदूरी (Living wages)—वह मजदूरी जिससे श्रमिक अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए अपना जीवन निर्वाह कर लें, उसे निर्वाह मजदूरी कहते हैं। यह मजदूरी न्यूनतम मजदूरी से अधिक होती है। क्योंकि न्यूनतम मजदूरी में श्रमिक केवल परमावश्यक वस्तुओं को जुटा सकता है, और इसका निर्धारण करते समय केवल जिंदा रहने के लिए आवश्यक वस्तुओं पर विचार किया जाता है जबकि निर्वाह मजदूरी श्रमिक के स्तर के अनुरूप व उसकी आवश्यकताओं पर भी विचार करके तय की जाती है जिससे श्रमिक की दक्षता बनी रहे तथा वह मानसिक रूप से शान्त रहे। इसके विपरीत यदि ऐसा नहीं होता तो इसके दुष्परिणाम हो सकते हैं।

5. उपयुक्त या न्यायोचित मजदूरी (Fair Wages)—यह वह मजदूरी है जो श्रमिक को उसके श्रम के प्रतिफल में जीवन स्तर बनाये रखने के लिए पर्याप्त हो।

उपयुक्त मजदूरी की दर सदैव न्यूनतम मजदूरी तथा निर्वाह मजदूरी के बीच के परास (Range) में होती है। यह निर्वाह मजदूरी की तरफ बढ़ाया गया एक कदम है जो नियोक्ता की भुगतान क्षमता पर निर्भर करता है। यह निम्न दो सीमाओं के मध्य रहता है—

(i) निम्न सीमा, जो न्यूनतम मजदूरी अधिनियम द्वारा निर्धारित की जाती है, तथा

Scanned with CamScanner

(ii) उच्चतम सीमा, जो उपक्रम की भुगतान क्षमता पर निर्भर करती है। उपयुक्त मजदूरी (fair wages) निम्न बातों पर निर्भर करती है।

(a) उद्योग का स्थान (Location)
(b) श्रमिक की उत्पादन क्षमता (Production capacity)
(c) श्रमिक की उपलब्धता (Availability)
(d) उद्योग की भुगतान क्षमता (Paying capacity)
(e) श्रमिकों की सामूहिक सौदेबाजी की शक्ति (Bargaining power)

मजदूरी भुगतान प्रणालियाँ (Methods of Compensation or Wage Payments)

श्रमिकों की मजदूरी भुगतान की अनेक प्रणालियाँ हैं। इन सबके अपने-अपने गुण व दोष हैं। अत: किसी एक प्रणाली को सर्वोत्तम नहीं कहा जा सकता और न ही किसी एक प्रणाली को सभी परिस्थितियों में अपनाया जा सकता है। साधारणतया मजदूरी का भुगतान दो प्रकार से किया जाता है—

(i) श्रमिकों द्वारा कार्य करने के घण्टों के अनुसार—समयानुसार मजदूरी।
(ii) श्रमिकों द्वारा किये गये कार्य के अनुसार—कार्यानुसार मजदूरी।

वास्तव में देखा जाये तो ये दोनों प्रणालियाँ अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही हैं और आज भी ये दोनों ही काफी लोकप्रिय हैं। वर्तमान समय में जितनी भी और प्रणालियाँ हैं वे सब इन्हीं दोनों का संशोधित रूप हैं।

I. समयानुसार मजदूरी या दैनिक मजदूरी या समयानुसार क्षतिपूरक पद्धति (Time wages or daily wages)—इस पद्धति के अनुसार श्रमिकों को मजदूरी एक निश्चित समय के अनुसार दी जाती है। श्रमिकों को निश्चित समय तक काम करने पर निश्चित मजदूरी दी जाती है, जैसे—प्रतिदिन 8 घण्टे काम करने पर श्रमिक को 90 रुपया मजदूरी मिलेगी, या मजदूरी मासिक, साप्ताहिक या दैनिक रूप में निश्चित की जाती है, जिसका भुगतान साधारण पाक्षिक या मासिक होता है। प्राचीन काल में अधिकतर श्रमिकों को मजदूरी दिन के अनुसार दी जाती थी, अत: यह दैनिक वेतन (Daily wages) के नाम से भी प्रचलित है। प्रो० जॉन ए० शुबिन (Prof. John A, Sheebin) के अनुसार, अमेरिका के 75% उद्योगों में मजदूरी की यही प्रथा प्रचलित है।

मजदूरी भुगतान प्रणाली

- I. समयानुसार मजदूरी या दैनिक मजदूरी
- II. कार्यानुसार मजदूरी पद्धति
- III. प्रेरणादायक प्रगतिशील अथवा प्रीमियम बोनस प्रणाली
  1. टेलर भिन्नक कार्यानुसार प्रणाली।
  2. हाल्से प्रीमियम पद्धति।
  3. रोजन मजदूरी प्रणाली।
  4. गैन्ट बोनस प्रणाली।
  5. एमरसन्स कार्यकुशलता प्रणाली।
  6. मैरिक मजदूरी पद्धति।
  7. बेडाक्स प्रणाली।
  8. जीवन-निर्वाह प्रणाली।
  9. लाभ विभाजन प्रणाली।
  10. न्यूनतम मजदूरी।
  11. सहभागिता।
  12. बोनस।

Scanned with CamScanner

लाभ (Advantages)

(i) अत्यन्त सरल होने के कारण मजदूरी गणना करने में कठिनाई नहीं होती।
(ii) मजदूरी समय के अनुसार निश्चित की जाती है, न कि कार्य के अनुसार जिसमें श्रमिक के कार्य का प्रमापीकरण करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।
(iii) आय की सुरक्षा होने की वजह से श्रमिक अपने खर्चों को अपनी आय के अनुसार व्यवस्थित कर सकता है और एक निश्चित जीवन-स्तर कायम रख सकता है।
(iv) कुशल एवं शिल्पकारी कार्यों के लिए सर्वोत्तम रहती है, क्योंकि ठेके पर कार्य कराने में श्रमिक उतने चाव व लगन से कार्य नहीं करता।
(v) कर्मचारी को अपने कार्य को करने का पर्याप्त समय मिलता है जिससे कार्य की गुणवत्ता में सुधार आता है।

दोष (Disadvantages)

(i) कुशल व अकुशल श्रमिकों को समान वेतन मिलने से कुशल श्रमिकों की भावनाओं पर कुठाराघात होता है।
(ii) इस प्रणाली में कुशल व अकुशल श्रमिक की पहचान नहीं हो पाती, जिससे उन्हें दण्डित करना सम्भव नहीं होता।
(iii) इस प्रणाली में जागरूक प्रबन्धन तथा सख्त पर्यवेक्षण आवश्यक है।
(iv) श्रमिकों में एकता आ जाने से श्रमिक संगठनों को प्रोत्साहन मिलता है, जिससे औद्योगिक संघर्षों को बढ़ावा मिलता है।
(v) श्रमिक की उत्पादन शक्ति नापना सम्भव नहीं हो पाता, जिससे श्रमिक को प्रोत्साहित, पदोन्नत करना सम्भव नहीं होता।

उपयोग (Applications)

(i) यह प्रणाली अप्रत्यक्ष श्रमिकों जैसे—सफाईकर्मी, चौकीदार तथा निरीक्षण स्टाफ के लिए उपयोगी है।
(ii) जहाँ कार्य के लिए उच्च श्रेणी का कौशल आवश्यक हो अथवा जहाँ गति से अधिक यथार्थता (Accuracy) का महत्व हो जैसे टूलरूप कार्य प्रतिरूप बनाना, जिग तथा फिक्सर बनाना, डाई बनाना आदि।

सारांश में हम कह सकते हैं कि उपरोक्त दोषों के होते हुए इस पद्धति का श्रमिकों पर अनैतिक प्रभाव होता है तथा उनमें यह प्रवृत्ति आ जाती है कि "काम उतना ही करो जिससे नौकरी बची रहे।"

II. कार्यानुसार मजदूरी या क्षतिपूर्ण पद्धति (Piece Wage System or Rate System)—कार्यानुसार मजदूरी पद्धति से श्रमिकों को अपने किए हुए कार्य के अनुसार मजदूरी दी जाती है। इसमें समय का कोई महत्व नहीं होता, जो श्रमिक जितना और जैसा कार्य करता है या जितनी वस्तु की इकाइयाँ बनाता है, उसी आधार पर उसको मजदूरी दी जाती है। उदाहरण के लिए—एक टेबिल बनाने के लिए 10 रुपये दिये जाते हैं, तो उस श्रमिक को जो 3 टेबिल बनाता है, 30 रुपये मिलेंगे चाहे वह 3 टेबिल एक दिन में बनाये या 10 दिन में।

लाभ (Advantages)

(i) यह विधि कर्मचारियों को उनकी आय बढ़ाने की प्रेरणा देती है।
(ii) इस विधि से उत्पादकता में वृद्धि तथा प्रति यूनिट उत्पादन लागत में कमी आती है, क्योंकि सभी ऊपरी खर्चे जैसे—बिजली, पानी, किराया, वेतन आदि कार्य यूनिटों की अधिक संख्या में वितरित हो जाते हैं।
(iii) सतत पर्यवेक्षण की आवश्यकता नहीं रहती।
(iv) इससे दक्षता में वृद्धि होती है क्योंकि श्रमिक कच्चा माल के त्रुटिहीन होने को बाध्य करते हैं तथा अपनी मशीनों व औजारों को ठीक स्थिति में बनाये रखते हैं।
(v) यह विधि दक्ष श्रमिकों को उच्च पारिश्रमिक का लाभ देती है जबकि आलसी श्रमिकों को अधिक कार्य करने की प्रेरणा देती है।

Scanned with CamScanner

दोष (Disadvantages)

(i) यह प्रणाली ऐसे उद्योगों के लिए अनुपयुक्त है जहाँ तक व्यक्ति विशेष के द्वारा किये गये कार्यों की गणना करना कठिन कार्य हो।

(ii) यह प्रणाली स्थिर न्यूनतम मजदूरी की गारण्टी नहीं देती तथा श्रमिक के मन में बेचैनी तथा अनिश्चितता बनी रहती है।

(iii) अधिक मजदूरी पाने की लालसा में, श्रमिक को अधिक कार्य करना पड़ता है, जिससे उसकी तबियत बिगड़ सकती है तथा दुर्घटना की सम्भावनाएँ भी बढ़ सकती हैं।

(iv) इस प्रणाली से कार्य की गुणवत्ता में गिरावट आती है।

उपयोग (Applications)—यह प्रणाली ऐसे उद्योगों के लिए उचित है जहाँ श्रमिक को लगातार एक जैसा कार्य करना होता है। कार्यानुसार मजदूरी भुगतान प्रणाली के गुण-दोषों का अध्ययन करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत प्रणाली उन उद्योगों के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है जहाँ पर उत्पादन की क्रिया का प्रमाणीकरण हो चुका है तथा समान किस्म की वस्तुओं का उत्पादन होता है एवं कार्य का माप भी आसानी से किया जा सकता है। जैसे—हथकरघा तथा खादी वस्त्र ग्रामोद्योग, कोयला खनन उद्योग आदि।

कार्यानुसार तथा समयानुसार मजदूरी प्रणाली की तुलना

(Comparison Between Time Wages and Piece Wage System)

	अंतर का आधार	कार्यानुसार मजदूरी प्रणाली	समयानुसार मजदूरी प्रणाली
1.	आधारशिला	यह कार्यानुसार दी जाती है।	यह समयानुसार दी जाती है।
2.	कुशलता	यह कुशल श्रमिकों के लिए विशेष लाभदायक है।	यह कुशल श्रमिकों के लिए विशेष लाभदायक नहीं है।
3.	मजदूरी की निश्चितता	इसमें मजदूरी की राशि की अनिश्चितता होती है।	इसमें मजदूरी की राशि की निश्चितता होती है।
4.	स्थायित्व	इसमें नौकरी के स्थायित्व का पूर्णतया अभाव होता है।	इसमें नौकरी के स्थायित्व का आकर्षण रहता है।
5.	छुट्टियों का आकर्षण	इसमें छुट्टियों के आकर्षण का अभाव रहता है।	इसमें छुट्टियों का आकर्षण रहता है, क्योंकि श्रमिकों की छुट्टियों का भी वेतन मिलता है।
6.	श्रमिक संघों का दृष्टिकोण	श्रमिक संघ कार्यानुसार मजदूरी प्रणाली का विरोध करते हैं, क्योंकि इससे उनमें एकता नहीं हो पाती।	श्रमिक संघ समयानुसार मजदूरी पद्धति का समर्थन करते हैं, क्योंकि यह उनमें एकता उत्पन्न करती हैं।
7.	अधिक कार्य के लिए प्रेरणा	श्रमिकों को अधिक कार्य करने के लिए प्रेरणा मिलती है।	मजदूरी की यह पद्धति श्रमिकों को अधिक कार्य करने के लिए प्रेरणा नहीं देती है।
8.	शिल्पकारी कार्य	यह पद्धति शिल्पकारी कार्यों के लिए ठीक नहीं है।	मजदूरी की यह पद्धति शिल्पकारी कार्यों के लिए अधिक उपयोगी है।
9.	निरीक्षण की आवश्यकता	इसमें कठोर निरीक्षण की आवश्यकता नहीं होती, अतएव निरीक्षण व्यय घट जाता है।	इसमें कठोर निरीक्षण की आवश्यकता होती है, अतएव निरीक्षण व्यय बढ़ जाता है।

Scanned with CamScanner

10.	माल की किस्म तथा उत्पादन की मात्रा	इसमें उत्पादन की मात्रा में वृद्धि को अधिक महत्व दिया जाता है, न कि माल की किस्म को।	इसमें उत्पादन की मात्रा में वृद्धि करने की तुलना में माल की किस्म में वृद्धि करने पर अधिक ध्यान दिया जाता है।
11.	कार्य में शिथिलता	इसमें ऐसा करना सम्भव नहीं है।	कभी-कभी श्रमिक इसमें जान-बूझकर कार्य शिथिलता से करते हैं।

III. प्रेरणात्मक प्रणाली (Incentive System)—मजदूरी भुगतान प्रणाली के दोनों प्रकारों में (समयानुसार व कार्यानुसार) में कुछ न कुछ दोष विद्यमान हैं। समयानुसार मजदूरी की प्रणाली, कुशल एवं अकुशल श्रमिक में कोई भेद नहीं करती और कार्यानुसार मजदूरी देने की प्रणाली का वस्तु के गुणों पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। इन दोनों पद्धतियों के दोष करने के लिये तथा श्रमिकों को कार्य करने के लिए पर्याप्त प्रेरणा एवं प्रोत्साहन देने के लिए मजदूरी भुगतान की कुछ वैज्ञानिक पद्धतियाँ निकाली गई हैं। ये पद्धतियाँ यान्त्रिक रूप से प्रगतिशील, प्रेरणादायक अथवा प्रब्याजी (अधिलाभांश) प्रणालियाँ कहलाती हैं।

प्रत्येक नियोक्ता चाहता है कि श्रमिक यथाशक्ति अधिक से अधिक कार्य करे, किन्तु उसे इसमें सदैव सफलता नहीं मिलती है, क्योंकि श्रमिक वर्ग यह सोचता है कि उसके द्वारा किये गये अतिरिक्त परिश्रम का फल केवल नियोक्ता को ही मिलेगा—उसे कुछ नहीं मिलेगा, चाहे उनको कार्यानुसार मजदूरी ही क्यों न दी जाये। इसका परिणाम यह होता है कि श्रमिक केवल उतना ही कार्य करता है, जिससे कि उसकी नौकरी चलती रहे। श्रमिक वर्ग की इस भावना पर दो प्रकार से नियन्त्रण पाया जा सकता है—भय दिखाकर अथवा प्रलोभन देकर। किसी प्रकार का भय दिखाकर उससे अधिक उत्पादन कराने का प्रयत्न किया जाए तो कभी-कभी स्थिति उल्टी हो सकती है, परन्तु प्रलोभन से उसे अधिक कार्य करके अधिक उत्पादन करने की प्रेरणा मिलेगी। यदि नियोक्ता चाहता है कि श्रमिक अधिक उत्पादन करे तो वह उनके अधिक परिश्रम से होने वाले फल को स्वयं रखने का प्रयत्न न करे। अत: श्रमिक के हृदय में ही अधिक उत्पादन की प्रेरणा देने के उद्देश्य से मजदूरी की कुछ प्रणालियाँ अपनायी जाती हैं, जिनका आधार वैज्ञानिक होता है। अत: इन्हें कभी-कभी मजदूरी की वैज्ञानिक पद्धतियाँ भी कहते हैं। इन पद्धतियों में श्रमिकों को उनकी सामान्य मजदूरी के अलावा भी कुछ और प्राप्त हो जाता है जो प्रीमियम या बोनस के रूप में होता है। अत: इन्हें प्रीमियम पद्धति या बोनस पद्धति भी कहते हैं। इन प्रणालियों को अपनाने का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि स्वयं श्रमिक अधिक उत्पादन करने को प्रेरित हों। अत: इन्हें प्रेरणात्मक विधियाँ (Incentive methods) भी कहते हैं।

विशेषताएँ या लक्षण (Characteristics of Elements)

सभी प्रेरणात्मक प्रणालियों में दो बातें मुख्य रूप से पायी जाती हैं—

(i) प्रमापित निश्चित समय—सभी प्रणालियों में एक प्रमापित समय निश्चित कर दिया जाता है और उस समय में दिया हुआ कार्य पूरा करना पड़ता है। उसके लिए एक निश्चित मजदूरी होती है।

(ii) अधि-लाभांश (Bonus) समय—यदि कोई श्रमिक उस कार्य को या उतनी इकाइयों को समय के पूर्व ही पूरा कर ले तो उसे प्रभावित से कम समय में काम करने या प्रमापित कार्य से अधिक कार्य करने के प्रतिफल के रूप में जो कुछ अतिरिक्त मिले उसकी दर निश्चित कर दी जाती है।

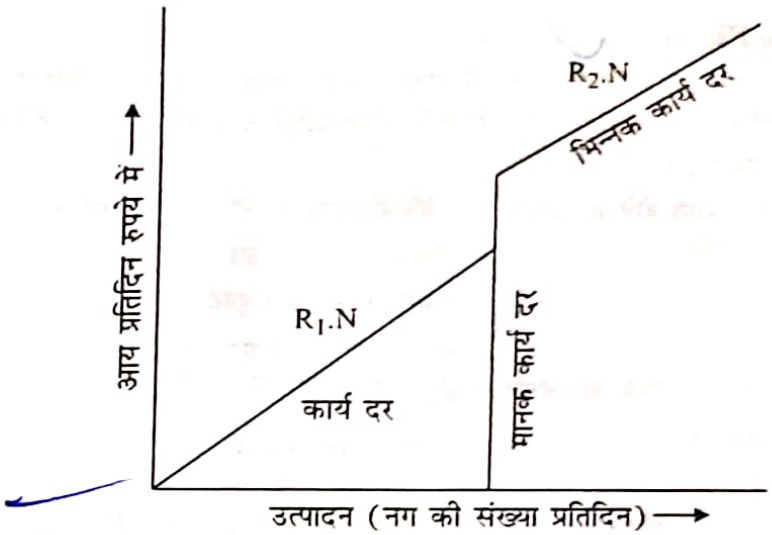
प्रेरणात्मक प्रगतिशील पद्धतियों के रूप
(Forms of Incentive Progressive System)

प्रेरणात्मक पद्धतियों के विभिन्न रूप हैं, जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं—

1. टेलर भिन्नक कार्यानुसार प्रणाली (Taylor Differential Piece Rate System)

इस योजना को एफ० डब्ल्यू० टेलर (F. W. Taylor) ने विकसित किया। यह प्रणाली दो कार्य दर प्रस्तुत करती है। वे श्रमिक जो एक निश्चित अवधि में मानक कार्य या उससे अधिक कार्य करते हैं उन्हें "उच्च मजदूरी दर" अथवा "उच्च कार्य

Scanned with CamScanner



दर'' से भुगतान किया जाता है तथा जो मानक से कम कार्य करते हैं उन्हें ''निम्न कार्य दर'' से भुगतान किया जाता है। यह प्रणाली दक्ष कर्मचारियों के लिए पारितोषिक तथा आलसी कर्मचारियों के लिए दंड का प्रावधान करती है।

यहाँ R_1 = निम्न कार्य दर

R_2 = उच्च कार्य दर

N = नगों की संख्या

उदाहरण—माना दो श्रमिक x तथा y दो एक समान मशीनों पर एक समान कार्य के लिए क्रमश: 75 तथा 85 नग उत्पादित करते हैं जबकि मानक उत्पादन 80 नग प्रतिदिन है। प्रत्येक श्रमिक की आय का आकलन कीजिये जबकि श्रम दर Rs. 12 प्रति घण्टा है तथा मानक कार्य दर का 80% निम्न मानक निष्पादन तथा 120% उच्च मानक निष्पादन मानिये।

हल—

$$\text{मानक निष्पादन प्रति घण्टा} = \frac{80}{8} = 10 \text{ नग}$$

$$\text{मानक कार्य दर (Piece Rate) } (R) = \frac{12}{10} = \text{Rs. } 1.20$$

$$\text{निम्न कार्य दर} = 1.2 \times \frac{80}{100} = 0.96$$

$$\text{उच्च कार्य दर} = 1.2 \times \frac{120}{100} = 1.44$$

$$\text{श्रमिक } x \text{ की आय} = 0.96 \times 75 = \text{Rs. } 72 \text{ प्रतिदिन}$$

$$\text{श्रमिक } y \text{ की आय} = 1.44 \times 85 = \text{Rs. } 122.40 \text{ प्रतिदिन}$$

लाभ (Advantages)

(i) यह पद्धति विशुद्ध वैज्ञानिक तरीकों पर आधारित है।

(ii) दक्ष कर्मचारी को इससे काफी लाभ मिलता है क्योंकि ऊँची दर पर्याप्त ऊँची होती है।

(iii) मजदूरी की गणना करने में कठिनाई नहीं होती।

हानियाँ (Disadvantages)

(i) कार्य और समय की मानक माप प्राय: श्रमिकों को मान्य नहीं होती।

(ii) 'नीची दर' इस सीमा तक नीची होती है कि अकुशल कर्मचारी को कम वेतन का दण्ड मिलता है।

Scanned with CamScanner

2. हैल्से पद्धति (Halsey Plan)

इस पद्धति में 50% के स्थान पर समय की बचत के एक-तिहाई भाग पर बोनस देय होता है। इस प्रकार बोनस और कुल वेतन में कुछ कमी हो जाती है। यह विधि अन्य सब बातों में वीयर पद्धति के समान ही है। बचाये हुए समय के दो-तिहाई भाग का लाभ सेवायोजक को मिलता है।

इस पद्धति से मजदूरी कम प्राप्त होने के कारण यह श्रमिकों द्वारा पसन्द नहीं की जाती।

इस प्रकार यदि H_s = मानक समय (घण्टे)

H_a = वास्तविक समय (घण्टे)

R_h = दर प्रति घण्टा

$\therefore$ समय की बचत = $H_s - H_a$

$\therefore$ बोनस = $\frac{1}{3}(H_s - H_a) \times R_h$

तथा कुल देय राशि = $H_s \times R_h + \frac{1}{3}(H_s - H_a)R_h$

$$= \left[\frac{2H_s - H_a}{3}\right]R_h$$

उदाहरण—यदि उपरोक्त उदाहरण में हैल्से पद्धति के अनुसार भुगतान किया जाये तो बोनस की राशि ज्ञात कीजिये।

मानक समय = H_s = 10 घण्टे

वास्तविक समय = H_a = 6 घण्टे

$\therefore$ समय बचत $H_s - H_a$ = 10 – 6 = 4 घण्टे

R_h = रु० 1 प्रति घण्टा

बोनस = $\frac{1}{3}(10-6) \times 2$

= रु० 1.33

लाभ (Advantages)

(i) समझने तथा आकलन करने में यह विधि सरल है।

(ii) श्रमिक को न्यूनतम मजदूरी की गारण्टी होती है।

(iii) नियोक्ता व श्रमिक दोनों के लिए लाभकारी है।

हानियाँ (Disadvantages)

(i) श्रमिक द्वारा किये गये प्रयासों का लाभ प्रबन्धन को भी मिलता है, इससे कुछ श्रमिक असन्तुष्ट हो सकते हैं।

(ii) निष्पादन मानक, पूर्व उत्पादन रिकार्ड पर आधारित होते हैं।

3. रोवन मजदूरी प्रणाली (Rowan Premium Plan)

इस योजना को जेम्स रोवन (James Rowan) ने सन् 1901 में प्रस्तुत किया था। यह योजना भी प्रत्येक श्रमिक को न्यूनतम मजदूरी की गारण्टी देती है साथ ही समय की बचत के एक निश्चित अनुपात में प्रोत्साहन बोनस भी प्रदान करती है। इस योजना में बोनस की गणना निम्न सूत्र से की जाती है—

$$\text{बोनस} = \left[\frac{\text{मानक समय} - \text{वास्तविक समय}}{\text{मानक समय}}\right] \times \text{वास्तविक समय} \times \text{दर प्रति घण्टा}$$

$$= \left[\frac{T_s - T_a}{T_s}\right] \times T_a \times R$$

Scanned with CamScanner

अत: श्रमिक की कुल आय $= T_a \times R + \left[\frac{T_s - T_a}{T_s}\right] \times T_a \times R$

उदाहरण—एक उद्योग में किसी कार्य को पूर्ण करने का मानक समय 8 घण्टे है तथा दर प्रति घण्टा Rs. 20 है। मजदूरों को रोवन योजना के तहत बोनस का भुगतान किया जाता है। श्रमिक को प्राप्त बोनस की गणना कीजिए यदि श्रमिक अपना कार्य क्रमश: 8, 7, 6, ..., 1 घण्टे में पूरा कर लेता है।

हल—नीचे दी गई तालिका में समय के विभिन्न मानों के लिए बोनस का आगणन दिखाया गया है—

तालिका

कार्य को पूरा करने में लगा वास्तविक समय (T_a)	समय की बचत ($T_s - T_a$)	रोवन प्रणाली के तहत श्रमिक द्वारा अर्जित किया गया बोनस $= \left[\frac{T_s - T_a}{T_s}\right] \times T_a \times R$
8	0	0
7	1	$(1/8) \times 7 \times 20 =$ Rs. 17.50
6	2	$(2/8) \times 6 \times 20 =$ Rs. 30
5	3	$(3/8) \times 5 \times 20 =$ Rs. 37.50
4	4	$(4/8) \times 4 \times 20 =$ Rs. 40
3	5	$(5/8) \times 3 \times 20 =$ Rs. 37.50
2	6	$(6/8) \times 2 \times 20 =$ Rs. 30
1	7	$(7/8) \times 1 \times 20 =$ Rs. 17.50

उपरोक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि अर्जित बोनस का अधिकतम मान जब श्रमिक अपने कार्य को मानक समय के 50% समय में पूरा करेगा।

लाभ (Advantages)

(i) इस योजना से प्रशिक्षु, कम अनुभवी या उम्रदराज श्रमिकों को अच्छा प्रोत्साहन मिलता है। इससे उनका मनोबल तथा उत्साह बढ़ता है।

(ii) नियोक्ता को गलत मानक चुनने से होने वाली हानि से बचाव मिलता है।

(iii) बढ़े हुए उत्पादन का लाभ नियोक्ता को भी प्राप्त होता है।

(iv) 50% से अधिक समय की बचत से बोनस में कमी आती है। अत: श्रमिक जल्दबाजी में गुणवत्ता की अपेक्षा नहीं करता।

दोष (Disadvantages)

(i) यह प्रणाली उच्च उत्पादन स्तर पर कम प्रोत्साहन देती है।

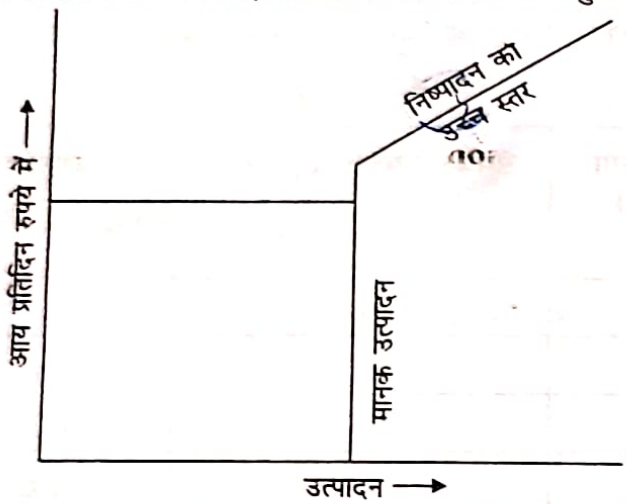
(ii) बढ़ी हुयी उत्पादकता के लाभ का एक अंश नियोक्ता को भी मिलता है। अत: कुछ श्रमिक इस योजना से असन्तुष्ट रहते हैं।

(iii) इस प्रणाली में अधिक जटिलतायें हैं।

Scanned with CamScanner

4. गैन्ट बोनस प्रणाली (Gantt Bonus System)

गैन्ट द्वारा प्रतिपादित इस पद्धति में निश्चित समयानुसार दरों की गारन्टी होती है। प्रत्येक कार्य के लिए उत्पादन की मानक मात्रा और मानक समय पहले से निर्धारित होते हैं। जो श्रमिक मानक कार्य को समय या उसके कम समय में पूरा कर लेते हैं उन्हें मानक समय के लिए मजदूरी के अतिरिक्त बोनस भी मिलता है। यह बोनस समय के 20 से 25 प्रतिशत के वेतन के रूप में मिलता है। यदि कोई श्रमिक निर्धारित समय में कार्य नहीं कर पाता तो उसे केवल समयानुसार कार्य की मजदूरी मिलती है।



इस प्रणाली के प्रमुख लक्षण निम्न हैं—

(i) इस प्रणाली में पारिश्रमिक प्रति घण्टे की दर से निर्धारित होता है न कि प्रति नग की दर से।

(ii) मानक निष्पादन से कम कार्य करने पर न्यूनतम समय दर से भुगतान किया जाता है।

(iii) मानक निष्पादन/उत्पादन करने पर श्रमिक को बोनस का भुगतान दिया जाता है तथा जो अत्यन्त आकर्षक होता है। (जैसे—न्यनतम पारिश्रमिक + समय दर का 20% बोनस के रूप में)

(iv) निष्पादन की उच्च दर के लिए उच्च कार्य दर का भुगतान किया जाता है।

(v) प्रत्येक कार्य के लिए वैज्ञानिक आधार पर कार्यमापन करके मानक समय निर्धारित किया जाता है।

उदाहरण—एक दिन का मानक कार्य 10 इकाइयों के समकक्ष है। यदि वेतन दर रु० 1 प्रति घण्टा हो और बोनस 50% हो तो 12 इकाई कार्य करने वाले श्रमिक का कुल वेतन निकालिए।

हल—माना श्रमिक 8 घण्टे कार्य करता है। अत: उसे 10 इकाइयों पर रु० 8.00 वेतन मिलेगा, अर्थात् वह रु० 0.80 प्रति इकाई वेतन पायेगा।

$\therefore$ मानक कार्य का वेतन = रु० 8.00

12 इकाई कार्य करने के कारण बोनस $= \frac{12}{2} \times 0.80 =$ रु० 4.80

उपयोग (Application)—इस प्रणाली का उपयोग अथवा उद्देश्य निष्पादन को मानक स्तर तक बढ़ाने के लिए होता है।

लाभ (Advantages)

(i) श्रमिकों को न्यूनतम वेतन मिलने की गारन्टी रहती है जिससे अदक्ष श्रमिकों को भी हानि नहीं हो पाती।

(ii) सेवायोजकों को बचत होती है। अत: वे कटौती नहीं करते।

(iii) श्रमिकों को काफी मात्रा में बोनस मिल जाता है जिससे वे सन्तुष्ट रहते हैं।

(iv) अधिक दक्ष श्रमिकों के लिए यह पद्धति विशेष लाभप्रद होती है।

Scanned with CamScanner

(v) बोनस की गणना करने में कठिनाई नहीं होती और सामान्य श्रमिक भी अपने अतिरिक्त वेतन का अनुमान लगा सकता है।

दोष (Disadvantages)

(i) इस पद्धति से अकुशल और अदक्ष कर्मचारियों की भी न्यूनतम मजदूरी निश्चित रहती है जिससे वे काम करने में रुचि नहीं लेते।

(ii) मानक कार्य के लिए मानक समय निर्धारित करने में कठिनाई होती है। यह कभी-कभी विवाद का कारण बन जाती है।

5. एमरसन दक्षता योजना (Emerson's Efficiency Plan)

इस योजना को हैरिंगटन एमरसन (Harrington Emerson) द्वारा प्रस्तुत किया गया। इस योजना में पारिश्रमिक की गणना का आधार दक्षता होती है। प्रतिदिन का पारिश्रमिक नियत होता है चाहे निष्पादन (output) कुछ भी हो। कम दक्ष कर्मचारियों का कोई नुकसान नहीं होता परन्तु अधिक दक्ष कर्मचारियों को बोनस प्राप्ति होती है जब वे अपनी दक्षता सिद्ध करते हैं। पूर्व अनुभवों के आधार पर एक मानक निष्पादन को 100% तय कर लिया जाता है। अब श्रमिक के वास्तविक निष्पादन की तुलना मानक निष्पादन से करके उसकी दक्षता का निर्धारण किया जाता है।

इस प्रकार $$\text{दक्षता } \% = \frac{\text{निश्चित समय में वास्तविक निष्पादन}}{\text{उसी समय में मानक निष्पादन}} \times 100$$

या $$\text{दक्षता } \% = \frac{\text{एक कार्य को करने में लगा वास्तविक समय}}{\text{कार्य के लिए मानक समय}} \times 100$$

इस योजना में श्रमिक को एक प्रोत्साहन बोनस का भुगतान भी किया जाता है यदि उसकी दक्षता मानक दक्षता (100%) के दो-तिहाई (66.67%) से अधिक हो। इस विधि में पारिश्रमिक का आकलन निम्न प्रकार करते हैं—

दक्षता	पारिश्रमिक
(a) 66.67% से कम	कोई बोनस नहीं। केवल समय दर से भुगतान होगा।
(b) 66.67 से 100% तक	समय दर से पारिश्रमिक का भुगतान + बोनस (90% दक्षता पर 10% तथा 100% दक्षता पर 20%)
(c) 100% से अधिक	समय दर से पारिश्रमिक + 20% बोनस + 100% दक्षता से अधिक प्रत्येक % दक्षता पर 1% अतिरिक्त बोनस (अर्थात् 1% दक्षता पर 1% अतिरिक्त बोनस)

66.67% दक्षता से अधिक दक्षता पर प्रोत्साहन बोनस धीरे-धीरे छोटे पदों में बढ़ता है। इसके आकलन में एक तालिका का प्रयोग किया जाता है जिसमें 34 छोटे पद (Small steps) होते हैं।

उदाहरण—एक उपक्रम में तीन श्रमिक X, Y तथा Z इस्पात की पिनें बनाते हैं। उन्हें 40 रु० प्रतिदिन पारिश्रमिक का भुगतान किया जाता है। यदि वे क्रमश: 30, 50 तथा 60 पिन बनाते हों तो एमरसन की दक्ष योजना पर आधारित उनकी आय ज्ञात करो यदि मानक उत्पादन 50 पिन प्रतिदिन है।

हल—श्रमिकों को कुल आय तथा उनका आकलन तालिका में प्रदर्शित है—

श्रमिक	उत्पादित मात्रा	मानक पारिश्रमिक दर (Rs)	मानक निष्पादन का प्रतिशत	बोनस का भुगतान	कुल आय (Rs)
X	30	40%	$\frac{30}{50} \times 100 = 60\%$	शून्य	40.00

Scanned with CamScanner

Y	50	40%	$\frac{50}{50} \times 100 = 100\%$	$40 \times \frac{20}{100}$ = Rs. 8.00	48.00
Z	60	4`0%	$\frac{60}{50} \times 100 = 120\%$	$8 + \frac{20}{100} \times 40$ = Rs. 16.00	56.00

लाभ (Advantages)

(i) यह प्रणाली सरल है।

(ii) इसमें दक्षता (Efficiency) का प्रतिफल मिलने के साथ-साथ नये श्रमिकों को भी प्रोत्साहन मिलता है।

(iii) यह प्रणाली प्रत्येक श्रमिक पर व श्रमिक समूह पर लागू की जा सकती है।

हानि (Disadvantages)

(i) इसमें श्रमिक वर्ग में सामूहिक भावना नहीं रहती है।

(ii) श्रमिकों को कार्य सम्पादन में विशेष शक्ति लगानी पड़ती है और उनको फिर भी पर्याप्त रूप से पारिश्रमिक नहीं मिलता।

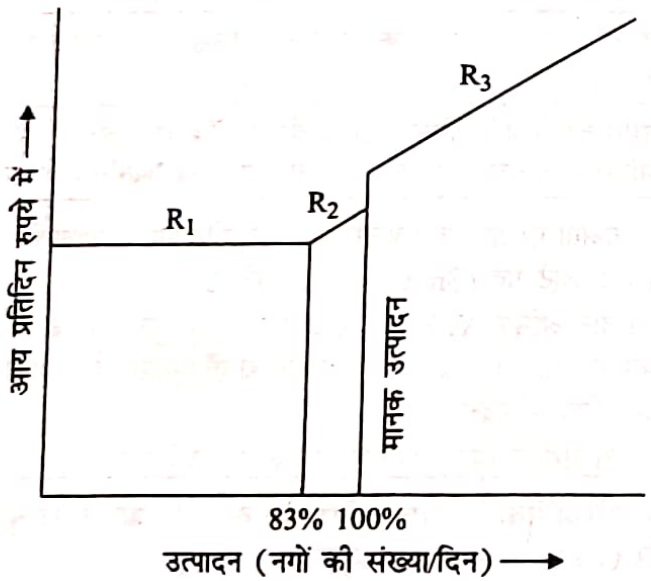
6. मैरिक मजदूरी पद्धति (Merric Differential or Multiple Piece Rate Plan)

यह टेलर की प्रणाली का एक संशोधित रूप है। उसके कार्यानुसार मजदूरी की दर निश्चित की थी। इसमें तीन दरें निश्चित की जाती हैं—

(i) प्रारम्भिक मजदूरी दर (Beginners Piece Rate),

(ii) विकास मजदूरी दर (Developing Workers Piece Rate),

(iii) अत्यधिक कुशल और दक्ष श्रमिक की मजदूरी दर (Highly Skilled Efficient Worker's Piece Rate)।



यह प्रणाली श्रमिकों के प्रत्येक वर्ग के लिए तीन विभिन्न दर प्रस्तुत करती है। प्रथम प्रशिक्षुओं अथवा नवकर्मियों के लिए, दूसरा सामान्य तथा विकासशील कर्मियों के लिए तथा तीसरा दक्ष कर्मियों के लिए। इसमें कोई दण्ड नहीं होता तथा श्रमिकों को न्यूनतम मज़दूरी की गारण्टी होती है।

Scanned with CamScanner

(i) मानक उत्पादन के 83% तक = मूल दर प्रति नग
(ii) मानक उत्पादन के 83% से 100% तक = 1.10 × मूल दर प्रति नग
(iii) मानक उत्पादन के 100% से अधिक = 1.20 × मूल दर प्रति नग

7. बेडो पद्धति (Beadaux Point Premium Plan)

इस प्रणाली का प्रतिपादन सन् 1911 में चार्ल्स बेडाक्स (Charles Beadaux) ने किया था। इस प्रणाली को मिल मालिकों ने बहुत पसन्द किया है। इस प्रणाली में मानक समय के प्रत्येक मिनट को एक अंक के रूप में व्यक्त किया जाता है। एक अंक को 1 B कहते हैं जो एक मिनट के बराबर होता है। इसका अर्थ यह है कि एक मानक घण्टा 60 B अर्थात् 60 अंक का होगा। न्यूनतम गारण्टी युक्त वेतन 60 अंक प्रति घण्टा पर भुगतान किया जाता है। 60 अंक से ऊपर अर्जित किये गये अंकों का भुगतान मूल पारिश्रमिक दर के 75% से किया जाता है। यह प्रणाली उपयुक्त है जब—

(i) कार्य की प्रकृति, मानक स्थितियों में समान बनी रहती है।
(ii) जहाँ कार्यकारी क्षेत्र विस्तृत परिवर्तनीय हो, तथा
(iii) जहाँ उत्पादन नियन्त्रण उच्च विकसित हो।

एक श्रमिक की आय निम्न सूत्र से ज्ञात की जा सकती है—

$$E = R \times T_a + 0.75 (T_s - T_a)$$

जहाँ E = श्रमिक की आय, R = मजदूरी दर प्रति घंटा,
T_s = मानक समय तथा T_a = वास्तविक समय।

लाभ (Advantages)

(i) यह प्रणाली सरल एवं क्रियान्वयन में आसान है।
(ii) एक मजदूरी प्रतिदिन अर्जित अंक अर्थात् B_s गिन सकता है और महीने भर का आकलन कर सकता है।
(iii) कार्यकारी समय की यथार्थता के कारण प्रभावी उत्पादन नियन्त्रण स्थापित किया जा सकता है।
(iv) प्रबन्धक अगर चाहे तो प्रतिदिन अर्जित अंकों अर्थात् B_s को नोटिस बोर्ड पर प्रदर्शित कर सकता है जिससे श्रमिकों में प्रतिस्पर्धा की भावना उत्पन्न होती है।

8. जीवन निर्वाह लागत वेतन (Cost of Living Wages)

कभी-कभी श्रमिकों का वेतन निर्वाह लागत के स्तर से पूरी तरह जुड़ा रहता है। यह निर्वाह लागत वर्किंग क्लास निर्वाह लागत सूचकांक (Working class cost of living index) से जुड़ा रहता है। ऐसे सूचकांकों से जीवन निर्वाह का स्तर बनाये रखने के लिए आवश्यक लागत में वृद्धि या कमी का पता चलता है। अपने देश में ऐसे अनेक सूचकांक विभिन्न औद्योगिक केन्द्रों जैसे—बम्बई, अहमदाबाद, शोलापुर, कानपुर आदि के लिए तैयार किये जाते हैं। जीवन निर्वाह लागत अचानक बढ़ने पर द्वितीय विश्व युद्ध में अनेक ऐसे सूचकांक बनाए गये थे। श्रमिक को वास्तविक वेतन में रुचि होती है, धनराशि वेतन में नहीं। जिन दिनों मूल्य तेजी से बढ़ते हैं ऐसी परिस्थितियों में श्रमिक को जीवन बिताने में बहुत कठिनाई होती है। यदि वह स्थिर वेतन ही पाता रहे। अत: बढ़ते मूल्यों के साथ वह अधिक वेतन पाने के लिए आन्दोलन करने लगता है। अत: यह उचित ही माना जाता है कि जैसे-जैसे जीवन निर्वाह लागत (Cost of living) बढ़े, उसी के अनुसार समय-समय पर वेतन में भी कुछ प्रतिशत वृद्धि की जाये। इस प्रकार जीवन-निर्वाह सूचकांक में 5 बिन्दु की वृद्धि होने पर (उदाहरणतया 300 बिन्दु होने पर जब आधार 100 हो) श्रमिक का वेतन रु० 60 से रु० 61 तक बढ़ाया जा सकता है।

इस तरह इस प्रणाली में वेतन में स्वत: समायोजन हो जाता है और नियोक्ता को श्रम अशान्ति का भय नहीं रहता क्योंकि बार-बार वेतन बढ़ाने के लिए श्रमिक को संघर्ष नहीं करना पड़ता। श्रमिक शान्तिपूर्वक कार्य करते हैं जिससे उनकी दक्षता और क्षमता बढ़ती है। परन्तु इस व्यवस्था के साथ थोड़ी सी कठिनाई यह है कि लागत सूचकांक बढ़ने और वेतन बढ़ने के बीच थोड़ा सा समय का अन्तर रहता है। यदि मूल्य तेजी से बढ़ते हैं तो इन दोनों के समयान्तर का श्रमिक पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है और वह इस व्यवस्था से पूरा लाभ नहीं उठा पाता। इस प्रकार वेतन मूल्यों के साथ चल नहीं पाते। परन्तु जब मूल्य घटना

Scanned with CamScanner

आरम्भ होते हैं तो श्रमिक को इस व्यवस्था से कुछ लाभ हो जाता है क्योंकि तेजी से घटते मूल्यों के साथ वेतन भी उतनी ही तेजी से नहीं घट पाता।

9. ग्रुप बोनस योजना (Group Bonus Scheme)

इस पद्धति में एक श्रमिक को अधिलाभ बोनस देने के बजाय पूरे ग्रुप को दिया जाता है। किसी ऐसे कार्य में जहाँ दो या दो से अधिक कर्मचारी मिलकर कार्य कर रहे हों, प्रत्येक कर्मचारी की दक्षता अलग-अलग न तो उचित ही है और न ही व्यावहारिक है। ऐसे कार्यों के कुछ विशेष लक्षण हैं, जैसे—क्रियाओं में अन्तर्सम्बन्ध (Inter relationship), भौतिक निकटता (Physical proximity) और रुचि की एकता।

इन कार्यों में परस्पर सहयोगी प्रयास की आवश्यकता होती है, जिसके लिए निकटतम नेतृत्व भी होना चाहिए। ऐसे कार्यों को विभिन्न प्राकृतिक खण्डों में बाँटकर प्रत्येक टोली का नेतृत्व एक क्रमिक के हाथ में दिया जाता है। प्राय: एक ग्रुप में बारह से अधिक व्यक्ति नहीं रखे जाते। यदि कार्य ऐसा है जिसमें अधिक व्यक्तियों के सामूहिक प्रयास की आवश्यकता हो तो ग्रुप में अधिक सदस्य रखे जा सकते हैं। यदि उपकरणों में किसी प्रकार का यान्त्रिक नियन्त्रण नहीं है अथवा सामूहिक प्रयास की आवश्यकता नहीं है तो ग्रुप बनाने में लाभ की बजाए हानि ही होगी।

ग्रुप प्रेरणात्मक पद्धति निम्नलिखित परिस्थितियों में विशेष उपयोगी पाई गई है—

(i) कन्वेयर वाले संयन्त्रों (Conveyor equipments) में जहाँ संचालक उत्पादन रेखा में प्रदत्त कार्य से अधिक कर नहीं सकते।

(ii) कन्वेयर के अतिरिक्त अन्य कार्यों में जहाँ पिछली क्रिया की गुणवत्ता और संचालन से अगली क्रियाओं पर बहुत प्रभाव पड़ सकता हो।

(iii) ऐसे विविध प्रकार के कार्य जिनकी मात्रा और गुणवत्ता में अकेले श्रमिक द्वारा दिया गया अंशदान मापन सम्भव न हो।

ग्रुप प्रेरण बोनस पद्धति में बोनस की गणना सरल होती है और समय की बचत होती है। परन्तु इसका मुख्य दोष यह है कि यह दक्ष तथा अदक्ष दोनों प्रकार के श्रमिकों को बराबर स्तर पर मानकर पुरस्कृत करती है। अधूरे कार्य के लिए बोनस देने में कठिनाई होती है। जब असम्बद्ध कार्यों को मिलाकर बड़े ग्रुप बनाये जाते हैं तो 'सहयोग के लिए प्रेरणा' की भावना समाप्त हो जाती है। बड़े ग्रुपों में पद्धति के संचालन में कठिनाई होती है।

प्रत्येक ग्रुप प्रेरणा पद्धति के लिए अकेले श्रमिकों के लिए लागू प्रेरणा पद्धतियों में से कोई भी प्रयुक्त की जा सकती है। प्रत्येक श्रमिक को एक निश्चित वेतन देने के अतिरिक्त ग्रुप कार्य के लिए निर्धारित बोनस का अंश दिया जाता है।

3.2 (a) मजदूरी प्रलोभन

(Refer to Chapter 1 topics—Incentives, Types of Incentives, Advantages, Pay, Promotion and Rewards)

3.3 (a) कार्य मूल्यांकन एवं योग्यता अंकन

(कृपया अध्याय 2 के 2.3 (c) का सन्दर्भ पूर्णत: लें)

प्रश्नावली

1. मजदूरी को परिभाषित कीजिए तथा एक अच्छी मजदूरी प्रणाली के अभिलक्षण को समझाइये।
2. मजदूरी तथा वेतन प्रशासन पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।
3. मजदूरी तथा वेतन प्रशासन के प्रमुख उद्देश्यों एवं महत्त्व को समझाइये।
4. वास्तविक मजदूरी तथा अभिहित मजदूरी को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

Scanned with CamScanner

5. वेतन तथा मजदूरी को परिभाषित कीजिए। इनके प्रकारों को संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।
6. वेतन तथा मजदूरी को परिभाषित कीजिए तथा इनके अन्तर स्पष्ट कीजिए—
   (a) सांकेतिक मजदूरी तथा वास्तविक मजदूरी
   (b) निर्वाह मजदूरी तथा न्यायोचित मजदूरी।
7. पारिश्रमिक को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
8. पारिश्रमिक असमानता से आप क्या समझते हैं?
9. मजदूरी भुगतान पद्धतियों का वर्णन कीजिए।
10. उचित (अच्छी) मजदूरी भुगतान पद्धति के प्रमुख गुणों का वर्णन कीजिए।
11. अवित्तीय प्रेरणाओं को उदाहरण सहित समझाइयें।
12. श्रम-पारिश्रमिक प्रेरणात्मक योजना का क्या अर्थ है? किन्हीं दो पद्धतियों के गुण-अगुण के साथ स्पष्ट कीजिए।
13. विभिन्न प्रकार की वेतन प्रोत्साहन योजनाओं का वर्णन कीजिए।
14. टेलर की विभेदात्मक प्रणाली की समालोचन कीजिए।
15. गैण्ट की लक्ष्य तथा बोनस प्रणाली का लाभ-हानि के साथ वर्णन कीजिए।
16. संक्षिप्त टिप्पणी—
   (i) सीधी काई दर प्रणाली
   (ii) हाल से प्रोत्साहन योजना
   (iii) एमरसन दक्षता योजना
   (iv) बेडोक्स अंक-प्रणाली
   (v) रोबन योजना
   (vi) समूह प्रोत्साहन योजना।
17. बोनस प्रणाली से आपका क्या अभिप्राय है? इसका विधियों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

Scanned with CamScanner

अध्याय-4

मानवीय एवं औद्योगिक सम्बन्ध

(Human and Industrial Relations)

** औद्योगिक सम्बन्ध एवं विवाद, अधिनस्थों, समकक्षों एवं उच्चस्थों के साथ सम्बन्ध, समूह व्यवहार की विशेषतायें एवं श्रम-संघवाद, भीड़-मनोविज्ञान, परिवेदना, परिवेदना निवारण वाद-विवाद, हड़ताल, तालाबन्दी, धरना, घेराव, श्रम-कल्याण योजनाएँ, प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी।*

4.1 औद्योगिक सम्बन्ध एवं विवाद (Industrial Relations & Disputes)

औद्योगिक सम्बन्धों को कर्मचारी एवं नियोक्ता (Employer) के मध्य अथवा उद्योग और लोगों के मध्य सम्बन्धों द्वारा परिभाषित किया जा सकता है।"

औद्योगिक सम्बन्ध कार्मिक प्रबन्ध का एक भाग है जो अधिष्ठान (Enterprise) की श्रम-शक्ति (Man Power) से सम्बन्धित होता है। श्रम-शक्ति से अभिप्राय उन सभी कर्मचारियों से है जो कि प्रतिष्ठान से पगार या वेतन प्राप्त करते हैं। श्रम-शक्ति के अन्तर्गत प्रतिष्ठान के सभी कार्यरत कर्मचारी सम्मिलित हैं, जैसे—मशीन प्रचालक (Machine Operators), सहायक (Helpers), कुशल, अर्द्ध-कुशल (Skilled and Semi-skilled) कारीगर, पर्यवेक्षकीय स्टाफ (Supervisory Staff) तथा प्रबन्धक (Managers) इत्यादि। मैत्रीय एवं शान्तिपूर्ण (Cordial and Peaceful) औद्योगिक सम्बन्ध नियोक्ता (Employer) तथा कर्मचारियों (Employees) के बीच बने रहना अति आवश्यक होते हैं, क्योंकि ऐसे औद्योगिक सम्बन्ध ही देश को आर्थिक विकास (Economic Growth) तथा उत्पादकता (Productivity) की ओर उन्मुख करते हैं। केवल अच्छे औद्योगिक सम्बन्धों के परिणामस्वरूप ही एक प्रतिष्ठान अपने कर्मचारियों (Employees) तथा प्रबन्ध-तन्त्र का कल्याणकारी दिशा में कदम बढ़ा सकता है।

औद्योगिक सम्बन्धों के एकीकृत कार्यक्रम (Integrated Programmes) अब प्रतिष्ठानों में बनाये जाने लगे हैं। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान ही कर्मचारियों के हितों पर कुछ ध्यान देना प्रारम्भ हो गया था, किन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के आस-पास 1940 के दशक में तो औद्योगिक सम्बन्धों को विशिष्ट महत्ता प्रदान की गई। औद्योगिक सम्बन्धों का संयुक्त परिणाम कर्मचारियों के पारस्परिक सहयोग, सद्व्यवहार एवं भेद-भाव रहित दृष्टिकोण से उजागर होता है। औद्योगिक संगठन की विभिन्न गतिविधियाँ जैसे-समन्वय (Coordination), निर्देशन (Direction), पर्यवेक्षण (Supervision) तथा नियोजन (Planning) इत्यादि कर्मचारियों के न्यूनतम मानवीय प्रयासों (Human Efforts) द्वारा सम्पन्न होना ही अच्छे औद्योगिक सम्बन्धों का द्योतक है।

औद्योगिक सम्बन्धों की परिभाषा (Definitions of Industrial Relations)

विभिन्न विद्वानों ने औद्योगिक सम्बन्धों को निम्नांकित ढंग से परिभाषित किया है—

(i) उद्योग में नियोक्ता (Employer) तथा कर्मचारियों (Employees) के बीच स्थापित रिश्तों को औद्योगिक सम्बन्ध कहा जाता है।

Scanned with CamScanner

(ii) कर्मचारियों (Employees) तथा प्रबन्ध-तन्त्र (Management) के बीच रोजगार (Employment) बढ़ाने वाले सम्बन्धों (Relationships) को भी औद्योगिक सम्बन्धों की संज्ञा दी जा सकती है।

(iii) संक्षेप में, औद्योगिक उत्पादन में सामाजिक रिश्तों को औद्योगिक संक्षेप कहते हैं।

औद्योगिक विकास के फलस्वरूप इस परिभाषा का अर्थ व्यापक रूप में कुछ इस प्रकार लिया जा सकता है—

"उद्योग के परिवेश में मालिक-नौकर-यूनियन तथा सरकार के बीच रिश्तों को औद्योगिक सम्बन्ध कहा जा सकता है।"

अगर औद्योगिक सम्बन्ध अच्छे नहीं होंगे तो औद्योगिक विवादों को बढ़ावा मिलेगा तथा उद्योग की तरक्की बाधित होगी। इससे नियोक्ता को हानि होगी, श्रमिकों को वेतन नहीं मिलेगा तथा समाज में उपाय अथवा सेवा का अभाव हो जायेगा। अत: नियोक्ता, कर्मचारी तथा समाज सभी की तरक्की के लिए आवश्यक है कि औद्योगिक सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण एवं मधुर बने रहें।

औद्योगिक-सम्बन्ध कार्यक्रम (Industrial-Relation Programme)

औद्योगिक सम्बन्ध कार्यक्रम की सफलता निम्न बातों पर निर्भर करती है—

(i) शीर्ष प्रबन्धन का सहयोग तथा परामर्श,

(ii) मजबूत कार्मिक नीतियाँ,

(iii) उचित व्यवहार करना,

(iv) कर्मचारियों की प्रतिक्रिया का मूल्यांकन करना और उसका अनुसरण (Follow up) करना।

प्रबन्धन प्राय: तीन कार्यक्रम द्वारा अपने औद्योगिक सम्बन्धों का निर्देशन करता है। ये कार्यक्रम हैं—

(i) श्रमिक सम्बन्ध (Labour Relations) द्वारा

(ii) जन सम्बन्ध (Public Relations) द्वारा, तथा

(iii) कार्मिक प्रबन्धन (Personnel Management) द्वारा

इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

1. श्रमिक सम्बन्ध कार्यक्रम द्वारा (Labour Relations)—श्रमिक सम्बन्धों के माध्यम से कम्पनी संघ के प्रत्यावेदनों, सामूहिक सौदेबाजी (Collective Bargaining), श्रमिक शिकायतों आदि का निपटारा करते हैं।

श्रमिक सम्बन्ध, प्रबन्धन तथा कर्मचारी प्रतिनिधियों अथवा संघों के मध्य रिश्तों तथा शर्तों को बताते हैं। यह न्यूनतम प्रयास तथा विरोध के, एक दूसरे को सहयोग देने की भावना के साथ संगठन की विभिन्न गतिविधियों में जैसे नियोजन, पर्यवेक्षण, निर्देशन तथा समन्वय आदि में प्रबन्धन तथा कर्मचारियों की प्रवृत्ति का संयुक्त परिणाम है। आज श्रमिकों तथा संघों की बढ़ती हुई संख्या को देखते हुए सरकार ने नियोक्ता कर्मचारी सम्बन्धों पर सक्रिय हस्तक्षेप किया है। अब श्रमिक सम्बन्धों के समन्वय के लिए बड़े संगठनों में श्रमिक सम्बन्ध विभाग (Labour Relations Department) होता है। इस विभाग के प्रमुख कार्य निम्न हैं—

(i) श्रमिक संघों के साथ सभी प्रकार का पत्राचार/सम्पर्क बनाता है।

(ii) सरकारी श्रम एजेन्सियों से आवश्यक पत्राचार बनाता है।

(iii) यह विभाग प्रबन्धन तथा श्रम संघों के मध्य आने वाली विभिन्न समस्याओं जैसे कम वेतन, अधिक कार्य-घण्टे, खराब कार्यकारी परिस्थितियाँ, बोनस न मिलना आदि का सम्मानजनक तथा सन्तोषजनक हल निकालने में मदद करता है।

(iv) विभिन्न वार्ताओं में भागीदारी करता है।

(v) कम्पनी के प्रतिनिधि के रूप में कर्मचारी मामलों की मध्यस्थता करना।

(vi) श्रमिकों के विवादों का निपटारा करने में सहयोग करता है।

(vii) उद्योग में अनुशासन स्थापित करने में मदद करता है।

II. जन सम्बन्ध (Public Relations)—जन सम्बनधों द्वारा प्रबन्धन लोगों, प्रोफेशनल समूहों, सरकारी एजेन्सियों तथा व्यापार जगत में अपने कम्पनी के व्यापारिक सम्बन्धों को नियन्त्रित करता है तथा उन्नत करता है आम आदमी के साथ

Scanned with CamScanner

दोस्ताना सम्बन्ध तथा जनता द्वारा उपक्रम के लक्ष्यों की गई सराहना तथा सहयोग किसी भी उपक्रम/संगठन के कल्याण के लिए मुख्य तथा महत्वपूर्ण बात है। आपसी सहयोग बढ़ाने तथा भ्रांतियों को कम करने के लिए बहुत से उपक्रम जन सम्पर्क ऑफिस का गठन करते हैं। लोगों की उपक्रम/उत्पाद के बारे में अनुकूल प्रतिक्रिया अच्छी साख बनाता है जिससे व्यापार को लाभ पहुँचता है।

जनसंख्या, अच्छे आपसी सम्बन्ध के विकास के लिए विचारों तथा सच्चाई को संचारित (Communicate) करने की कला है। बड़े उपक्रमों में जन-सम्पर्क अधिकारी (Public relation officer) प्रबन्धन (Management) के प्रति उत्तरदायी होते हैं जन सम्पर्क अधिकारी शिक्षित एवं रिसर्च-स्पेशलिस्ट होते हैं। इसके साथ ही इन्हें जर्नलिस्म, पत्रकारों से सम्बन्ध, सामाजिक मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र तथा व्यापारिक प्रैक्टिस का भी ज्ञान होता है। वे उच्च प्रबन्धन को ऐसी नीतियों को बनाने की सलाह देते हैं तथा जो जनता द्वारा स्वीकार्य होगी। दूसरे शब्दों में कम्पनी की नीतियों को विभिन्न संचार माध्यमों जैसे समाचार पत्र, रेडियो, व्याख्यानों तथा बुलेटिन द्वारा विक्रय करते हैं। जन सम्पर्क अधिकारी जनता के विचारों द्वारा एक सतत् अध्ययन कार्यक्रम चलाते हैं।

III. कार्मिक प्रबन्धन (Personnel Management)—भर्ती, प्रशिक्षण, सुरक्षा तथा स्वास्थ्य, जॉब-आकलन (Job Evaluation) तथा वेतन सम्बनधी समस्याओं आदि पर नियन्त्रण का अध्ययन करते समय प्रबन्धन का उद्देश्य कार्मिक प्रबन्धन द्वारा दक्षता को बढ़ाना है।

जब प्रबन्धन महसूस करता है कि श्रमिक भी इंसान हैं जिन्हें विभिन्न प्रोत्साहनों द्वारा प्रभावित किया जा सकता है, तब व्यक्तिगत सम्बन्ध बहुत प्रभावी होते हैं। विकासशील प्रबन्धन कर्मचारी के नेतृत्व क्षमता को पहचानता है, कर्मचारी आंशिक रूप से पूरा कर पाता है इससे कर्मचारी न केवल मानवीय पारितोषिक महसूस करता है। बल्कि कम्पनी के लक्ष्यों की पूर्ति में एक बड़ा योगदान होता है।

जब उपरोक्त तीन कार्यक्रम समग्र एवं समन्वित होकर कार्य करते है, तब औद्योगिक समन्वय अपने सबसे प्रभावी स्तर पर होता है।

औद्योगिक सम्बन्धों के आवश्यक पहलू (Important Aspects of Industrial Relations)

औद्योगिक सम्बन्धों के आवश्यक पहलू मुख्यत: निम्नलिखित हैं—

(i) सहयोग (Cooperation)

(ii) मतभेद (Conflict)

औद्योगिक विवाद (Industrial Disputes)

औद्योगिक श्रमिकों की अपनी कुछ जरूरतें होती हैं, जैसे—आर्थिक, सामाजिक और सुरक्षात्मक जरूरतें। औद्योगिक श्रमिकों की ये जरूरतें जब पूरी नहीं होतीं तो श्रमिक वर्ग और उद्योगपतियों के बीच तनाव उत्पन्न हो जाता है। जब यह तनाव किसी उद्योग में विवाद का रूप ले लेता है तो वह इस उद्योग का औद्योगिक विवाद होता है। "औद्योगिक विवाद को कोई विवाद अथवा मतभेद, जो नियोक्ता तथा कर्मचारियों के मध्य अथवा कर्मचारियों में आपस में हो, द्वारा परिभाषित किया जा सकता है।"

प्रत्येक श्रमिक की कुछ न कुछ निजी आवश्यकताएँ (सामाजिक, आर्थिक एवं सुरक्षात्मक आवश्यकताएँ) अवश्य होती हैं। इन आवश्यकताओं का पूर्ण न होना श्रमिक के लिए तनाव उत्पन्न कर देते हैं। दूसरे शब्दों में, जब श्रमिकों की उपरोक्त निजी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती तो श्रमिक (Labour) तथा अर्जित की जाने वाली पूँजी के मध्य द्वन्द पनपने लगते हैं। यह द्वन्द या मतभेद (conflict) नियोक्ता (Employer) उत्पन्न करता है। उदाहरणार्थ—प्रतिस्पर्धायुक्त बाजार में अपने उत्पाद (Product) को बेचने के लिए नियोक्ता उस उत्पाद की कीमत को कम करना चाहेगा और ऐसा करने के लिए वह पगार या पारिश्रमिक (Pay or wages) पर होने वाले व्यय को भी कम करना चाहेगा, जबकि श्रमिक वर्ग इस पर सहमत नहीं होंगे जिसके फलस्वरूप नियोक्ता व श्रमिकों के बीच औद्योगिक विवाद उत्पन्न हो जायेगा। औद्योगिक विवाद के उत्पन्न होने से श्रमिकों, उद्योगपतियों, आम जनता व सरकार को भी हानि होती है।

Scanned with CamScanner

औद्योगिक विवाद के कारण (Causes of Industrial Disputes)

भारत में औद्योगिक विवाद के कारणों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

1. आर्थिक कारण (Economic Causes)
2. अनार्थिक कारण (Non-economic Causes)।

1. आर्थिक कारण (Economic Causes)

औद्योगिक विवादों के आर्थिक कारणों को मुख्यत: निम्नांकित उपवर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है—

(i) कार्य दशाएँ (Working Conditions)

(a) पर्यावरणीय दशाएँ जैसे—अधिक गर्मी, अधिक ठण्ड, शोर, धूल, गन्दगी व अस्वास्थ्यकारी परिवेश इत्यादि। (Environmental conditions such as too hot, too cold, noisy, dirty and messy surroundings etc.)
(b) अनुचित संयन्त्र एवं कार्यस्थल का विन्यास (Improper plant and workstation layout).
(c) पुरानी और कष्टकारक या खराब मशीनें (Old and Trouble giving machines).
(d) उत्पादों में जल्दी-जल्दी बदलाव करना इत्यादि (Frequent changes in products etc.)

(ii) नियोजन की शर्तें (Terms or Conditions of Employment)

(a) कार्य के अधिक घण्टे (More hours of work).
(b) श्रमिकों की तरक्की, कामबंदी, छटनी और सेवा मुक्ति आदि (Promotion, Layoff, Retrenchment and Dismissal etc.)
(c) रात्रि शिफ्टों में कार्य करना। (Working in night shifts).

(iii) मजदूरों की दशायें (Wages Conditions)

(a) अपर्याप्त मजदूरी (Inadequate wages).
(b) मजदूरी से अवांछित कटौती (Undesired deductions from Wages)
(c) गरीबी रेखा के नीचे के लोगों को प्रोत्साहन का अभाव (Lack of Poor fringe benefits)
(d) बोनस तथा प्रोत्साहन का अभाव (Lack of Bonus and Other Incentives)

(iv) अन्य लाभ (Other Benefits)

(a) चिकित्सा सुविधाएँ (Medical facilities)
(b) शिक्षा और प्रशिक्षण की सुविधाएँ (Education and Training Facilities)
(c) मनोरंजन की सुविधाएँ (Recreation facilities)
(d) भोजन व जीवन रक्षा निधि आदि की सुविधाएँ (Food and Life Security funds facilities etc.)

2. अनार्थिक कारण (Non-economic Causes)

औद्योगिक विवाद में सक्रिय रूप से भाग लेने वाले अनार्थिक कारण निम्नलिखित हैं—

(i) संस्थागत कारण (Industrial Causes)

(a) प्रबन्धकों द्वारा श्रमिक संघों को मान्यात न दिया जाना।
(b) सामूहिक सौदेबाजी के मामले। (Matters of Collective Bargaining)
(c) दोषपूर्ण नेतृत्व। (Defective Leadership)
(d) दोषपूर्ण पदोन्नति और चयन की विधि। (Defective pocess of Promotion and Selection)
(e) श्रमिकों में संघ के प्रति अविश्वास और दुर्भाव पैदा करना।
(f) न्यायोचित व्यवहार व सुविधाओं का अभाव। (Lack of Impartial Attitudes and Facilities)

Scanned with CamScanner

(ii) मनोवैज्ञानिक कारण (Psychological Causes)

(a) अनुशासन की कठोरता (Strict Discipline)

(b) नियोक्ता व श्रमिक के मध्य समन्वय स्थापित होने में गतिरोध (Difficulty in adjusting between Employer and Workers)

(c) आपस में विरोधाभास व मनमुटाव।

(d) प्रशासनिक अधिकारों व नेतृत्व में नियन्त्रण न रख पाना।

(e) राजनैतिक गुटबाजी।

(f) अपने सम्मान को बनाये रखने की माँग और श्रमिकों के बीच अपनी पहचान बनाने की आवश्यकता। (Demand for Self-respect and Recognition among Workers).

(iii) श्रमिकों के न्यायिक एवं अन्य अधिकारों से इन्कार
(Denial of legal and other rights of workers)

(a) श्रम अधिनियम तथा प्रावधानों और स्थायी आदेशों का पालन न करना।

(b) नियोक्ता और श्रमिकों के बीच किये गये समझौते का पालन न करना।

औद्योगिक विवादों के कुप्रभाव (Bad Effects of Industrial Disputes)

औद्योगिक विवाद के चलते होने वाले दुष्परिणामों में सबसे महत्वपूर्ण दुष्परिणाम "हड़ताल" (Strike) है।

"हड़ताल का अर्थ है कार्य से लगातार तब तक अनुपस्थित रहना जब तक कि माँगों को स्वीकार नहीं किया जाता अथवा कोई समझौता नहीं हो जाता।" हड़ताल निम्न कई प्रकार की हो सकती है—

(i) घरना (Picketting)

(ii) बैठकर हड़ताल (Sit down Strike)

(iii) तालाबन्दी (Lock outs)

(iv) अधिकारिक अथवा अनाधिकारिक हड़ताल

(v) धीमा कार्य हड़ताल (Slow work Strike)

(vii) सर्वसाधारण अथवा व्यक्तिगत हड़ताल (General or Particular Strike)

(viii) घेराव।

जब कहीं भी कोई विवाद पैदा होता है तो उससे किसी न किसी को थोड़ा-बहुत नुक्सान अवश्य होता है। औद्योगिक विवादों के प्रतिकूल प्रभाव मुख्यत: निम्नांकित घटकों पर दृष्टिगोचर होते हैं—

(i) उपभोक्ताओं स्वास्थ्य हेतु हानिकारक प्रभाव।

(ii) सामाजिक स्वास्थ्य हेतु हानिकारक प्रभाव।

(iii) राष्ट्र की आय में कमी।

(iv) आम जनता की दिनचर्या पर प्रतिकूल प्रभाव।

(v) उद्योगपतियों या नियोक्ताओं पर कुप्रभाव।

(vi) औद्योगिक सम्बन्धों में कटुता व तनाव।

(v) उद्योग में कार्यरत कर्मचारियों पर कुप्रभाव।

औद्योगिक विवादों का निपटारा
(Settlement of Industrial Disputes)

श्रमिक असन्तोष, औद्योगिक विवाद को जन्म देता है। भारतवर्ष में श्रमिक असन्तोष तथा औद्योगिक विवाद का मूल कारण गरीबी है। हड़ताल का ज्यादातर प्रतिशत वेतन, बोनस तथा भत्तों के कारण होता है। जब कोई हड़ताल होती है, कारण

Scanned with CamScanner

चाहे जो हो, देश और समाज को उसका नुक्सान उठाना पड़ता है। अत: हड़ताल को रोकने के हर संभव उपाय किये जाने चाहिए। हड़ताल से बचाव के ही संभव प्रयास करने के बाद भी प्रशासनिक भ्रष्टाचार, एकाधिकार (monopoly), सामाजिक अन्याय आदि कई कारणों से श्रमिक असन्तोष पनपता है। औद्योगिक विवादों का निपटारा निम्न प्रकार किया जा सकता है—

(i) प्रबन्धन में श्रमिकों की भागीदारी,
(ii) सामूहिक सौदेबाजी (Collective Bargaining)
(iii) अनुकूल कार्यकारी दशायें,
(iv) कर्मचारियों पर केन्द्रित लोकतन्त्रीय तरीका,
(v) कर्मचारी नेता सहित स्वस्थ तथा मजबूत श्रम संगठन,
(vi) जॉब की सुरक्षा तथा सन्तुष्टि प्रदान करने के लिए सामाजिक सुरक्षा एवं श्रमिक कल्याण के उपाय,
(vii) कर्मचारियों के आत्मविश्वास को बढ़ाने तथा प्रोत्साहित करने का तन्त्र,
(viii) उचित वेतन, बोनस, भत्ते, लाभ तथा उत्पादकता बोनस, पारितोषिक आदि,
(ix) श्रमिकों में बेहतर संचार तथा विवाद निपटाने के लिए बेहतर तन्त्र, तथा
(x) प्रबन्धन तथा श्रमिक के मध्य अनुशासन के नियम।

औद्योगिक विवादों के निपटारे की विधियाँ (Methods of Settling Industrial Disputes)

प्रबन्धन तथा श्रमिक के मध्य औद्योगिक विवादों को सुलझाने के लिए प्रमुखत: निम्न दो विधियाँ होती हैं—

(a) स्वयं निपटारा (Self Settlement)—इस विधि में दोनों पक्ष अपने विवादों को किसी तीसरे पक्ष को मध्यस्थ बनाये बिना, स्वयं ही निपटाते हैं।

(b) बाह्य निपटारा (External Settlement)—इस विधि में, एक बाह्य तीसरा पक्ष, दोनों विवादित पक्षों को एक सम्मानजनक हल पर पहुँचने के लिए प्रेरित करता है। सामान्यतया विभिन्न साध्य विधियाँ, जो औद्योगिक निपटारे के लिए प्रयोग की जाती है, निम्न हैं—

(i) सामूहिक सौदेबाजी (Collective Bargaining),
(ii) मध्यस्थता (Medication),
(iii) काउन्सलिंग (Conciliation),
(iv) पंचायत (Arbitration),
(v) छानबीन (Investigation)।

4.2 अधीनस्थ, समकक्ष तथ उच्चस्थ से सम्बन्ध

संगठन की सफलता में कर्मचारियों का योगदान महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि वे एकमात्र सजीव पदार्थ होते हैं जो उत्पादन में अन्य निर्जीव (जड़) संसाधनों के साथ प्रयुक्त होगे हैं। संगठन के कामकाज को सुगमता से संचालित करने हेतु यह आवश्यक है कि कर्मचारियों के आपसी सम्बन्ध सामंजस्यपूर्ण, मधुर तथा सांगठनिक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहयोग करने वाले होने चाहिए।

कर्मचारियों के मध्य के सम्बन्धों को निम्नलिखित तीन स्तरों में वर्गीकृत किया जा सकता है—

A. अधीनस्थ के साथ सम्बन्ध,
B. समकक्ष के साथ सम्बन्ध, तथा
C. उच्चस्थ के साथ सम्बन्ध

A. उच्चस्थ के साथ सम्बन्ध

संगठन के उच्च-अधिकारियों (संचालक, प्रबन्धक, निदेशक, महाप्रबन्धक) का यह कर्तव्य है कि वे अपने अधीनस्थों के साथ उनके मान-सम्मान, पद की गरिमा आदि का विचार करते हुए एक मधुर, विश्वासपरक तथा दीर्घकाल में हितकारी सम्बन्ध के निर्माण का प्रयास करें।

Scanned with CamScanner

इस सन्दर्भ में निम्न सुझाव उपयोगी हैं—

(a) अधीनस्थों को उनकी क्षमता, कौशल, ज्ञान, अनुभव के अनुसार कार्य, कर्तव्य, उत्तरदायित्व सौंपना,

(b) उनको उनके ज्ञान, कौशल, रुचि, योग्यता के आधार पर अधिकारों का प्रत्यायोजन करना,

(c) अधीनस्थों के निष्पादन की उचित सराहना किया जाना चाहिए जिससे उनके मन में आत्म-विश्वास की भावना का संचार हो।

(d) अधीनस्थों को यह अनुभूति कराना कि वे संगठन/कम्पनी के एक प्रमुख भाग/अंग हैं।

(e) सांगठनिक हितों के सापेक्ष अधीनस्थों के हितों की अनदेखी न करना।

(f) अधीनस्थों को भविष्य की वृहद्, उच्च दायित्वों, कर्तव्यों हेतु मानसिक, शैक्षणिक तथा शारीरिक रूप से तैयार करना।

B. समकक्षों के साथ सम्बन्ध

कर्मचारियों को अपने सहकर्मी, समान पदधारी के साथ सावधानीपूर्वक तथा सर्तकतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए। अगर कोई सहकर्मी ज्ञान, अनुभव, योग्यता, कौशल में श्रेष्ठ है तो उससे यह सभी सीखने का प्रयास करना चाहिए तथा अपने ज्ञान आदि को भी साझा करने को उद्यत होना चाहिए। यहाँ यह ध्यान देना है कि सांगठनिक उद्देश्यों की प्राप्ति में अपने योगदान, कर्तव्य, उत्तरदायित्व का पालन करते समय यह प्रयास करना चाहिए कि किस प्रकार यदि किसी सहकर्मी को अपने कर्तव्य, दायित्व की पूर्ति में कोई समस्या उत्पन्न हो रही है, तो उसे दूर करने का प्रयास करना चाहिए तथा साथ-साथ संगठन के उद्देश्यों, हितों की प्राप्ति का प्रयास करना चाहिए।

C. उच्चस्थ के साथ सम्बन्ध

जैसा कि हम जानते हैं कि उच्च पद पर नियुक्त व्यक्तियों का यह दायित्व, कर्तव्य होता है कि वे सांगठनिक ध्येय, उद्देश्य, लक्ष्य की प्राप्ति हेतु नीति-निर्माण करके उसे अधीनस्थों को समझायें, सम्प्रेषित करें तथा उद्देश्यों की प्राप्ति को सम्भव बनायें।

इस सम्बन्ध में अधीनस्थों को अपने उच्चस्थ से प्राप्त निर्देशों, आदेशों का सम्यक रीति से पालन करना चाहिए। अधीनस्थों द्वारा उच्चस्थ के साथ व्यवहार में निम्नलिखित बिन्दु महत्वपूर्ण एवं उपयोगी हो सकते हैं—

(a) उच्चस्थ को दूसरा (अन्य) पक्ष न मानते हुए अपना संरक्षक, मार्गदर्शक, निर्देशक मानना चाहिए।

(b) उच्चस्थ के आदेश, निर्देश को व्यक्तिगत रूप से उच्च पदस्थ का आदेश न मानकर संगठन का आदेश मानकर उसका पालन करना चाहिए।

(c) उच्च पदस्थ के निर्देशानुसार ही कार्य का संचालन करना चाहिए।

(d) आदेश के अनुपालन में यदि कोई समस्या आ रही हो तो उसे अविलम्ब उच्चाधिकारी को सम्प्रेषित कर निदान प्राप्त कर लेना चाहिए।

(e) उच्चस्थ को अपने हितों का शत्रु नहीं वरन् मित्र मानना चाहिए तथा यह मानना चाहिए कि उसके जो भी दिशा-निर्देश हैं वह हमारे हित के लिए हैं, उनका यथाविधि पालन करना चाहिए।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि संगठन में इन तीनों प्रकार के सम्बन्ध अपना विशेष स्थान रखते हैं तथा संगठन की कार्य-प्रणाली के सुगमतापूर्वक संचालन हेतु इन तीनों प्रकार के सम्बन्धों में सामंजस्य, समन्वय, विश्वास एवं पारदर्शिता आवश्यक है।

4.3 समूह व्यवहार की विशेषताएँ एवं श्रम-संघवाद

समूह (Group)

समूह का अर्थ एवं इसकी परिभाषा (Meaning of Group and its Definition)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अकेले के बजाय दूसरों के साथ रहना पसन्द करता है। वह न केवल दूसरों की उपस्थिति से प्रभावित होता है बल्कि स्वयं भी अपने व्यवहार से दूसरों को प्रभावित करता है। व्यक्ति के व्यवहार प्रतिमानों को

Scanned with CamScanner

समाज महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है। एक मनुष्य में उतने ही अधिक तादाम्यों (Identifications) का विकास परिलक्षित होता है जितने अधिक समूहों से वह सम्बन्धित रहता है इस प्रकार के तादाम्यों के आधार पर ही उसकी आन्तरिक आत्म (Inner Self) विकसित होती है। मनुष्य न केवल दूसरे मनुष्यों की उपस्थिति से प्रभावित होता है, बल्कि वह स्वयं भी दूसरों को प्रभावित करने की क्षमता रखता है। जन्म के बाद जैसे-जैसे मनुष्य दूसरों के सम्पर्क में आता है, वैसे-वैसे उस मनुष्य का व्यवहार सामाजिक प्रतिमानों और मूल्यों के अनुसार उत्तरोत्तर विकसित होता जाता है। प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवनकाल में अनेक समूहों के साथ सम्पर्क में रहने का अवसर मिलता है, अर्थात् उसे अपने परिवार, मित्र-मण्डली, क्रीड़ा-समूह, आस-पास व दूर-दराज के साथियों के समूह, क्लब, समितियाँ इत्यादि समूहों के साथ स्थायी अथवा अस्थायी रूप से सम्पर्क में रहने का अवसर मिलता है। मनुष्य अनेक स्थायी एवं अस्थायी समूहों का सदस्य होता है, साथ ही वह स्वयं भी अनेक समूहों का निर्माण भी करता है अत: निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि समाज के अनेक समूह मानव व्यवहार को बहुत ही महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करके एक नई दिशा देते हैं।

समूह के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने अपनी-अपनी परिभाषाएँ दी हैं, जिनमें से कुछ मुख्य परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं—

- *Eysneck के अनुसार, "समूह व्यक्तियों का वह जोड़ या मिलान है, जिसमें व्यक्ति किसी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अन्त:क्रिया करते हैं।"*
- *Revain and Rubin के अनुसार, "जब दो या दो से अधिक व्यक्ति एक दूसरे के साथ स्पष्ट सामाजिक अथवा मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध रखते हों अर्थात् व्यक्ति एक-दूसरे को प्रभावित करता हो, साथ ही दूसरों से प्रभावित भी होता हो तो ऐसे व्यक्तियों के संग्रह को समूह की संज्ञा दी जाती है।"*
- *Khrech, Crutchfield and Ballachy, 1972 के अनुसार, "दो या दो से अधिक व्यक्तियों का संग्रह जिनमें निम्न विशेषताएँ हों समूह कहा जाता है—*
  - (i) समूह के सदस्यों का व्यवहार एक दूसरे पर परस्पर एक प्रकार आश्रित हो कि एक सदस्य का व्यवहार पहले वाले व्यक्ति को प्रभावित करता हो।
  - (ii) समूह के सदस्य एक विचारधारा के समर्थक व सहभागी हों, अर्थात् समूह के सभी सदस्यों का व्यवहार एक ही विश्वास, मूल्यों व मानकों से प्रभावित होता हो।
- *Jams Drever के अनुसार, "व्यक्तियों का वह संग्रह जिसमें कि वे किसी हद तक इकाई के रूप में कार्य करते हों, समूह कहलाता है।"*

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर समूहों को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि, "समूह व्यक्तियों का वह जोड़ या मिलान है, जिसमें व्यक्तियों के एक दूसरे के साथ स्पष्ट सामाजिक अथवा मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध होते हैं तथा वे व्यक्ति समान लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अन्त:क्रिया करते हैं।"

अधिकांशतया यह देखा जाता है कि एक समूह के लोग किसी न किसी मात्रा में एक इकाई के रूप में अनुभव करते हैं, कार्य करते हैं तथा व्यवहार करते हैं। एक समूह के सदस्य एक दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सहायता और सहयोग करते हैं। ये सदस्य एक-दूसरे के प्रति वफादार भी हो सकते हैं। एक समूह के सदस्यों में अन्त:क्रियायें कुछ निश्चित पारस्परिक सम्बन्धों की पृष्ठभूमि में होती हैं।

समूह के लक्ष्य (Group Goals)

समूह चाहे कोई भी क्यों न हो, हर समूह के कुछ न कुछ अभीष्ट लक्ष्य अवश्य होते हैं। इन अभीष्ट लक्ष्यों में से अधिकांश लक्ष्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से समूह के उत्थान अथवा कल्याण में योगदान करते हैं। इन लक्ष्यों को दो उपवर्गों में बाँटा जा सकता है—

(a) अनुपम लक्ष्य (Unique Goals)

(b) सहायक लक्ष्य (Accessory Goals)

समूह के लक्ष्य परिवर्तनशील होते हैं। समय और आवश्यकताओं के अनुसार ये लक्ष्य परिवर्तित होते रहते हैं। समूह के अधिकांश सदस्य इन लक्ष्यों को प्राप्त करना चाहते हैं, क्योंकि वे मानते हैं कि इन लक्ष्यों को प्राप्त करने से ही समूह का

Scanned with CamScanner

कल्याण होगा तथा आवश्यकताओं की पूर्ति हो। अत: सभी सदस्य इन समूहों के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रेरित होते हैं। समूह लक्ष्यों को अग्र कारक महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करते हैं—

(i) समूह लक्ष्यों की स्पष्टता (Clarity of Group Goals)—समूह के लक्ष्यों की स्पष्टता समूह के सदस्यों को लक्ष्य प्राप्ति में काफी सहायक होती है अर्थात् समूह के सदस्यों को समूह के लक्ष्य जितने अधिक स्पष्ट होते हैं, उतनी ही अधिक लक्ष्य प्राप्ति में समूह के सदस्यों को सुगमता होती है। लक्ष्यों की स्पष्टता के अभाव में समूह के सदस्य लक्ष्यों से भटक जाते हैं और दिग्भ्रमित भी हो जाते हैं।

(ii) बहुसंख्यक सहभागिता (Majority Participation)—किसी समूह के जितने अधिक व्यक्ति समूह के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत रहते हैं तो समूह के शेष अन्य सदस्य भी लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उतने ही अधिक प्रेरित होते हैं, किन्तु इसके विपरीत जब समूह के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए बहुत थोड़े सदस्य ही प्रयास करते हैं तो शेष अन्य सदस्य भी लक्ष्यों की प्राप्ति में उत्साहहीन हो जाते हैं।

(iii) समूह विचारधारा (Group Ideology)—समाज में प्रत्येक समूह की अपनी-अपनी विचारधारा होती है। यह विचारधारा समूह की आवश्यकताओं और लक्ष्यों की पूर्ति मे सहायक होती है। समूह के लक्ष्यों के चुनाव पर भी समूह की विचारधारा का प्रभाव पड़ता है। समूह की विचारधारा जितनी ही स्पष्ट, आदर्श और उच्च होती है, समूह की उन्नति की उतनी ही अधिक सम्भावना होती है। समूह विचारधारा समूह के व्यक्तियों के व्यवहार को भी महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करती है। समूह की विचारधारा को निम्न तीन कारक महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करते हैं—

(a) समूह के विश्वास (Group Trust)—समूह के सदस्यों के विश्वास के अभाव में समूह की विचारधारा कुप्रभावित होती है। यदि समूह की विचारधारा एवं इसके लक्ष्यों के प्रति समूह के सदस्यों मे विश्वास जितना अधिक होगा समूह की विचारधारा भी उतनी ही अधिक सुस्पष्ट एवं सुदृढ़ होगी। समूह के प्रति सदस्यों में दृढ़ विश्वास तभी उत्पन्न होता है, जबकि समूह के सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। अर्थात् समूह के सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति के अभाव में समूह के प्रति समूह के सदस्यों का विश्वास डगमगाता है और उनके मन में असमंजस की स्थिति पैदा हो जाती है, जो कि हानिकारक होती है।

(b) समूह के मानदण्ड (Group Norms)—प्रत्येक समूह के कुछ न कुछ मानदण्ड होते हैं, इन्हीं मानदण्डों के अनुसार समूह के सदस्य व्यवहार करते हैं। समूह की सफलता और उन्नति के लिए मानदण्ड आवश्यक है। मानदण्ड लिखित व मौखिक होते हैं। लिखित मानदण्ड अधिक प्रभावशाली होते हैं। समूह विचारधारा के बदलने के साथ या समूह की परिस्थितियों के बदलने के साथ वे बदल जाते हैं।

(c) समूह के मूल्य (Group Value)—समूह के मूल्यों को समूह की सम्पत्ति की संज्ञा दी जाती है। समूह की विचारधारा एवं समूह के मानदण्ड इन्हीं मूल्यों पर आधारित होते हैं।

(iv) समूह सम्बद्धशीलता (Group Cohesiveness)—समूह सम्बद्धशीलता का अर्थ है—समूह के सदस्यों में पारस्परिक आकर्षण। इस दिशा में हुए अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि एक समूह में सम्बद्धशीलता जितनी अधिक होती है, समूह में एकता, संगठन उतना ही अधिक पाया जाता है। इस अवस्था में समूह के सदस्य एकजुट होकर कार्य करते हैं और समूह के लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। अत: कहा जा सकता है कि एक समूह में सम्बद्धशीलता जितनी ही अधिक है समूह के सदस्य लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उतना ही अधिक प्रयास करते हैं।

(v) सफलता का आकलन (Estimation of Success)—समूह के सदस्यों को समूह की सफलता का सही अनुमान भी उन्हें समूह के लक्ष्यों की प्राप्ति करने में सहायक होता है। यदि समूह के सदस्यों को उनके अनुमान या आकलन के अनुसार सफलता प्राप्त होती है तो हो वे लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उत्साहित एवं प्रेरित होते हैं और यदि उन्हें उनके अनुमान के अनुसार सफलता प्राप्त नहीं हो पाती तो वे लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए न तो उत्सुक रहते हैं और न ही प्रयास करते हैं। अत: समूह के सदस्यों द्वारा समूह की सफलता का आकलन किया जाना परमावश्यक होता है।

Scanned with CamScanner

(vi) समूह लक्ष्य से सम्बन्धित कार्य सन्तोष (Work-Satisfaction)—एक समूह के सदस्यों को समूह लक्ष्य से सम्बन्धित कार्यों से जितना अधिक सन्तोष मिलता है, वे लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उतना ही अधिक प्रयास करते हैं। यदि सदस्यों को समूह के कार्य से सन्तोष कम होता है तो उनका समूह लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयास भी कम होता है।

समूहों का वर्गीकरण (Classification of Groups)

समूहों को मुख्यत: दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—

1. प्राथमिक समूह (Primary Groups)
2. द्वितीयक समूह (Secondary Groups)

1. प्राथमिक समूह (Primary Groups)—कूले ने प्राथमिक समूह को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, "प्राथमिक समूहों से तात्पर्य उन समूहों से हैं, जिनमें आमने-सामने का घनिष्ठ सम्बन्ध और सहयोग होता है। इस प्रकार के समूह अनेक अर्थों से प्रभावित होते हैं, परन्तु मुख्यत: इस कारण से कि वे व्यक्ति की सामाजिक प्रवृत्ति एवं आदर्शों के निर्माण करने में मौलिक हैं।" इस प्रकार के समूहों के उदाहरण हैं—परिवार, पड़ोस, मित्र समूह, खेल-समूह आदि। कूले ने इस प्रकार के समूहों का वर्णन करते हुए लिखा है कि इस प्रकार के समूहों के सदस्य अन्य सदस्यों के सुख-दुख को अपना सुख-दुख समझते हैं।

प्राथमिक समूहों की विशेषताएँ (Characteristics of Primary Groups)—प्राथमिक समूहों की विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

(i) प्राथमिक समूह के सभी सदस्यों में पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध (Intimate Relationships) होते हैं।
(ii) प्राथमिक समूहों का विकास किसी एक सदस्य के लिए नहीं होता, बल्कि सभी के हितों के लिए होता है।
(iii) इस प्रकार के समूह के सदस्य एक-दूसरे को नियन्त्रित कर सकते हैं, क्योंकि वे एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते हैं।
(iv) इस प्रकार के समूहों में सदस्यों की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है, किन्तु इन समूहों का अस्तित्व काफी हद तक स्थायी होता है।
(v) समूह के उद्देश्यों या लक्ष्यों की पूर्ति के लिए सभी सदस्य सदैव हृदय से तत्पर रहते हैं।

2. द्वितीयक समूह (Secondary Group)—द्वितीयक समूहों से आशय उन समूहों से है जिनके सदस्यों में पारस्परिक सम्बन्ध अवैयक्तिक (Impersonal) होते हैं, तथा औपचारिक (formal) भी। द्वितीयक समूहों के सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्ध प्रत्यक्ष न होकर अप्रत्यक्ष होते हैं और सम्बन्धों में घनिष्ठता का अभाव होता है। इस प्रकार के समूहों में सदस्यों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक होती है और इन समूहों का क्षेत्र विस्तृत होता है। इन समूहों में सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्ध अस्थाई एवं क्षणिक होते हैं। उद्योगों में सामान्यत: द्वितीयक समूहों की आवश्यकता होती है। द्वितीयक समूहों का गठन सांस्कृतिक आधार पर प्रजाति समूह, आयु समूह, भीड़ समूह तथा लिंग समूह इत्यादि के रूप में होता है और इस प्रकार के समूहों का गठन रूढ़िगत या पारम्परिक आधार पर समुदाय, कार्पोरेशन, प्रादेशिक समूह, जनता तथा संस्थागत समूह इत्यादि रूपों में भी होता है।

द्वितीयक समूह की विशेषताएँ (Characteristics of Secondary Groups)—द्वितीयक समूह की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं--

(i) इस प्रकार के समूहों में सदस्यों की संख्या बड़ी होती है या इनका आकार बड़ा होता है।
(ii) सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्ध प्रत्यक्ष न होकर अप्रत्यक्ष होते हैं।
(iii) समूहों की स्थापना जान-बूझकर की जाती है।
(iv) सदस्यों के उद्देश्यों में समानता नहीं होती है।
(v) सदस्यों के सम्बन्ध औपचारिक होते हैं।
(vi) सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्ध अवैयक्तिक (impersonal) होते हैं।
(vii) समूह के सदस्यों में घनिष्ठ सम्बन्धों का अभाव पाया जाता है।

Scanned with CamScanner

प्राथमिक व द्वितीयक समूहों में अन्तर
(Difference between Primary & Secondary Groups)

	प्राथमिक समूह (Primary Groups)	द्वितीयक समूह (Primary Groups)
1.	प्राथमिक समूहों में सदस्यों की संख्या कम होती है।	इन समूहों में सदस्यों की संख्या अधिक होती है।
2.	सीमित क्षेत्र में स्थित होते हैं।	विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए होते हैं।
3.	सदस्यों में घनिष्ठ सम्बन्ध होते हैं।	सदस्यों में अपेक्षाकृत कम घनिष्ठ सम्बन्ध होते हैं।
4.	इन समूहों द्वारा प्राथमिक नियन्त्रण किया जाता है।	इन समूहों द्वारा द्वितीयक नियन्त्रण किया जाता है।
5.	सदस्यों के उद्देश्यों में समानता पाई जाती है।	सदस्यों के उद्देश्यों में समानता कम या नहीं पाई जाती।
6.	समूह के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सदस्य, हृदय से तैयार रहते हैं।	सदस्यों में इस प्रकार का व्यवहार नहीं पाया जाता।
7.	सदस्यों में व्यक्तिगत सम्बन्ध होते हैं।	सदस्यों में अपेक्षाकृत कम घनिष्ठ सम्बन्ध होते हैं।
8.	सम्बन्ध स्थायी होते हैं।	सम्बन्ध अस्थायी और क्षणिक होते हैं।
9.	प्रेम, सहानुभूति, मित्रता और सहयोग आदि पाया जाता है।	ये विशेषताएँ नहीं पाई जातीं।
10.	स्वाभाविकता पाई जाती है।	अस्वाभाविकता पाई जाती है।
11.	सदस्यों में प्रत्यक्ष सम्बन्ध होते हैं।	सदस्यों में अप्रत्यक्ष सम्बन्ध होते हैं।

समूह व्यवहार
(Group Behaviour)

समूह व्यवहार प्रबन्ध-तन्त्र के लिए बहुत ही अहम् भूमिका निभाते हैं। प्रबन्ध-तन्त्र इसका लाभ अच्छे मानवीय सम्बन्ध बनाने में उठाता है।

समूह में कार्य करने वाले कामगार या कर्मचारी का व्यवहार, उसके द्वारा अकेले काम करने की अपेक्षा काफी भिन्न होता है। समूह क्रियाशीलता (Group Dynamics) समूह के सदस्यों में टीम-भावना (Team Spirit) को जाग्रत करती है, साथ ही समूह के सदस्यों के बीच पारस्परिक क्रिया को प्रकट करती है और उनके बदलते हुए व्यवहार एवं रिश्तों को प्रदर्शित करती है। कामगारों का समूह व्यवहार संगठन (Organization) और प्रबन्ध तन्त्र दोनों के लिए लाभदायक होने के साथ-साथ नुक्सानदायक भी हो सकता है। समूह व्यवहार लाभदायक उसी परिस्थिति में होता है जबकि समूह अपने सदस्यों की अनुपस्थिति में अथवा उनके कार्य-आउटपुट में कमी होने की स्थिति में, इसका समायोजन अन्य सदस्यों से करा लेता है। इस प्रकार की कमियाँ (Restrictions) अदृश्य (Invisible), असंसूचित (Unwritten) तथा अनौपचारिक (Informal) होती हैं। इसके विपरीत समूह के कार्य यदि प्रबन्ध-तन्त्र के विचारों से मेल न खायें अथवा उनका प्रबन्ध-तन्त्र के साथ विरोधाभास दृष्टिगोचर हो तो उपक्रम के अन्दर समूह-व्यवहार की गतिविधियाँ नुक्सानदायक भी हो जाती हैं।

समूह-व्यवहार के लक्षण (Characteristics of Group Behaviour)

समूह व्यवहार की कुछ प्रमुख लाक्षणिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) समूह में सदस्यों की आसंजकता या सम्बद्धशीलता (Cohesiveness) अलग-अलग कोटि की होती है। जिन समूहों के सदस्यों की सम्बद्धशीलता कमजोर होती है, ऐसे समूह विखण्डित (Disintegrate) हो जाते हैं या फिर वे समाप्त (vanish) हो जाते हैं, किन्तु जिन समूहों के सदस्यों की सम्बद्धशीलता सुदृढ़ होती है, वे समूह स्थायी अस्तित्व वाले होते हैं, प्रभावी होते हैं और उन समूहों को अधिकांश सदस्यों का सक्रिय सहयोग प्राप्त होता है।

Scanned with CamScanner

(ii) यह अनुभव किया गया है कि कर्मचारी का व्यवहार समूह के सदस्य के रूप में कार्य करने के दौरान कुछ होता है तथा उसके अकेले (Individual) कार्य करने के दौरान कुछ और होता है।

(iii) जब समूह के सदस्यों में विचार की भिन्नता होती है, तब विरोधियों पर स्वयं को बदलने तथा सुधारने का दबाव होता है।

(iv) समूह के ऐसे सदस्य जो दूसरों को प्रभावित करने का कठोर प्रयास करते हैं, वे दूसरों की सलाह को स्वीकार करने के लिए भी तत्पर रहते हैं।

(v) प्रत्येक समूह की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति (Culture) होती है, जिसे उस समूह के सदस्यों को स्वीकार करना अपरिहार्य होता है, अन्यथा वे समूह के सदस्यों के रूप में नहीं रह सकते।

(vi) समूह से प्रभावित होकर एकल व्यक्ति (Individual) का रुख (Attitude) व व्यवहार (Behaviour) में बदलाव आता है, वह कार्य में रुचि लेता है व संगठन को लाभ पहुँचाता है।

श्रमिक संघवाद
(Trade Unionism)

"हिस्ट्री ऑफ ट्रेड यूनियन्स" के लेखक सिडनी व बेन्ट्रेस वेब के अनुसार, "A Trade union is continuous association of wage-earners for the purpose of maintaining or improving the condition of their working force."

श्रमिक संघ श्रमिकों द्वारा बनाया गया स्वैच्छिक (Voluntary) संगठन है, जो अपने सदस्यों के हितों तथा कल्याण की सुरक्षा करता है तथा उन्हें और विकसित करता है। श्रमिक संघों की शुरुआत भारत में सन् 1851 के आसपास हुई। उद्योगों के मालिक अधिक लाभ पाने के लालच में कर्मचारियों का शोषण करते थे। अकेला श्रमिक अपने सीमित साधनों के कारण अपने नियोक्ता से सौदेबाजी करने में असफल रहता था और उसकी कार्य स्थितियों में कोई सुधार नहीं आता था, न ही उसके वेतन, कार्य दशायें और कार्य घण्टों में कोई सुधार आता था। इससे कर्मचारी के मन में असन्तोष उत्पन्न हो जाता था। इन सब परिस्थितियों से बचने के लिए श्रमिकों ने एक स्वैच्छिक संगठन तैयार किया। चन्दे तथा दान से आवश्यक धन जुटाया गया, संगठन को पंजीकृत (Registered) कराया गया तथा अपने हितों की सुरक्षा एवं विकास के लिए एक मंच पर एकत्र हुए तथा सामूहिक सौदेबाजी द्वारा श्रमिकों के हितों का ख्याल रखा गया तथा नियोक्ता के शोषण से उसे बचाया। इस स्वैच्छिक संगठन को ही श्रमिक संघ (Trade Union) कहा जाता है।

श्रमिक संघवाद औद्योगीकरण तथा आधुनिक औद्योगिक परिस्थितियों की एक रचना है। औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप न केवल औद्योगिक संगठनों का विकास होता है बल्कि देश में सुख एवं समृद्धि के साथ-साथ वैयक्तिक तथा सामाजिक सामंजस्य की समस्याओं की उत्पत्ति भी होती है। प्रारम्भिक स्थिति में इन समस्याओं का विकराल स्वरूप न होने के कारण व्यक्ति या तो स्वयं अपनी निजी क्षमता से या फिर छोटी-छोटी इकाइयों के रूप में अपने सामूहिक प्रयास के आधार पर इन समस्याओं का उचित समाधान खोजता है, किन्तु औद्योगीकरण के क्षेत्र में ज्यों-ज्यों प्रगति होती जाती है त्यों-त्यों व्यावसायिक उद्योगों के मालिकों के संगठन की स्थापना भी उनके द्वारा अपने हितों एवं स्वार्थों को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से की जाती है। इस प्रकार उद्योगों के मालिकों के सुदृढ़ संगठनों द्वारा अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति हेतु निर्बल श्रमिकों के हितों की उपेक्षा करते हुए उनका शोषण किया जाता है। जिसके फलस्वरूप श्रमिकों में असन्तोष व्याप्त हो जाता है और अनेक समस्यायें उत्पन्न होकर विकराल रूप धारण कर लेती हैं। तब ऐसी विषम स्थिति उत्पन्न होने पर औद्योगिक श्रमिकों को भी संगठित होने की परमावश्यकता होती है ताकि समस्याग्रस्त श्रमिकों के सामुदायिक जीवन की विभिन्न मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके और उनकी समस्याओं के उचित निराकरण के लिए प्रभावी कदम उठाया जा सके। इसी उद्देश्य से श्रमिक संघों की स्थापना होती है। श्रमिक संघ की महत्ता को समझते हुए श्री वी० वी० गिरि ने ठीक ही लिखा है—

"यह सार्वभौमिक सिद्धान्त है कि अकेला व्यक्ति शक्तिहीन होता है और वह अपनी अभिरुचियों को प्रभावपूर्ण ढंग से संरक्षित करने में असमर्थ रहता है तथा यह कि शक्ति, दृढ़ता और एकता, सहयोग एवं सामूहिक क्रिया में निहित हैं, श्रमिक

Scanned with CamScanner

संघवाद के रूप में अपनी दृढ़तम अभिव्यक्ति पाता है। पहले एक कारखाने, बागान अथवा कार्यालय में अपने व्यक्तिगत मालिक से, दूसरे सभी उद्योगों एवं रोजगारों में, और अन्तिम रूप से राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सुधार प्राप्त कर सकते हैं।''

व्यावसायिक उद्योगों में मालिकों की तुलना में श्रमिकों की स्थिति कमजोर होने की वजह से उनको शोषण से बचाने तथा उत्पादन में वृद्धि से प्राप्त होने वाले लाभों में श्रमिकों की उचित भागीदारी दिलाने के लिए श्रमिक संघों का होना आवश्यक है। श्रमिक संघों द्वारा सामूहिक सौदेबाजी तथा प्रत्यक्ष क्रियात्मक ढंगों को अपनाते हुए श्रमिक वर्ग का सर्वांगीण विकास किया जाता है।

श्रमिक संघवाद की परिभाषा (Definition of Trade Union)

श्रमिक संघवाद की अवधारणा (Concept) को सुस्पष्ट करने वाली कुछ परिभाषाओं में इनके विषय क्षेत्र, कुछ में कार्य तथा कुछ परिभाषाओं में इनके अभीष्ट उद्देश्यों पर बल दिया है। विभिन्न विद्वानों ने श्रमिक संघवाद की अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है, जिनमें से कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नांकित हैं—

(i) ***G.S. Watkins*** *के अनुसार—''श्रमिक संघ से अभिप्राय विकसित रूपरेखा एवं स्वरूप वाले श्रमिकों के स्थायी संगठन से है जो सामूहिक सौदेबाजी (Collective-bargaining) एवं औद्योगिक प्रजातन्त्र की विचारधाराओं पर आधारित होते हैं और जिनका गठन सदस्यों के कल्याण की अभिवृद्धि करने के उद्देश्य से किया जाता है।''*

(ii) ***"इकानॉमिक्स ऑफ लेबर''*** *के लेखक रिचर्ड लेस्टर (Richard Lester) के अनुसार—"A Trade union is an association of employees designed primarily to maintain or improve the conditions of employment of its members." अर्थात् श्रमिक-संघ श्रमिकों का एक ऐसा संघ है, जिसकी अधिकल्पना का मूलत: मन्तव्य संघ के सदस्यों की रोजगार सम्बन्धी दशाओं को श्रेष्ठतर बनाये रखना अथवा सुधारना होता है।*

(iii) ***भारतीय ट्रेड यूनियन एक्ट, 1926 सेक्शन 2 (b)*** *के अनुसार, ''ट्रेड यूनियन एक ऐसा स्थायी या अस्थायी संगठन है, जिसका निर्माण मुख्य रूप से श्रमिकों व मालिकों या श्रमिकों अथवा मालिकों व मालिकों के सम्बन्धों को सुनियन्त्रित करने अथवा व्यापार या उद्योग के संचालन की दशाओं या परिस्थितियों पर प्रतिबन्ध लगाने के उद्देश्य से किया जाता है और इसके अन्तर्गत दो या अधिक श्रमिक संघों के किसी भी समूह को सम्मिलित किया जाता है।''*

(iv) ***G.D.H. Koul*** *के अनुसार—''श्रमिक संघों का मूल एवं चरम उद्देश्य श्रमिकों का उद्योग के ऊपर नियन्त्रण स्थापित कराना तथा इनका समीपवर्ती उद्देश्य उच्चतर मजदूरी दिलाना, साथ ही कार्य की श्रेष्ठ परिस्थितियाँ उत्पन्न करना है।''*

(v) ***''लेबर प्रोबल्म्स इन इण्डियन इण्डस्ट्री''*** *के लेखक श्री वी० वी० गिरि के अनुसार, "A Trade Union is such an organization which is created voluntarily on the basis of collective strength to secure the interests of workers."*

अर्थात् ''एक श्रमिक संघ से आशय ऐसे संगठन से है जिसका निर्माण स्वैच्छिक रूप से सामूहिक शक्ति के आधार पर श्रमिकों के हितों की रक्षा करने के लिए किया जाता है।''

उपरोक्त विद्वानों की परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि श्रमिक संघ औद्योगिक श्रमिकों का अपना एक स्वैच्छिक संगठन होता है। श्रमिक वर्ग इस संघ का गठन अपने हितों की सुरक्षा के लिए करते हैं। इसके अलावा उद्योगों के मालिकों द्वारा किये जाने वाले अत्याचार एवं शोषण से बचने हेतु भी श्रमिकों को श्रमिक संघ के रूप में संगठित होना आवश्यक हो जाता है श्रमिक संघ श्रमिकों द्वारा गठित एक स्वैच्छिक संगठन अथवा संघ है। सामान्यत: सभी श्रमिक, श्रमिक संघ के स्वेच्छा से सदस्य बन सकते हैं, किन्तु श्रमिक संघों की सदस्यता ग्रहण करने की कोई बाध्यता नहीं होती है। कोई भी सदस्य कभी भी श्रमिक संघ की सदस्यता से इस्तीफा देकर अलग हो सकता है।

Scanned with CamScanner

श्रमिक संघों के उद्देश्य (Objectives of Trade Unions)

एक औद्योगिक संगठन में श्रमिक संघों के मुख्य उद्देश्य निम्न प्रकार हैं—

(i) श्रमिकों में एकजुटता तथा भाईचारा बनाने के लिए,
(ii) श्रमिकों के कानूनी अधिकारों की रक्षा करने के लिए,
(iii) श्रमिकों को शोषण से बचाने के लिए,
(iv) बेरोजगारी, दुर्घटना तथा बीमारी की स्थिति में श्रमिक को सहायता प्रदान करने के लिए,
(v) प्रबन्धन कार्यों में श्रमिकों की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए,
(vi) नियोक्ता-श्रमिक सम्बन्धों को सुधारने के लिए,
(vii) श्रमिकों की कार्यदशाएँ स्वस्थ व सुरक्षित बनाने के लिए,
(viii) श्रमिकों की सामूहिक सौदेबाजी की शक्ति को बढ़ाने के लिए,
(ix) तालाबन्दी तथा जैसी परिस्थितियों में श्रमिक को जॉब सुरक्षा तथा उचित न्याय दिलाने के लिए,
(x) कार्य-सम्बन्धी मामलों को श्रमिकों को कानूनी मदद दिलाने के लिए,
(xi) श्रमिकों को सामाजिक व राजनैतिक स्थिति तथा जीवन स्तर सुधारने के लिए।

श्रमिक संघों के कार्य/गतिविधियाँ (Activities/Functions of Trade Unions)

श्रमिक संघों के कार्यों/गतिविधियों को मुख्यत: निम्नांकित तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है—

I. आन्तरिक या औद्योगिक कार्य (Internal or Industrial Functions)
II. बाह्य या सामाजिक कार्य (External or Social Functions)
III. राजनैतिक कार्य (Political Functions)

I. आन्तरिक या औद्योगिक कार्य (Internal or Industrial Functions)—औद्योगिक प्रतिष्ठानों के अन्दर श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिए श्रमिक संघों द्वारा किये जाने वाले कार्यों को आन्तरिक कार्यों की संज्ञा दी जाती है। प्रमुख आन्तरिक कार्य निम्नांकित हैं—

(i) श्रमिकों को अच्छी मजदूरी (Fair wages to the workers)
(ii) कार्य करने तथा रहने की अच्छी स्थिति
(iii) उचित कार्य-समय (Suitable working hours)
(iv) अच्छी सामाजिक सुरक्षा (Better Social Security)
(v) बोनस लाभ
(vi) श्रम का सम्मान (Dignity of Labour)
(vii) विश्राम का समय

अपने स्तर पर उपरोक्त की प्राप्ति हेतु श्रमिक संघ सामूहिक सौदेबाजी, बातचीत, हड़ताल, कार्य बहिष्कार आदि गतिविधियों का सहारा लेते हैं।

श्रमिक संघ उपरोक्त के अतिरिक्त निम्न कार्य भी कर सकते हैं—

रोजगार कार्यालय खोल सकते हैं जिसमें वे अपने सदस्यों को उद्योग में उपलब्ध रिक्तियों की जानकारी दे सकते हैं।

प्रशिक्षुओं (Apprentices) के लिए एक प्रशिक्षण आधार तैयार कर सकते हैं।

सूचना कार्यालय खोल सकते हैं, जिसमें रोजगार सम्बन्धी सूचनाओं, जानकारियों, नियमों, सरकारी आदेशों की जानकारी उपलब्ध हो।

II. बाह्य या सामाजिक कार्य (External or Social Functions)—ऐसे कार्य जोकि श्रमिक संघों द्वारा औद्योगिक परिसर के बाहर किये जाते हैं, बाह्य या सामाजिक कार्य कहे जाते हैं। इन बाह्य कार्यों का मुख्य उद्देश्य श्रमिकों की कार्य क्षमताओं में अभिवृद्धि करना तथा उनके जीवन स्तर में सुधार करना होता है। उपरोक्त उद्देश्य के लिए श्रमिक संघ अग्र कार्य करते हैं—

Scanned with CamScanner

(i) आवश्यकता पड़ने पर कानूनी सहायता उपलब्ध कराते हैं।
(ii) अपने सदस्यों में सहयोग तथा भाईचारे की भावना उत्पन्न करते हैं।
(iii) श्रमिकों की रक्षा और सुरक्षा हेतु आवश्यक कदम उठाना।
(iv) कर्मचारियों को शिक्षित करते हैं, कर्मचारियों के मनोरंजन तथा ज्ञानवर्धन की विभिन्न गतिविधियों का संचालन करते हैं।
(v) श्रमिकों के रहने के लिए उचित आवास की व्यवस्था करते हैं।
(vi) श्रमिक व उनके परिवारों के कल्याण की गतिविधियों का संचालन करते हैं।
(vii) बीमारी, दुर्घटना, तालाबन्दी, हड़ताल, बेरोजगारी जैसी विषम परिस्थितियों में अपने सदस्य की मदद करते हैं।
(viii) श्रमिकों तथा उनके आश्रितों के लिए उचित शिक्षा, क्रीड़ा-स्थल तथा पुस्तकालय इत्यादि की सुविधाएँ प्रदान करना।

III. राजनैतिक कार्य (Political Functions)—ये वे गतिविधियाँ हैं, जो राजनैतिक शक्ति पाने के लिए की जाती हैं अथवा राष्ट्र की राजनैतिक हलचल को प्रभावित करती हैं, राजनैतिक गतिविधियाँ कहलाती हैं। श्रमिक संघ अपने प्रतिनिधि को लोकसभा तथा अन्य सरकारी संस्थाओं में भेजने का प्रयास करती हैं, जिससे वहाँ, वे अपनी माँगों को मनवा सकें। उदाहरणतया ब्रिटेन की लेबर पार्टी वहाँ के चुनावों में बढ़-चढ़ कर भाग लेती है और आजकल वही सरकार चला रही है।

श्रमिक संघों के प्रमुख राजनैतिक कार्य निम्न हैं—
(i) श्रमिकों में अपेक्षित राजनैतिक योग्यता का विकास करना।
(ii) श्रमिकों को उनके उत्तरदायित्वों एवं कर्तव्यों का बोध कराना।
(iii) सरकार द्वारा श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिए प्रभावी कानून व प्रस्ताव इत्यादि पारित कराना।

श्रमिक संघ के लाभ (Merits of Trade Union)

श्रमिक संघ के कुछ प्रमुख लाभ निम्न हैं—
(i) एक मजबूत श्रमिक संघ लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों पर कार्य करता है तथा श्रमिक को शोषण के विरुद्ध पर्याप्त सुरक्षा प्रदान करता है।
(ii) दुर्घटना के समय वित्तीय मदद करते हैं, बीमारी का उचित इलाज करवाने का प्रबन्ध करते हैं तथा जीवनस्तर सुधारने का प्रयास करते हैं।
(iii) श्रमिकों में टीम भावना तथा भाईचारा बढ़ाते हैं।
(iv) श्रमिकों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करते हैं।
(v) श्रमिकों के हितों की रक्षा करने तथा उन्हें विकसित करने का यह महत्वपूर्ण साधन है। यह श्रमिकों के सामाजिक, आर्थिक तथा मनोवैज्ञानिक उद्देश्यों की भी पूर्ति करता है।
(vi) ये श्रमिकों के परिवारों के कल्याण हेतु कार्य करते हैं जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य आदि।
(vii) श्रमिक संघ औद्योगिक शान्ति और स्थिरता को बढ़ावा देते हैं।
(viii) ये मजदूरों की रहने एवं काम करने की दशाओं को बेहतर बनाने का प्रयास करते हैं, आत्मसम्मान और आत्मविश्वास को बढ़ाते हैं।

श्रमिक संघ की हानि (Demerits of Trade Union)

श्रमिक संघ की प्रमुख हानियाँ निम्न प्रकार हैं—
(i) कभी-कभी श्रमिक संघ केवल अपने सदस्यों को ही रोजगार देने पर दबाव बनाते हैं, जिससे कुशल तथा दक्ष कर्मचारियों की संख्या में कमी आती है।
(ii) अधिक शक्तिशाली संघ नियोक्ता पर अनुचित माँगों को मानने का दबाव बनाते हैं।

Scanned with CamScanner

(iii) कभी-कभी श्रमिक संघ नई प्रौद्योगिकी तथा उन्नत मशीनों को अपनाने से इंकार कर देते हैं, क्योंकि उन्हें ऐसा करने पर मजदूरों की संभावित छटनी (Retrenchment) का भय रहता है। इससे उद्योग के विकास में बाधा आती है।

(iv) प्राय: श्रमिक संघों का रवैय्या/व्यवहार नियोक्ता के विरुद्ध रहता है और वे नुक्सान करने वाली गतिविधियों में अधिक लिप्त रहते हैं।

(v) संघ की गतिविधियों के लाभ प्राय: सदस्यों को ही प्राप्त हो पाते हैं।

(vi) कभी-कभी राजनैतिक दल अपने फायदों के लिए श्रमिक संघों का शोषण करते हैं जिससे औद्योगीकरण प्रभावित होता है।

(vii) शिक्षा में कभी मजदूरों को तंग दिमाग (Narrow minded) तथा अदूरदर्शी बना देती है। वे महत्वहीन कारणों से भी हड़ताल पर चले जाते हैं जिसका विपरीत असर मजदूरों, उद्योग तथा राष्ट्र को भुगतना पड़ता है।

श्रमिक संघवाद के सिद्धान्त (Principles of Trade Unionism)

श्रमिक संघवाद के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

(i) कार्य सुरक्षा सिद्धान्त (Work Safety Related Principles)—जे० आर० कामन्स तथा सेलिंग के मतानुसार—श्रमिक संघों को इसलिए विकसित किया गया है, क्योंकि ये अपने सदस्यों को कार्य सम्बन्धी सुरक्षा प्रदान करने के साथ-साथ मालिकों को मनमाने ढंग से श्रमिकों को सेवामुक्त करने से रोकते हैं। इस सिद्धान्त को कामन्स पर्लमैन सिद्धान्त तथा विसकान्सिन सिद्धान्त के नाम से भी जाना जाता है।

(ii) शक्ति सम्बन्धी सिद्धान्त (Power Related Principle)—इस सिद्धान्त के प्रतिपादकों का यह विचार है कि श्रमिक संघ मुख्यत: ऐसे संगठन हैं जो कि उद्योग व समाज पर अधिक से अधिक दबाव डालने की चेष्टा करते हैं ताकि इनके सदस्यों को अधिकतम कल्याण सम्भव हो सके। **हार्डमैन** के अनुसार, "श्रमिक संघ उत्पादन से होने वाले राष्ट्रीय लाभ में सदैव अधिक से अधिक लाभांश प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।" **गालब्रेथ** (Gallbraith) के मतानुसार, "श्रमिक संघों की उत्पत्ति मालिकों की शक्ति का उचित विरोध प्रदर्शित करने से हुई है। गालब्रेथ की मौलिक रूप से यही मान्यता रही है कि वैयक्तिक स्तर पर प्रयास करते हुए श्रमिक किसी भी प्रकार से मालिक का सामना नहीं कर सकता, किन्तु वह अपने सहकर्मियों के साथ संगठित होकर मालिक की शक्ति का माकूल जवाब दे सकता है और उत्पादन में होने वाले लाभ में अपना उचित लाभांश प्राप्त कर सकता है।" **मार्क्स** और **एंजिल्स** (Marks and Anjils) के मतानुसार—"श्रमिक संघ मालिकों के संघ को पूर्णरूपेण निष्क्रिय करने के लिए आवश्यक संस्थाओं के रूप में कार्य करते हैं।"

(iii) क्रान्ति विरोधी सिद्धान्त (Counter Revolutionary Principle)—श्रमिक संघों द्वारा कुछ सीमित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए संकीर्ण विचारधारा से कार्य किया जाता है, जिससे क्रान्ति के मार्ग में व्यवधान या अवरोध उत्पन्न होता है। श्रमिक संघ वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को एकदम पूर्णत: निर्मूल करने हेतु प्रयास करने की बजाय उसे सामूहिक सौदेबाजी का सहारा लेकर धीरे-धीरे बदलने का प्रयास करते हैं, जिसके फलस्वरूप एक निश्चित सामाजिक स्थिति वाले समाज (A Society of Definite Status) की रचना होती है। इस प्रकार वे उद्योग के क्षेत्र में स्वचालन की प्रक्रिया का विरोध करते हैं। अत: ऐसे श्रमिक संघों के माध्यम से श्रमिकों को नये सम्बन्ध स्थापित करने का अवसर प्राप्त हो जाता है।

दूसरे शब्दों में, श्रमिक संघ अचेतन रूप से क्रान्ति विरोधी शक्ति का प्रतिनिधित्व करने के स्थान पर अचेतन रूप से एक विनाशकारी शक्ति का प्रतिनिधित्व करने का प्रयास करते हैं। इस तरह ये श्रमिक संघ एक ऐसी विनाशक शक्ति के रूप में कार्य करते हैं जो अदम्य साहस की व्यवस्था एवं नियोजित अर्थव्यवस्था को नष्ट कर देती है।

भारत में श्रमिक संघ
(Trade Union in India)

भारत में सर्वप्रथम श्रमिक संघ का गठन प्रथम विश्व युद्ध (1914–18) के दौरान हुआ। सन् 1917 की रूसी क्रान्ति तथा सन् 1919 के अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) के स्थापना के बाद भारत में भी श्रमिक संघों का तेजी से विकास हुआ।

Scanned with CamScanner

सन् 1920 में अखिल भारतीय श्रमिक संघ कांग्रेस (All Indian Trade Union Congress AITUC) की स्थापना ILO के वार्षिक अधिवेशन में अपने प्रतिनिधि भेजने के उद्देश्य को लेकर हुई।

सन् 1926 में बने श्रमिक संघ कानून (Trade Union Act) में श्रमिक संघों का तेजी से विकास हुआ। देश की आजादी (1947) के बाद सन् 1926 में बने कानून को संशोधित किया गया जिसे श्रमिक संघों के विकास में और अधिक मदद मिली। आपराधिक षड्यन्त्रों से बचाने के लिए सन् 1964 में इस कानून में एक बार फिर संशोधन किया गया। भारत में कार्यरत कुछ प्रमुख श्रमिक संघों के नाम इस प्रकार हैं—

AITUC : All India Trade Union Congress (स्थापना वर्ष 1920)

INTUC : Indian National Trade Union Congress (स्थापना वर्ष 1947)

HMS : Hind Mazdoor Sabha (स्थापना वर्ष 1948)

UTUC : United Trade Union Congress (स्थापना वर्ष 1949)

BMS : Bhartiya Mazdoor Sangh

CITU : Centre of Indian Trade Union

भारत में श्रमिक संघ उपरोक्त में से किसी एक अथवा अधिक के साथ सम्बद्ध रहते हैं। एक स्वस्थ एवं मजबूत श्रमिक संघ समाज के समाजवादी ढाँचे की पहचान होता है। अत: श्रमिक संघों को मजबूत करना राष्ट्रहित में है।

भारत में श्रमिक संघों के विकास में आने वाली बाधाएँ (Obstacles of Trade Union Development in India)

भारत जैसे विकासशील देश में निम्न प्रमुख कारणों से श्रमिक संघ के विकास में बाधा आती है—

(i) एक ही संघ के सदस्यों में अन्तर्संघीय दुश्मनी,

(ii) नियोक्ताओं का ऋणात्मक व्यवहार, जो संघ के विकास में अरुचि तथा अनिच्छा प्रदर्शित करता है।

(iii) एक ही व्यापार या उद्योग में अनेक संघ होना तथा उनमें भी अन्तर्संघीय दुश्मनी होना।

(iv) संघ की गतिविधियों से कर्मचारियों का अनुपस्थित रहना या संघ छोड़कर चले जाना।

(v) श्रमिकों के कम वेतन तथा भत्तों के चलते संघ की सदस्यता कम रहती है, साथ ही संघ की आर्थिक दशा कमजोर रहती है।

(vi) लालची और बेईमान संघ नेता द्वारा भ्रष्टाचार को बढ़ावा देना।

(vii) बाह्य नेतृत्व, जहाँ संघ का नेता कम्पनी का कर्मचारी नहीं होता है।

(viii) अज्ञानता रूढ़िवादी विचारधारा, धर्म, जाति, भाषा आदि के कारणों से मजदूरों में अलगाव।

(ix) श्रमिक संघ पर राजनैतिक प्रभाव।

श्रमिक असन्तोष का निवारण (Handling of Worker Grievances)

उद्योग में कार्यरत श्रमिक को उद्योग की विभिन्न कार्य नीतियों जैसे वेतन, बोनस, कार्यकारी दशाओं, अधिकारियों का व्यवहार, साथियों आदि के व्यवहार से कुछ शिकायत, समस्या या कठिनाई हो सकती है जिसे श्रमिक असन्तोष कहते हैं। इससे श्रमिकों का मन अशान्त रहता है। इन झगड़ों, मनमुटाव तथा असन्तुष्टि का संयुक्त प्रभाव व्यापार पर विपरीत असर डालता है। अत: श्रमिकों की भावना को सन्तुष्ट करते हुए तथा भविष्य में दोबारा ऐसी समस्या न आये, इस बात का ध्यान रखते हुए ऐसे प्रभावकारी कदम उठाने की आवश्यकता होती है जो चरणबद्ध हो और सभी पक्षों को मान्य हो।

"कम्पनी में होने वाली किसी घटना/कार्य से किसी कर्मचारी या श्रमिक का अलग रहना अथवा असन्तुष्ट होना, चाहे वह इसे प्रदर्शित करे अथवा नहीं, चाहे वह सही हो अथवा गलत, जो कर्मचारी सोचता या मानता है कि गलत तथा अन्याय है, यह भावना ही असन्तोष कहलाती है।"

असन्तोष या विरोध कम्पनी की नीतियों, नियमों, कार्य विधियों आदि के कारण भी हो सकता है। यह विरोध मौखिक, लिखित, मान्य तथा सही और कभी-कभी अभद्र भी होता है।

Scanned with CamScanner

असन्तोष के कुछ उदाहरण निम्न हैं—

(i) खराब/अपर्याप्त वेतन, प्रलोभन, बोनस आदि।

(ii) खराब कार्यकारी परिस्थितियाँ जैसे खराब रोशनी, वेंटीलेशन, शोर, धुआँ, अपर्याप्त टॉयलेट सुविधाएँ, खराब कैन्टीन सुविधाएँ, अपर्याप्त जगह आदि।

(iii) प्रोन्नति, ट्रांसफर, रात्रि की पाली, कार्य का वितरण आदि विषयों पर प्रबन्धन का पक्षपाती व्यवहार, तथा

(iv) सख्त पर्यवेक्षण जैसे सख्त अनुशासन, सख्त कानून, अपर्याप्त कार्य निर्देश तथा पर्यवेक्षक का पक्षपात व्यवहार।

श्रमिक असन्तोष को निपटाने की विधि निम्न प्रकार है—

सामान्यतया असन्तुष्ट श्रमिक/कर्मचारी सबसे पहले अपने सुपरवाइजर को अपना असन्तोष प्रकट करता है। यदि आवश्यक हुआ तो वह अपना असन्तोष संघ के प्रतिनिधि जोकि उपक्रम का ही एक पूर्णकालिक (Full time) कर्मचारी होता है, को भी प्रकट करता है, जहाँ तक सम्भव हो असन्तोष या विवाद का निपटारा इसी स्तर पर करना चाहिएै यदि सम्भव न हो तो श्रम समझौते (Labour Agreement) में उल्लिखित शर्तों के अनुरूप इस असन्तोष अथवा विवाद को उच्च स्तर पर प्रस्तुत करना चाहिए। संघ के पदाधिकारियों को चाहिए कि वे उच्च स्तरीय अधिकारियों से वार्ता कर विवाद को निपटाने का प्रयास करे। यदि अब भी विवाद नहीं निपटता है तो सामूहिक सौदेबाजी अथवा अन्य प्रयासों द्वारा समस्या का हल निकाला जाना चाहिए। इस स्तर पर विवाद को निपटाने में असफल रहने पर हड़ताल, तालाबन्दी आदि की सम्भावना बढ़ जाती है। यद्यपि संगठन को चाहिए कि श्रमिक को अधिकतम कार्य लेने के लिए उन्हें बेहतर कार्यकारी परिस्थितियाँ उपलब्ध करायें, अच्छा वेतन दें, निष्पक्ष व्यवहार करें, उन्हें विश्वास में लें तथा उनके असन्तोष या विवाद का अतिशीघ्र निपटारा करें। एक अच्छी असन्तोष निवारण विधि वह होगी जिसमें—

(i) जहाँ तक सम्भव हो, विवाद निचले स्तर पर ही निपटाना चाहिए,

(ii) पर्याप्त तथा प्रभावी हो,

(iii) यह निवारण इस प्रकार का होना चाहिए कि उद्योग में शान्ति व सौहार्द का वातावरण बना रहे तथा अच्छे श्रमिक सम्बन्धों को बढ़ावा मिले,

(iv) समझने और करने में आसान हो,

(v) उत्साही हो,

(vi) निचले स्तर पर लिए गए निर्णय के विरुद्ध याचिका (Appeal) करने की अनुमति प्रदान करता हो।

4.4 भीड़ मनोविज्ञान (Mob Psychology)

भीड़ मनोविज्ञान से सम्बन्धित अध्ययनों का प्रारम्भ **ले बॉन** (Le Bon) और **टार्डे** (Tarde) द्वारा सन् 1890 में किया गया था। हड़ताल और प्रदर्शन सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी उसी से सम्बन्धित हैं। **एच० कैंट्रिल** (H. Canmtrill, 1941) और **आर० ब्राउन** (R. Brown, 1965) ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि ले बॉन और टार्डे द्वारा जो अध्ययन इस दिशा में किये गये हैं, वे आधुनिक युग में भी महत्वपूर्ण हैं। 'भीड़' शब्द का अर्थ सामान्यत: एकत्रित व्यक्तियों का ऐसा समूह जो किसी भी मन्तव्य या मानसिकता अथवा विशेषता के परिप्रेक्ष्य में स्वत: पनपता है सामान्य बोलचाल की भाषा में 'भीड़' शब्द का प्रयोग भिन्न-भिन्न अर्थों में किया जाता है, जैसे—जब किसी स्कूल या कॉलेज के छात्रगण छुट्टी होने पर सैकड़ों की संख्या में झुण्ड बनाकर बाहर निकलते हैं तो उसे भीड़ कहा जायेगा। इसी प्रकार किसी रेलवे टिकट की खिड़की पर खड़े व्यक्तियों को भी भीड़ की संज्ञा दी जा सकती है। भीड़ के ऐसे अनेकों उदाहरण हो सकते हैं। अत: निष्कर्षत: भीड़ का अभिप्राय मात्र एकत्रित हुए व्यक्तियों का समूह ही नहीं होता, बल्कि भीड़ के लिए अन्य और विशेषताएँ भी परमावश्यक होती हैं। इस सम्बन्ध में अधिक विवेचन से पूर्व कुछ विद्वानों की परिभाषाओं का अवलोकन कीजिए—

थाऊलैस (Thouless) के अनुसार, "एक ऐसा अस्थायी समूह, जो परस्पर एक-दूसरे को स्पर्श करता हुआ हो तथा किसी सामान्य रुचि के फलस्वरूप स्वत: ही बना हो और इतना सुसंगठित हो कि उसकी सीमायें भेद्य या पारगम्य (Permeable) भी हो, भीड़ कहलाता है।"

Scanned with CamScanner

जेम्स ड्रेवर (James Drever) के मतानुसार, "भीड़ व्यक्तियों का अस्थाई समूह है, जो कुछ विशेष भावनाओं और कार्यों की एकता को प्रदर्शित करता है। यह भावनाओं एवं कार्यों की एकता ही वस्तु, आदर्श या सामान से सम्बन्धित होती है। भीड़ की मौलिक एवं आवश्यक विशेषता इसकी मानसिक एकता है। भीड़ के सदस्य सामान्य सदस्य की अपेक्षा अधिक असभ्य हैं।"

किम्बॉल यंग (Kimball Young, 1960) के अनुसार, "भीड़ व्यक्तियों के उस समूह को कहते हैं, जो किसी केन्द्र या सामान्य ध्यान के विषय के चारों ओर होता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि "भीड़ (Mob) मूलत: विशिष्ट भावनाओं व कार्यों की मानसिक एकता वाले व्यक्तियों का एक अस्थाई समूह है। भीड़ के सदस्य सामान्य समूहों, जिनके सदस्य सभ्य एवं संगठित होते हैं, की तुलना में असभ्य व असंस्कारित होते हैं।"

भीड़ मनोविज्ञान की विशेषताएँ (Characteristics of Mob Psychology)

भीड़ गतिशील, अनियमित और अनिश्चित होती है। भीड़ की अपने अलग मानसिकताएँ या विशेषताएँ होती हैं। कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) अनुकरण (Limitation)—भीड़ के सदस्यों में अनुकरण की प्रवृत्ति अधिक मात्रा में देखी जा सकती है। बहुधा यह देखा गया है कि भीड़ के सदस्य दूसरे अन्य लोगों को भीड़ में जो करते हुए देखते हैं, वैसा ही व्यवहार वे स्वयं भी करने लगते हैं। यह पहले बताया जा चुका है कि भीड़ का बौद्धिक स्तर निम्न होता है। अत: अनुकरण करने की प्रवृत्ति अधिक मात्रा में पाई जाती है। अनुकरण के ही कारण जब भीड़ के कुछ लोग तोड़-फोड़, नारेबाजी या लूट-पाट प्रारम्भ करते हैं तो भीड़ के अन्य सदस्य उसको दोहराने का कार्य प्रारम्भ कर देते हैं। जिस प्रकार से बच्चे बड़ों की मूर्खतापूर्ण नकल करते हैं बहुत कुछ उसी तरह से भीड़ के सदस्य एक दूसरे का भीड़ में अनुकरण करते हैं।

(ii) अविवेकशीलता (Irrationality)—भीड़ के सदस्यों का बौद्धिक (Intelligence) स्तर बहुत निम्न होता है। वे अपनी सोच एवं विवेक से कार्य नहीं करते बल्कि अन्य लोगों की कही-सुनी बातों पर विश्वास करके ही प्रतिक्रिया करने लगते हैं। इन सदस्यों की सोच निम्नस्तरीय तथा मानसिकता संकुचित होती है। प्राय: देखा गया है कि पढ़े-लिखे एवं विवेकशील लोग भीड़ का सदस्य नहीं बनते हैं। भीड़ को उकसाकर तथा मुद्दे से हटाकर भ्रमित किया जा सकता है। गलत तथा गैर-कानूनी कार्य भी कराया जा सकता है। अविवेकशीलता के कारण भीड़ पर नियन्त्रण करना तथा उन्हें समझा पाना दुष्कर कार्य है। जी० मर्फी (G. Murphy) के अनुसार भीड़ में निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं—

1. भीड़ में उत्तेजना की तीव्रता अधिक होती है।
2. भीड़ के सदस्यों में अनुसरण (follow) की प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है।
3. भीड़ के अधिकांश सदस्य मन्दबुद्धि वाले होते हैं।
4. भीड़ के सदस्य में सुझावों को तुरन्त मान लेने की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है।
5. भीड़ में सामूहिक विचार-विमर्श करना और उन्हें समझा पाना अपेक्षाकृत कठिन कार्य है।

(iii) संवेगात्मकता (Emotionality)—भीड़ में संवेगात्मकता की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है। अति संवेगात्मकता के प्रभाव में ही भीड़ के सदस्य जोर से चीखते-चिल्लाते हैं, नारेबाजी करते हैं, आक्रोश या आक्रामकता का प्रदर्शन भी करते हैं। संवेगात्मकता का प्रदर्शन करते हुए भीड़ के सदस्यों में किसी प्रकार का संकोच नहीं होता, क्योंकि भीड़ में न तो कोई बुरा-भला कहने वाला होता है और न कोई दण्ड या सजा देना वाला ही होता है। भीड़ के सदस्य यह भली भाँति जानते हैं कि वे चाहे कुछ भी कहें या कुछ भी करें, उन्हें टोकने वाला, पहचानने वाला और सजा देने वाला कोई भी नहीं होगा, इसलिए वे निरंकुश होकर भीड़ की गतिविधियों में भाग लेते हैं तथा अपने को पूर्ण स्वतन्त्र अनुभव करते हैं। यही कारण है कि भीड़ की अवस्था में सदस्यों को संवेगों की अभिव्यक्ति में लेशमात्र भी संकोच नहीं होता। अति संवेगात्मकता की अवस्था में भीड़ के सदस्यगण मनमाने ढंग से तोड़-फोड़, पथराव, गाली-गलौच, मार-पीट, लूट-पाट तथा आगजनी इत्यादि कोई भी क्रिया-कलाप पूर्ण स्वतन्त्र होकर कर सकते हैं। मुख्य रूप से भीड़ में आक्रोश एवं घृणा के संवेग दृष्टिगोचर होते हैं।

(iv) दबी हुई इच्छाओं का प्रदर्शन (Exhibition of Repressed Desire)—प्राय: देखा गया है कि किसी व्यक्ति के मन में किसी घटना या कार्य के विरोध स्वरूप गुस्सा अथवा असन्तोष होता है परन्तु अकेला होने के कारण वह उस विरोध

Scanned with CamScanner

को व्यक्त करने में असफल रहता है। भीड़ में उसे यह मौका मिल जाता है, और वह अपनी दबी हुई इच्छाओं को बढ़ा-चढ़ाकर प्रदर्शित करता है। भीड़ में वह अपनी हरकत के लिए पहचान में नहीं आता है और उत्तरदायित्व नहीं होने के कारण उसके मन में दबी इच्छा अचानक उभरकर सामने प्रकट हो जाती है।

(v) उत्तरदायित्व की भावना का अभाव (Lack of Sense of Responsibility)—भीड़ के सदस्यों में उत्तरदायित्व की भावना का अभाव पाया जाता है। यही मुख्य कारण है कि भीड़ के सदस्य तोड़-फोड़ या आगजनी आदि घटनाएँ करते हैं। उत्तरदायित्व की भावना के अभाव के कारण ही भीड़ सरकारी और गैर-सरकारी सम्पत्ति को नुक्सान पहुँचाती है। मैक्डूगल (1920) का विचार है कि "भीड़ में उत्तरदायित्व की भावना का अभाव मुख्यत: इसलिए पाया जाता है कि भीड़ के सदस्यों में आत्म-चेतना (Self Consciousness) का स्तर निम्न होता है।" भीड़ के सदस्यों को किसी भी प्रकार की बदनामी का कोई डर नहीं होता। अत: उत्तरदायित्व की भावना का अभाव पाया जाना स्वाभाविक है। भीड़ में उत्तरदायित्व की भावना का अभाव के निम्न कारण हैं—

1. भीड़ के सदस्यों में अविवेकशीलता पाई जाती है।
2. भीड़ के सदस्य अपनी बुद्धि और विवेक के स्थान पर सामूहिक मन (Collective Consciousness) के अनुसार कार्य करते हैं।
3. सदस्यों को बदनामी का कोई डर नहीं होता।
4. सदस्यों का भीड़ में उत्तरदायित्व बँट जाता है।
5. सदस्यों का बौद्धिक स्तर कम होता है।

(vi) शक्ति का अहसास (Sense of Power)—भीड़ में रहकर भीड़ के सदस्य उनके अकेले रहने की तुलना में अधिक शक्तिशाली महसूस करते हैं। भीड़ का नेता इस शक्ति को सर्वाधिक अनुभव करता है जिसके फलस्वरूप वह भीड़ का नेतृत्व करते हुए कभी-कभी वह कानून को भी अपने हाथ में ले लेता है। भीड़ में रहकर कोई भी व्यक्ति अपने को सुरक्षित महसूस करता है और यह सोचता है कि वह कुछ भी करे, लोग उसके साथ खड़े हैं।

(vii) सहज विश्वास (Credulity)—भीड़ में अविवेकशीलता (Irrationality) विद्यमान होने के कारण भीड़ में सहज विश्वास की विशेषता का प्रादुर्भाव होता है, जिसके फलस्वरूप भीड़ में सदस्य किसी भी बात पर बहुत जल्दी विश्वास कर लेते हैं। अर्थात् भीड़ में सहज विश्वास पाये जाने का मुख्य कारण भीड़ में अविवेकशीलता का होना है। प्राय: देखने में आया है कि भीड़ के सदस्य बहुत सी बातों को अविवेकशीलता के कारण बिना किसी तर्क-वितर्क के सहज स्वीकार कर लेते हैं। अत: निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि भीड़ के सदस्यों में बुद्धि एवं तर्क चतुरता के अभाव के कारण ही उनमें सहज विश्वास की भावना दृष्टिगोचर होती है।

(viii) सामाजिक प्रोत्साहन (Social Facilitation)—**किम्बल यंग** (1960) ने सामाजिक प्रोत्साहन को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, "दूसरे व्यक्तियों की उपस्थिति या किसी के कारण किसी व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं में वृद्धि को सामाजिक प्रोत्साहन कहकर परिभाषित किया जा सकता है।" भीड़ के सदस्यों में प्रत्यक्ष कंधे से कंधा रगड़ने से सम्बन्ध होने में सामाजिक प्रोत्साहन अधिक मिलता है। जब भीड़ का कोई सदस्य अन्य तमाम लोगों को कोई कार्य करता हुआ देखता है तो स्वयं भी उनका अनुसरण करने लग जाता है। भीड़ के सदस्य एक-दूसरे की उपस्थिति से और एक-दूसरे की अनुक्रियाओं से प्रोत्साहित होते हैं।

(ix) स्थिरता का अभाव (Lack of Stability)—किसी भी घटना अथवा मुद्दे पर भीड़ कुछ समय के लिए ही एकत्र होती है और फिर बिखर जाती है। अत: भीड़ के सदस्यों में स्थिरता का अभाव पाया जाता है। भीड़ के संवेगों और विचारों में भी अस्थिरता पायी जाती है। भीड़ का सदस्य भीड़ में कुछ और विचार रख सकता है तथा भीड़ से अलग कुछ और विचार रख सकता है। स्थिरता के इस अभाव के चलते ही एक परिस्थिति विशेष में क्रियाशील भीड़ को निष्क्रिय भीड़ में बदलते देर नहीं लगती और वह भाग खड़ी होती है।

(x) संकल्प शक्ति का अभाव (Lack of Volition)—भीड़ में व्यक्तियों के अन्दर संकल्प शक्ति का अभाव होता है क्योंकि भीड़ के सदस्यों की आत्म-चेतना निम्न स्तर की होती है। अत: आत्म-चेतना का निम्न स्तर होने के कारण ही व्यक्तियों में संकल्प शक्ति का अभाव विद्यमान रहता है। इस संकल्प शक्ति के अभाव के कारण भीड़ के सदस्यों में सोचने,

Scanned with CamScanner

समझने व विचारने की क्षमता का सर्वथा अभाव पाया जाता है। संकल्प शक्ति का अभाव होने के अनेक कारण हैं, जिनमें से कुछ कारण निम्नांकित हैं—

1. बुद्धि का अभाव या बुद्धि के स्तर का निम्न होना।
2. उत्तेजना एवं आक्रोश का होना।
3. सोचने, समझने व विचारने की अपर्याप्तता।
4. सुझाव ग्रहणशीलता का उच्च होना।

(xi) अनैतिकता (Immortality)—भीड़ को उचित-अनुचित और अच्छे-बुरे का ज्ञान नहीं होता है। यही कारण है कि भीड़ अनेक अनैतिक कार्य करती है। इस सम्बन्ध में **जिन्सबर्ग** (M. Ginsberg, 1954) ने लिखा है कि, "अपने आप में भीड़ न तो अच्छी होती है और न बुरी; भीड़ उत्तेजना के अनुसार कभी अच्छी बन जाती है तो कभी बुरी बन जाती है। भीड़ निर्दयी (Brutal) भी हो सकती है और उदार तथा सहानुभूतिपूर्ण भी हो सकती है।

(xii) उत्तेजना की तीव्रता (Intensity of Excitement)—भीड़ में उत्तेजन एवं जोश की प्रधानता होती है। भीड़ में सदस्य बिना किसी सम्बन्ध के कन्धे से कन्धा मिलाकर खड़े हो जाते हैं और शोर-शराबा, हुड़दंग एवं आक्रोश प्रदर्शित करते हैं। आक्रोश प्रदर्शन से भीड़ अधिक उत्तेजित व अनियन्त्रित भी हो जाती है। भीड़ में उत्तेजना की तीव्रता व्यक्तियों के जोश को देखकर उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है।

(xiii) संकल्प शक्ति का अभाव (Lack of Volition)—भीड़ में व्यक्तियों के अन्दर संकल्प शक्ति का अभाव होता है क्योंकि भीड़ के सदस्यों की आत्म-चेतना निम्न स्तर की होती है। अत: आत्म-चेतना का निम्न स्तर होने के कारण ही व्यक्तियों में संकल्प शक्ति का अभाव विद्यमान रहता है। इस संकल्प शक्ति के अभाव के कारण भीड़ के सदस्यों में सोचने, समझने व विचारने की क्षमता का सर्वथा अभाव पाया जाता है। संकल्प शक्ति का अभाव होने के अनेक कारण हैं, जिनमें से मुख्य कारण निम्नांकित हैं—

1. बुद्धि का अभाव या बुद्धि के स्तर का निम्न होना।
2. उत्तेजना एवं आक्रोश का होना।
3. सोचने, समझने व विचारने की अपर्याप्तता।
4. सुझाव ग्रहणशीलता का उच्च होना।

(xiv) उच्च सुझाव ग्रहणशीलता (High Tended Suggestibility)—प्राय: यह देखा गया है कि कोई व्यक्ति जब भीड़ में होता है तो उसकी सुझाव ग्रहणशीलता अर्थात् दूसरों के सुझावों को मानने की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत उस स्थिति से कहीं अधिक होती है जब वह अकेला होता है। इस प्रवृत्ति के कारण ही व्यक्ति किसी के भी उकसावे में आ जाता है और आक्रामकता, हिंसकता, द्वेष, एवं घृणा का अनियन्त्रित प्रदर्शन करने लगता है।

(xv) नेता का अनुसरण (Following the Leader)—भीड़ का कभी भी कोई पूर्व निश्चित नेता नहीं होता। भीड़ में उपस्थित सदस्यों में से कोई भी व्यक्ति भीड़ का नेता बन सकता है और भीड़ का नेतृत्व सम्भाल सकता है सही नेतृत्व सम्भालने की क्षमता रखने वाला व्यक्ति ही भीड़ का तत्काल नेता बन जाता है। नेता प्राय: सुझाव व प्रतिष्ठा के आधार पर ही भीड़ पर नियन्त्रण पाता है और उसे अपने वश में भी करता है तथा भीड़ भी ऐसे ही व्यक्ति को नेता के रूप में स्वीकार करती है और उसका अक्षरश: अनुसरण भी करती है।

4.5 परिवेदना एवं परिवेदना-निवारण

उद्योगों में सम्बन्ध को औद्योगिक सम्बन्ध कहते हैं। अपने कार्य-जीवन में कर्मचारी कार्य के विभिन्न पहलुओं यथा कम्पनी की नीति, कार्य-दशाओं, प्रबन्धक के रवैय्ये (रुख), सहकर्मियों के व्यवहार इत्यादि से असन्तुष्ट हो सकता है। यदि इस असन्तोष का समय पर समाधान नहीं किया गया तो कर्मचारी व्यक्ति (खिन्न) हो सकता है। वे अनुशासनहीन हो सकते हैं तथा कार्य प्रभावित हो सकता है।

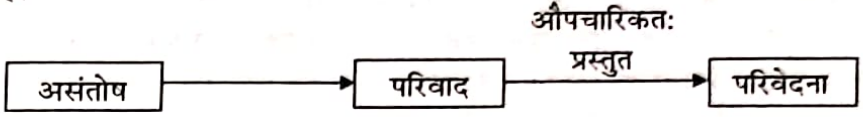
जूलियस के अनुसार, "परिवेदना को कम्पनी से सम्बन्धित किसी क्षोभ अथवा असन्तोष, उचित अथवा अनुचित, जो कर्मचारी अनुचित अथवा अन्यायपूर्ण समझता है, के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"

Scanned with CamScanner

असन्तोष, शिकायत एवं परिवेदना—असन्तोष कार्य-जीवन में ऐसी कोई भी बात (वस्तु) जो कर्मचारी को परेशान (शान्ति-भंग) करे असन्तुष्टि के रूप में वर्णित किया जा सकता है। इसे शब्दों में व्यक्त किया भी जा सकता है और नहीं भी किया जा सकता है।

शिकायत (परिवाद)—जब असन्तोष या असन्तुष्टि को प्रबन्धक या पर्यवेक्षक को मौखिक अथवा लिखित रूप में बतायी (सूचित की) जाती है तो इसे परिवाद (शिकायत) कहा जाता है।

परिवेदना—परिवाद को औपचारिक रूप से, प्रबन्ध के प्रतिनिधि अथवा संघ के अधिकारी को दिया जाता है, तो इसे **परिवेदना** कहा जाता है।



लक्षण—परिवेदना के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं—

1. परिवेदना असन्तोष का प्रकार है।
2. असन्तोष नियोजन का भाग होना चाहिए। यह व्यक्तिगत अथवा पारिवारिक नहीं होना चाहिए।
3. असन्तोष को मौखिक अथवा लिखित रूप में व्यक्त किया जा सकता है।
4. असमाधानित (बिना हल किये हुए) असन्तोष कर्मचारियों में असुरक्षा, क्षोभ, असन्तुष्टि की भावना व्याप्त कराते हैं।

परिवेदना के कारण—परिवेदना निम्नलिखित कारणों से उत्पन्न हो सकती है—

1. कार्य-दशाएँ—अस्वास्थ्यप्रद कार्य-दशाएँ, गैर-मानक उपकरण, सुरक्षा के उचित मानकों का न होना, कार्य का आधिक्य इत्यादि परिवेदना के कारण हो सकते हैं।

2. आर्थिक कारण—इसके अन्तर्गत मजदूरी/वेतन निर्धारण, अधिलाभ, समयोपरि भुगतान इत्यादि सम्मिलित होते हैं।

3. समूह-सदस्य (दल-सदस्य)—कर्मचारी अपने कार्य-समूह से भी असुरक्षित (बेचैन) अनुभव कर सकते हैं। वे उपेक्षा, अहं, अपमान आदि से कष्ट का अनुभव कर सकते हैं।

4. पक्षपातपूर्ण-पर्यवेक्षण—पर्यवेक्षकों का पक्षपातपूर्ण व्यवहार भी कर्मचारियों की परिवेदना का कारण हो सकता है। ये पक्षपातपूर्ण व्यवहार पर्यवेक्षकों के पक्षपात, भाई-भतीजावाद, जातिवाद आदि कार्यों से परिलक्षित हो सकता है।

5. प्रोन्नति-अवरोध—कभी-कभी पदोन्नति की सीढ़ी अत्यधिक लम्बी हो जाती है जो प्रोन्नति के अवसरों को अल्प करती है जो कर्मचारियों की परिवेदना का कारण हो सकती है।

6. अन्य कारण—कठोर अनुशासन, नियम, जुर्माना, नकद अर्जित अवकाश, अनचाहा स्थानान्तरण इत्यादि कर्मचारियों की परिवेदना के अन्य कारण हो सकते हैं।

परिवेदना के कारण—यदि कर्मचारियों के परिवेदना/शिकायत सम्बन्धी मामलों का उचित व समयानुसार समाधान नहीं होता है तो यह संगठन को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकता है। यह कर्मचारियों को भी नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकता है, जिसका प्रभाव उनके कार्यों पर पड़ता है जो नि:सन्देह संगठन के लिए शुरू नहीं होता।

(a) संगठन पर प्रभाव

1. सामग्री के अपव्यय में वृद्धि,
2. उत्पादन गुणवत्ता में कमी,
3. उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव,
4. उच्चस्थ-अधीनस्थ सम्बन्धों में तनाव,
5. अनुशासनहीनता में वृद्धि,
6. पर्यवेक्षण एवं नियन्त्रण पर अधिक ध्यान,
7. औद्योगिक शान्ति पर विपरीत प्रभाव।

Scanned with CamScanner

(b) कर्मचारी पर प्रभाव

(i) कर्मचारी के विश्वास-स्तर में कमी,
(ii) अनुपस्थिति दर में वृद्धि,
(iii) दुर्घटना जोखिम की संभावनाओं में वृद्धि,
(iv) अस्वास्थ्यप्रद कार्य-जीवन।

असन्तुष्टि का पता लगाना—परिवेदनायें व्यक्त अथवा अव्यक्त दोनों प्रकार की हो सकती हैं। व्यक्त परिवेदनाओं (शिकायतों का समाधान कर पाना सरल होता है, किन्तु अव्यक्त परिवेदनाओं को खोज पाना (पता लगाना) बहुत (अत्यन्त) कठिन होता है। परिवेदना का पता लगाने हेतु (उन्हें जानने हेतु) निम्नांकित विधियाँ प्रयुक्त होती हैं—

1. शिकायत/सुझाव सन्दूक अथवा पुस्तिका—एक उचित स्थान पर शिकायत/सुझाव सन्दूक अथवा पुस्तिका रखी जाती है। कर्मचारी गुमनाम रूप में (अज्ञात) अपनी शिकायत, अन्याय के भाव को सन्दूक में जमा (छोड़) सकते हैं। पत्र कर्मचारी के पहचान के बिना लिखा जाता है। कर्मचारी को अपने नाम के उजागर हेने का कोई भय नहीं होता है।

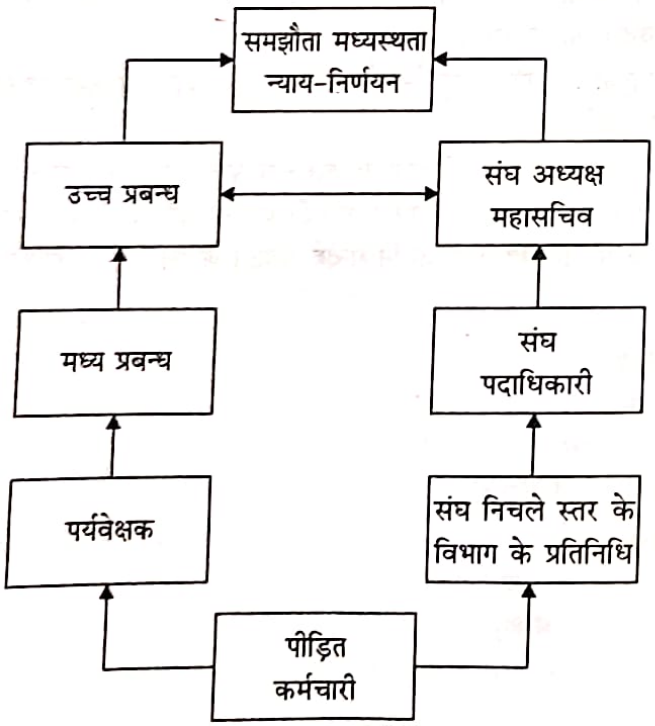
2. मुक्त-द्वार रीति—इसके अन्तर्गत कर्मचारी प्रबन्धक से मिलकर अपने परिवेदना सम्बन्धी मामले को मुक्त रूप से अभिव्यक्त कर सकता है। प्रबन्धक परिवेदना की जाँच करता है तथा उसका समाधान (निपटारा) करता है।

3. पर्यवेक्षक—समय-समय पर प्रबन्धक/पर्यवेक्षक कार्य-स्थल का भ्रमण कर सकते हैं जिससे कर्मचारियों के कार्य व्यवहार का पता लगाया जा सकता है। भ्रमण के द्वारा वे यदि पाते हैं कि कर्मचारी का व्यवहार सामान्य नहीं है, अथवा सामग्री का अपव्यय, दुरुपयोग हो रहा है, प्रतिवेदन के कार्य में विलम्ब हो रहा है तो वे सम्बन्धित कर्मचारी को बुलाकर उसे इस सन्दर्भ में अपने बहुमूल्य सुझाव दे सकते हैं।

4. निर्गम साक्षात्कार—कर्मचारियों के संगठन छोड़कर जाने के कारणों का पता लगाने हेतु प्रबन्धक निर्गम साक्षात्कार आयोजित करा सकते हैं। कर्मचारी दो कारणों से कार्य छोड़ते हैं—असन्तोष एवं श्रेष्ठतर अवसर। प्रबन्धक उन्हें सही सलाह दे सकते हैं तथा उनके संदेहों को दूर कर सकते हैं।

5. अभिमत-सर्वेक्षण—कर्मचारियों के कार्य के सम्बन्ध में तथा संगठन के बारे में विचारों को जानने हेतु समय-समय पर अभिमत सर्वेक्षण आयोजित कराया जा सकता है।

परिवेदना निवारण प्रक्रिया



Scanned with CamScanner

शिकायत (परिवेदना) निस्तारण स्तर

1. प्रथम चरण—प्रथम चरण (स्तर) पर परिवेदना शिकायत का समाधान (निपटारा) तात्कालिक पर्यवेक्षक द्वारा किया जाना चाहिए।

2. द्वितीय चरण (माध्यमिक चरण)—यदि प्रथम स्तर (पर्यवेक्षक के द्वारा) पर शिकायतों का निपटारा नहीं हो पाता है तो इसे संदर्भित खण्ड के मुखिया को संदर्भित किया जा सकता है। शिकायतें संघ (श्रमिक/कर्मचारी संघ) के बगैर अथवा उसके साथ भी निपटायी जा सकती हैं।

3. संगठनात्मक स्तर—माध्यमिक स्तर पर समाधान न हो पाने की दशा में शिकायतों को उच्च-प्रबन्ध के स्तर पर अग्रेषित किया जा सकता है। सामान्यत: महाप्रबन्धक तथा संघ का अध्यक्ष शिकायतों के समाधान में सम्मिलित रहते हैं। सामान्यत: इस स्तर पर राजनैतिक महत्व सम्मिलित रहता है। निस्तारण प्रक्रिया औपचारिक हो जाती है।

4. तृतीय-पक्ष मध्यस्थता—यदि द्वि-पक्षीय उपागम (प्रबन्ध एवं संघ अध्यक्ष) द्वारा शिकायतों का समाधान नहीं होता है तो इसे तृतीय-पक्ष मध्यस्थता हेतु स्थानान्तरित कर दिया जा सकता है। तृतीय पक्ष मध्यस्थता के अन्तर्गत सुलह/समझौता, माध्यस्थम (पंचायत) तथा न्याय-निर्णय सम्मिलित होते हैं।

समझौता

सुलह (समझौता) एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें श्रमिकों के प्रतिनिधि तथा कर्मचारी एक तृतीय पक्ष (मध्यस्थ/सुलककर्ता) के सम्मुख लाया जाता है। मध्यस्थ दोनों पक्षों के बीच के मतभेद को दूर करने का प्रयास करता है।

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 सुलह प्रणाली (मशीनरी) भारत में निम्नलिखित तीन निकायों को सम्मिलित करती है—

(a) समझौता अधिकारी
(b) समझौता-परिषद्
(c) जाँच-न्यायालय

पंचायत (माध्यस्थम/पंचनिर्णय)

माध्यस्थम में विवाद वाले पक्षकार अपने विवाद को किसी तटस्थ तीसरे पक्षकार जिसे 'मध्यस्थ' के नाम से जाना जाता है, को सौंपने को तैयार हो जाते हैं।

मध्यस्थ न्यायिक शक्तियाँ नहीं रखता है, वह दोनों (विवाद में सम्मिलित) के दृष्टिकोण को सुनता है, तत्पश्चात् वह अपना निर्णय देता है जो दोनों पक्षों पर बाध्यकारी होता है।

माध्यस्थम सुलह से इस अर्थ में भिन्न होता है कि माध्यस्थम में अधिकारी विवाद पर अपना निर्णय देता है, जबकि समझौते में सुलह अधिकारी पक्षकारों को प्रेरित करता है कि वे एक निर्णय पर पहुँचें।

माध्यस्थम दो प्रकार का हो सकता है—

(a) स्वैच्छिक माध्यस्थम—स्वैच्छिक माध्यस्थम में दोनों पक्ष (विवाद में सम्मिलित) एक तटस्थ मध्यस्थ नियुक्त करते हैं। मध्यस्थ द्वारा दिया गया निर्णय पक्षकारों पर बाध्यकारी नहीं होता है।

(b) अनिवार्य माध्यस्थम—सरकार विवादित पक्षों को अनिवार्य माध्यस्थम अपनाने का दबाव डाल सकती है।

3. न्यायिक निर्णय—सरकार विवादित पक्षों की सहमति अथवा उसके बिना विवाद को न्यायिक निर्णय हेतु संदर्भित कर सकती है। औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 औद्योगिक विवादों के न्याय निर्णयन हेतु एक त्रि-स्तरीय प्रणाली (व्यवस्था) प्रदान करता है—

(i) श्रम-न्यायालय,
(ii) औद्योगिक न्यायाधिकरण,
(iii) राष्ट्रीय अभिकरण।

Scanned with CamScanner

4.6 हड़ताल (Strike)

हड़ताल जो श्रमिक हड़ताल के नाम से भी जाना जाता है, कार्य को रोकना (कार्य-स्थगन) है। इसके अन्तर्गत श्रमिक (कामगार) सामूहिक रूप से कार्य करने से मना कर देते हैं। यह प्राय: परिवेदनाओं (शिकायतों) के प्रतिक्रिया के रूप में स्थान लेती है। यह नियोक्ता एवं उसके कर्मचारियों (श्रमिकों) के मध्य विवाद का परिणाम होती है।

लक्षण

1. हड़ताल नियोक्ता एवं उसके कर्मचारियों/श्रमिकों के मध्य विवाद के कारण उत्पन्न होता है।
2. असन्तुष्ट परिवेदना (शिकायत) हड़ताल का कारण बनती है।
3. हड़ताल श्रमिकों की दबाव नीति का अन्तिम अस्त्र है।
4. हड़ताल विभिन्न रूपों यथा धरना, हड़ताल, बिना वेतन कार्य, आंशिक हड़ताल अथवा धीमा कार्य हड़ताल, भूख-हड़ताल इत्यादि में हो सकती है।
5. हड़ताल के कारण आर्थिक तथा कार्य-दशाओं के उन्नयन हो सकते हैं।

दशा (प्रस्थिति)

हड़ताल दो आधारभूत प्रकार की दशाओं में वर्गीकृत की जा सकती है—

(a) आर्थिक, एवं (b) अनुचित श्रम व्यवहार।

(a) आर्थिक—आर्थिक हड़ताल कतिपय आर्थिक लाभों को प्राप्त करने हेतु की जाती है। आर्थिक लाभ निम्नलिखित हैं—मजदूरी में वृद्धि अधिलाभ (बोनस) तथा अपने श्रम संघों को मान्यता प्रदान करने के उद्देश्य से की जाती हैं।

(b) अनुचित श्रम-व्यवहार हड़ताल—अनुचित श्रम-व्यवहारों से आशय नियोक्ता के कतिपय उन व्यवहारों से है जो श्रमिकों की दृष्टि में अनुचित है।

सूचना—लोक-सेवक को हड़ताल पर जाने की सूचना 6 सप्ताह पूर्व देनी होगी। गैर-सार्वजनिक उपयोगिता की सेवाओं की दशा में इस सूचना की आवश्यकता नहीं है। हड़ताल का दिन, हड़ताल की सूचना देने के 14 दिनों के भीतर का नहीं होना चाहिए।

हड़ताल के कारण

हड़ताल के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं—

1. वेतन एवं अन्य वित्तीय लाभ की समस्यायें,
2. कम्पनी की नीतियों के प्रति असन्तोष भाव,
3. वेतन सहित अवकाश,
4. कार्य के घण्टे,
5. कार्यों का गलत ढंग में उन्मोचन,
6. न्यूनतम मजदूरी सम्बन्धित विवाद,
7. लाभ-सहभागिता सम्बन्धी विषय पर विवाद।

हड़ताल के प्रकार

1. आर्थिक हड़ताल—ये हड़ताल श्रमिकों की आर्थिक माँगों से सम्बन्धित होती हैं। प्रमुख आर्थिक माँगें, मजदूरी वृद्धि की माँग, अधिलाभ (बोनस) की माँग, भत्ते आदि हैं।

2. धरना हड़ताल—इस हड़ताल में श्रमिक कार्य से अनुपस्थित नहीं रहते हैं। वे कार्य-स्थल पर रहते हैं किन्तु कार्य नहीं करते हैं। वे उत्पादन की प्रक्रिया पर नियन्त्रण रखते हैं। इस हड़ताल को अन्य नामों यथा पेन-डाउन, टूल-डाइन से भी जाना जाता है।

3. धीमी गति हड़ताल—इसमें श्रमिक कार्य पर रहते हैं, किन्तु उत्पादन की गति को मंथर करते हैं।

Scanned with CamScanner

4. सहानुभूति हड़ताल—जब कर्मचारियों का एक समूह (गुट) हड़ताल पर जाता है तो दूसरा समूह जो हड़ताल पर चला जाता है इसे सहानुभूति हड़ताल कहा जाता है।

5. जंगली बिल्ली/अनाधिकृत हड़ताल—ये हड़ताल श्रमिकों/कर्मचारियों द्वारा बिना अधिकार के तथा संघ की अनुमति के बगैर की जाती हैं।

6. भूख हड़ताल—इस हड़ताल में कर्मचारी कार्य-स्थल के समीप उपवास (भूखे रहना) करते हैं तथा दबाव बनाने का कार्य करते है जिससे कि उनकी माँगे मान ली जायें।

तालाबन्दी

जिस प्रकार हड़ताल कर्मचारियों के हाथ में एक अस्त्र होता है, उसी प्रकार तालाबन्दी प्रबन्ध (नियोक्ता) के हाथों का अस्त्र है। तालाबन्दी के अन्तर्गत नियोक्ता अपने व्यवसाय स्थल को बन्द कर देता है तथा कर्मचारियों के कार्य-स्थल तक की पहुँच को प्रतिबन्धित कर देता है। जब कई नियोक्ता एक साथ तालाबन्दी करते हैं तो इसे 'संयुक्त तालाबन्दी' कहते हैं।

लक्षण

1. तालाबन्दी कम्पनी के प्रबन्धन द्वारा अस्थायी रूप से कार्य-स्थगन है।
2. यह हड़ताल से भिन्न है। हड़ताल कर्मचारियों द्वारा की जाती है जबकि तालाबन्दी प्रबन्धक (नियोक्ता) द्वारा किया जाता है।
3. तालाबन्दी, नियोक्ता द्वारा कर्मचारियों की माँग को अस्वीकृत कर दिया जाता है। यह जब नियोक्ता अपनी शर्तें व दशायें कर्मचारियों पर थोपता है।

संक्षेप में, तालाबन्दी में निम्नलिखित सम्मिलित हैं—

1. नियोक्ता द्वारा रोजगार स्थल को बन्द करना।
2. नियोक्ता द्वारा कार्य का निलम्बन।
3. कर्मचारियों का नियोजन की शर्तों से असहमत होना।

तालाबन्दी के कारण

(i) श्रमिक व नियोक्ता के मध्य संघर्ष,
(ii) उचित औद्योगिक व्यवहार स्थापन में विफलता,
(iii) सतत (निरन्तर) वित्तीय हानि,
(iv) निरन्तर अवैध हड़ताल।

जब नियोक्ता को पुनरुद्धार अथवा व्यवसाय में बने रहने की कोई आशा नहीं दिख रही हो तो नियोक्ता तालाबन्दी की घोषणा कर सकता है, इसके अतिरिक्त तालाबन्दी अवैध घोषित हो सकती है।

हड़ताल व तालाबन्दी में अन्तर

	अन्तर का आधार	हड़ताल	तालाबन्दी
1.	आरम्भ	इसकी शुरुआत कर्मचारयों द्वारा होती है।	यह नियोक्ता द्वारा होती है।
2.	विधि	Sec 22(1) लागू होता है।	Sec 22(2) लागू होता है।
3.	कारण	जब नियोक्ता के साथ माँग-समाधान की आशा समाप्त हो जाती है तो श्रमिक हड़ताल करते हैं।	जब कर्मचारी के साथ समझौते (अनुबन्ध) की सम्भावना समाप्त हो जाती है तो नियोक्ता तालाबन्दी करते हैं।

Scanned with CamScanner

4.	कार्य को मना	कर्मचारी कार्य करने से मना करते हैं।	नियोक्ता कार्य देने से मना करते हैं।
5.	समूह	कर्मचारियों/श्रम संघ का बड़ा समूह हड़ताल में सम्मिलित होता है।	केवल नियोक्ता तालाबन्दी की घोषणा करता है।
6.	हानि	मजदूरी/वेतन तथा कभी-कभी रोजगार की हानि।	लाभ की हानि तथा कभी-कभी व्यापार की हानि।
7.	वैधानिकता	यदि हड़ताल विधिक प्रक्रिया के अनुसार नहीं है तो अवैध घोषित की जा सकती है।	यदि नियोक्ता निरन्तर हानि उठा रहा है।

***ध्यान दें**—सम्बन्धित सरकार दोनों ही दशाओं हड़ताल एवं तालाबन्दी में हस्तक्षेप का अधिकार रखती है।*

धरना

धरना असंगठित श्रमिकों/कर्मचारियों की एक औद्योगिक गतिविधि है। इससे कर्मचारी नियोक्ता परिसर के प्रवेश द्वार के समीप एकत्रित होते/होने का प्रयास करते हैं जिससे वे एकत्रित होकर हड़ताल का समर्थन कर सकें। धरना निम्नलिखित के प्रयास हेतु आयोजित होता है—

(i) श्रमिकों को प्रेरित करने के लिए कि वे हड़ताल में उनके साथ आयें,
(ii) अन्य फर्मों के श्रमिकों को परिसर में प्रवेश से रोकने हेतु,
(iii) उपभोक्ताओं को उनके नियोक्ता के साथ व्यवसाय करने से मना करने को प्रेरित करने हेतु।

अन्य शब्दों में जब कोई व्यक्ति अथवा व्यक्तियों का समूह अपनी कम्पनी से असहमत होता है, तो वह कार्य-स्थल के आस-पास घूमता है तथा अन्य व्यक्तियों से कहता है कि वे अन्दर प्रवेश न करें जब तक कि समस्या का समाधान न हो जाये।

धरना के लक्षण

(i) यह विरोध का एक प्रकार है,
(ii) इसमें सम्मिलित व्यक्तियों को धरनार्थी कहते हैं,
(iii) व्यक्ति व्यवसाय-स्थल के बाहर एकत्रित होते हैं,
(iv) वे अन्य को घेराव पंक्ति से आगे जाने से मना करने का प्रयास करते हैं,
(v) यह व्यक्तियों (आम लोगों) का ध्यान आकर्षित करने हेतु भी किया जाता है,
(vi) धरनार्थियों का व्यवहार प्राय: अहिंसक होता है।

उद्देश्य

धरने का प्रमुख उद्देश्य अपनी समस्याओं की ओर नियोक्ता का ध्यान आकर्षित करना होता है। इस हेतु वे धरने द्वारा दबाव स्थापन का प्रयास करते हैं। व्यवसाय को उपभोक्ताओं की हानि द्वारा नुक्सान पहुँचा कर, उपभोक्ताओं को नियोक्ता के साथ व्यवसाय करने से मना करके, तथा नकारात्मक प्रचार के द्वारा कम्पनी की ख्याति एवं व्यापार को हानि पहुँचाने के उद्देश्य प्राप्त किये जाते हैं।

धरना श्रम-संघों द्वारा प्रयोग में लायी जाने वाली सामान्य (आम) युक्ति है।

धरने के प्रकार

1. समूह धरना—समूह धरना अधिक से अधिक लोगों के समर्थन (सहयोग) जुटाने (प्राप्त) करने का प्रयास होता है।

2. सूचनात्मक धरना—यह एक विधिक नाम (शीर्षक) है। इसमें एक समूह द्वारा (श्रम या व्यापार संघ) जनता को उनके विषय की महत्ता के बारे में बताया जाता है।

3. सहायक (गौण) धरना—विरोध के विषयों से सम्बन्धित स्थानों पर धरने को सहायक धरना कहा जाता है। यह उस व्यवसाय के घटकों को समाहित करने वाला व्यवसाय होता है जिसके विरोध में कर्मचारी धरने पर बैठे होते हैं।

Scanned with CamScanner

4. हानिकारक धरना—इसमें बल का अवैध प्रयोग, शारीरिक रुकावट (बाधा) अथवा बल का भय सम्मिलित रहता है।

वैधानिक पक्ष—कतिपय देशों में धरना विधिक है यदि वह राजमार्ग में बाधा नहीं उत्पन्न करता। किन्तु विश्व के कई देशों में धरने के प्रयोग पर प्रतिबन्ध है। भारत में राजमार्गों तथा सार्वजनिक स्थान पर बाधा पर प्रतिबन्ध है तथा यदि धरना अहिंसक है, तो यह पूर्णत: विधिक है।

घेराव—यह विरोध का एक प्रकार है, जिसमें व्यक्तियों (कर्मचारियों) का एक समूह अपने वरिष्ठ अधिशासी के चारों ओर अवस्थित हो जाता है तथा अपनी माँगों के सम्बन्ध में दबाव निर्मित करने का प्रयास करता है।

घेरा डालना (घेराबन्दी) मूलत: हिन्दी भाषा का शब्द है, यह एक रणनीति को प्रदर्शित करता है जो श्रम/व्यापार संघों के द्वारा प्रयोग में लाया जाता है।

घेराव का हिन्दी में अर्थ, वृत्त बनाना है, यह समूह सदस्यों का सामूहिक कृत्य होता है। इसमें प्रबन्ध के सदस्यों को श्रमिकों द्वारा औद्योगिक परिसर को छोड़ने से प्रतिबन्धित (निषिद्ध) कर दिया जाता है। मानव अवरोधों के द्वारा श्रमिक **'निकास द्वार'** को जाम कर देते हैं जिससे वरिष्ठ अधिशासी कार्य-स्थल से बाहर न जा पायें तथा अपने केबिन (कक्ष) में ही रहें। इसका प्रमुख उद्देश्य सम्बन्धित व्यक्ति जो माँग पर विचारण हेतु सक्षम अधिकारी है, को मानसिक व शारीरिक यातना देकर अपनी माँगों के सन्दर्भ में दबाव बनाने का प्रयास है।

4.7 श्रम-कल्याण योजनाएँ (Labour Welfare Plans)

श्रमिक कल्याण के अन्तर्गत श्रमिकों व कर्मचारियों के स्वास्थ्य, सुरक्षा, आराम एवं सामान्य कल्याण को प्रभावित करने वाली सभी बातें सम्मिलित की जाती हैं। श्रमिक कल्याण कार्यक्रम के अन्तर्गत श्रमिकों व कर्मचारियों को वेतन या पगार के अतिरिक्त अन्य हित-लाभ प्रदान किये गये हैं।

परिभाषाएँ (Definitions)

श्रमिक कल्याण की सरल और सर्वमान्य परिभाषा देना कठिन है क्योंकि इसका प्रयोग विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न अर्थों में किया है। कर्मचारी कल्याण शब्द में पर्याप्त लोच होनी चाहिए, जिससे विभिन्न देशों में अपनी परिस्थितियों के अनुसार उसका प्रयोग किया जा सके। यहाँ श्रमिक कल्याण की कुछ विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं का उल्लेख किया जाना आवश्यक है—

(i) ***ब्यूरो ऑफ लेबर स्टेटिस्टिक्स*** *(यू० एस० ए०) के अनुसार—"श्रमिकों के आराम और बौद्धिक एवं शारीरिक विकास के लिए मजदूरी के अतिरिक्त ऐसा कोई भी किया गया कार्य जो न तो उद्योग के लिए आवश्यक है और न वांछनीय ही है।*

(ii) ***श्रम जाँच समिति*** *1945 के अनुसार—"श्रमिकों के शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा आर्थिक कल्याण के लिए किया गया कोई भी कार्य जो वैधानिक कानून तथा मालिकों एवं श्रमिकों के बीच हुए प्रसंविदे के अन्तर्गत लाभों के अतिरिक्त हों, चाहे वह मालिकों, सरकार अथवा संस्थाओं के द्वारा किया गया हो, श्रम कल्याण कहलाता है।"*

(iii) ***बाल्फर समिति*** *के अनुसार—"श्रमिक कल्याण के अति-व्यापक रूप में इसके अन्तर्गत श्रमिकों के स्वास्थ्य, सुरक्षा, आराम एवं सामान्य कल्याण को प्रभावित करने वाली सभी बातों का समावेश किया जाता है और इसमें शिक्षा, मनोरंजन, बचत योजनाओं तथा स्वास्थ्यप्रद मकानों आदि का प्रावधान होता है।"*

श्रमिक कल्याण की उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर श्रमिक कल्याण को निम्नांकित ढंग से परिभाषित किया जा सकता है—

"श्रमिकों को प्रदान की जाने वाली पगार या मजदूरी (Wages) के अलावा उनके शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आर्थिक स्तर में सुधार करने हेतु उनके आराम एवं मनोरंजन के लिए जो सुविधाएँ बिना किसी वैधानिक अनिवार्यता के उद्योग द्वारा उन्हें दी जाती हैं, श्रमिक-कल्याण (Labour Welfare) के अन्तर्गत सम्मिलित होती हैं। श्रमिकों को ये उक्त सुविधाएँ उद्योग, सरकार, श्रम या किसी अन्य सामाजिक संस्था द्वारा भी दी जा सकती हैं।"

Scanned with CamScanner

श्रमिक कल्याण कार्य (Functions of Labour Welfare)

श्रमिक कल्याण के कार्यों को मुख्यत: दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में तो वे कार्य आते हैं जो श्रमिकों के कल्याण के लिए व्यावसायिक उपक्रम या कारखाने के अन्दर उस स्थान पर किये जाते हैं, जहाँ पर कि श्रमिक कार्य करते हैं तथा दूसरे वर्ग में वे कार्य आते हैं जो कि व्यावसायिक उपक्रम या कारखाने के बाहर श्रमिकों के कल्याण हेतु किए जाते हैं—

1. उपक्रम या कारखाने के अन्दर किये जाने वाले श्रमिक कल्याण कार्य (Labour Welfare Works Performed Inside Enterprise or Factory)—कारखाने के अन्दर श्रमिक-कल्याण कार्यों (Intramural) में निम्नलिखित कार्य उल्लेखनीय हैं—

(i) कारखाने का वातावरण (Environment of Factory)—कारखाने के वातावरण का उसमें काम करने वाले श्रमिकों की कार्य-कुशलता पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। कारखाने का कार्य मानसिक, यन्त्रचालित और थकान पैदा करने वाला होता है और सभी श्रमिकों को यह कार्य सात-आठ घण्टे करना पड़ता है। अत: कारखाने का वातावरण ऐसा होना चाहिए जिसमें कम से कम थकान और कम से कम शारीरिक शक्ति का ह्रास हो। इस सम्बन्ध में एच० ए० होफ्क (H.A. Hoph) का कथन है कि, "कार्य करने की दशाओं में सुधार करने से बीस प्रतिशत लिपिकीय कार्य में बचत की जा सकती है।" (Savings of 20 percent or more in clerical costs can often be achieved by improvement of the physical conditions under which work is performed.) इस कथन का समर्थन लैफिंगवैल तथा रॉबिन्सन के इस कथन से भी होता है कि, "एक अत्यधिक कर्तव्य-परायण कर्मचारी भी अपनी ओर से तब तक काम नहीं कर सकता जब तक उसके काम करने का वातावरण आरामदायक न हो चाहे उसे इस दूषित वातावरण का ज्ञान हो या न हो।" अत: कारखाने का वातावरण ऐसा होना चाहिए, जिससे श्रमिकों के शरीर में चेतना बनी रहे, थकावट कम से कम हो, उनकी काम करने की शक्ति का ह्रास न हो जिससे उनके काम करने की प्रबल इच्छा बनी रहे और वह एकाग्रचित होकर अपना कार्य तन्मयता से कर सके। कारखाने के वातावरण में निम्नलिखित बातों का समावेश किया जाता है—

(a) प्रकाश,
(b) स्वच्छता एवं सफाई,
(c) हवादार,
(d) आन्तरिक सजावट,
(e) तापमान तथा नमी,
(f) शोर या कोलाहल,
(g) सुरक्षा।

(ii) वैज्ञानिक भर्ती (Scientific Recruitment)—श्रमिकों की भर्ती एक वैज्ञानिक आधार पर की जानी चाहिए। श्रमिकों की भर्ती करने वाले अधिकारी अनुभवी और कुशल व्यक्ति होने चाहिए जिससे वे बिना पक्षपात के श्रमिकों की भर्ती करें। अत: श्रमिकों को भर्ती करने की प्रणाली श्रमिकों एवं स्वामियों दोनों के हित में होनी चाहिए।

(iii) दुर्घटनाओं से बचाव के उपाय (Mean for Protection of Accidents)—कारखाने के अन्दर दुर्घटनाओं की रोकथाम की उचित व्यवस्था की जानी चाहिए। इसके बचाव के लिए आग बुझाने की मशीन, प्राथमिक उपचार के पर्याप्त उपकरण तथा चिकित्सक की भी समुचित व्यवस्था कारखाने में की जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त कारखाने में इस बात की भी उचित व्यवस्था होनी चाहिए कि बचाव के साधनों के बावजूद भी यदि कोई अप्रत्याशित दुर्घटना घट जाये तो उसके प्राथमिक उपचार की पर्याप्त व्यवस्था भी कारखाने में उपलब्ध रहनी चाहिए।

(iv) सामान्य प्रशिक्षण (General Training)—कर्मचारियों को उनके कार्य के सम्बन्ध में सामान्य प्रशिक्षण दिया जाना आवश्यक है जिससे वे नई-नई मशीनों पर नवीनतम वैज्ञानिक पद्धतियों के अनुसार काम कर सकें। कारखाने में जब प्रशिक्षण की अपनी व्यवस्था की जाती है, तो उससे श्रमिकों एवं पूँजीपतियों दोनों को ही समान रूप से लाभ होता है।

II. कारखाने के बाहर किए जाने वाले श्रमिक कल्याण कार्य (Labour Welfare Workers Performed outside the Factory)—इसके अन्तर्गत अग्रलिखित कार्य उल्लेखनीय हैं—

Scanned with CamScanner

(i) शिक्षा की उचित व्यवस्था (Proper Arrangement of Education)—श्रमिकों की उन्नति का मार्ग प्रशस्त करने के लिए उन्हें शिक्षित किया जाना अति आवश्यक है। श्रमिकों की अशिक्षा व अज्ञानता के कारण श्रमिक संगठनों के पेशेवर नेता तथा मिल मालिक अपने-अपने निजी स्वार्थों की सिद्धि करने में सफल हो जाते हैं। इस समस्या का निराकरण तभी सम्भव हो सकता है जबकि श्रमिकों को शिक्षित करने के लिए नि:शुल्क रात्रि पाठशालाओं द्वारा उचित शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(ii) उचित चिकित्सा सुविधा की व्यवस्था (Arrangement of Proper Medical Facilities)—यह एक कटु सत्य है कि श्रमिक अपनी दयनीय आर्थिक स्थिति के कारण बीमारी के समय अपनी और अपने परिवार की चिकित्सा की व्यवस्था नहीं कर सकता और छोटी सी बीमारी होने पर श्रमिक अपने कार्य से अनुपस्थित हो जाता है। अत: श्रम कल्याण कार्यों के अन्तर्गत श्रमिक एवं उसके परिवार के लिए कारखाने के प्रबन्धक एवं मालिकों की ओर से नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य है।

(iii) भविष्य निधि तथा सामूहिक बीमा योजना (Provident Fund and Group Insurance Scheme)—श्रमिकों व उनके परिवारों का भविष्य उज्ज्वल हो इसके लिए श्रमिक कल्याण कार्यक्रम के अन्तर्गत नियोक्ता श्रमिकों के लिए भविष्य निधि तथा सामूहिक बीमा योजना जैसी कल्याणकारी योजनाएँ लागू करते हैं।

(iv) उचित कपड़ों की व्यवस्था (Proper Clothing Arrangement)—श्रमिकों को पहनने के लिए उचित कपड़ों की व्यवस्था भी उनकी प्राथमिक आवश्यकताओं में से एक है। अत: श्रमिकों को पहनने के लिए सस्ती दरों पर सहकारी उपभोक्ता भण्डार के माध्यम से दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उचित कपड़ों की व्यवस्था भी की जानी चाहिए। मालिकों द्वारा आवश्यक मौसमी वर्दी, जर्सी इत्यादि उपलब्ध करायी जानी चाहिए।

(v) सस्ती दरों पर पौष्टिक भोजन का प्रबन्ध (Arrangement of Healthy Food at Cheap Rates)—किसी व्यक्ति की कार्य-कुशलता बहुत कुछ उस भोजन की मात्रा और किस्म पर निर्भर करती है जो उसे मिलता है। हमारे देश में अधिकांश श्रमिकों को न पर्याप्त मात्रा में भोजन ही मिलता है और न अच्छी किस्म का भोजन ही मिलता है जिससे उनकी कार्य-क्षमता अपेक्षाकृत कम है। श्रमिकों की कार्य-क्षमता बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि श्रमिकों की बस्तियों में सहकारी उपभोक्ता भण्डार के माध्यम से उन्हें दैनिक आवश्यकता की वस्तुएँ उचित मूल्य पर उपलब्ध कराई जायें। इसके साथ-साथ कारखानों में कैन्टीन की भी व्यवस्था की जानी चाहिए जहाँ श्रमिकों को अच्छा एवं पौष्टिक भोजन बाजार से सस्ते मूल्य पर मिल सके।

(vi) उचित रहने की व्यवस्था (Proper Living Arrangement)—उद्योग में कार्यरत श्रमिकों को रहने के लिए खुली जगह में हवादार मकानों की व्यवस्था करना श्रमिक कल्याण का ही एक अंग है। यह श्रमिक की प्राथमिक आवश्यकता होने के साथ उद्योग मालिक का परम कर्तव्य है। अच्छे स्वस्थ वातावरण में रहकर श्रमिक व उसका परिवार भी स्वस्थ एवं खुश रहते हैं और अच्छी आदतें तथा अच्छे संस्कार सीखते हैं। इससे श्रमिक का मन-मस्तिष्क अच्छा कार्य करता है तथा वह उद्योग में मन लगाकर अधिक व उत्तम उत्पादन करता है।

(vii) अनिवार्य बीमा योजना की व्यवस्था (Arrangement of Compulsory Insurance Scheme)—श्रमिकों के लिए अनिवार्य बीमा योजना लागू की जानी चाहिए जिससे वे अपने बुढ़ापे में आराम से अपना जीवन-यापन कर सकें।

श्रमिक कल्याण का महत्व (Importance of Labour Welfare)

श्रमिक तथा उसके परिवार के सर्वांगीण विकास और कल्याण के लिए श्रमिक कल्याण कार्यक्रमों का विशेष महत्व है। इन कार्यक्रमों द्वारा श्रमिक की आर्थिक दशा में सुधार, शारीरिक तथा मानसिक स्तर में वृद्धि तथा भौतिक, नैतिक व आध्यात्मिक विकास किया जाता है। श्रमिक कल्याण कार्यों से श्रमिक का मन-मस्तिष्क प्रफुल्लित रहता है और वह अपनी पूरी योग्यता व सामर्थ्य के साथ उद्योग के हित में सोचता है तथा कार्य करता है।

भारत जैसे विकासशील देश में, जहाँ श्रमिकों की आर्थिक व सामाजिक स्थिति बेहद खराब है, श्रमिक कल्याण से जुड़े कार्यक्रमों का महत्व बहुत अधिक है। श्रमिक कल्याण से जुड़े कार्यक्रमों का महत्व बहुत अधिक है। श्रमिक कल्याण कार्यक्रम अग्र कारणों से महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है—

Scanned with CamScanner

(i) कार्यक्षमता में वृद्धि (Increase in Working Capacity)—यदि श्रमिक को बेहतर कार्य सुविधायें दी जायें तथा उसे अच्छा परिश्रमिक प्राप्त हो तो वह मन लगाकर अपने कार्यों/जिम्मेदारियों को पूरा करेगा। इससे श्रमिक की कार्यक्षमता में तो वृद्धि होती ही है, उद्योग की उत्पादकता में भी वृद्धि होती है।

(ii) औद्योगिक क्रान्ति के लिए (For Industrial Revolution)—उद्योग को विकसित करने के लिए तथा निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति सुनिश्चित करने के लिए श्रमिकों एवं नियोक्ता/पूँजीपति के मध्य अच्छा सामंजस्य होना आवश्यक है श्रमिक कल्याण कार्यक्रम द्वारा नियोक्ता/पूँजीगत तथा श्रमिक के मध्य निकटता/सामंजस्य की भावना उत्पन्न की जा सकती है जो एक सफल औद्योगिक क्रान्ति के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

(iii) नियोक्ता एवं श्रमिकों के बीच अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने के लिए (To Establish good relations between Employees and Labour)—श्रमिक कल्याण कार्यक्रमों द्वारा नियोक्ता एवं श्रमिकों के मध्य मधुर सम्बन्ध स्थापित करने में आशातीत सफलता मिलती है। इसके अतिरिक्त श्रमिक कल्याण द्वारा अच्छे सामाजिक रिश्ते कायम करने में भी काफी सहायता मिलती है।

(iv) श्रमिकों की आर्थिक स्थिति में सुधार (Improvement in Economic Conditions of Labour)—यह सर्वविदित है कि भारतीय श्रमिकों को इतना कम वेतन मिलता है कि वह अपनी आवश्यक आवश्यकता की सुविधाओं—रोटी, कपड़ा और मकान की भी उचित व्यवस्था नहीं कर सकता जिसके कारण वह सदा ऋणी रहता हैं अत: यह आवश्यक है कि सुखी जीवन बिताने के लिए श्रमिकों को उनके वेतन के पूरक रूप में नि:शुल्क चिकित्सा, अच्छे मनोरंजन के साधन, उचित मकान, सस्ती दर पर भोजन-सामग्री, बच्चों की शिक्षा और खेलकूद की सुविधायें दी जानी चाहिए।

(v) श्रमिकों को शिक्षित बनाने के लिए (To make educate the Labour)—श्रमिक-कल्याण कार्यक्रम श्रमिकों को शिक्षित बनाने और उसमें अपने कर्तव्यों के प्रति जागरुकता लाने के लिए आवश्यक है भारतीय श्रमिक अशिक्षित एवं अज्ञानी होता है जिसके कारण पेशेवर नेता अपने स्वार्थ सिद्ध करने में सफल हो जाते हैं और कभी भी श्रमिकों को भड़काकर हड़ताल का नारा लगा देते हैं। अत: श्रमिकों को शिक्षित बनाना आवश्यक है।

(vi) श्रमिकों के नैतिक उत्थान के लिए (For the Moral Progress of Labour)—श्रमिकों को बुरी आदतों (bad habits) और दुर्गुणों से बचाने तथा उनका नैतिक उत्थान करने के लिए यह जरूरी है कि श्रमिकों के लिए खेल-कूद के अच्छे साधनों तथा मनोरंजन के उचित साधनों की सुव्यवस्था की जाए, जो श्रमिक कल्याण कार्यों के अन्तर्गत आती है।

(vii) मानसिक क्रान्ति के लिए (For Psychic Revolution)—श्रमिकों में मानसिक क्रान्ति लाने के लिए श्रमिक-कल्याण कार्यों का किया जाना आवश्यक है, जिससे वे स्वयं को व्यवसाय का एक अंग और प्रबन्धक एवं स्वामियों को अपना शुभ चिन्तक समझने लगें। मानसिक क्रान्ति के द्वारा श्रम और स्वामी का वर्ग-संघर्ष बड़ी आसानी से समाप्त हो सकता है जिससे श्रमिक, स्वामी, उपभोक्ता और सम्पूर्ण राष्ट्र को लाभ होगा।

(viii) श्रमिक संघों की उन्नति के लिए (For the Progress of Trade Unions)—श्रमिकों को पूँजीपतियों के शोषण से बचाने के लिए संगठित श्रम-संघों का होना आवश्यक है। श्रम-संगठन अनेक प्रकार से श्रम-कल्याण कार्य स्वयं भी कर सकते हैं और उनमें सहायक भी हो सकते हैं। लेकिन हमारे देश में श्रम-संगठन श्रम-कल्याण के कार्यों में विशेष रुचि नहीं लेते इसलिए श्रमिक का विश्वास जीतने में असफल रहते हैं।

(ix) प्रवासी प्रवृत्ति को समाप्त करने के लिए (For the End of Emigrant Tendency)—प्राय: श्रमिक रोजगार की तलाश में अपना गाँव छोड़कर शहर में आते हैं, जहाँ पर उन्हें रहने-सहने की उचित सुविधाएँ मिलने के अभाव में उन्हें मलिन बस्तियों में अकेले ही मजबूरी में रहना पड़ता है, फिर वे वहाँ से भी तंग आकर वापस अपने गाँव चले जाते हैं। किन्तु जब उन्हें गाँव में कार्य नहीं मिलता तो वे फिर से दोबारा शहर की ओर दौड़ते हैं। इस प्रकार श्रमिकों का आवागमन की क्रिया निरन्तर चलती रहती है, जिसके फलस्वरूप आने-जाने में श्रमिकों का खर्चा भी होता है तथा वे अपने कार्य में निपुणता भी हासिल नहीं कर पाते। इस समस्या का निराकरण करने के लिए श्रमिक कल्याण द्वारा उन्हें सस्ती दरों पर आवास और अच्छी मनोरंजन की सुविधायें प्रदान कर दी जायें तो काफी हद तक श्रमिकों की प्रवासी प्रवृत्ति समाप्त हो जायेगी।

(x) कार्य-दशाओं में सुधार (Improvement in Working Conditions)—जब कार्य की दशायें (Working conditions) असन्तोषजनक होती हैं तो उससे उनके कार्य पर कुप्रभाव पड़ता है। अर्थात् खराब कार्य दशायें श्रमिकों की

Scanned with CamScanner

कार्यक्षमता को कम कर देती है। उद्योग में कार्यरता श्रमिक जिस स्थान पर कार्य करते हैं उस स्थान पर कार्य की दशा व वातावरण नि:सन्देह श्रमिकों की कार्य-कुशलता को प्रभावित करता है। जब कार्य की दशायें व वातावरण श्रेष्ठ व स्वास्थ्यप्रद हों तो श्रमिकों की कार्य-कुशलता में आशातीत वृद्धि होती है।

4.8 प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी (Worker's Participation in Management)

"हम देखते हैं कि कार्य पर लगे लोग जीवन के अन्य क्षेत्रों में लगे लोगों से कुछ अधिक भिन्न नहीं होते वे पूर्णत: तर्क के ही अनुयायी नहीं होते हैं, उनमें भी भावनायें होती हैं। वे अपने आपको महत्वपूर्ण अनुभव करना चाहते हैं और अपने कार्य के महत्व की मान्यता चाहते हैं। वे यह जानना चाहते हैं कि उनसे क्या सम्भावना की जाती है और उनके अधिकारियों के विचारों में उनकी क्या स्थिति है? वे न सब क्रियाओं के सम्बन्ध में परामर्श देना चाहते हैं तथा उनमें भागीदार बनना चाहते हैं जो उन्हें व्यक्तिगत रूप से प्रभावित करती हैं। संक्षेप में कर्मचारी अन्य सभी के समान ऐसा व्यवहार चाहते हैं, जिसका अनुभव हो कि वे किसी समूह से सम्बद्ध हैं और उसके एक आवश्यक अंग हैं।" ***—एफ० जे० रोइथलिस बरजर***

आज के युग में उद्योग को एक सामाजिक संस्था की संज्ञा दी जा सकती है प्रबन्धन, श्रमिक अथवा समाज सभी का हित, अलग-अलग कारणों से, इसी बात में है कि उद्योग की निरन्तरता बनी रहे तथा वह और अधिक समृद्ध एवं विकसित हों।

डॉ० मेहत्रास (Dr. Mehtras) ने भागीदारी के बोध को कुछ इस प्रकार परिभाषित किया है—"यह उद्योग में लोकतान्त्रिक प्रशासन का सिद्धान्त है जो प्रबन्धकीय क्रियाओं की सम्पूर्ण रेंज में, प्रबन्धन के सभी उपयुक्त स्तरों पर अपने उचित प्रतिनिधियों द्वारा एक औद्योगिक संगठन के विभिन्न पदों पर निर्णय लेने के अधिकार को बाँटता (Sharing) है।"

भागीदारी का अर्थ है मिलकर कार्य करना। भागीदारी किसी व्यक्ति का सामूहिक स्थिति में समूह के साथ मानसिक एवं भावनात्मक लगाव है जो उसे समूह के लक्ष्यों अथवा उद्देश्यों की पूर्ति हेतु योगदान करने के लिए प्रेरित करता है तथा जिम्मेदारियों को बाँटता है।

भागीदारी का मूल आधार वस्तुत: श्रमिक को एक ऐसे निर्णय में अपनी राय देने का हक प्रदान करना है जो भविष्य में उसे प्रभावित करेगा। प्रबन्ध तन्त्र अधिक प्रभावशाली रहता है जबकि श्रमिक उपक्रम के मामलों में अपनी भागीदारी मात्र से ही प्रसन्न रहता है। विशेषतया जब श्रमिक कल्याण तथा कार्य परिस्थितियों जैसे मामलों पर निर्णय लिया जाना हो। यदि श्रमिकों को कार्य परिस्थितियों आदि के बारे में निर्णय लेने का अवसर प्रदान किया जाये तो कम्पनी के उद्देश्यों और लक्ष्यों की अधिक प्रभावी ढंग से प्राप्त किया जा सकता है।

प्रबन्धन कार्यों में श्रमिकों की भागीदारी किसी भी रूप में हो सकती है। इसमें कर्मचारियों की कार्य समितियों का गठन करके प्रबन्धन में उनकी भागीदारी स्थापित की जाती है।

श्रम की प्रबन्धन में भागीदारी का आधार
(Basis of Worker's Participation in Management)

श्रम की प्रबन्ध में भागीदारी के तीन प्रमुख आधार हैं—आर्थिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक। आर्थिक आधार के अन्तर्गत प्रबन्ध को स्वेच्छा से यह स्वीकार करना चाहिए कि श्रम का व्यवसाय की प्रगति एवं सम्पन्नता में पर्याप्त योगदान होता है और उसे व्यवसाय की बढ़ी हुई उत्पादकता एवं सम्पन्नता से होने वाले लाभ में समान भाग पाने का वैध अधिकार होता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह महसूस किया जाना चाहिए कि श्रमिकों में व्यवसाय के मामलों में भागीदारी के अधिकार पाने की इच्छा होती है और वे चाहते हैं कि उन्हें उस व्यवसाय में जिसमें वे कार्य करते हैं महत्वपूर्ण पद मिलना चाहिए। श्रमिकों में जब यह भावना जागृत होती है कि उसके किये गये कार्य व्यवसाय के लक्ष्यों की ही कड़ी है और उसका व्यवसाय की संरचना में महत्वपूर्ण स्थान है तो उसे अपने पर गौरव अनुभव होता हैं जो उसे प्रबन्ध के साथ स्वेच्छित सहयोग करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

सामाजिक दृष्टिकोण से भागीदारी तब ही सम्भव होती है जबकि व्यवसाय को एक सामाजिक संस्था माना जाता है, जिसमें नियोक्ता, कर्मचारी, समाज एवं राष्ट्र सभी का समान हित होता है तथा इन हितों में परस्पर निर्भरता होती है। इस प्रकार श्रमिकों की प्रबन्ध में भागीदारी के अन्तर्गत प्रबन्ध एवं श्रम में व्यवसाय के भविष्य के सम्बन्ध में निर्णय करने हेतु अधिकारों

Scanned with CamScanner

एवं दायित्वों का समान वितरण होता है। जब सम्बन्धित पक्ष आर्थिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक अधिकारों की समानता को स्वेच्छा से स्वीकार नहीं करते हैं तो भागीदारी का सम्पन्न होना सन्देहजनक रहता है।

भागीदारी की अवस्थाएँ (Stages of Participation)

प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी की मुख्यत: निम्नांकित पाँच अवस्थाएँ हो सकती हैं—

(i) परामर्शात्मक भागीदारी (Consultative Participation)—भागीदारी की इस अवस्था के अन्तर्गत प्रबन्ध की सामूहिक समितियों या परिषदों के साथ प्रबन्ध तन्त्र द्वारा परामर्श किया जाता है। दूसरे शब्दों में, सामूहिक समितियों या परिषदों को केवल प्रबन्ध तन्त्र द्वारा ही लिए जाते हैं। समितियों या परिषदों को केवल परामर्श देने का अधिकार होता है तथा अन्तिम निर्णय केवल प्रबन्ध तन्त्र द्वारा ही लिए जाते हैं। समितियों या परिषदों के साथ परामर्श मुख्यत: सुरक्षा, आवास गृह, उत्पादन उपक्रमों व कार्य-विधियों, जलपान ग्रहों तथा श्रमिक कल्याण और सुविधाओं इत्यादि से सम्बन्धित मसलों पर ही किया जाता है।

(ii) सूचना सम्बन्धी भागीदारी (Informative Participation)—इस अवस्था के अन्तर्गत श्रम एवं प्रबन्ध की सामूहिक समितियों अथवा परिषदों को प्रबन्ध कुछ सूचनायें प्रदान करता है जिससे कि कर्मचारी व्यवसाय की स्थिति को जान कर सन्तुष्ट रहें। इस अवस्था में केवल सामान्य सूचनायें ही जैसे उत्पादन के आँकड़े व्यवसाय की स्थिति विवरण, प्रगति सम्बन्धी आँकड़े आदि प्रदान किये जाते हैं और कर्मचारियों को इन सूचनाओं के सम्बन्ध में गहन छानबीन करने का अधिकार नहीं होता है।

(iii) निर्णयात्मक भागीदारी (Decisive Participation)—भागीदारी की इस अवस्था के अन्तर्गत प्रबन्ध समितियों या परिषदों के समक्ष व्यवसाय की सारी आर्थिक, प्रशासनिक एवं वित्तीय नीतियाँ प्रस्तुत की जाती हैं तथा सभी पर सामूहिक निर्णय लिये जाते हैं। भागीदारी की यह सर्वोच्च महत्वपूर्ण अवस्था है, जिसमें प्रबन्ध क्रियाओं और सम्बन्धित अधिकारों व दायित्वों का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व इन्हीं समितियों या परिषदों को सौंप दिया जाता है।

(iv) सहचरी भागीदारी (Associative Participation)—प्रबन्ध इस भागीदारी के अन्तर्गत समितियों अथवा परिषदों से विभिन्न समस्याओं के निवारण हेतु सुझाव माँगता है। सुझाव उत्पादन की विधियों में सुधार, उत्पादन एवं विक्रय कार्यक्रम में परिवर्तन, संगठन एवं सामान्य प्रबन्ध से सम्बन्धित मामलों आदि के बारे में माँगे जाते हैं। इस अवस्था में व्यवसाय के सदस्यों को सूचनायें प्राप्त करने एवं उन पर विचार-विमर्श करके अपने सुझाव देने का अधिकार होता है। यद्यपि प्रबन्ध को इन सुझावों को स्वीकार करना अनिवार्य नहीं होता परन्तु एकमत से समितियाँ अथवा परिषदों द्वारा दिये गये सुझावों को मानने के लिए प्रबन्ध पर नैतिक दबाव अवश्य रहता है।

(v) प्रशासनिक भागीदारी (Administrative Participation)—भागीदारी की इस अवस्था के अन्तर्गत प्रबन्ध की सामूहिक समितियों या परिषदों के समक्ष प्रबन्ध के निर्णयों और नीतियों को रखा जाता है इन निर्णयों तथा नीतियों के क्रियान्वयन की किसी उपयुक्त विधि को प्रबन्ध तन्त्र द्वारा प्रस्तावित विभिन्न वैकल्पिक विधियों में से समितियों या परिषदों द्वारा चुना जाता है। इस अवस्था के अन्तर्गत प्रबन्ध तन्त्र के कार्यों से सम्बन्धित अधिकारों व दायित्वों में अधिक भाग श्रमिकों को प्रदान किया जाता है। इस प्रकार की भागीदारी में व्यावसायिक प्रशिक्षण, कार्य के घण्टों का कार्यक्रम, अवकाश, सुरक्षा की कार्यवाहियों के पर्यवेक्षण तथा श्रमिक कल्याण सम्बन्धी कार्यवाहियों इत्यादि से सम्बन्धित मसले ही सम्मिलित किए जाते हैं।

प्रबन्धन में श्रमिक भागीदारी के प्रकार (Forms of Worker's Participation in Management)

प्रबन्धन में श्रमिकों की भागीदारी विभिन्न तरीकों से हो सकती है जो निम्न प्रकार है—

(a) औपचारिक भागीदारी (Formal Participation)

(b) अनौपचारिक भागीदारी (Informal Participation)

(a) औपचारिक भागीदारी (Formal Participation)—ऐसे श्रमिकों और प्रबन्धकों के मध्य एक योजना (Plan) के अनुसार समन्वय तथा सहयोग किया जाता है इसमें श्रमिकों और प्रबन्धकों के बीच कुछ सीमा तक कार्य प्रणाली तैयार कर ली जाती है, जो सामान्यतया संघों के माध्यम से अपनायी जाती है। श्रमिकों व प्रबन्धन अग्र योजनाओं पर मिलकर कार्य कर सकते हैं—

Scanned with CamScanner

(i) कर्मचारी बीमा योजना आदि,
(ii) आरोही भागीदारी,
(iii) अवरोही भागीदारी,
(iv) दुर्घटना से बचाव,
(v) पदार्थ की बर्बादी को रोकना तथा त्रुटियों को शून्य स्तर तक लाना,
(vi) श्रमिक की फेरबदल तथा अनुपस्थिति पर नियन्त्रण।

आरोही प्रकार की भागीदारी में श्रमिकों में से चुने गये प्रतिनिधि प्रबन्ध की वार्ताओं में सम्मिलित होते हैं और प्रबन्धन के उच्च स्तरीय निर्णय लेने में अपना योगदान देते हैं। उदाहरणार्थ—बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स की बैठक में भाग लेना।

अवरोही प्रकार की भागीदारी में श्रमिकों के प्रतिनिधि अपना योगदान व सुझाव स्वयं नियोजित करते हैं तथा शॉप फ्लोर पर अपने कार्य के सम्बन्ध में स्वयं निर्णय लेते हैं।

श्रमिकों की सामूहिक (Collective) भागीदारी निम्नलिखित रूप से प्राप्त की जाती है—

(i) संयुक्त परिषद् द्वारा (Through Joint Councils)—संयुक्त परिषद्, जिसमें श्रमिक और प्रबन्धक दोनों के प्रतिनिधि होते हैं, परस्पर सामान्य रहित की बातें पर निर्णय लेते हैं जैसे दुर्घटना से बचाव, सुरक्षा-उपाय, उत्पादन मानकों का निर्धारण, श्रमिकों का शिक्षण/प्रशिक्षण तथा कर्मचारी कल्याण कार्यक्रम आदि।

(ii) प्रतिनिधान और जॉब विस्तार (Delegation and Job Enlargement)—इसमें श्रमिक को अपने स्वयं के कार्य निर्धारण का अधिकार दिया जाता है।

(iii) सुझाव प्रणाली (Suggestion System)—जिसमें श्रमिक को अपने निजी सुझाव देने का अधिकार होता है। ये प्राय: वे श्रमिक होते हैं जो अपने कार्य से सम्बन्धित सूक्ष्म से सूक्ष्म गहन जानकारी रखते हैं और सुझाव देने की योग्यता रखते हैं। इससे श्रमिक का आत्मविश्वास तथा मनोबल बढ़ता है तथा उसकी उत्पादकता में वृद्धि होती है।

(iv) कर्मचारी निदेशक द्वारा (Through Employee's Directorate)—इस भागीदारी में कर्मचारियों अथवा श्रमिकों में से चुना गया एक प्रतिनिधि बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स का सदस्य होता है।

(v) कार्य समितियों द्वारा (Through Works Committees)—कार्य समितियों का प्रमुख कार्य श्रमिकों एवं प्रबन्धन के बीच अच्छे तथा मधुर सम्बन्ध बनाना तथा उन्हें बढ़ावा देना है। यह समिति दोनों पक्षों के मतभेदों पर अपनी राय प्रस्तुत करती है और दोनों पक्षों के उभयनिष्ठ हितों में मध्य मतभेदों को सुलझाने का प्रयास करती है।

(vi) सूचनाओं के आदान-प्रदान द्वारा (Through Informative Sharing)—इसके द्वारा श्रमिकों को कम्पनी की योजनाओं, नीतियों, वित्तीय स्थिति आदि के बारे में बताया जाता है।

(b) अनौपचारिक भागीदारी (Informal Participation)—इस प्रकार की भागीदारी कार्यकारी समूह (Working Group) के स्तर पर होती है, जिसमें फोरमैन को अवसर प्राप्त होता है कि वह समस्या के समाधान (Problem Solving) और निर्णय लेने (Decision making) में अपनी भागीदारी बनाये। ये प्राय: ऐसे प्रकरण होते हैं, जो फोरमैन/सुपरवाइजर के अधिकार कार्यक्षेत्र में आते हैं।

भागीदारी की असफलता के कारण (Causes of Failure of Participation)

(i) देश में अन्तरसंघीय शत्रुता एवं वैमनस्यता भी संयुक्त प्रबन्ध परिषदों एवं कार्य समितियों की असफलता का कारण है जिन कारखानों में एक से अधिक संघ हैं, उनमें से किसी एक को प्रबन्ध में सम्मिलित करने के लिए चयन करना अत्यन्त कठिन होता है। प्रबन्ध इन परिस्थितियों का लाभ उठाकर इन परिषदों एवं समितियों को निष्क्रिय रखने में समर्थ होता है।

(ii) संयुक्त परिषदों की सफलता के लिए दीर्घकाल से रहने वाले अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध आवश्यक हैं। भारत में अनुशासन संहिता (Code of Discipline) के होते हुए भी बहुत कम ऐसी औद्योगिक इकाइयां हैं जिनमें हड़ताल आदि न होते हों।

Scanned with CamScanner

(iii) कार्य समितियाँ एवं परिषदें उपयुक्त संज्ञापन व्यवस्था भी स्थापित करने में सफल नहीं हुई है। जब तक प्रबन्ध एवं श्रम में कुशल संज्ञापन व्यवस्था स्थापित नहीं होती भागीदारी की संस्थाएँ नहीं हो सकतीं।

(iv) भारत में श्रम संघों द्वारा संयुक्त परिषदों का विरोध किया जाता है। श्रम संघों के नेता यह मानते हैं कि संयुक्त प्रबन्ध परिषदों की स्थापना से उनके अधिकारों एवं महत्व को क्षति पहुँचती है। वे यह महसूस करते हैं कि श्रमिकों की प्रबन्ध में भागीदारी धीरे-धीरे श्रमिकों पर से उनका प्रभाव समाप्त कर देगी और श्रम संघ एवं नेताओं को महत्वहीन स्थिति में पहुँचा देगी।

(v) श्रमिकों में शिक्षा एवं प्रशिक्षण की कमी के कारण श्रमिकों की भागीदारी केवल उत्पीड़न को व्यक्त करने की संस्था बन गई है। जब इन परिषदों द्वारा श्रमिकों की सम्भावना के अनुसार उन्हें लाभ नहीं पहुँचता तो वे इन परिषदों को व्यर्थ की संस्था मानने लगते हैं। श्रमिकों में इन परिषदों के मूलभूत आदर्शों एवं उद्देश्यों को समझने की योग्यता नहीं है और जब तक वे यह योग्यता अर्जित न कर लें उनकी भागीदारी द्वारा सम्भावित फल प्राप्त नहीं हो सकते।

भारत में श्रमिकों में प्रबन्ध के भागीदारी को सफल बनाने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रबन्ध के इस भय को समाप्त किया जाये कि श्रमिकों की भागीदारी से उनके प्रबन्ध करने के अधिकार को क्षति पहुँचेगी। दूसरी ओर, श्रमिक को उचित शिक्षा एवं प्रशिक्षण देकर यह भावना उत्पन्न करनी है कि प्रारम्भिक काल में उनका कार्य कुछ मामलों में केवल सलाह देना है और कुछ के सम्बन्ध में सूचनाएँ प्राप्त करना है।

प्रश्नावली

1. मानवीय सम्बन्धों के बारे में आप क्या जानते हैं? समझाइये।
2. मानवीय सम्बन्धों को विभिन्न विद्वानों ने किस प्रकार परिभाषित किया है? बताइए।
3. बर्ल वॅटिग के मानवीय सम्बन्ध दर्शन सम्बन्धी इस सूत्र बताइये।
4. मानवीय सम्बन्धों को परिभाषित कीजिए एवं समझाइये।
5. मानवीय सम्बन्धों को विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
6. मानवीय सम्बन्धों के प्रमुख लक्षणों पर प्रकाश डालिए।
7. अच्छे मानवीय सम्बन्धों के सिद्धान्त बताइये।
8. मानवीय सम्बन्धों के सिद्धान्त बताइए।
9. संगठन में मानवीय कार्य-निष्पदन को प्रभावित करने वाले कारक कौन-कौन से है?
10. मानवीय सम्बन्धों के दर्शन पर अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।
11. मानवीय सम्बन्धों के दार्शनिक पक्ष (Philosophical Aspect) क्या हैं? बर्लवटिंग के मानवीय सम्बन्धों के दर्शन को व्यक्त करने वाले सूत्रों की व्याख्या कीजिए।
12. मानवीय सम्बन्धों में सुधार करने के कौन-कौन से उपाय कारगर सिद्ध हुए है? समझाइये।
13. मानवीय कार्य-निष्पादन से आप क्या समझते हैं? समझाइये।
14. आत्मविकास के सिद्धान्त बताइए।
15. प्रभावशाली व्यवहार हेतु खुद को तथा अन्य को समझना क्यों आवश्यक है? समझाइये।
16. अन्त:क्रियाओं में आत्मबोध का प्रादुर्भाव एवं विकास किस प्रकार होता है? संक्षेप में समझाइए।
17. आत्म बोध के प्रादुर्भाव एवं विकास के प्रमुख निर्धारक कारक कौन-कौन से हैं? प्रत्येक को सविस्तार से समझाइये।
18. औद्योगिक सम्बन्धों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
19. एक सफल औद्योगिक कार्यक्रम की मूल आवश्यकताएँ कौन-कौन सी हैं? स्पष्ट कीजिए।
20. किसी संगठन के श्रमिक सम्बन्ध विभाग के कार्यों की समीक्षा कीजिए।

Scanned with CamScanner

21. औद्योगिक सम्बन्धों को परिभाषित कीजिए।
22. औद्योगिक सम्बन्धों के आवश्यक पहलू कौन-कौन से है? बताइए। *(UPBTE 2004, 10)*
23. औद्योगिक विवाद से क्या आशय है? समझाइये। *(UPBTE 2004, 10)*
24. औद्योगिक विवादों के प्रमुख कारण कौन-कौन से हैं? बताइए।
25. औद्योगिक विवादों के प्रतिकूल प्रभाव मुख्यत: किन घटकों पर दृष्टिगोचर होते हैं? बताइए। *(UPBTE 2010)*
26. औद्योगिक विवाद से आप क्या समझते हैं? इसके कारणों की व्याख्या कीजिए।
27. औद्योगिक विवाद के दुष्परिणामों को विस्तार से समझाइये। *(UPBTE 2005)*
28. इड़ताल को परिभाषित कीजिए तथा उसके विभिन्न प्रकार बताइये।
29. औद्योगिक विवादों का निपाटारा किस प्रकार किया जा सकता है? विस्तारपूर्वक समझाइये।
30. श्रमिक संघ (Trade Union) से आप क्या समझते हैं? वर्णन कीजिए।
31. श्रमिक संघवाद के प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
32. श्रमिकों संघों के प्रमुख कार्यों को स्पष्ट कीजिए।
33. एक श्रमिक संघ को किस प्रकार पंजीकृत कराया जाता है?
34. एक श्रमिक संघ की औद्योगिक गतिविधियों पर प्रकाश डालिए।
35. एक श्रमिक संघ की सामाजिक गतिविधियों के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
36. एक श्रमिक संघ के प्रमुख लाभ/सीमाओं का वर्णन कीजिए।
37. भारत में श्रमिक संघों के विकास पर टिप्पणी लिखिए।
38. भारत में श्रमिक संघों के विकास में आने वाली बाधाओं पर प्रकाश डालिए।
39. श्रमिक असन्तोष का निपटारा किस प्रकार किया जा सकता है? समझाइये। *(UPBTE 2005)*
40. श्रम संगठन पर टिप्पणी लिखिए। *(UPBTE 2005)*
41. श्रम अधिनियमों की उद्योग में आवश्यकता एवं महत्त्व का वर्णन कीजिए। *(UPBTE 2005)*
42. भारत में प्रसिद्ध तीन श्रमिक संघों के नाम लिखिए। *(UPBTE 2005)*
43. "भीड़ मनोविज्ञान" को परिभाषित कीजिए एवं समझाइये।
44. "भीड़ मनोविज्ञान" के प्रमुख लक्षणों पर प्रकाश डालिए।
45. भीड़ मनोविज्ञान से क्या अभिप्राय है? इसकी परिभाषा दीजिए।
46. भीड़ मनोविज्ञान की प्रमुख विशेषताएँ बताइये।
47. भीड़ व्यवहार के प्रमुख सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।
48. समूह से क्या अभिप्राय है? इसे परिभाषित कीजिए।
49. समूह व्यवहार से आप क्या समझते हैं? समझाइये।
50. समूह व्यवहार की प्रमुख लाक्षणिक विशेषताएँ बताइये।
51. एक समूह अपने सदस्यों के किन उद्देश्यों की पूर्ति करता है? समझाइए।
52. औद्योगिक मनोविज्ञान के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को विस्तारपूर्वक समझाइये।
53. समूह के लक्ष्यों का वर्गीकरण कीजिए। प्रत्येक को विस्तार से समझाइए।
54. समूह का वर्गीकरण आप किस प्रकार करोगे? प्रत्येक को सविस्तार से समझाइये।
55. प्राथमिक तथा द्वितीयक समूहों की विशेषताएँ बताइये।
56. प्राथमिक तथा द्वितीयक समूहों में भेद स्पष्ट कीजिए।
57. समूह व्यवहार को परिभाषित कीजिए।
58. श्रमिक कल्याण के कार्य बताइये।
59. श्रमिक-कल्याण से आप क्या समझते हैं?
60. श्रमिक कल्याण से मालिकों को क्या-क्या लाभ हैं?

Scanned with CamScanner

61. श्रमिक-कल्याण को परिभाषित कीजिए तथा समझाइये।
62. श्रमिक-कल्याण के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
63. श्रमिक कल्याण की प्रमुख विधियों को संक्षेप में समझाइये।
64. श्रमिक कल्याण के प्रमुख कार्य कौन-कौन से है? बताइये।
65. प्रबन्धन में श्रमिकों की भागीदारी की अवधारणा स्पष्ट कीजिए। *(UPBTE 2005)*
66. प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी का आधार क्या है? समझाइये।
67. भागीदारी के अवस्थाएँ क्या हैं? समझाइये।
68. श्रमिकों की प्रबन्ध में भागीदारी कितने प्रकार की होती है? प्रत्येक को सविस्तार से समझाइये।
69. प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी की असफलता के प्रमुख कारण कौन से बताइये।
70. संघ वाद पर टिप्पणी लिखिए। *(UPBTE 2005)*
71. प्रबन्ध में श्रमिकों की सहभागिता से आपका का आशय है? आधुनिक संगठनों में इसके महत्त्व को स्पष्ट कीजिए। *(UP 2010)*
72. श्रमिकों की भागीदारी के प्रकार बताइये।
73. परिवेदना को परिभाषित करते हुए इसके कारणों का उल्लेख कीजिए।
74. परिवेदना निवारण प्रक्रिया का विस्तार वर्णन कीजिए।
75. परिवेदना के प्रभावों की व्याख्या कीजिए।
76. हड़ताल क्या है? इसके कारण एवं प्रकारों का वर्णन कीजिए।
77. तालाबन्दी को समझाइये। इसके लक्षण एवं कारणों का वर्णन कीजिए।
78. हड़ताल एवं तालाबन्दी के अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
79. घरना के लक्षण, कारण एवं प्रकारों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
80. घेराव से क्या आशय है?

O

Scanned with CamScanner

अध्याय-5

व्यावसायिक नीतिशास्त्र

(Business Ethics)

* *व्यावसायिक नीति शास्त्र की संकल्पना, व्यवसायिक नीति राष्ट्र संहिता की आवश्यकता, व्यावसायिक निकाय एवं उनकी भूमिका।*

व्यावसायिक आचार नीति

'एथिक्स' शब्द ग्रीक भाषा के शब्द 'ऐथोस' से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ रीति या आदत होता है। दर्शन नैतिकता ही जीवन जीने का सर्वोत्तम तरीका है और इस तरह की क्रियाएँ, किसी भी स्थिति में स्वीकार्य हैं या स्वीकार्य नहीं है।

5.1 आचार नीति, विचार संकल्पना

कोई भी व्यक्ति जो किसी भी व्यवसाय में हैं, किसी भी संस्था में है, किसी भी नौकरी में है या किसी भी उद्यम में हैं, वह आचार नीति से सम्बन्ध रखता है।

किसी भी अच्छी या बुरी समस्या को अनुशासन में रहकर सुलझाना, अपने नैतिक कर्त्तव्यों का पालन करना'' भी आचार नीति की परिभाषा है। आचार नीति निम्न तरीकों से वर्गीकृत की जा सकती है—

(अ) व्यक्तिगत आचार नीति—''नियम जिनके अनुसार कोई व्यक्ति अपना व्यक्तिगत जीवनयापन करता है।'' इस सम्बन्ध में व्यक्तिगत आचार नीति का उल्लेख होता है।

(ब) खाता गणना आचार नीति—''आचार संहिता जो खाता गणना के व्यावसायिक व्यवहार का मार्गदर्शक होता है।'' इस सम्बन्ध में खाता गणना आचार नीति का उल्लेख होता है।

(स) व्यावसायिक आचार नीति—इसका सम्बन्ध सच्चाई तथा न्याय से है। इसका सम्बन्ध समाज की आशाओं के दृष्टिकोण से है, न्यायसंगत मुकाबले से है, सही प्रचार से है, सामाजिक उत्तरदायित्व से है, उपभोक्ता स्वतन्त्रता से है तथा निगम विषयक के व्यवहार और सामाजिक सम्बन्ध से भी सम्बन्धित है।

अनुशासन	से सम्बन्धित है	विभाग
व्यावसायिक आचार नीति	⟹	नैतिकता व्यवस्था का व्यवहार सामाजिक उत्तरदायित्व बराबरी का मुकाबला सामाजिक आशाएँ सामाजिक सम्बन्ध निगम विषयक के व्यवहार उपभोक्ता स्वतन्त्रता सही प्रचार-प्रसार

Scanned with CamScanner

5.2 व्यावसायिक आचार नीति संहिता की आवश्यकता

एक संकेतावली, नीतियों का, सिद्धान्तों का या नियमों का कथन होता है जो व्यावहारिक मार्गदर्शक है। सभी व्यवसायों में व्यवसाय के प्रति, ग्राहक के प्रति, समाज के प्रति तथा सरकार के प्रति नैतिक जिम्मेदारियाँ होनी चाहिएँ। नियमानुसार व्यावसायिक व्यवहार, एक स्वस्थ व्यावसायिक वातावरण का अवसर प्रदान करता है। सामान्यत: व्यावसायिक आचार नीति में कोई भी न्यायसंगत नियम नहीं है परन्तु कुछ संस्थाओं ने इसका पालन करना अनिवार्य कर दिया है।

व्यावसायिक आचार नीति के लिए नियम बनाने के लिए निम्न आवश्यक हैं—

1. अनुचित व्यवहार को रोकना।
2. विश्वास का वातावरण तैयार करना।
3. ईमानदारी से वचन पूरा करना।
4. व्यवसाय में मूल्य वृद्धि।
5. गैर-कानूनी कार्य पर नियन्त्रण।
6. अनाधिकार प्रवेश करने वालों को अर्थपूर्ण तरीके से दण्डित करना।
7. व्यवसाय की निष्ठा बनाये रखना।
8. भ्रष्टाचार होने पर उसे सामने लाना।
9. प्रभावी/अच्छे प्रबन्ध हेतु पथ-प्रदर्शक।
10. कर्मचारियों को उनसे अपेक्षाओं से अवगत कराना।
11. व्यावसायिक व्यवहार में अनिश्चितताओं को कम करना।
12. आचार नीति के विरुद्ध व्यवसाय को दोषी ठहराना।

5.3 व्यावसायिक समुदाय एवं उनके कार्य

विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक समुदाय, कई व्यवसायों में व्यस्त हैं। उसमें से कुछ हैं—

1. पेशेवर अभियन्ता के लिए नैतिकता के नियम—व्यावसायिक अभियन्ता, व्यावहारिक अनुप्रयोग व्यवसाय में व्यस्त हैं। वे समाज में रहने वाले सभी व्यक्तियों के जीवन के स्तर को तथा अर्थव्यवस्था के क्षेत्र के स्तर को, दोनों को ही प्रभावित करते हैं। इसलिए नैतिकता व्यवसाय के नैतिक मूलय का आधारभूत है।

सभी व्यावसायिक अभियन्ताओं के लिए यह आवश्यक है कि वे दिए गए व्यवसाय तथा व्यक्तिगत व्यवहार का पालन करें।

अनुच्छेद (1) सामाजिक जिम्मेदारियाँ

(i) अभियन्ता को जमीन से जुड़े कानूनों का पालन करना चाहिए, स्थानीय प्रथाओं का सम्मान करना चाहिए। मानवाधिकारों का सम्मान करना चाहिए तथा सार्वजनिक सम्पत्ति की सुरक्षा का ध्यान रखना चाहिए।

(ii) अभियन्ताओं को सभी व्यक्तियों को एकसमान सम्मान देना चाहिए चाहे वे किसी भी धर्म, जाति या लिंग से सम्बन्ध रखते हों।

(iii) अभियन्ताओं को स्वस्थ, साफ एवं स्वच्छ वातावरण को बनाये रखना चाहिए।

(iv) अभियन्ताओं को लोगों की सुरक्षा, स्वास्थ्य तथा कल्याण को सुनिश्चित करना चाहिए।

अनुच्छेद (2)

(i) अभियन्ताओं को कार्य में निपुणता तथा विकास और उन्नति को जारी रखना चाहिए।

(ii) अभियन्ताओं को अपने विभाग में ही कार्य-कौशल का प्रदर्शन करना चाहिए।

(iii) उन्हें कार्य करने के लिए सही तथा न्यायसंगत तरीके का सहारा लेना चाहिए।

(iv) उन्हें उसी योजना को मान्यता देनी चाहिए जो सुरक्षित तथा मितव्ययी हो।

Scanned with CamScanner

अनुच्छेद (3)

(i) अभियन्ताओं की व्यावसायिक व्यापार में सच्चाई तथा पारदर्शिता बनाये रखना चाहिए।
(ii) उन्हें अस्वस्थ मुकाबलों में व्यस्त नहीं होना चाहिए।
(iii) उन्हें स्वस्थ व्यावसायिक राय देनी चाहिए। गलत कार्य का विरोध करना चाहिए।
(iv) उन्हें अपने नियोक्ता तथा मुवक्किल को अपने कार्य के विकास से अवगत कराना चाहिए।
(v) उन्हें अपने नियोक्ता का विश्वासपात्र बनना चाहिए।
(vi) उन्हें नियोक्ता के राज को गोपनीय बनाये रखना चाहिए।

2. भारत में परिचारिका के लिए नैतिकता के नियम

(अ) नैतिकता के नियम

(i) व्यक्तिगत देखरेख का सम्मान करना।
(ii) उन्हें व्यक्ति के व्यक्तिगत अधिकारों का सम्मान करना चाहिए।
(iii) उन्हें व्यक्ति की गोपनीयता का सम्मान करना चाहिए।
(iv) परिचर्या पंजीकृत परिचारिका द्वारा ही किया जाना चाहिए।
(v) उन्हें आचार नैतिक, कानूनी तथा व्यावसायिक दायरों में रहकर, अभ्यास करना चाहिए।
(vi) उन्हें व्यक्तिगत तथा व्यावसायिक शिष्टाचार का प्रदर्शन करना चाहिए।

(ब) भूमिका

(i) व्यावसायिक दायित्व एवं जवाबदेयता।
(ii) उन्हें मानवता के मूल्यों का सम्मान करना चाहिए।
(iii) उन्हें शोध कार्यों में भाग लेना चाहिए।
(iv) उन्हें व्यक्ति तथा उसके परिवार वालों से व्यक्तिगत रिश्तों को बनाना चाहिए तथा उसे बरकरार रखना चाहिए।
(v) उन्हें परिचर्या अभ्यास के नियमानुसार करना चाहिए।
(vi) उन्हें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उपलब्ध संसाधनों का सही उपयोग हो रहा है।
(vii) उन्हें व्यावसायिक विकास को बनाये रखना चाहिए।

(स) अखिल भारतीय प्रबन्धन संघ

अ० भ० प्र० स० की स्थापना सन् 1957 में हुई थी। इसके स्थानीय प्रबन्धन संघों की संख्या 64 है जिनमें से दो संगठित स्० प्र० स० हैं। पहला कतार भारतीय प्रबन्धन संघ है और दूसरा मॉरिटियस भारतीय प्रबन्धन संघ है। इसका सम्पर्क 3,000 संस्थाओं से तथा 30,000 व्यवसायियों से या तो सीधे हैं या सूत्रों के द्वारा है। अखिल भारतीय प्रबन्धन संघ ने व्यवहार की संकेतावली का स्पष्टीकरण किया है; व्यावसायिक प्रबन्धकों के लिए। संघ के सभी सदस्यों को दी गई संकेतावली का पालन, व्यावसायिक नैतिकता के कारण करना अनिवार्य है। संकेतावली, कुछ इस प्रकार है—

(i) सदस्य अपने व्यक्तिगत फायदों के लिए अपने अधिकारों का प्रयोग न करें।
(ii) उन्हें दिए गए संसाधनों को संगठित करें और उसका अनुकूल प्रयोग करें।
(iii) उन्हें प्रबन्धन से सम्बन्धित भारतीय कानून का पालन करना अनिवार्य है।
(iv) सदस्य अपने अच्छे व्यवहार से संस्था के गौरव को बनाये रखेंगे।

(द) अन्य व्यावसायिक समितियाँ

अन्य व्यावसायिक समितियाँ जैसे—भारतीय चिकित्सा संगठन, बार काउन्सिल ऑफ इण्डिया भी व्यावसायिक समितियाँ हैं। इन्होंने अपने नैतिकशास्त्रों तथा भूमिका का स्पष्टीकरण, अपने मुवक्किलों की सेवा बेहतर तरीके से करने के लिए किया है।

Scanned with CamScanner

प्रश्नावली

(i) "व्यावसायिक आचार नीति" के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए। व्यक्तिगत आचार नीति और व्यावसायिक आचार नीति में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

(ii) व्यावसायिक आचार नीति के लिए क्या आवश्यक है?

(iii) व्यावसायिक समितियों की भूमिका का व्याख्यान आचार नीति के नियमों के सन्दर्भ में कीजिए।

(iv) संक्षेप में लिखिए—

(अ) व्यावसायिक अभियन्ता के लिए आचार नीति के नियम।

(ब) अ० भ० प्र० स० के लिए आचार नीति के नियम।

(स) परिचारिकाओं के लिए आचार नीति के नियम।

Scanned with CamScanner

अध्याय-6

विक्रय एवं विपणन प्रबन्ध

(Selling and Distribution Management)

* *विक्रय विभाग के कार्य एवं दायित्व, विक्रय-पूर्वानुमान, विक्रय संवर्द्धन, विज्ञापन विक्रय पश्चात् सेवायें, विपणन के सिद्धान्त, विपणन की समस्यायें, मूल्य नीति, सम-विच्छेद विश्लेषण, वितरण श्रृंखलाएँ एवं विपणन की पद्धतियाँ।*

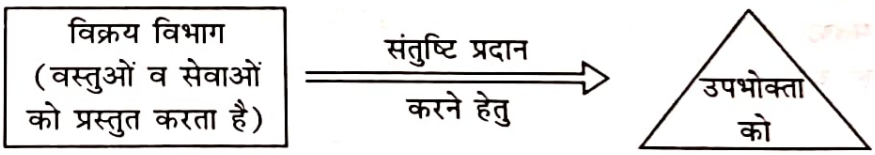
6.1 विक्रय विभाग के कार्य व कर्त्तव्य

विक्रय विभाग किसी भी व्यापारिक संगठन की सफलता की धुरी होता है। विक्रय विपणन का एक प्रमुख भाग है। विक्रय विभाग उस सेतु की भाँति कार्य करता है जो सम्भावित क्रेताओं की आवश्यकताओं तथा संगठन द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले उत्पादों एवं सेवाओं के मध्य की रिक्तता को पाटता है। वस्तुत: किसी संगठन की सफलता काफी हद तक विक्रय विभाग के निष्पादन पर निर्भर करती है।

अन्य शब्दों में, विक्रय विभाग को संगठन रूपी रेलगाड़ी का इंजन कहना अतिशयोक्ति न होगी।

विक्रय विभाग में कार्यरत कर्मचारियों/कार्मिकों को **विक्रय-बल** कहा जाता है। ये प्रत्यक्षत: उपभोक्ताओं से जुड़े रहते हैं। अत: ये उपभोक्तओं की आवश्यकताओं, माँगों, रुचियों आदि को भली-भाँति जानते व समझते हैं तथा इस प्रकार जब वे इनकी सूचना से संगठन को अवगत कराते हैं तो संगठन को उपभोक्ताओं की रुचियों, आवश्यकताओं के अनुसार वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन में सहायता मिलती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विक्रयकर्त्ता/विक्रय बल संगठन के नाक, कान व आँखें होते हैं।



विक्रय-विभाग के अन्तर्गत अवस्थित पदों को निम्न फ्लो चार्ट से समझा जा सकता है—

महा (सामान्य) विक्रय-प्रबन्धक (महाप्रबन्धक-विक्रय)

↓

सहायक विक्रय प्रबन्धक

↓

क्षेत्रीय विक्रय प्रबन्धक

↓

विक्रय अधिकारी

↓

Scanned with CamScanner

विक्रय पर्यवेक्षक
सहायक विक्रय-पर्यवेक्षक
↓
विक्रयकर्त्ता

विक्रय विभाग के कार्य

विक्रय-विभाग के सम्पूर्ण कार्यों को तीन प्रमुख वर्गों में वगीकृत किया जा सकता है—

प्रशासकीय कार्य	प्रबन्धकीय कार्य	परिचालन सम्बन्धी कार्य
विक्रय नीतियाँ एवं रणनीतियाँ	भर्ती, चयन एवं प्रशिक्षण	लक्ष्य, कोटा उपलब्धि/प्राप्ति
विक्रय नियोजन व कार्यक्रम	विक्रय अनुपात एवं विक्रय क्षेत्रों का निश्चयन	प्रतिवेदनीकरण
अभिप्रेरणात्मक योजनायें	अभिप्रेरण, संदेशवाहन एवं नेतृत्व	उपभोक्ताओं से सम्बन्ध बनाना
(डीलर) वितरक सम्बन्ध	विक्रय संवर्धन कार्यक्रमों का समन्वय	आपूर्ति की सुनिश्चितता
लागत नियन्त्रण	बाजार शोध	भौतिक वितरण एवं भण्डारण
निष्पादन मूल्यांकन	ग्राहक-परिवेदना निवारण	परिवाद एवं उपभोक्ता
	विक्रयकर्त्ता परामर्श कार्यक्रम	परिवेदना का निस्तारण
	सावधिक पुनरीक्षण	प्रतिस्पर्द्धी सूचना
	अनुगमन क्रिया	मुख प्रचार
		विक्रय की समाप्ति

(अ) प्रशासकीय कार्य

विक्रय विभाग के प्रशासकीय कार्यों के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्यों को सम्मिलित किया जाता है—

(i) विक्रय नीतियाँ एवं रणनीतियाँ—एक विक्रय नीति में निम्नांकित को सम्मिलित किया जा सकता है—
विक्रय किये जाने वाले उत्पादों का प्रकार

- ग्राहक-वर्णन (रूपरेखा)
- ब्रांडिंग एवं संवेष्ठन नीति
- वितरण शृंखला का चयन
- उत्पाद मूल्य
- उत्पाद संवर्धन
- विक्रय रणनीतियाँ
- उत्पाद वैशिष्टय (लक्षण)
- उपभोक्ता अपेक्षायें
- प्रतिस्पर्द्धा की दृष्टिगत रणनीतियाँ

(ii) विक्रय योजना एवं कार्य—विक्रय योजना, विक्रय पूर्वानुमान, विक्रय बजट को समाहित करता है जो विक्रय उद्देश्यों/लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

(iii) अभिप्रेरणा—यह विभिन्न प्रकार की विक्रय गतिविधियों यथा—संवर्द्धन, उपहार, कमीशन, प्रतिस्पर्द्धा को समाहित करता है।

Scanned with CamScanner

(iv) वितरक सम्बन्ध—इसके अन्तर्गत संगठन अपने वितरकों, विक्रेताओं से अच्छे सम्बन्ध बनाने व बनाये रखने के प्रयासों में सजगता एवं नियमितता लाने का प्रयास करता है।

(v) लागत नियन्त्रण—व्यापार में लाभार्जन मुख्यत: दो विधियों से सम्भव होता है—

- मूल्य-वृद्धि;
- लागत में कमी (लागत-नियन्त्रण)

इस सन्दर्भ में ध्यातव्य है कि विक्रय गतिविधियों यथा संवर्द्धन, कमीशन इत्यादि पर किया जाने वाला व्यय इनसे प्राप्त प्रत्ययों से अधिक कदापि नहीं होना चाहिए, वरन् यह विक्रय गतिविधियों के व्ययों से बढ़ने वाली लागत को न्यून करने में सहायक होना चाहिए।

(vi) निष्पादन मूल्यांकन—कर्मचारियों की कार्यक्षमता को भली-भाँति जानने-परखने हेतु विक्रय विभाग को समय-समय पर निष्पादन मूल्यांकन की विधियों, प्रणालियों को विकसित एवं लागू करते रहना चाहिए। साथ ही निष्पादन में सुधार हेतु आवश्यक उपायों को भी प्रदान करना चाहिए जिससे कर्मचारी (जो कि मानक स्तर से निम्न निष्पादन करते हों) अपने प्रदर्शन को सुधारने में सहायता पायें तथा संगठन में अपना अधिकतम योगदान कर सकें। सामयिक समीक्षा (पुनरीक्षण) कोटा उपलब्धि, विशिष्ट उपलब्धि, आदि कतिपय प्रमुख विधियाँ हैं, जो निष्पादन सुधार हेतु प्रयुक्त होती हैं।

(ब) प्रबन्धकीय कार्य

(i) भर्ती, चयन एवं प्रशिक्षण—विक्रय विभाग को कार्मिकों के चयन हेतु वैज्ञानिक रीति का अनुसरण करना चाहिए। इस हेतु विभाग को भर्ती हेतु प्रयुक्त प्रमुख स्रोतों यथा विज्ञापन, परिसर-साक्षात्कार विधि, सेवायोजन केन्द्रों से सम्पर्क आदि की रीति अपनानी चाहिए तथा प्रभावी रीति से पद-स्थापन करना चाहिए। तदोपरान्त चयनित कार्मिकों के समुचित प्रशिक्षण का भी प्रबन्ध करना चाहिए।

(ii) विक्रय कोटा एवं विक्रय क्षेत्र का निर्धारण—प्रत्येक विक्रयकर्त्ता का विक्रय कोटा तथा विक्रय क्षेत्र विक्रय विभाग द्वारा पूर्व निश्चित किया जाना चाहिए। इससे जहाँ एक ओर विक्रयकर्त्ताओं के मध्य क्षेत्र सम्बन्धी उत्तरदायित्व के निश्चयन में सहायता प्राप्त होती है वहीं सामयिक पुनरीक्षण/समीक्षा के समय कार्मिकों के निष्पादन का मूल्यांकन भी सरलतापूर्वक एवं प्रभावी ढंग से किया जा सकता है।

(iii) अभिप्रेरण, संप्रेषण एवं नेतृत्व—कर्मचारियों के श्रेष्ठतम ढंग से कार्य करने हेतु यह आवश्यक है कि विक्रय विभाग इन कार्मिकों को समय-समय पर अभिप्रेरित कर संगठन की सफलता में उनके प्रभावी योगदान हेतु प्रेरित करे। संचार की भूमिका संगठन की सफलता में असंदिग्ध है। अत: विक्रय विभाग को संगठन/विभाग में कार्यरत कार्मिकों के साथ प्रभावी संप्रेषण स्थापित करना चाहिए। कुशल नेतृत्व के द्वारा विक्रय विभाग अपने कार्मिकों को संगठन के पूर्व-निर्धारित लक्ष्यों को प्रभावी एवं दक्षतापूर्वक प्राप्त करने हेतु निर्देशित कर सकते हैं। अत: अभिप्रेरण, संप्रेरण एवं नेतृत्व का कुशलतम रीति से प्रयोग किया जाना चाहिए।

(iv) विक्रय-संवर्द्धन कार्यक्रमों में समन्वय—संगठन एवं विक्रय विभाग समय-समय पर विभिन्न प्रकार के संवर्द्धन कार्यक्रम अपनाकर ग्राहकों को आकर्षित करने, उन्हें क्रय हेतु प्रेरित करने तथा अपने प्रतिस्पर्द्धा विक्रेताओं से बढ़त लेने का प्रयास करते हैं। इस संदर्भ में यह आवश्यक है कि समस्त संवर्द्धन कार्यक्रमों, यथा व्यापारिक विक्रय संवर्द्धन, उपभोक्ता विक्रय संवर्द्धन तथा विक्रय बल विक्रय संवर्द्धन के मध्य प्रभावी समन्वय स्थापित हो।

(v) बाजार शोध—बाजार शोध के द्वारा ग्राहकों, प्रतिस्पर्धी विक्रेताओं, मध्यस्थों तथा अन्य सम्बन्धित पक्षकारों के संदर्भ में सूचनाएँ एकत्र की जाती हैं, जिनका उपयोग वस्तु/सेवा के निर्माण व वितरण में कर के संगठन लाभ अर्जन कर सकती है तथा ग्राहकों को संगठन के प्रति निष्ठ बने रहने को प्रेरित कर सकती है।

(vi) उपभोक्ता परिवाद/परिवेदना निस्तारण—"एक प्रसन्न/सन्तुष्ट उपभोक्ता मात्र एक अन्य उपभोक्ता जोड़ेगा, किन्तु एक अप्रसन्न/खिन्न/असन्तुष्ट उपभोक्ता सौ (100) उपभोक्ताओं को तोड़ेगा।" यह महज एक कहावत नहीं वरन् 'उपभोक्ता राजा होता है' की प्रतिस्थापित मान्यता को पुष्ट करने वाला महावाक्य है, जिसे प्रत्येक संगठन को अपना महामन्त्र एवं व्यवसाय का आधार वाक्य मान कर आत्मसात करना चाहिए।

Scanned with CamScanner

ग्राहक **परिवाद** एवं **परिवेदना** महज ग्राहक के असन्तुष्ट होने का संकेत भर नहीं है, वरन् ये तो आगत हैं, जिन्हें प्रभावी ढंग से समाधान कर संगठन इन्हें अपना चिर-स्थायी, निष्ठ ग्राहक बना सकता है। अत: प्रत्येक विभाग को ग्राहकों की परिवेदनाओं का यथाशीघ्र एवं उचित समाधान करने हेतु एक **प्रकोष्ठ** स्थापित करना चाहिए जो उपरोक्त का त्वरित समाधान करने में सक्षम होना चाहिए।

(vii) सामयिक पुनरीक्षण—विक्रयकर्त्ताओं के कार्य-निष्पादन का समय-समय पर पुनरीक्षण विक्रय विभाग के प्रबन्धकों/अधिकारियों द्वारा करते रहना चाहिए। इससे संगठन को अपने लक्ष्य को प्रभावी ढंग से प्राप्त करने में सहायता होगी तथा कार्मिक को यथाप्रदर्शन पुरस्कार अथवा दण्ड प्रदान किया जा सकेगा। इससे कर्मचारियों को यदि व्यावहारिक रूप में आ रही शारीरिक, मनोवैज्ञानिक समस्याओं को भी जानने एवं दूर करने में सहायता मिलेगी। भावी गतिविधियों की सूचना भी सम्बन्धित कार्मिकों को प्रदान की जानी चाहिए।

(viii) अनुगमन क्रिया—समीक्षोपरान्त यदि आवश्यक हो तो नवीन योजना अथवा संशोधित/परिवर्तित योजनाओं का क्रियान्वयन किया जाना चाहिए।

(c) परिचालन संक्रियायें—परिचालन संक्रियाओं से तात्पर्य उन क्रियाओं से हो जो विक्रयकर्त्ता/विक्रयकर्त्ताओं द्वारा क्षेत्र/कार्य स्थल में सम्पादित की जाती हैं। इसके अन्तर्गत विक्रयकर्त्ता सम्भावित क्रेता से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करता है, उन्हें संगठन द्वारा उत्पादित वस्तुएँ एवं सेवाएँ प्रस्तुत करता है, माँग अनुसार उन्हें वितरित करता है। अन्य माँग (यदि कोई हो) को लिखता है तथा इस प्रकार विक्रय कार्य को सम्पादित करता है।

परिचालन के अन्तर्गत विक्रयकर्त्ता निम्नलिखित क्रियाओं को सम्पादित करता है—

(क) कोटा/लक्ष्य प्राप्त करना,

(ख) वरिष्ठ को प्रतिवेदन देना/सूचना देना,

(ग) संभावित क्रेताओं से सम्पर्क स्थापन,

(घ) वितरण को सुनिश्चित करना,

(ङ) भण्डारण सुविधा,

(च) उपभोक्ता परिवाद/परिवेदना का समाधान,

(छ) प्रतिस्पर्द्धी सूचनाओं का संग्रहण/एकत्रीकरण,

(ज) संगठन तथा उत्पाद का मुख वर्णन/मौखिक प्रचार,

(झ) विक्रय कार्य का सम्पादन।

विक्रय-विभाग के कर्त्तव्य

विक्रय-विभाग के कर्त्तव्यों को निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है—

(i) लक्ष्य निर्धारण—विक्रय-विभाग का यह दायित्व होता है कि वह प्रत्येक विक्रयकर्त्ता के व्यक्तिगत विक्रय लक्ष्य को निश्चित करे। विक्रय-विभाग उस कोटा (मात्रा) का भी निर्धारण करता है जो प्राप्त किया जाना है। इस हेतु विक्रय-विभाग पूर्व विक्रय आँकड़ों तथा भावी विक्रय आकलनों का प्रयोग करता है।

(ii) विक्रय-परियोजना—विक्रय के पूर्व-निधारित लक्ष्यों की प्राप्ति सुनिश्चित करने हेतु यह आवश्यक है कि इस हेतु आवश्यक समस्त क्रियाओं, गतिविधियों को उचित रीति से क्रियान्वित किया जाये। विक्रय-विभाग का यह कर्त्तव्य है कि वह विक्रय-योजना, विक्रय-नीतियाँ, विक्रय कार्यक्रमों तथा प्रत्येक वर्ष के विक्रय बजट को निर्धारित करे।

(iii) उत्पाद एवं मूल्य निर्धारण नियोजन—विक्रय-विभाग क्रेताओं, ग्राहकों से प्रत्यक्षत: जुड़ा रहता है। अत: क्रेताओं, ग्राहकों की माँगों, आवश्यकताओं, रुचियों के विषय में भली-भाँति जानकारी रखता है। ग्राहक क्या चाहता है? किस मूल्य पर चाहता है? कितनी मात्रा चाहता है? ये समस्त सूचनाएँ विक्रयकर्त्ता दर्ज करता है, तद्नुसार विक्रय-विभाग सम्बन्धित उत्पाद की प्रकृति, मूल्य तथा मात्रा निर्धारित करती है तथा ग्राहकों को प्रस्तुत करती है।

Scanned with CamScanner

(iv) सौदागरी—'उचित उत्पाद उचित समय पर उचित मात्रा में तथा उचित मूल्य पर' इसे ही **सौदागरी** कहते हैं। अर्थात् जो, जब, जैसा, जितना तथा जितने मूल्य पर ग्राहक चाहता है उसे वैसे ही प्रस्तुत करना चाहिए यही सौदागरी कहलाती है।

(v) बाजार-शोध (विपणि-शोध)—विक्रय एक गतिशील क्रिया है। अतः विक्रय-विभाग को सदैव इस हेतु सतर्क रहना चाहिए कि बाजार की भावी सम्भावनाएँ, दशा, दिशा क्या हो सकती है। सम्बन्धित क्षेत्र में संगठन द्वारा निर्मित उत्पाद की सम्भावना ज्ञात करने हेतु विक्रय-विभाग का यह कर्त्तव्य है कि वह समय-समय पर विक्रय-शोध संचालित करे जिससे उपरोक्त आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त की जा सकें। विक्रय-विभाग का यह भी दायित्व है कि वह नये क्षेत्रों, नये ग्राहकों की खोज करे तथा क्षेत्र की विविधता की थाह ले।

(vi) विक्रय-बजट—विक्रय-विभाग का यह दायित्व है कि वह विक्रय-बजट को निर्मित करे। विक्रय-बजट के निर्माण हेतु आय एवं व्ययों (विक्रय-कर्त्ताओं का वेतन, उनके यात्रा-व्यय, संवर्द्धन-व्ययों आदि) को ध्यान में रखा जाता है।

(vii) वितरण-शृंखलाओं का चयन—उत्पाद/सेवाओं की निर्बाध एवं समयानुसार आपूर्ति में वितरण-शृंखलाओं की भूमिका अति प्रमुख है। विक्रय-विभाग का यह कर्त्तव्य है कि उत्पादित वस्तुएँ/सेवाएँ ग्राहकों तक समय पर पहुँचे। इस हेतु विक्रय-विभाग उचित वितरण-शृंखला का चयन करे जिससे वितरण-शृंखला के प्रत्येक चरण पर वस्तुओं/सेवाओं की आपूर्ति, पर्याप्तता निर्बाध रूप से हो सके।

(viii) विक्रय-बल का प्रबन्धन—विक्रय-कर्त्ताओं के भर्ती, चयन, प्रशिक्षण, पारिश्रमिक, पदोन्नति, अभिप्रेरण, निर्देशन, पर्यवेक्षक तथा नियन्त्रण का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व विक्रय-विभाग का होता है। अन्य शब्दों में विक्रय की समस्त गतिविधियों के नियन्त्रण का गुरुतर दायित्व विक्रय-विभाग का होता है। विक्रय-कर्त्ताओं का विक्रय कोटा निर्धारण भी विक्रय-विभाग का कर्त्तव्य है।

(ix) विक्रय-संवर्द्धन—प्रत्येक वह कार्य जो विक्रय में वृद्धि हेतु आवश्यक हो उसका संपादन विक्रय-विभाग का दायित्व है। इस हेतु आवश्यक संवर्द्धन गतिविधियों यथा विक्रय-संवर्द्धन, विज्ञापन, प्रचार, व्यक्तिगत विक्रय आदि को संचालित एवं संपादित करना विक्रय विभाग का कर्त्तव्य है।

(x) परिवाद निस्तारण—एक परिवेदना/शिकायत का समय पर निस्तारण कई अन्य ग्राहकों को संगठन से जोड़ने में सहायक होता है। शिकायतों का समय पर निस्तारण विक्रय-विभाग के प्रमुख दायित्वों में से एक है। इसके द्वारा संगठन उपभोक्ताओं को सन्तुष्टि प्रदान करने के साथ-साथ उन्हें संगठन से जोड़े भी रखता है। वर्तमान में स्थापित संगठनों में इस हेतु एक विशेष प्रकोष्ठ स्थापित होती है।

अन्य कर्त्तव्य

(xi) विक्रय-सभाओं का प्रबन्ध,
(xii) विक्रय-अभिलेखों को रखना,
(xiii) अन्य विभागों से समन्वय स्थापन,
(xiv) विक्रय निष्पादनों का मूल्यांकन।

6.2 विक्रय पूर्वानुमान (Selling Forecasting)

"विक्रय पूर्वानुमान भविष्य की बिक्री का आकलन करने की प्रक्रिया है।"

(अवधारणा/विचार/प्रत्यय)

विक्रय पूर्वानुमान विपणन प्रबन्धन का महत्वपूर्ण (निर्णायक) क्षेत्र है। विक्रय पूर्वानुमान समय-समय पर विक्रय का एक अनुमान है। यह विपणन मिश्रण का आधार बन जाता है। विपणन के चार अंग हैं—

1. उत्पाद की अवधारणा
2. मूल्य की अवधारणा
3. जगह की अवधारणा
4. पदोन्नति और विक्रय योजना की अवधारणा

Scanned with CamScanner

निम्नलिखित क्षेत्र विक्रय पूर्वानुमान के लिए माना जाता है—

कम्पनी का पूर्व विक्रय, वर्तमान रुझान, बाजार प्रतिस्पर्धा, ग्राहक स्वाद और उपसर्ग, प्रौद्योगिकी में बदलाव और बाजार के विस्तार की भविष्य की संभावना।

विक्रय पूर्वानुमान के आधार पर निम्नलिखित लाभ और निर्णय लिए जा सकते हैं—

1. विक्रयकर्त्ताओं की संख्या की आवश्यकता
2. विक्रय क्षेत्र का निर्धारण
3. प्रत्येक विक्रयकर्त्ता का कोटा निर्धारण
4. विक्रय संवर्द्धन एवं विज्ञापन की योजना बनाना
5. विक्रय शक्ति का परिश्रमिक
6. वितरण माधिकाओं का चुनाव
7. प्रतिस्पर्धी/प्रतियोगी शक्ति का मूल्यांकन
8. बाजार आकार का मूल्यांकन
9. कुल बाजार अंश का निर्धारण
10. विक्रय मूल्य नियत करना
11. कम्पनी की सम्भावना/ख्याति बनाए रखना

विक्रय पूर्वानुमान के प्रकार—विक्रय पूर्वानुमान दो प्रकार के हो सकते हैं—

(a) लघु अवधि विक्रय पूर्वानुमान—यह एक वर्ष के लिए है। इसमें विक्रय बजट, नकद का अन्तर्वाह एवं बहिर्वाह और विक्रय आय/राजस्व शामिल हैं।

(b) दीर्घ अवधि विक्रय पूर्वानुमान—यह 5 साल या उससे अधिक की अवधि के लिए है। इसमें व्यापार की लम्बी अवधि के प्रभाव को कवर किया जाता है जैसे कि उत्पादन की जरूरत, वितरण प्रवाह आदि।

विक्रय पूर्वानुमान की पद्धतियाँ/तरीके—एक व्यापार उद्यम-विनिर्माण कम्पनी या एक ट्रेडिंग कम्पनी हो सकती है। दोनों मामलों में पूर्वानुमान की मांग पहला कदम है। उत्पादन के लिए नियोजन या बाजार में विक्रय के लिए नियोजन।

बाजार में विक्रय के लिए नियोजन के निम्नलिखित तरीके विक्रय पूर्वानुमान के महत्वपूर्ण हैं—

1. कार्यकारी निर्णय—यह विक्रय पूर्वानुमान का एक प्रभावी तरीका है। यह पिछले प्रदर्शन, अंतर्दृष्टि प्राप्त और अधिकारियों की राय पर आधारित होती है। यह तरीका प्रभावी है जब बाजार स्थिर होता है। इस पद्धति के दो लोकहित रूप हैं—(1) विक्रय शक्ति मिश्रित पद्धति (2) कार्यकारी पंच विचार मत हालांकि इस विधि में कठिनाई होती है जब बाजार में अस्थिरता/उतार-चढ़ाव होती है।

2. सर्वेक्षण—विक्रय पूर्वानुमान का यह तरीका ग्राहकों, विक्रय शक्ति, विशेषज्ञ आदि के सर्वेक्षण और पूर्वानुमानों पर आधारित होता है और पूर्वानुमान को सुनिश्चित करता है। सर्वेक्षण निम्नलिखित तरीकों से आयोजित किया जा सकता है—

(a) उपभोक्ता सर्वेक्षण ग्राहक/उपभोक्ता सर्वेक्षण उन उत्पादों के प्रकार और मात्रा से सम्बन्धित जानकारी प्रदान कर सकता है जिसको वे खरीदना चाहते हैं।

(b) विक्रय शक्ति सर्वेक्षण कुल क्षेत्रीय क्षेत्र की माँग का, कम्पनी के हितों का और प्रतिस्पर्धाकर्त्ताओं के हिस्से का अनुमान प्रदान कर सकता है।

(c) विक्रेता सर्वेक्षण उत्पाद का दायरा भी प्रदान कर सकता है।

3. समय श्रृंखला विशेषण—यह भविष्य की बिक्री के गणितीय प्रक्षेपण का एक सामान्य दृष्टिकोण है। पिछले विक्रय विवरण का उपयोग करते हुए, वर्षों की संख्या की बिक्री की मात्रा का पता चलता है। समय श्रृंखला विश्लेषण पिछले विक्रय के साथ जुड़ी हुई मौसमी, चक्रीय और यादृच्छिक व्याख्या परिवर्तन की प्रवृत्ति का पता लगाने में सहायता करता है। समय श्रृंखला विश्लेषण की कुछ महत्वपूर्ण तकनीकें—चलता औसत, समय श्रृंखला बाह्य गणन, घातांक समरेखन।

Scanned with CamScanner

4. बाजार परीक्षण—एक बाजार पूर्वानुमान विकसित करने के लिए बाजार परीक्षणों का उपयोग किया जाता है। यह आमतौर पर नए उत्पाद से सम्बन्धित होता है। एक बाजार परीक्षण ग्राहक के वास्तविक खरीदारियों के बारे में विवरण प्रदान करता है। उत्पाद, मूल्य और सन्तुष्टि के प्रति उनकी प्रतिक्रिया नोट की जाती है और उत्पाद विक्रय पूर्वानुमान तैयार होता है।

5. सह-सम्बन्ध एवं प्रतिगमन विधि—यह पद्धति पूर्व विक्रयों तथा एक या अधिक घटकों के सम्बन्धों पर आधारित है। क्रय-संख्या, प्रति-व्यक्ति आय, या सकल राष्ट्रीय उत्पाद आदि कतिपय घटक हैं, जो इस हेतु आधार का कार्य करते हैं। यह निर्धारित किया जाता है कि पूर्व-विक्रय तथा फर्म के आर्थिक चरों, तुलनात्मक अथवा आन्तरिक, में परिवर्तनों में कोई सम्बन्ध है अथवा नहीं। अन्य विधियों की तुलना में इस विधि का प्रयोग उत्तम है। अन्य आधुनिक (नवीनतम) पद्धतियों के अन्तर्गत अर्थमितीय मॉडल, आगत-निर्गत मॉडल तथा जीवन-चक्र विश्लेषण मॉडल आते हैं।

विक्रय-संवर्धन—विपणन के क्षेत्र में संवर्द्धन एक प्रमुख पहलू है। यह संगठन के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। प्रमुख संवर्द्धन विधियाँ, (a) विज्ञापन, (b) प्रचार, (c) विक्रय-संवर्द्धन तथा (d) व्यक्तिगत विक्रय है। ये सभी प्रत्ययकारी (प्रेरक) विपणन से सम्बन्धित हैं।

फिलिप कोटलर के अनुसार, "विज्ञापन क्रय करने के कारण प्रदान करता है तथा विक्रय-संवर्द्धन क्रय हेतु प्रेरक प्रस्तावित करता है।"

ए० एच० आर० डेलहैस के अनुसार, "कोई कदम जो विक्रय त्वरित ढंग से बढ़ा दे।"

विक्रय-संवर्द्धन की विशेषताएँ

1. यह समयबद्ध प्रस्ताव होता है।
2. यह सशर्त प्रस्ताव होता है।
3. यह उत्पाद/सेवा को अतिरिक्त मूल्य प्रदान करता है।
4. यह व्यवसाय का नियमित भाग नहीं है।

विक्रय-संवर्द्धन को '**अतिरिक्त मूल्य क्रय**' के नाम से भी जाना जाता है। इसमें ग्राहक को सदा कुछ अतिरिक्त मूल्य का क्रय (मूल लाभ/मूल्य के अतिरिक्त) प्राप्त होता है।

उदाहरण—2 लीटर के शर्बत की बोतल खरीदने पर 1 बोतल मुफ्त इत्यादि।

विक्रय-संवर्द्धन के उद्देश्य

1. नये उत्पाद को बाजार में लाना,
2. विद्यमान उत्पादन का विक्रय बढ़ाना,
3. विक्रय के मौसमी गिरावट को रोकना,
4. प्रतिस्पर्धियों के विक्रय-संवर्द्धन कार्यक्रम को काटना/मुकाबला करना,
5. मंद रूप से बिकने वाले उत्पाद को विक्रय की तीव्र गति प्रदान करना,
6. पुराने उत्पादों के स्टॉक को खत्म करना,
7. उपभोक्ता पितृत्व तथा ब्राँड-निष्ठा बनाने हेतु,
8. विक्रय-बिन्दु (विक्रय-स्थल) पर उत्पाद की दर्शनीयता बढ़ाना,
9. वितरकों का सहयोग प्राप्त करना,
10. विक्रयकर्त्ताओं की उनके विक्रय-कार्य में सहायता करना।

विक्रय-संवर्द्धन के प्रकार



Scanned with CamScanner

उपरोक्त दो पद्धतियाँ विक्रय-संवर्द्धन का व्यापक वर्गीकरण है।

उपरोक्त के अतिरिक्त विक्रय-संवर्द्धन को निम्न तीन प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है—

A. उपभोक्ता विक्रय-संवर्द्धन,

B. व्यापार विक्रय-संवर्द्धन,

C. विक्रय शक्ति विक्रय-संवर्द्धन।

A. उपभोक्ता विक्रय-संवर्द्धन—इसमें विपणक (फर्म, उत्पादक, निर्माण) अपने ग्राहकों को उत्पाद की ओर आकर्षित करने हेतु निम्न संवर्द्धक तकनीकों को अपनाता है—

a. मुफ्त उपहार—इसमें उत्पाद के क्रय पर उपभोक्ता को पेन, डायरी, कार्ड, आदि प्रस्तावित करता है।

b. नमूना—इसमें नवीन उत्पाद जो बाजार में लाया जा रहा है उसका नमूना (छोटा प्रतिरूप, छोटा पैकेट इत्यादि) ग्राहकों को दिया जाता है।

c. उपभोक्ता प्रतियोगिता—व्यक्तियों को उनकी दक्षता/कौशल के अनुसार विभिन्न प्रतियोगिता में भाग लेने का अवसर प्रदान किया जाता है। यह आपसी उत्साह को बढ़ाता है।

d. कूपन—कूपन एक प्रकार का प्रमाण होता हे जिससे उस उत्पाद का मूल्य कम चुकाना पड़ता है।

उदाहरण—कूपन पर अंकित मूल्य = रु० 20

पेप्सी की 2 लीटर बोतल का मूल्य = रु० 95

अब ग्राहक जब कूपन पेश करेगा तो विक्रेता रु० 95 में से रु० 20 घटाकर शेष मूल्य ही उपभोक्ता से लेगा।

e. वापसी प्रस्ताव—इसमें क्रय का साक्ष्य दिखाने पर नकद वापसी का प्रावधान होता है।

(A) पुरस्कार—यह एक उपहार होता है, जो विभिन्न रूपों यथा पैकेट के अन्दर गिफ्ट, शीशे/प्लास्टिक का जार, गिलास, आदि जिसमें उत्पाद रखा हो, में हो सकता है।

व्यापार टिकट—व्यापार टिकट कूपन का एक प्रकार है जो छूट प्रदान करने हेतु प्रयुक्त होता है। इसके कतिपय निश्चित संख्या को एकत्र करके जब विक्रेता को दिया जाता है, तो फुटकर विक्रेता खरीद पर छूट प्रदान करता है।

n. मूल्य में कमी का प्रस्ताव—इसके अन्तर्गत विशेष समयावधि के लिये वस्तुओं के मूल्य में कमी का प्रस्ताव रखा जाता है।

B. व्यापार विक्रय-संवर्द्धन—इनका उद्देश्य वितरकों आदि का सहयोग प्राप्त करना होता है। इस संवर्द्धन के अन्तर्गत निम्नलिखित कदम (उपाय) सम्मिलित होते हैं—

a. वितरक उपहार—इसमें वितरकों को उपहार घड़ी, टी० वी० इत्यादि दिया जा सकता है।

b. वितरक विक्रय स्पर्धा—इसमें एक स्तर के विक्रय की उपलब्धि प्राप्त कर लेने वाले वितरकों को पुरस्कृत किया जाता है।

c. व्यापार भत्ता—यह अस्थायी मूल्य कमी है। इसके विभिन्न प्रकार क्रय भत्ता, क्रय वापसी, प्रदर्शन भत्ता, सहकारी विज्ञापन आदि शामिल हैं।

d. निःशुल्क प्रदर्शन सामग्री—इसमें क्रय स्थल या विक्रय-स्थल पर प्रदर्शन सामग्री निःशुल्क प्रदान की जाती है।

e. मूल्य-सौदा—इसमें अन्य छूटों के अतिरिक्त विशेष मूल्य छूट प्रदान की जाती है।

C. विक्रय-बल विक्रय-संवर्द्धन—ये कार्यक्रम कम्पनी के विक्रय-बलों हेतु आयोजित किये जाते हैं। इसके पीछे विक्रय-कर्त्ता (विक्रय-बलों) के प्रयत्नों को और प्रभावी बनाना है। इस पद्धति के अन्तर्गत निम्नलिखित उपाय सम्मिलित होते हैं—

(a) विक्रय-स्पर्धा,

(b) उपहार,

(c) अधिलाभ/प्रब्याजि

(d) संवर्द्धन,

Scanned with CamScanner

(e) सराहना पत्र, इत्यादि।

विज्ञापन

विज्ञापन समूह—संप्रेषण का एक तरीका है। अच्छे विज्ञापन के लिए "ए० आई० डी० ए०" का सिद्धान्त होना चाहिए (सावधानी, रुचि, इच्छा और कार्य)।

दूसरे शब्दों में, इसे ऐसा लगना चाहिए कि लोग इसे देखें, पसंद करें, सीखें और खरीदें (देखो, पसंद करो, सीखो और खरीदो)।

अमेरिकन एक्सप्रेस कम्पनी के सभापति ने एक बार कहा था कि, "अच्छे विज्ञापन के तीन प्रभाव होने चाहिए—

(i) उस उत्पाद का विक्रय बढ़ाना, (ii) समाचार रचना, (iii) कम्पनी की छवि बढ़ाना।

विज्ञापन के आवश्यक तत्त्व

(i) यह अव्यक्तिगत वार्तालाप होता है।
(ii) विचार/वस्तु/सेवाओं के संदर्भ में होता है।
(iii) यह सार्वजनिक माध्यम से रचित होता है।
(iv) इसका हमेशा भुगतान होता है।
(v) यह प्रायोजित होता है।

परिभाषा—विज्ञापन एक समूह-संप्रेषण है जो कि विचार/वस्तु/सेवाओं के संदर्भ में होता हे जो कि पैसे देने के बाद आयोजित होता है और यह किसी और के द्वारा प्रायोजित होता है।

प्रचार—प्रचार भी समूह संप्रेषण का एक तरीका है। लेकिन इसका भुगतान नहीं किया जाता। प्रचार समाचारों द्वारा, पत्रकारों द्वारा या किसी के व्यक्तिगत अनुभव द्वारा प्रचारित होता है। यह सच्चाई पर आधारित होता है।

विज्ञापन के उद्देश्य

विज्ञापन का ध्यान स्पष्ट एवं मूल्यांकन पर केन्द्रित करना चाहिए जो कि वस्तुनिष्ठ को बढ़ावा देता है जो कि डी० ए० जी० एम० ए० आर० के नाम से जाना जाता है। (विज्ञापन को परिभाषित करना एवं विज्ञापन के परिणामों का मापन करना)। डी० ए० जी० एम० ए० आर० को सबसे पहले **रसल कोले** ने 1961 में खोजा एवं बढ़ावा दिया।

विज्ञापन के आम उद्देश्य निम्न हो सकते हैं—

1. ग्राहक को सूचना देने एवं उनको निशाना बनाना। यह सूचना नये उत्पाद का परिचय कराना, उत्पाद में फेर-बदल या सुधार या उत्पाद का मूल्य बढ़ने जैसे क्षेत्रों को घेरता है।
2. ट्रेडमार्क की पहचान का ज्ञान फैलाना।
3. दुकानदारों एवं खरीददारों की जगह बताना।
4. उपभोक्ताओं को पुन:स्मरण कराना।
5. मध्यस्थों को अधिक विक्रय में सहायता करना।
6. दुकानदारों को बेचने के तरीकों में मदद करना।

विज्ञापन के प्रकार

वस्तु की क्रिया एवं उसके कार्य के आधार पर विज्ञापन को निम्न श्रेणियों में बाँटा गया है—

1. उपभोक्ता विज्ञापन—विज्ञापन जो कि मोबाइल फोन, घड़ी, पैरों में पहनने वाले जूते, चप्पल आदि को उपभोक्ता विज्ञापन कहते हैं।

2. औद्योगिक विज्ञापन—विज्ञापन जो कि मशीनरी औजार एवं कच्चा माल आदि के लिए हो, वे औद्योगिक विज्ञापन कहलाते हैं।

3. संस्थागत विज्ञापन—विज्ञापन जो कि किसी संस्था की छवि सुधारने या संस्था की भलाई के लिए हों, उन्हें संस्थागत विज्ञापन कहते हैं।

Scanned with CamScanner

4. उत्पाद विज्ञापन—विज्ञापन जो कि कम्पनी के उत्पादन की योग्यता, लाभ एवं उसकी विशेषताओं को उजागर करे, ऐसे विज्ञापन उत्पाद विज्ञापन कहलाते हैं।

5. प्राथमिक माँग विज्ञापन—विज्ञापन जो कि प्राथमिक/सामान्य माँगों को बनाए, ऐसे विज्ञापनों को प्राथमिक माँग विज्ञापन कहते हैं।

6. चुनिंदा माँग विज्ञापन—ऐसे विज्ञापन किसी ब्रांड की विशेष औषध माँग पूरा करने के लिए बनाए जाते हैं। जैसे–किसी उत्पाद जैसे चाय या कॉफी की खपत को बढ़ावा देना प्राथमिक माँग विज्ञापन है और चुनिंदा ब्रांड जैसे "ताजमहल" या "नेसकैफे" चुनिंदा माँग विज्ञापन है।

7. प्रत्यक्ष विज्ञापन—विज्ञापन जो किसी उत्पाद की विक्रय को तुरन्त बढ़ाने का उद्देश्य रखे ऐसे विज्ञापन को प्रत्यक्ष विज्ञापन कहते हैं।

8. अप्रत्यक्ष विज्ञापन—विज्ञापन जो कि किसी उत्पाद के लिए रुचि पैदा करे जैसे किसी उत्पाद को बाजार में उतारना, उत्पाद को खरीदने के लिए रुचि पैदा करना आदि अप्रत्यक्ष विज्ञापन हैं।

9. निर्माता विज्ञापन—ऐसे विज्ञापन निर्माताओं द्वारा भुगतान किए होते हैं एवं उन्हीं द्वारा प्रायोजित होते हैं।

10. सहयोगी विज्ञापन—ऐसे विज्ञापन निर्माता एवं थोक व्यापारियों द्वारा आपस में बाँटे गए होते हैं जो कि विशेष औषध के उत्पादन की माँग पूरा करने के लिए बनाए जाते हैं।

11. फुटकर विज्ञापन—फुटकर व्यापारी ग्राहक को अपने उत्पाद को खरीदने को आकर्षित करने के लिए विज्ञापन करता है।

विज्ञापन माध्यम—विज्ञापन माध्यम एक ऐसा चैनल वार्तालाप के लिए है जोकि वैज्ञापनिक संदेशों को श्रोताओं तक पहुँचाता है ताकि श्रोतागणों को चिह्नित कर सकें।

विज्ञापन माध्यम के चुनाव को प्रमाणित करने वाले तत्त्व—

1. वस्तु का प्रकार
2. वस्तु की प्रकृति
3. उपलब्ध बजट
4. माध्यम की लागत
5. माध्यम की उपलब्धता
6. माध्यम का प्रसार/वितरण
7. लोगों का ठिकाना।

विज्ञापन माध्यम चार भागों में बँटा है—

1. प्रेस विज्ञापन
   - समाचार पत्र
   - पत्रिका
   - सामान्य
2. बाह्य माध्यम
   - बोर्ड
   - होर्डिंग
   - आसमान लिखावट
   - पोस्टर्स
   - बिजली के द्वारा
3. प्रत्यक्ष मेल
   - डाक
   - मूल्य
   - फोल्डर्स
   - बुकेट्स
4. अन्य
   - टी० वी०
   - रेडियो
   - सिनेमा स्लाइड्स
   - मोबाईल फोन

1. प्रेस विज्ञापन––समाचार पत्र, पत्रिकाएँ एवं सामान्य ये सभी प्रेस विज्ञापन के अन्तर्गत आती हैं।

(a) समाचार पत्र—समाचार पत्र रोज विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित किए जाते हैं। संदेश एक छोटे से नोटिस पर प्रकाशित किया जा सकता है। समाचार पत्र में विज्ञापन छापने का पैसा भी कम है। इसका एक ही पत्र में विज्ञापन छापने का पैसा भी कम है। इसका एक ही नुकसान है कि समाचार अच्छी गुणवत्ता का नहीं होता और जिंदगी छोटी होती है।

Scanned with CamScanner

(b) पत्रिका—पत्रिकाएँ साप्ताहिक, हर पन्द्रह दिन एवं मासिक तरह से प्रकाशित होती हैं। पत्रिकाएँ विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित होती हैं। इनके पन्नों की गुणवत्ता समाचार पत्रों से अच्छी होती है और इसकी जिंदगी लम्बी होती है। यह परिवार, व्यापार, खेल, स्वास्थ्य एवं बाल-बच्चों जैसे हर विषय को छापती है।

2. बाह्य माध्यम—बाह्य माध्यम तब लोगों को देखता है जब वे घर के बाहर हों या फिर जब वे किसी सफर पर हों। बाह्य माध्यम के तरीके हैं—होर्डिंग, आसमान पर लिखना जैसे गुब्बारे या हवाई जहाजों पर लिखकर, चित्रों द्वारा, सैंडविच (जैसे—शरीर के आगे पट्टी बाँधकर जैसे—सर्कस का प्रचार) आदि। इसका प्रमुख फायदा तब है जब लोग रास्ते पर हों तब वह इनकी ओर आकर्षित हो सकते हैं।

3. डाक द्वारा विज्ञापन—इस तरह के विज्ञापन सीधे तरीके पर लोगों से वार्तालाप करते हैं डाक द्वारा। डाक द्वारा उत्पाद की कीमत, फाइलें आदि लोगों को सीधे तौर पर उनके घर भेजा जाता है।

4. अन्य—विज्ञापन के अन्य माध्यम हैं—टी० वी०, मोबाइल फोन, सिनेमा स्लाइड्स, लाउडस्पीकर, इंटरनेट आदि।

विज्ञापन प्रतिलिपि/विषय वस्तु—वह संदेश जो कि विज्ञापन में दिखता है उसे विज्ञापनिक कॉपी कहते हैं। विज्ञापनिक कॉपी एक शब्द की हो सकती है, एक हजार शब्द की हो सकती है, या चित्र या लिखित या मौखिक, या चिह्न या इशारा, या मुख्य पंक्ति या नक्शा जो कि संदेश को पूर्ण रूप से समझाए।

विज्ञापन प्रति के आधारभूत तत्त्व—निम्न पंक्ति जरूरी मूल्य है अच्छी विषय-वस्तु के लिए—

1. आकर्षण—विज्ञापन को पहली नजर में ही लोगों को आकर्षित करना चाहिए।

2. सुझाव—विज्ञापन को लोगों को सुझाव देना चाहिए जैसे—"कोमल त्वचा के लिए बोरो प्लस प्रयोग करें।"

3. शैक्षणिक—विज्ञापन को लोगों को उत्पाद के बारे में पढ़ाए ऐसा होना चाहिए, जैसे—"पाँच साल एल० एल० बी० एक पूर्ण कानून शिक्षित डिग्री।"

4. विश्वसनीय—संदेश भरोसेमंद एवं विश्वसनीय होना चाहिए।

5. स्मरण—मशहूर गानों का, मशहूर हस्ती या कोई प्रोग्राम का प्रयोग विज्ञापन को और स्मरणीय बना देता है।

विक्रय पश्चात् सेवाएँ

सामान्य दृष्टि से क्रेता एवं विक्रेता के बीच का सम्बन्ध (लेन-देन) वस्तु/सेवा के क्रय-विक्रय से निरूपित होता है, किन्तु विक्रय के पश्चात् विक्रेता, निर्माणकर्त्ता द्वारा वस्तु अथवा सेवा के क्रेता को तद्सम्बन्धी सेवाएँ प्रदान करना सम्पूर्ण विक्रय प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण एवं अभिन्न अंग है।

विक्रय पश्चात् सेवाएँ वे सेवाएँ होती हैं, जो उस वस्तु/सेवा के निर्माताओं, फुटकर व्यापारियों द्वारा उसके क्रेता, धारी को प्रदान करते हैं। यह विक्रित वस्तु के प्रकार पर निर्भर करता है।

उदाहरण—यदि कोई ग्राहक एअर कंडीशनर खरीदता है, तो निर्माता/फुटकर विक्रेता उसके स्थापन एवं मरम्मत की सेवा प्रदान करता है।

वस्तुत: कम्पनी/निर्माताओं द्वारा प्रदान की जाने वाली यह सेवा विद्यमान ग्राहकों की संतुष्टि के स्तर को तो उन्नत करती ही है, साथ ही नवीन उपभोक्ताओं को भी जोड़ने में सहायक होती है। इसे निम्नलिखित सूत्र के रूप में समझा जा सकता है—

विक्रय-पश्चात् सेवा = अधिकतम उपभोक्ता संतुष्टि

(उत्पाद + सेवा)

परिणामत:—कम्पनी की अच्छी ख्याति।

ग्राहकों की निष्ठा में वृद्धि

ग्राहकों की संख्या में वृद्धि

विक्रय-संवर्धन का एक अस्त्र

बाजार में कम्पनी के अंश में वृद्धि इत्यादि।

Scanned with CamScanner

ग्राहक इस सेवा से निश्चितता का अनुभव करते हैं तथा यह उस उत्पाद के अनुरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। यद्यपि विक्रय-पश्चात् सेवायें कमोवेश समस्त उत्पादों/सेवाओं हेतु आवश्यक है किन्तु स्वचालित वाहनों, इलेक्ट्रिकल एवं इलेक्ट्रॉनिक उत्पादों/सेवाओं की दशा में ये अपरिहार्य रूप से दृष्टव्य होते हैं।

कम्प्यूटर, मोबाईल फोन आदि निर्माता कम्पनी अपने उपभोक्ताओं/ग्राहकों से अनुबन्ध करती है कि वे विक्रय के पश्चात् एक निश्चित समयावधि (1, 2, 3, 5 वर्ष) तक अपनी सेवाएँ प्रदान करेंगी। कतिपय दशाओं में यह विभिन्न शर्तों के अधीन रहता है अथवा इसका प्रभार वस्तु के मूल्य में सम्मिलित रहता है।

विक्रय-पश्चात् सेवाओं की विशेषताएँ

1. ये सेवाएँ विक्रय, सुपुर्दगी के पश्चात् प्रदान की जाती है।
2. मैकेनिकल, इलेक्ट्रिकल, इलेक्ट्रॉनिक, ऑटोमोबाइल, कम्प्यूटर उत्पादों हेतु यह अनिवार्य होती है।
3. इनका शुल्क उत्पाद के मूल्य में सम्मिलित भी हो सकते हैं।
4. यह सेवा निःशुल्क या भुगतान द्वारा प्राप्त, दोनों हो सकती है।
5. प्रायः समस्त उद्योगों में इसकी उपयोगिता महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

उद्देश्य—विक्रय-पश्चात् सेवाओं में निहित उद्देश्यों को निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है—

1. वारण्टी—वारण्टी एक प्रकार का विधिक आश्वासन होता है जो वस्तु के निर्माता अथवा सेवा प्रदाता द्वारा उपभोक्ताओं को दिया जाता है। क्रय पश्चात् यदि उपभोक्ता संदर्भित वस्तु अथवा सेवा के उपयोग आदि में किसी समस्या का अनुभव करता है, तो कम्पनी के विशेषज्ञ उस समस्या को दूर करते हैं।

उदाहरण—कम्प्यूटर सिस्टम के निर्माताओं द्वारा उसके उपभोक्ताओं को प्रदान की जाने वाली विक्रय पश्चात् सेवाएँ।

2. प्रशिक्षण—कई बार कम्पनी अपने ग्राहकों को अपने तकनीकी उत्पादों के सही उपयोग हेतु प्रशिक्षण भी प्रदान करवाती है जो ग्राहकों के संदर्भित वस्तु के उपयोग को वैज्ञानिक सुगम एवं सुरक्षित बनाती है।

3. उत्पाद-अनुरक्षण—ऑटोमोबाईल, उत्पाद यथा दो पहिया, चार पहिया वाहनों की आरम्भिक जाँच व अनुरक्षण की आवश्यकता पड़ती है जिस हेतु कम्पनी तीन निःशुल्क सेवा कूपन अपने उपभोक्ताओं को प्रदान करवाती है। इसके साथ ही कम्पनी द्वारा समय-समय पर निःशुल्क जाँच शिविर भी आयोजित करता है।

4. उपभोक्ता-संतुष्टि—जैसा कि विदित है कि ये विक्रय-पश्चात् सेवाएँ ग्राहकों सन्तुष्टि प्रदान करती है, जो **विपणन** का प्रधान उद्देश्य होता है, जो व्यापार वर्धन में सहायक होता है।

5. व्यापार-विकास की सम्भावनाएँ—वर्तमान ग्राहकों की संतुष्टि ग्राहकों की कम्पनी के प्रति निष्ठा में वृद्धि करती है जो वर्तमान ग्राहकों को तो बनाये रखने में सहायक होने के साथ-साथ नवीन ग्राहकों को भी जोड़ने में प्रभावी भूमिका का निर्वहन करता है। इससे व्यापार का वर्धन सम्भव होता है।

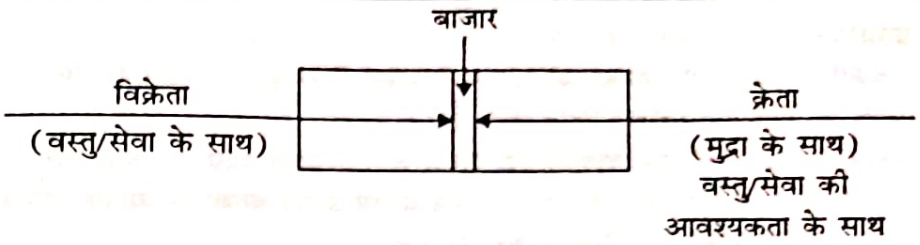
लाभ—इसके लाभ निम्नलिखित हैं—

(i) ग्राहकों की संतुष्टि,
(ii) कम्पनी के उत्पादों के प्रति विश्वास स्थापन में सहायक,
(iii) तकनीकी एवं मूल्यवान वस्तुओं के विक्रय को सुगम बनाने में सहायक,
(iv) निःशुल्क सेवा विक्रय-संवर्धन का एक अस्त्र है,
(v) नवीन ग्राहकों को जोड़ने में सहायक,
(vi) वर्तमान ग्राहकों को बनाये रखने में सहायक,
(vii) कम्पनी के ख्याति निर्माण में सहायक।

6.3 विपणन संकल्पनाएँ

बाजार (विपणि)—वस्तुओं/सेवाओं के उत्पादन का अन्तिम लक्ष्य तभी पूर्ण रूप से सम्पादित माना जाता है, जब वह अन्तिम उपभोक्ता के हाथों में पहुँचे। इस कार्य के सम्पादन हेतु एक ऐसी व्यवस्था, मंच आवश्यक है जो दोनों पक्षकारों, विक्रेता एवं क्रेता, के लिए अनुकूल हो।

Scanned with CamScanner



बाजार वह स्थान है, जहाँ क्रेता एवं विक्रेता अपने-अपने उद्देश्यों, आवश्यकताओं के साथ प्रस्तुत होते हैं तथा विनिमय प्रक्रिया को सम्पादित करते हैं।

उदाहरण—अन्य शब्दों में, "बाजार वह प्रयोगशाला है, जहाँ समस्त व्यावसायिक/विपणन सम्बन्धी गतिविधियों का परीक्षण किया जाता है।"

बाजार की संकल्पनाएँ—बाजार के सन्दर्भ में विभिन्न संकल्पनाओं को निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है—

(अ) स्थान विचार/संकल्पना—बाजार की स्थान संकल्पना के अनुसार, बाजार वह स्थान होता है, जहाँ क्रेता एवं विक्रेता वस्तुओं के विनिमय हेतु (क्रय एवं विक्रय) मिलते हैं।

उदाहरण—चाँदनी चौक दिल्ली, क्राफर्ड मार्केट मुम्बई।

(ब) भवन संकल्पना—भवन संकल्पना के अनुसार, भवन बाजार के रूप में व्यवहृत हो अर्थात् वहाँ वस्तुओं/सेवाओं का क्रय-विक्रय सम्पादित किया जा रहा हो।

उदाहरण—टाटा का वेस्ट साइड शो-रूम, बिग बाजार का भवन (काम्प्लेक्स)।

(स) क्षेत्र संकल्पना—किसी स्थान विशेष का वह सम्पूर्ण क्षेत्र जहाँ क्रय-विक्रय की गतिविधियाँ सम्पादित हो रही हों। बाजार के रूप में जाना जाता है, यहाँ क्रेता एवं विक्रेता परस्पर सम्मुख मिलें, यह आवश्यक नहीं है। ऐसे बाजार में कई अन्य माध्यमों से लेन-देन की प्रक्रिया संचालित हो सकती है, यथा इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से।

इलाहाबाद से बंगलुरु दूरभाष के माध्यम से किसी वस्तु/सेवा का आदेश देना या प्राप्त करना। इस दशा में इलाहाबाद से बंगलुरु तक के क्षेत्र को बाजार के अन्तर्गत (लेन-देन की अवधि में) लिया जायेगा।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि क्षेत्र संकल्पना के अन्तर्गत उन खुले क्षेत्रों/स्थानों को भी सम्मिलित किया जा सकता है। जहाँ विक्रेता एवं क्रेता के बीच लेन-देन की क्रिया सम्पादित हो रही हो। यथा—गाँव की हाट या कस्बों में लगने वाले बाजार।

(द) गृह-सुपुर्दगी संकल्पना—समयाभाव तथा शीघ्र वस्तुओं को पाने की उपभोक्ता की इच्छाओं ने **गृह-सुपुर्दगी संकल्पना** को वर्तमान समय में विस्तार दिया है, तथा यह उपभोक्ताओं को वस्तु एवं संतुष्टि के संदर्भ में

Delivery of goods and satisfaction at door step, अर्थात् दरवाजे पर ही वस्तु एवं सेवा की प्राप्ति, की अभिनव अनुभूति प्रदान करने के साथ ही मध्यस्थों (जिनके कारण प्राय: वस्तु/सेवा का मूल्य बढ़ जाता है) को समाप्त करने/कम करने की दिशा में भी महती भूमिका का निर्वहन कर रहा है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादक/निर्माणकर्त्ता कम्पनी स्वयं उपभोक्ताओं को वस्तुओं को उपलब्ध कराती है, इस हेतु वह उपभोक्ताओं से सीधे ई-मेल, सचल दूरभाष यन्त्र (मोबाईल फोन) के माध्यम से माँग प्राप्त करती है।

बाजार विस्तार को प्रभावित करने वाले घटक—आदिकाल से ही बाजार किसी देश की अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख संकेतक रहा है। उन्नत बाजार किसी देश के आर्थिक विकास में महती भूमिका निभाता है।

बाजार के विकास का क्रम सतत् एवं अनवरत ढंग से चलता चला आ रहा है। प्रत्येक बाजार में, समय के साथ-साथ आवश्यक परिवर्तन की संयुक्तता सदैव अनुभव की गयी है, किन्तु हाल के वर्षों में (मुख्यत: उदारीकरण, वैश्वीकरण एवं निजीकरण युग के उद्भव के साथ) बाजार विस्तारीकरण की प्रक्रिया ने तीव्र गति थामी है जिनके मुख्य कारकों को अग्रांकित ढंग से व्यक्त किया जा सकता है—

Scanned with CamScanner

1. उत्पाद के प्रकार—उत्पादों के प्रकार की विमा, मात्रा, बढ़ने के कारण भी बाजार का व्यापक विस्तार हुआ है। जहां उपभोक्ता वस्तुओं की बढ़ती माँग ने फुटकर बाजार को घना व विकसित किया है वहीं औद्योगिक वस्तुओं ने उद्योग सम्बन्धी वस्तुओं/सेवाओं के बाजार को एक नया विस्तार प्रदान किया है।

2. स्थायित्व बनाम नाशशीलता—हम जानते हैं कि बाजार रूपी गुलदस्ता शीघ्र नष्ट होने वाले तथा दीर्घ अवधि तक टिकने वाले, दोनों प्रकार के मूल्यों से युक्त होता है। जहाँ टिकाऊ वस्तुएँ/उत्पाद बाजार में व्यापक क्षेत्र रखती है, वहीं शीघ्र नाशवान वस्तुएँ तुलनात्मक रूप से बाजार में सीमित प्रभाव रखती हैं।

3. माँग व पूर्ति—बाजार के विस्तार में माँग व पूर्ति की महत्ता असंदिग्ध है। माँग के अनुरूप किसी उत्पाद की आपूर्ति बाजार में उस वस्तु के बाजार वर्द्धन में सहायक होती है। यथा—टेलीविजन सेट्स, अनाज, लैपटॉप आदि।

4. वहनीयता—यदि कोई उत्पाद वहनीयता एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने का गुण, युक्त है तो वह स्थानीय बाजार के अतिरिक्त बाहर के बाजारों में भी अपना स्थान रख सकती है। इसके विपरीत भारी तथा कम वहनीय वस्तुएँ प्राय: स्थानीय बाजारों तक ही अपना प्रभाव रखती हैं।

उदाहरण—मोबाइल फोन हैण्ड सेट एवं पत्थर की ईंटें आदि।

5. वस्तु का मूल्य—उच्च मूल्य की वस्तुएँ एक बड़े बाजार तक अपना क्षेत्र रखती हैं, जबकि निम्न मूल्य की वस्तुएं प्राय: स्थानीय बाजार या सीमित क्षेत्र में ही अपना क्षेत्र रखती हैं। यथा—कीमती पत्थर, आभूषण इत्यादि।

6. प्रतियोगिता—बाजार विभिन्न प्रकार के प्रतियोगिता से युक्त होता है। प्रतियोगिता के विविध प्रकारों को निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है—

(i) पूर्ण प्रतियोगिता,
(ii) अपूर्ण प्रतियोगिता,
(iii) विभेदात्मक प्रतियोगिता,
(iv) एकाधिकारी बाजार,
(v) द्वयाधिकारी बाजार,
(vi) अल्पाधिकारी बाजार।

बाजार में व्याप्त प्रतियोगिता भी बाजार विस्तार में सहायक होती है। एक उचित, स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा सदैव बाजार को घना, सशक्त, पूर्ण करने के साथ ही उपभोक्ता को अधिकार सम्पन्न करती है।

7. सरकारी नीति—सरकार का देश की आर्थिक नीतियों पर पूर्ण नियन्त्रण होता है, तद्नुसार सरकार की नीतियों का बाजार पर पूर्ण प्रभाव होता है। यदि देश के सरकार की औद्योगिक, व्यापारिक नीतियाँ, उत्पादन को प्रोत्साहित करने वाली होती हैं, तब बाजार विस्तार की सम्भावनाएँ अधिक होती हैं। सरकार की नीतियाँ वह धुरी होती है, जिसके चारों ओर बाजार तथा उसकी समस्त गतिविधियाँ परिक्रमण करती हैं।

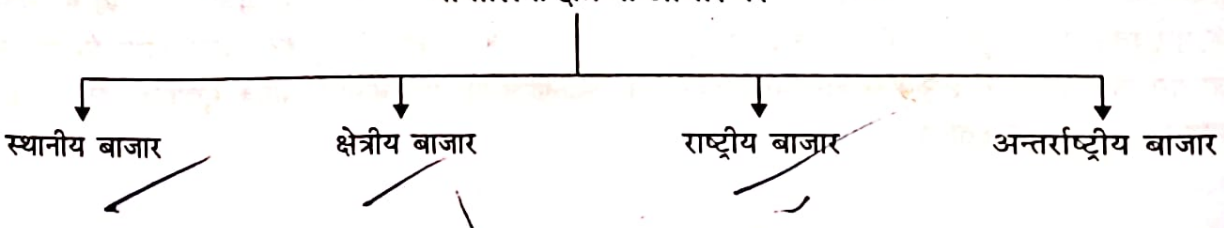
बाजार के प्रकार

बाजार के विकास एवं विस्तार ने बाजार की न सिर्फ प्रकृति, विशेषता में परिवर्तन किया है, वरन् उनके प्रकारों में भी वर्द्धन किया है।

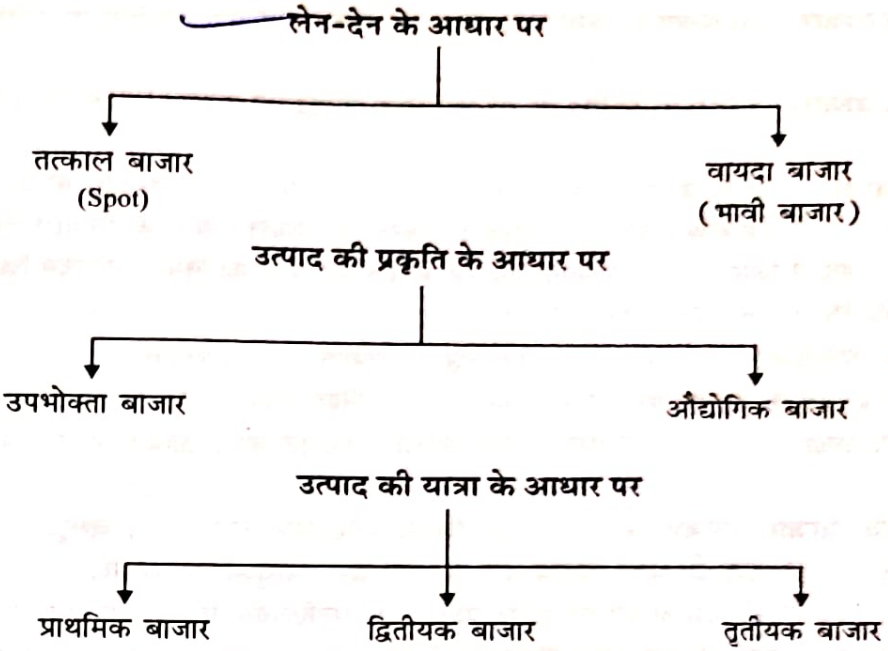
अर्थात् हम कह सकते हैं कि अपने जन्म से वर्तमान तक की यात्रा में बाजार ने क्षैतिज एवं ऊर्ध्वाधर दोनों दूरियाँ तय की हैं।

बाजार को प्रमुखत: निम्नांकित प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है—

भौगोलिक क्षेत्र के आधार पर



Scanned with CamScanner



(A) भौगोलिक आधार पर बाजार का वर्गीकरण

(a) स्थानीय बाजार—जब उत्पाद की आपूर्ति एवं माँग क्षेत्र विशेष तक ही सीमित होती है, ऐसे बाजार को **''स्थानीय बाजार''** कहा जाता है।

उदाहरण—सब्जी बाजार, मछली बाजार इत्यादि।

(b) क्षेत्रीय बाजार—इन बाजारों के अन्तर्गत उन वस्तुओं को सम्मिलित किया जाता है जिनकी माँग व आपूर्ति क्षेत्र विशेष तक ही सीमित होती है। यथा—मिरजापुर के पत्थर की वस्तुएँ, मुजफ्फरपुर की लीची।

(c) राष्ट्रीय बाजार—जब किसी वस्तु की माँग व आपूर्ति सम्पूर्ण देश में होती है अर्थात् उस वस्तु के क्रेता एवं विक्रेता देश के लगभग सभी भागों में होते हैं तो ऐसे बाजार को **'राष्ट्रीय बाजार'** कहते हैं।

उदाहरण—भदोही का कालीन, मुरादाबाद के पीतल के बर्तन इत्यादि।

(d) अन्तर्राष्ट्रीय बाजार—किसी वस्तु की माँग जब देश की सीमा से बाहर अन्यान्य देशों में भी होती है तो उसको **'अन्तर्राष्ट्रीय बाजार'** कहते हैं।

उदाहरण—रत्न बाजार, रसायन, दवाईयाँ आदि।

6.3 विपणन संकल्पनाएँ

2. लेन-देन के आधार पर—

(a) लेन-देन पर आधारित बाजार उस बाजार को कहते हैं, जहाँ विक्रय-व्यवहार एक स्थान पर लेन-देन के समय ही पूर्ण हो जाते हैं, अर्थात् विक्रेता द्वारा वस्तु का विक्रय तथा क्रेता द्वारा मूल्य का भुगतान एक ही स्थान पर उसी समय कर दिया जाता है जब दोनों इस हेतु मिलते हैं।

(b) भावी बाजार—इसे सिर्फ संविदा (कान्ट्रेक्ट) का बाजार भी कहा जा सकता है। यह बाजार का वह प्रकार होता है जहाँ विक्रेता एवं क्रेता द्वारा क्रमशः वस्तुओं की सुपुर्दगी तथा संदर्भित वस्तु का मूल्य चुकाने का वादा/संविदा की जाती है, जबकि वास्तविक भुगतान एवं सुपुर्दगी भावी समय के लिए संविदा द्वारा निश्चित की जाती है।

उदाहरण—दुकान/आवास हेतु भवन की बिक्री एवं भुगतान की संविदा।

3. उत्पाद की यात्रा के आधार पर—इस प्रकार के बाजार को अग्रलिखित वर्गों में वर्णित किया जा सकता है—

Scanned with CamScanner

(a) प्राथमिक बाजार—इस बाजार में किसी वस्तु उत्पाद का निर्माता/उत्पादक उस वस्तु को **वितरक/थोक विक्रेता** को बेचता है।

(b) द्वितीयक बाजार—इस बाजार में वितरक, थोक-विक्रेता उत्पाद को फुटकर विक्रेता/विक्रेताओं को विक्रय करते हैं।

(c) अन्तिम बाजार—इस बाजार में फुटकर विक्रेता द्वारा वस्तुओं को उस/उन वस्तुओं के अन्तिम उपभोक्ताओं को बेचा जाता है। इसे इसलिए अन्तिम बाजार कहते हैं, क्योंकि इस चरण के पश्चात् विक्रय की क्रिया/गतिविधि समाप्त हो जाती है, क्योंकि उत्पादक/निर्माता ने जिस अन्तिम उपभोक्ता वर्ग को केन्द्रित कर वस्तु का निर्माण/उत्पादन किया था, बाजार के इस चरण की विक्रय गतिविधि के द्वारा समाप्त हो जाता है।

निर्माता ⟶ वितरक/थोक-विक्रेता ⟶ फुटकर/खुदरा विक्रेता ⟶ उपभोक्ता

4. उत्पाद की प्रकृति के आधार पर—इस बाजार में निम्नलिखित प्रकार के बाजार समाहित होते हैं—

(a) उपभोक्ता बाजार—इस बाजार में वस्तुएँ उसके अन्तिम उपभोक्ता को प्रस्तावित की जाती हैं। यथा—साबुन, शैम्पू, बिस्किट, पेंसिल।

(b) औद्योगिक बाजार—बाजार का वह प्रकार जिसमें औद्योगिक उपयोग की वस्तुओं का क्रय-विक्रय होता है, **'औद्योगिक बाजार'** कहा जाता है। यथा—कच्चे माल व अर्द्धनिर्मित वस्तुओं का बाजार।

5. परिमाण के आधार पर—इस आधार पर वर्णित बाजार को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(a) फुटकर बाजार—बाजार के इस प्रकार में उत्पाद की अल्प मात्रा में उपभोक्ताओं को बेची जाती है। इन वस्तुओं में गृहोपयोगी उत्पादों को सम्मिलित किया जाता है।

(b) थोक बाजार—इस बाजार में वस्तुओं को दीर्घ मात्रा में बेचा व खरीदा जाता है।

विपणन

उत्पादन, वित्त तथा विपणन विभाग किसी भी व्यावसायिक संगठन के प्रमुख विभाग होते हैं, जो मजबूत स्तम्भ की भाँति संगठन को न सिर्फ थामे रहते हैं, वरन् वह शक्ति, ऊर्जा भी प्रदान करते हैं जो संगठन को लाभ प्रदान करने के साथ बाजार में महत्वपूर्ण अंश प्राप्त करने में भी सहायक होते हैं।

किसी भी व्यवसाय का सर्वप्रमुख उद्देश्य उपभोक्ताओं का सृजन एवं उन्हें संगठन के साथ बनाये रखना होता है। विपणन के प्रमुख उद्देश्यों में उपभोक्ताओं की आवश्यकता का पता लगाना तथा उन आवश्यकताओं को उत्पाद/सेवा के रूप में परिवर्तित करने को रखा जा सकता है। जब ग्राहक की आवश्यकता, माँग, रुचि के अनुसार उत्पादों का निर्माण कर संगठन उपभोक्ताओं को प्रस्तावित करता है, तब उपभोक्ता संतुष्ट होता है तथा संगठन का सर्वप्रमुख उद्देश्य **'उपभोक्ता संतुष्टि'** प्राप्त होता है। इस प्रकार व्यवसाय की सफलता में **विपणन विभाग** की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं का पता लगाना	⟶ आवश्यकताओं को उत्पाद/सेवा के रूप में रूपान्तरित करना	⟶ उत्पाद/सेवा को ग्राहकों को प्रस्तावित कर उन्हें पूर्ण संतुष्टि प्रदान करना

(विपणन का उपभोक्ता दृष्टिकोण)

विपणन का उद्भव—विपणन का उद्भव एक सतत् शृंखला के रूप में दृष्टगम्य होता है, जो कि कतिपय विपणन संकल्पनाओं पर अवस्थित है जिनका वर्णन निम्नांकित है—

(A) उत्पादन संकल्पना,

(B) उत्पाद संकल्पना,

(C) विक्रय संकल्पना,

(D) विपणन संकल्पना,

Scanned with CamScanner

(E) सामाजिक संकल्पना।

A. उत्पादन संकल्पना—यह विपणन की सर्वाधिक प्राचीन एवं प्रारम्भिक संकल्पना है, इसके अनुसार, क्रेता/उपभोक्ता उन वस्तुओं के क्रय में रुचि लेते हैं, जो सरलता से उपलब्ध होती हैं तथा तुलनात्मक रूप से निम्न दाम/मूल्य पर मिलें। इस विचारधारा के अनुसार कम्पनी को अपना उत्पादन बढ़ाना चाहिए। फलत: उनका मूल्य न्यून होगा जिससे उपभोक्ता इन वस्तुओं को क्रय करने के प्रति आकर्षित होंगे।

यह विचारधारा निम्नलिखित दो मान्यताओं पर आधारित है—

(a) वस्तु की माँग उसकी आपूर्ति से ज्यादा होती है।

B. उत्पाद संकल्पना—यह संकल्पना इन मान्यताओं पर आधारित है कि उपभोक्ता अच्छी गुणवत्ता, अच्छी विशेषताओं से युक्त उत्पाद को पसन्द करते हैं, तथा उपभोक्ता अच्छी गुणवत्ता वाली वस्तुओं के लिए अतिरिक्त मूल्य/अधिक मूल्य भी दे सकते हैं।

इस संकल्पना/विचारधारा को अपनाने वाले संगठन उत्पाद की गुणवत्ता एवं इसके परिवर्धन हेतु उद्यत रहते हैं।

हानि—इस संकल्पना के अन्तर्गत कम्पनी उत्पाद पर ही पूर्णतया केन्द्रित रहती है तथा उपभोक्ता की आवश्यकताओं पर प्राय: उतना ध्यान नहीं देती।

C. विक्रय संकल्पना—यह विचारधारा यह मानती है कि आक्रामक विक्रय-नीतियाँ तथा विक्रय-संवर्द्धन प्रयास एवं उससे सम्बन्धित रणनीतियों का प्रयोग करके विक्रय को बढ़ाया जा सकता है तथा उपभोक्ता तब वस्तु खरीदने को उद्यत होगा। इस विचारधारा के अनुसार उपभोक्ता किसी वस्तु की सन्तोषजनक मात्रा नहीं खरीदते हैं, तथा उन्हें इस प्रकार की रणनीतियों आदि अभिप्रेरित किया जा सकता है।

उदाहरण—बीमा की पॉलिसी, कोल्ड ड्रिंक आदि।

हानि—प्राय: गैर-जरूरी वस्तुओं को भी ग्राहक को गुमराह कर उपयोगी बताकर क्रय हेतु अभिप्रेरित कर दिया जाता है। यद्यपि यदि उपभोक्ताओं को यह प्रतीत होता है कि उसकी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि नहीं हो रही या नहीं हुयी तो वह दोबारा उन वस्तुओं को नहीं क्रय करेगा।

D. विपणन विचारधारा—'ग्राहक देवता होता है'—इस महावाक्य/महामन्त्र की नींव पर अवस्थित यह संकल्पना ग्राहकों मुखी विचारधारा के रूप में भी प्रसिद्ध है। इस विचारधारा का आरम्भ ही ग्राहक की रुचि, आवश्यकता का पता लगाने से होता है, तद्नुसार वस्तु अथवा सेवा का उत्पादन एवं सुपुर्दगी नि:संदेह उपभोक्ता को अधिकतम सन्तुष्टि प्रदान करेगी।

वस्तुत: यह महज एक संकल्पना नहीं वरन् विचारधारा की एक यात्रा है जो उत्तरी ध्रुव (बनाओ और बेचो की उत्पादन विचारधारा) से दक्षिणी ध्रुव (जरूरत का पता लगायें एवं तद्नुसार आपूर्ति एवं उत्पादन) की दूरी तय करती है। यह विक्रेताओं/उत्पादकों की मानसिकता, कार्य-पद्धति में आये व्यावहारिक एवं सकारात्मक परिवर्तन का भी द्योतक है। यह संकल्पना जहाँ एक ओर अपने उत्पादों की गुणवत्ता उचित एवं पर्याप्त वितरण माध्यम के चयन के प्रति सतर्क रहती है वहीं वह ग्राहकों के अधिकार, आवश्यकताओं के प्रति भी अपना दायित्व निभाती रहती है।

हानि—कतिपय व्यापारिक घराने शीघ्र लाभ कमाने के लघु अवधि उद्देश्य के कारण इस संकल्पना से दूरी बनाये रखते हैं।

यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि वर्तमान गलाकाट प्रतिस्पर्द्धा व उपभोक्तावाद के युग में यह संकल्पना वैश्विक रूप से स्वीकार्य है।

E. सामाजिक संकल्पना—'समाज एवं व्यवसाय साथ-साथ' इस सह-अस्तित्ववाद की भावना ने विपणन की सामाजिक विचारधारा को जन्म दिया। यह विपणन की नवीनतम विचारधारा है जो यह मानती है कि विपणन केवल एक व्यावसायिक गतिविधि ही नहीं वरन् सामाजिक आवश्यकताओं, दायित्वों से भी प्रेरित, संयुक्त होनी चाहिए। उपभोक्ता एवं जिस समाज में रह रहा है, उस समाज को पृथक-पृथक करके नहीं देखा जा सकता। व्यापक रूप से ये दोनों अपृथकनीय होते हैं। अत: विपणन की सामाजिक संकल्पनाओं के अन्तर्गत उपभोक्ता एवं समाज दोनों के हितों का संरक्षण करने का प्रयास होता है।

अन्य शब्दों में, विपणन की सामाजिक संकल्पना के अन्तर्गत निम्नलिखित को समाहित किया जा सकता है—

Scanned with CamScanner

(i) उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को ध्यान में रखना, अर्थात् विपणन का केन्द्र बिन्दु 'उपभोक्ता की आवश्यकता'।

(ii) वस्तु एवं सेवाओं की प्रभावी ढंग से आपूर्ति सुनिश्चित करना।

(iii) ग्राहक/उपभोक्ता की सन्तुष्टि के साथ-साथ सामाजिक उत्थान का वर्धन।

हानि—सामाजिक भिन्नता तथा विपणन के कतिपय सिद्धान्तों के मध्य सन्तुलन स्थापन एक अति चुनौतीपूर्ण कार्य है।

विपणन—विपणन को विभिन्न विशेषज्ञों ने अपने-अपने शब्दों में परिभाषित किया है। विपणन की कतिपय परिभाषायें निम्नलिखित हैं—

"विपणन समाज में एक जीवन-स्तर का सृजन एवं उसकी सुपुर्दगी है।" —***Paul Mazur***

अमेरिकी मार्केटिंग एसोसिएशन के अनुसार, "विपणन एक व्यावसायिक गतिविधि है, जो उत्पादक से उपभोक्ता के मध्य वस्तुओं एवं सेवाओं के प्रवाह को निर्देशित करता है।"

फिलिप कोटलर, "विपणन एक मानवीय गतिविधि है, जो विनिमय प्रक्रिया के द्वारा आवश्यकताओं एवं इच्छाओं को सन्तुष्ट करने को निर्दिष्ट होती है।"

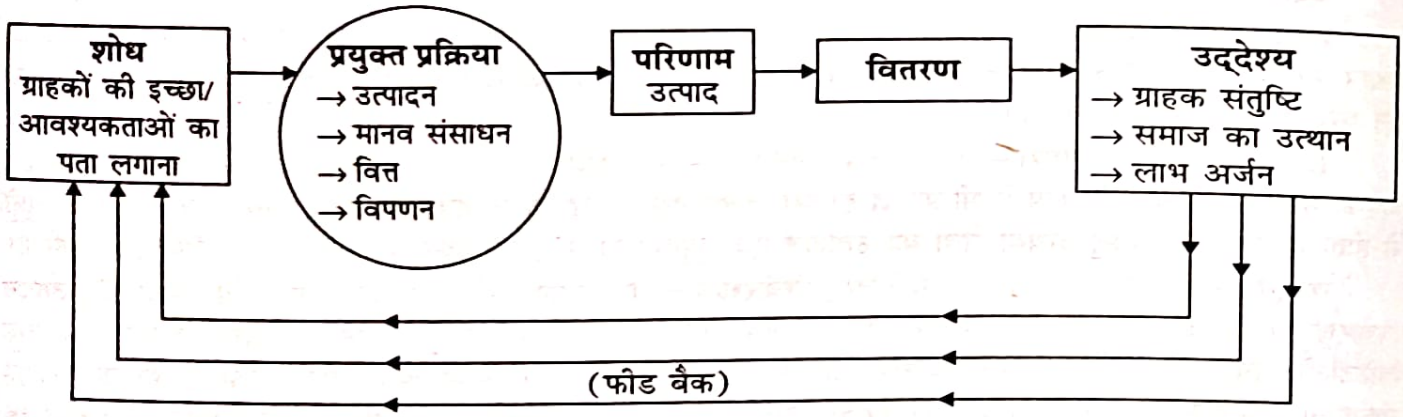
विपणन की उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर विपणन निम्नलिखित विशेषतायें विकसित की जा सकती हैं—

(i) यह उपभोक्ताओं की आवश्यकता/इच्छा को सुनिश्चित करने की क्रिया है।

(ii) यह उपभोक्ताओं की आवश्यकता/इच्छा को उत्पाद अथवा सेवा के रूप में परिवर्तित करती है।

(iii) ग्राहकों की अधिकतम सन्तुष्टि के लिये उत्पादों/सेवाओं के वितरण को सुनिश्चित करने क्रिया।

(iv) संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग द्वारा लाभ प्राप्ति की सुनिश्चितता।



चित्र - वितरण प्रणाली

विपणन सम्मिश्र—विपणन की सम्पूर्ण प्रक्रिया को प्रमुखत: चार आधारभूत तत्त्वों में विभाजित किया जा सकता है—

(a) उत्पाद, (b) मूल्य, (c) संवर्धन, (d) भौतिक वितरण।

(a) उत्पाद—उत्पाद से अभिप्राय वस्तु अथवा सेवा से है जो संगठन द्वारा आमन्त्रित की जाती है। उत्पाद सम्बन्धी निर्णयन में, निम्नलिखित को सम्मिलित किया जाता है—

- उत्पाद का आकार,
- उत्पाद की आकृति,
- उत्पाद का रंग,
- उत्पाद का वजन,
- अन्य बातें।

इन सबमें कुशल एवं प्रभावी नियोजन एवं क्रियान्वयन से उपभोक्ता को अधिकतम सन्तुष्टि प्रदान की जा सकती है, फलत: संगठन का लाभ भी बढ़ता है।

Scanned with CamScanner

(b) मूल्य—किसी उत्पाद/सेवा को प्राप्त करने हेतु क्रेता को जो भुगतान करना होता है, उसे उस वस्तु/सेवा विशेष का **'मूल्य'** कहते हैं। मूल्य में वस्तु की लागत, उपरिव्यय एवं लाभ की निर्धारित मात्रा समाहित होती है।

उदाहरण—

वस्तु की लागत = ₹ 10

उपरिव्यय = ₹ 3

लाभ की निर्धारित मात्रा = कुल लागत ₹ 13 का 10%

$$= 13 \times \frac{10}{100} = ₹\ 1.3$$

कुल लागत + लाभ की निर्धारित मात्रा

$$= 13 + 1.3 = ₹\ 14.3 \text{ (मूल्य)}$$

इस प्रकार **लागत** के **मूल्य** में परिवर्तन प्रक्रिया को समझा जा सकता है।

3. संवर्द्धन—उत्पाद के निर्माण का अन्तिम उद्देश्य उपभोक्ताओं को वस्तु/सेवा प्रदान कराकर सन्तुष्टि प्रदान करना होता है। इस हेतु यह आवश्यक है कि उपभोक्ता उन वस्तुओं/सेवाओं के लाभों को जाने, समझे। संवर्द्धन द्वारा इसे सम्भव किया जाता है। संवर्द्धन से आशय वस्तु/सेवा के लाभों से उपभोक्ता को संसूचित, सम्प्रेषित करने से है। संवर्द्धन विक्रय के पहलू को समाहित करता है। संवर्द्धन की प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित हैं—

(a) विज्ञापन,
(b) प्रचार,
(c) विक्रय-संवर्द्धन,
(d) वैयक्तिक विक्रय,

उपरोक्त चारों विधियों को संयुक्त रूप से **'संवर्द्धन-मिश्रण'** कहते हैं।

4. भौतिक वितरण—भौतिक वितरण से आशय वितरण श्रृंखला से है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित पहलुओं को सम्मिलित करते हैं—

- भण्डारण गृह
- यातायात
- सुपुर्दगी आदि।

उपरोक्त के द्वारा उत्पादक से वस्तु/सेवा की समय पर एवं सुरक्षित सुपुर्दगी उपभोक्ता को सुनिश्चित करायी जाती है।

विपणन के कार्य—विपणन क्रिया के अन्तर्गत निम्नलिखित को सम्मिलित किया जाता है—

- उपभोक्ता आवश्यकता का शोध,
- विक्रय,
- क्रय,
- यातायात,
- वित्तयन,
- जोखिम वहन,
- संवर्द्धन
- मानकीकरण,
- विभागीय बजट का निर्माण (विपणन विभाग)

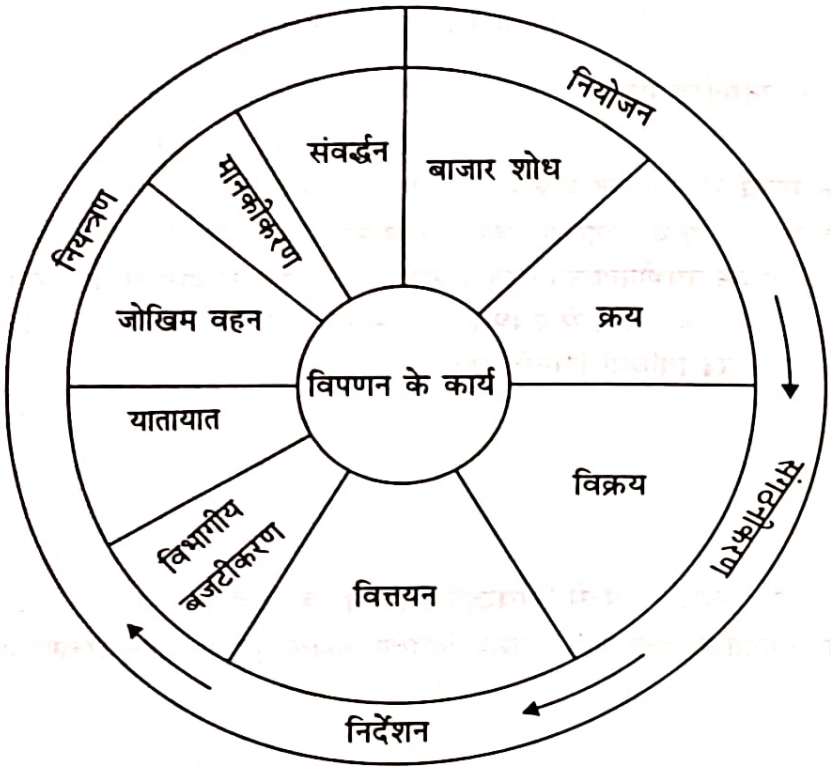
विपणन प्रबन्ध के प्रकार्य

1. विपणि शोध (बाजार शोध)—ग्राहकों को उनकी आवश्यकतानुसार, माँग के अनुरूप वस्तु/सेवा प्रदान करने हेतु यह अत्यावश्यक है कि उत्पादक उपभोक्ताओं की माँग, रुचि व आवश्यकता से पूर्णत: परिचित हों। बाजार शोध उपरोक्त हेतु

Scanned with CamScanner

एक प्रमुख अस्त्र है, जो उपभोक्ताओं को समझने हेतु उत्पादकों की सहायता करता है। बाजार शोध से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर उत्पादक अपनी बाजार नीतियों का निर्माण करते हैं।

2. क्रय—क्रय वह प्रक्रिया है जिसमें किसी वस्तु का मौद्रिक पद में स्वामित्व का हस्तान्तरण विक्रेता से क्रेता को होता है। अर्थात् वस्तु का मूल्य चुकाने के साथ ही क्रेता उस वस्तु का स्वामी हो जाता है। क्रय में अग्रलिखित गतिविधियाँ सम्मिलित होती हैं—



(a) संगठन का खरीददार (क्रेता) कौन हैं?

स्त्री/पुरुष/बच्चे/औद्योगिक क्रेता

(b) वे क्या चाहते हैं?

(c) वे कितनी मात्रा किसी उत्पाद की क्रय करेंगे?

(d) उनके क्रय का प्रकार? नकद/उधार?

(e) उनके व्यय की सीमा?

उपरोक्त का सटीक आकलन उत्पादक को अपनी विक्रय-रणनीतियों के निर्माण में सहायता करती है।

3. विक्रय—विक्रय के द्वारा उत्पाद को उत्पादक द्वारा उपभोक्ता को हस्तान्तरित/सुपुर्द किया जाता है, तथा इस प्रकार उस उत्पाद-विशेष के स्वामित्व का स्थानान्तरण होता है। विक्रय क्रिया में निम्नलिखित सम्मिलित होते हैं—

कितना विक्रय होना है।

किस प्रकार उत्पाद की सुपुर्दगी की जायेगी।

किस मूल्य पर वस्तु का विक्रय किया जायेगा।

4. वित्तयन—वित्त उस ऑक्सीजन की भाँति है, जिससे संगठन की समस्त गतिविधियों को जीवन प्राप्त होता है। संगठन की गतिविधियों में सरलता, प्रवाह लाने हेतु वित्त रूपी तरल पदार्थ अत्यावश्यक है। वित्त के अभाव में संगठन का कार्य प्रभावित होता है। फलत: कार्य में विलम्ब होता है जिससे संगठन के पूर्व-निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति बाधित होती है। वित्त का प्रबन्ध दो

Scanned with CamScanner

स्रोतों, आन्तरिक एवं बाह्य, से किया जा सकता है जिनमें प्रमुख रूप से निजी निवेश, मित्रों-सम्बन्धियों से, बैंक या निजी ऋणों को सम्मिलित किया जा सकता है।

5. परिवहन—वितरण शृंखलायें धमनियों एवं शिराओं का रूप होती है, जिनके द्वारा वस्तु/सेवा को एक स्थान से दूसरे स्थान, उत्पादक के पास से उपभोक्ता तक भेजा जा सकता है। विपणन क्रियाओं के अन्तर्गत परिवहन को प्रमुख कार्य के रूप में उल्लिखत किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत सड़क परिवहन, रेल परिवहन, वायु परिवहन, नौ परिवहन, जानवरों द्वारा परिवहन सम्मिलित किये जाते हैं।

6. विभागीय बजटीकरण—विपणन विभाग का यह कार्य होता है कि वह विपणन की विभिन्न गतिविधियों हेतु बजट का निर्माण करे। इन कार्यों के अन्तर्गत विक्रय-बल के वेतन, कमीशन, भत्ते, संवर्द्धन की गतिविधियाँ आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

7. जोखिम वहन—व्यापार में कतिपय तत्त्व ऐसे होते हैं जो अनिश्चित होते हैं, जिनसे हानि की सम्भावना रहती है, इसी को व्यापार का जोखिम कहा जाता है। जोखिम को मुख्यत: निम्नलिखित तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(a) प्राकृतिक जोखिम—इसके अन्तर्गत प्राकृतिक आपदाओं, वातावरणीय प्रभावों, यथा—बाढ़, गर्मी, ठण्ड, अतिवृष्टि, चक्रवात, अनावृष्टि को सम्मिलित किया जाता है।

(b) मानवीय जोखिम—इस श्रेणी के अन्तर्गत वे जोखिम सम्मिलित किये जाते हैं, जो मानव जनित होते हैं।

उदाहरण—सेवानिवृत्ति, मृत्यु, चोरी, बेईमानी आदि।

(c) आर्थिक जोखिम—इसमें व्यापार जनित जोखिम सम्मिलित होते हैं। यथा—समय जोखिम, स्थान जोखिम, प्रतिस्पर्धा का जोखिम।

8. मानकीकरण/श्रेणीयन—विभिन्न उत्पादों के लिए उनकी प्रकृति के आधार पर मानकीकरण आवश्यक होता है। देश में निर्मित उत्पादों हेतु 'भारतीय मानक संस्थान' (ISI) मानकीकरण चिह्न प्रदान करता है। उसी प्रकार खाद्य व कृषि पदार्थों हेतु **'एगमार्क'** प्रचलित है। विदेशों को भेजे जाने वाले पदार्थों हेतु ISO 9000, ISO 14000 प्रमाण-पत्र आवश्यक होते हैं। उपरोक्त प्रमाणन से वस्तु/सेवा की गुणवत्ता एवं विश्वसनीयता असंदिग्ध हो जाती है तथा स्वीकार्य होती है।

9. संवर्द्धन—संवर्द्धन के द्वारा विपणन संगठन वस्तु/सेवा को सम्भावित क्रेताओं के मध्य संवर्द्धित करता है, तथा यह प्रयास करता है कि यह वर्ग क्रेता वर्ग में परिवर्तित हो।

विज्ञापन, प्रचार, विक्रय-संवर्द्धन तथा व्यक्तिगत विक्रय आदि कतिपय संवर्द्धन की तकनीकें हैं, जिनका प्रयोग संगठनों द्वारा किया जाता है।

6.4 विपणन की समस्याएँ

विपणन की समस्याएँ आन्तरिक एवं बाह्य हो सकती हैं।

A. आन्तरिक विपणन समस्याएँ—विपणन की आन्तरिक समस्याओं के अन्तर्गत निम्नलिखित को सम्मिलित किया जा सकता है—

1. उत्पादों एवं वितरण का अयथोचित नियोजन,
2. उच्च-गुणवत्ता बनाये रखने का दबाव,
3. विक्रय का प्राक्कलनाधिक्य,
4. प्रशिक्षित विक्रय-शक्ति का अभाव,
5. अप्रभावी एवं अपर्याप्त संवर्द्धन कार्यक्रम,
6. कमजोर प्रतिपुष्टि प्रणाली,
7. अपर्याप्त संवर्द्धन बजट,
8. विपणन विभाग के अन्य विभागों के साथ समन्वय का अभाव।

Scanned with CamScanner

B. बाह्य विपणन की समस्याएँ—विपणन की बाह्य समस्याओं के अन्तर्गत निम्नांकित समस्याओं को सम्मिलित किया जाता है—

1. बढ़ती प्रतिस्पर्द्धा,
2. परिवर्तनशील ग्राहक वरीयता (पसंद),
3. तकनीकी परिवर्तन,
4. अज्ञात (अनिश्चित) प्राकृतिक आपदाएँ,
5. ई-वाणिज्य, मोबाईल कामर्स, टेली-मार्केटिंग, आदि से परम्परागत विपणन को प्राप्त होने वाली चुनौतियाँ,
6. विधिक बाधायें,
7. अनुचित व्यापार व्यवहार,
8. सामाजिक अपेक्षायें।

विपणन की समस्याओं को दूर करने के उपाय

A. आन्तरिक उपाय

(i) ग्राहक के आवश्यकता, वरीयता, फैशन, रुचि के अनुसार (अनुरूप) उत्पाद-योजना,
(ii) निरन्तर शोध एवं विकास के द्वारा उत्पाद की गुणवत्ता बनाये रखना,
(iii) पर्याप्त संवर्द्धन बजट का प्रदान किया जाना,
(iv) वैज्ञानिक विधियों, पद्धतियों का प्रयोग कर विक्रय-प्राक्कलन का कार्य-सम्पादन करना,
(v) विक्रय-शक्ति के प्रशिक्षण हेतु उचित एवं पर्याप्त प्रशिक्षण कार्यक्रमों का संचालन/आयोजन,
(vi) विक्रय-संवर्द्धन कार्यक्रमों को समय-समय पर अद्यतन करना,
(vii) प्रभावी प्रतिपुष्टि प्रणाली,
(viii) अन्य विभागों एवं विपणन विभाग के मध्य समन्वय स्थापित करना।

B. बाह्य समाधान

1. प्रतिस्पर्धियों की रणनीति के विश्लेषण के आधार पर कार्य-नीति का निर्माण,
2. उपभोक्ताओं के व्यवहार में होने वाली प्रत्येक परिवर्तनों को सही ढंग से विश्लेषित कर उनकी वरीयता को अपनी नीति का आधार बनाना,
3. नवीन तकनीकी (प्रौद्योगिकी) का प्रयोग करना,
4. अज्ञात आपदाओं के पूर्वानुमान की विधियों, तकनीकों का विकास,
5. आधुनिक विपणन के अस्त्रों, प्रकारों के अनुरूप परम्परागत विपणन को समायोजित करना,
6. विधिक दायित्वों को पूर्ण करना,
7. रोजगार के नवीन अवसरों को विकसित करना,
8. उचित व्यापार व्यवहारों का पालन करना,
9. समाज का जीवन-स्तर उच्च करना।

6.5 मूल्य (Price)

उत्पाद की अदला-बदली की कीमत ही मूल्य है। यह रुपयों में या अन्य मुद्राओं में अभिव्यक्त किया जाता है। मूल्य हमारे चारों ओर है, जैसे—घर का, टैक्सी का, बस का, ट्रेन का, विमान का किराया, चिकित्सक की, शैक्षिक संस्थानों का शुल्क, आय का कर, पानी तथा बिजली का प्राप्यक, प्रबन्धक की तनख्वाह, कारीगर की तनख्वाह, बेचने वाले कार्यकर्त्ता का कार्याधिकार, इत्यादि।

मूल्य, विपणन मिश्रण का तत्त्व है जो अन्य तत्त्वों से अधिक आय उत्पन्न करता है।

Scanned with CamScanner

मूल्य नीति

मूल्य नीति कार्यालय के आकार पर निर्भर करता है। छोटे कार्यालयों के लिए मूल्य ऊपरी संचालक तय करते हैं, बड़े कार्यालयों में मूल्य मंडल और उत्पाद लाइन प्रबन्धकों द्वारा तय की जाती है। उद्योग जहाँ मूल्य एक जरूरी घटक है, वहाँ यह एक अलग मूल्य निर्धारण विभाग द्वारा तय किया जाता है।

मूल्य निर्धारण के लिए निम्न उपायों को माना जाना चाहिए—

(i) मूल्य उद्देश्यों का निर्धारण
(ii) माँग का निर्धारण
(iii) लागत का आकलन
(iv) प्रतियोगी मूल्यों का विश्लेषण
(v) मूल्य पद्धति का चुनाव
(vi) अन्तिम मूल्य का निर्णय

मूल्य नीति के प्रकार—मूल्य नीति कई अलग-अलग घटकों पर निर्भर करती है, जैसे—दाम, प्रतियोगिता, विपणन मिश्रण के तत्त्व, आशाएँ तथा न्यायिक दायरा। यद्यपि मूल्य नीति निम्न श्रेणियों में वर्गीकृत की जा सकती है—

(i) लागत अभिमुखी मूल्य नीति
(ii) माँग अभिमुखी मूल्य नीति
(iii) प्रतियोगिता अभिमुखी मूल्य नीति

1. लागत अभिमुखी मूल्य नीति—इस तरीके को दाम पर आधारित मूल्य निर्धारण भी कहते हैं। इसके दो तरीके हैं—

(अ) कीमत सहित मूल्य निर्धारण।
(ब) लक्ष्य-लाभ मूल्य या सम विच्छेदन बिन्दु विश्लेषण।

(अ) कीमत सहित मूल्य निर्धारण—इस तरीके में स्थायी लागत और परिवर्तनीय लागत का उपयोग होता है। अन्तिम मूल्य ज्ञात करने के लिए इसमें अतिरिक्त राशि भी जोड़ी जाती है।

व्यापारिक मूल्य = स्थायी लागत + परिवर्तनीय लागत + अतिरिक्त राशि

उदाहरण—उत्पादन मूल्य = ₹ 100
व्यापारिक प्रचार-प्रसार मूल्य = ₹ 20
प्रबन्धन एवं वितरण मूल्य = ₹ 10
समग्र मूल्य = ₹ 140
अतिरिक्त राशि = ₹ 10
व्यापारिक मूल्य = ₹ 150

(ब) लक्ष्य-लाभ मूल्य या विच्छेदन बिन्दु विश्लेषण—विच्छेदन विश्लेषण बिन्दु उत्पाद का वह पायदान है जिसमें कुल विक्रय आय, उत्पादन मूल्य के बराबर होती है। साफ शब्दों में विच्छेदन, विश्लेषण बिन्दु, उत्पादन का वह पायदान है जिसमें व्यापारिक संघ को न लाभ होता है न ही हानि होती है।

$$\text{विच्छेदन विश्लेषण बिन्दु} = \frac{\text{सम्पूर्ण स्थायी लागत}}{\text{हर समूह का स्थायी लागत का योगदान}}$$

$$\text{वि० वि० बि०} = \frac{F}{P - V}$$

उदाहरणस्वरूप—एक जूता बनाने वाली कम्पनी का निम्न खर्च है—

जूतों का स्थायी लागत = ₹ 1,60,000
औसत परिवर्तनीय लागत = ₹ 16 (एक जूते का)

Scanned with CamScanner

जूतों का बिक्री मूल्य = ₹ 24 (हर जूता)

विच्छेदन विश्लेषण बिन्दु ढूँढिये।

$$\frac{F}{P-V} = \frac{160000}{24-16}$$

20000 जूते कम्पनी को हर हाल में बनाने पड़ेंगे। इस पायदान पर कम्पनी को न तो लाभ होगा न ही हानि। इस बिन्दु के ऊपर जाने पर कम्पनी को लाभ होगा और नीचे जाने पर हानि होगी।

अगर कम्पनी को ₹ 10000 का लाभ चाहिए तो उसे कितने जूते बेचने पड़ेंगे?

अभिलाषित लाभ के लिए, बिक्री मूल्य का परिकलन

$$\frac{\text{स्थायी लागत + अभिलाषित लाभ}}{\text{हर समूह का बिक्री मूल्य – औसतन परिवर्तनीय मूल्य}} = \frac{160000+100000}{24-16}$$

$$= \frac{260000}{8} = 32500 \text{ जूते}$$

कम्पनी को यदि ₹ 10000 का लाभ कमाना है तो उसे 32500 जूते बनाने पड़ेंगे।

कुल बिक्री मूल्य = $32500 \times 24 =$ ₹ 78000

विच्छेदन विश्लेषण बिन्दु को दर्शाने वाले तथ्य

	उत्पादन (मात्रकों में)	कुल लागत (स्थायी लागत + परिवर्तनीय लागत)	कुल बिक्री मूल्य	लाभ/हानि (₹ में)
1.	10000	160000 + 160000 = 320000	240000	–80000 (हानि)
2.	15000	160000 + 240000 = 400000	360000	–40000 (हानि)
3.	20000	160000 + 320000 = 480000	480000	विच्छेदन विश्लेषण बिन्दु
4.	30000	160000 + 480000 = 640000	720000	80000 (लाभ)
5.	32500	160000 + 520000 = 680000	780000	100000 (लाभ)

20000 जूते, विच्छेदन विश्लेषण बिन्दु हैं। इस पायदान पर कम्पनी को न ही लाभ होगा और न ही हानि होगी। वि० वि० बि० के नीचे जाने पर कम्पनी को हानि होगी तथा ऊपर जाने पर कम्पनी को लाभ होगा।

आरेख 1. विच्छेदन विश्लेषण बिन्दु का लेखा

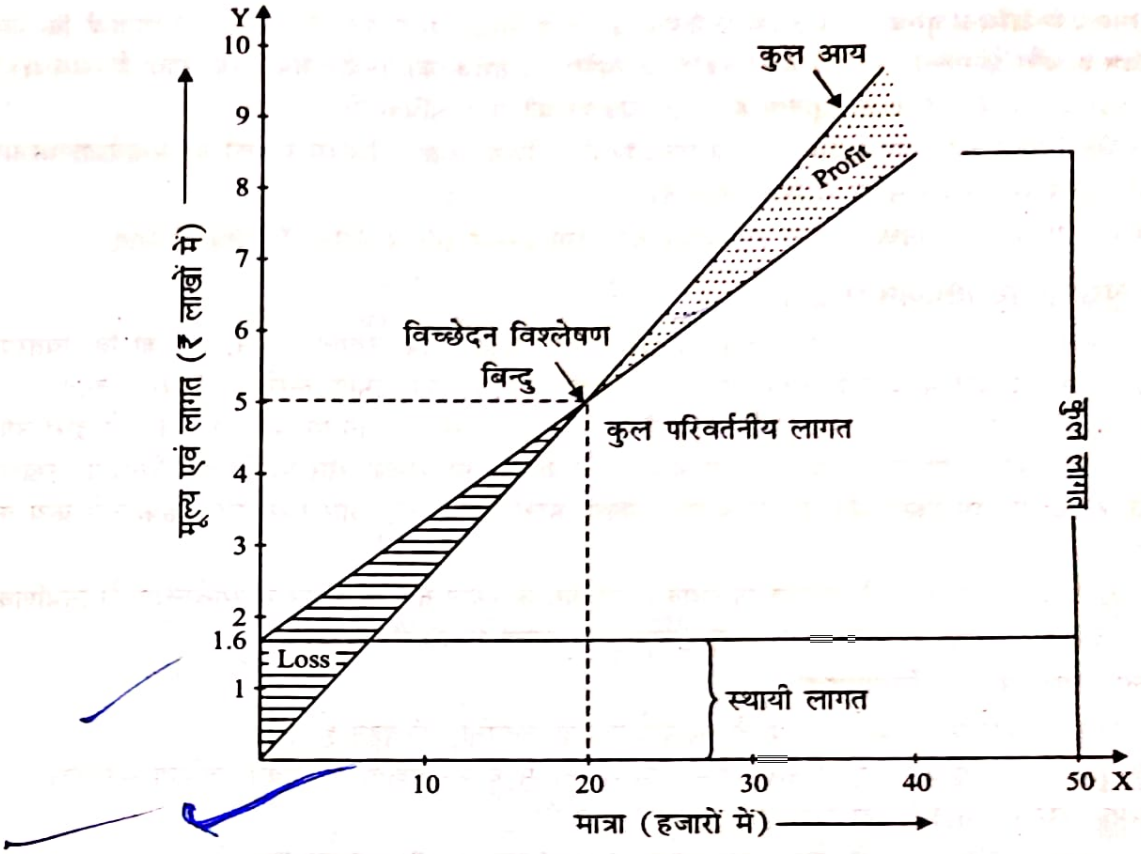
कमियाँ—विच्छेदन विश्लेषण बिन्दु की सबसे बड़ी खामी यह है कि इसमें परिवर्तनीय लागत एवं स्थायी लागत को उत्पादन के सभी पायदानों पर एक समान ही माना जाता है। यह पूर्वानुमान कुछ ही उत्पादों के लिए सही है, सभी उत्पादों के लिए नहीं।

यद्यपि विच्छेदन बिन्दु विश्लेषण मूल्य तथा मात्रा के अलग-अलग विकल्पों के प्रभाव को दर्शाता है। यह ये भी बतलाता है कि कम्पनी को उत्पादन जारी रखना चाहिए या बन्द कर देना चाहिए।

माँग अभिमुखी मूल्य नीति—यह मूल्य नीति माँग व पूर्ति के नियमों पर आधारित है। यह ये दर्शाता है कि जब मूल्य घटता है तब माँग बढ़ जाती है या जब मूल्य बढ़ता है तब माँग घट जाती है।

साफ शब्दों में कहा जाये तो किसी उत्पाद की माँग बढ़ने पर उसके लिए अधिक मूल्य लिया जाता है और माँग घटने पर उसके लिए कम दाम लिया जाता है, चाहे दोनों स्थितियों में मूल्य एकसमान हो।

Scanned with CamScanner



इस स्थिति में मूल्य निर्धारण के दो तरीके हैं—

(अ) भिन्न मूल्य

(ब) अनुभव आधारित मूल्य।

(अ) भिन्न मूल्य—इसके अन्तर्गत हर ग्राहक या ग्राहकों के समूह के लिए अलग-अलग मूल्य लिया जाता है। यह सौदेबाजी की क्षमता, उत्पाद के बारे में जानकारी तथा पैसे देने की क्षमता पर निर्भर करता है।

उदाहरण—भारतीय रेल विभाग में हर डिब्बे, जैसे-वातानुकूलित, सामान्य, शयन के लिए अलग-अलग मूल्य लिया जाता है।

(ब) अनुभव आधारित मूल्य—यह तरीका अलग-अलग व्यक्तियों के अनुभव, जैसे—उत्पाद की गुणवत्ता, रंग, मात्रा, खूबियाँ, आदि पर आधारित है।

उदाहरण—एक चाय की प्याली का मूल्य हर वर्ग के भोजनालय में अलग होती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि, हर व्यक्ति का अनुभव अलग होता है।

3. प्रतियोगी अभिमुखी मूल्य नीति—इस तरीके में उत्पाद का मूल्य निर्धारण, वही उत्पाद बेचने वाले प्रतियोगी के मूल्य के हिसाब से होती है।

उदाहरण—अगर पेप्सी, 200 मिली० की बोतल के लिए अगर ₹ 12 का मूल्य लेती है, तो कोका-कोला भी 200 मिली० बोतल के लिए उतना ही मूल्य लेगी।

4. अन्य मूल्य नीति—निम्न मूल्य नीतियाँ भी प्रचलन में हैं—

(अ) प्रवेश मूल्य—इस तरीके में, उत्पाद का मूल्य प्रतियोगी के मूल्य से कम तय किया जाता है। इसका लक्ष्य है, बाजार के एक खास वर्ग पर कब्जा करना इसका उपयोग, नये उत्पाद के उत्पादन में भी किया जा सकता है। प्रारम्भ में, इसका मूल्य तथा लाभ को कम रखा जाता है जिसका मूल लक्ष्य बाजार में माँग को लम्बे समय तक बनाये रखना है।

Scanned with CamScanner

(ब) सामान्य से अधिक मूल्य—इस तरीके में उत्पाद का मूल्य अधिक रखा जाता है। लक्ष्य यही रहता है कि प्रारम्भ से ही अधिक लाभ हो और प्रतियोगी बढ़ने पर मूल्य घटाया जा सके। इस तरीके का उपयोग तब किया जाता है, जब (i) जब एकाधिकार हो, (ii) उत्पाद की अलग ही खुबियाँ हों, (iii) ग्राहकों की माँग अधिक हो।

(स) मनोवैज्ञानिक मूल्य—इस तरीके में, ऐसा मूल्य निर्धारित किया जाता है जिससे ग्राहकों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़े। मनोवैज्ञानिक मूल्य को विचित्र मूल्य भी कहा जाता है।

उदाहरण—बाटा का मूल्य निर्धारण कुछ इस प्रकार का रहता है—₹ 99, ₹ 199, ₹ 499, ₹ 999

6.6 वितरण श्रृंखला एवं विपणन पद्धतियाँ

वितरण विपणन मिश्रण का एक प्रमुख तत्त्व है। जैसा कि हम जानते हैं कि उत्पाद, स्थान, मद जो कि वितरण से सम्बन्धित है, मूल्य तथा संवर्द्धन ये चारों मिलकर विपणन-सम्मिश्र (मिश्रण) का निर्माण करते हैं। किसी उत्पाद/सेवा की सफलता, उपयोगिता तथा प्रभावशीलता इस पर निर्भर करती है कि वह उत्पाद/सेवा कितने ग्राहकों, उपभोक्ताओं द्वारा उपयोग में लायी जा रही है और इसके लिए यह आवश्यक है कि वह उत्पाद ग्राहकों तक समयानुसार पहुँचे, यही वितरण-श्रृंखला के महत्व को दर्शाता है। उत्पाद उस स्थान और उस मूल्य पर उपलब्ध होना चाहिए जहाँ और जिस पर ग्राहक उसे क्रय करना पसन्द करता हो।

वितरण-श्रृंखला वस्तुओं/सेवाओं के निर्माण के स्थान में उपभोग के स्थान तक के प्रवाह से सम्बन्धित है। निर्माणकर्त्ता, मध्यस्थ, सहायक अभिकरण तथा उपभोक्ता इस प्रवाह (यात्रा) के प्रमुख पड़ाव हैं।

वितरण-श्रृंखला (माध्यम) की विशेषताएँ

1. यह भौतिक वितरण की व्यवस्था करता है। सामान लादना-उतारना, परिवहन इत्यादि।
2. यह वस्तुओं के स्वामित्व का स्थानान्तरण है—निर्माणकर्त्ता से थोक-विक्रेता—फुटकर-विक्रेता—ग्राहक)
3. यह समय, स्थान तथा अधिकार उपयोगिता सृजित करता है।
   - 3.1 जब वस्तुयें चाहिए होती हैं, उस समय उनको उपलब्ध करवाता है।—समय उपयोगिता
   - 3.2 वस्तुओं के निर्माणकर्त्ता (उत्पादक) से उपभोक्ता तक के प्रवाह को सम्भव करता है—स्थान उपयोगिता
   - 3.3 यह उत्पादक से उपभोक्ता को (तक) स्वामित्व का स्थानान्तरण करता है।—अधिकार उपयोगिता

वितरण-श्रृंखला के कार्य—वितरण-श्रृंखला तीन प्रकार के कार्यों का सम्पादन करती है—

1. लेन-देन (अंतरण) सम्बन्धी कार्य—वस्तुओं के प्रवाह हेतु लेन-देन सम्बन्धी कार्य आवश्यक है। समान क्रेता एवं विक्रेताओं द्वारा क्रय एवं विक्रय किये जाते हैं। यह वस्तुओं के प्रवाह एवं उनके स्वामित्व में परिवर्तन को प्रभावित करता है। क्रय, विक्रय, जोखिम-वहन तथा वित्तयन आदि कार्यों को लेन-देन सम्बन्धी कार्यों के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

2. ढुलाई सम्बन्धी कार्य—एकत्रण (संग्रहण), भण्डारण, मानकीकरण, श्रेणीयन तथा परिवहन आदि कार्य वितरण के अन्तर्गत आते हैं। ये भौतिक वितरण ढुलाई कार्य कहलाता है। उत्पाद के निर्मित करने का प्रधान लक्ष्य उसे उपभोक्ता तक पहुँचाता है। उत्पादक से उपभोक्ता तक के मध्य अनेक श्रृंखला (मध्यस्थ) होते हैं, जो इस वितरण कार्य को सम्पादित करते हैं। इस कार्य में अनेक स्तरों पर संग्रहण सुविधा तथा परिवहन की व्यवस्था की आवश्यकता होती है जिसका प्रबन्ध उचित प्रकार से किया जाना चाहिए। इस यात्रा में जोखिम भी सम्मिलित रहता है। संवेष्ठन तथा श्रेणीकरण भी इस कार्य के प्रमुख भाग हैं। समेकित रूप से ये सभी वितरण-श्रृंखला के ढुलाई सम्बन्धी कार्य कहलाते हैं।

3. सहायक कार्य/सुविधा प्रदायक कार्य—ये वे कार्य होते हैं जो अंतरण सम्बन्धी तथा ढुलाई सम्बन्धी कार्यों को सम्पादित करने में सहायता (सुगमता) करते हैं। प्रति-पुष्टि, विक्रय-पश्चात् सेवाएँ, अनुरक्षण वित्त तथा नवीन बाजार सूचनाएँ इत्यादि प्रमुख सहायक कार्य हैं।

वितरण-माध्यम (श्रृंखला) के प्रकार—वितरण-श्रृंखला को दो बड़े वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

a. प्रत्यक्ष-वितरण माध्यम

b. अप्रत्यक्ष-वितरण माध्यम

Scanned with CamScanner

a. प्रत्यक्ष वितरण माध्यम—जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि इस माध्यम के अन्तर्गत उत्पादक/निर्माता सीधे उपभोक्ता को वस्तु/सेवा का विक्रय करता है तथा इन दोनों के मध्य कोई मध्यस्थ सम्मिलित नहीं होता है। वितरण हेतु समस्त सुविधाएँ उत्पादक ही व्यवस्थित करता है।

लाभ (Merits)

(i) ग्राहक से उत्पादक का प्रत्यक्ष सम्पर्क,
(ii) मध्यस्थों की समाप्ति,
(iii) मूल्य आपूर्ति आदि के त्वरित निर्णय सम्भव,
(iv) अविभाजनीय (सम्पूर्ण) लाभ,
(v) विक्रय-शक्ति पर पूर्ण नियन्त्रण।

हानि (Demerits)

(i) मध्यस्थों की विशेषज्ञ सेवाओं का अभाव,
(ii) समस्त वितरण का सम्पूर्ण दायित्व उत्पादक का,
(iii) समस्त जोखिम का स्वयं वहन,
(iv) सीमित वितरण केन्द्र।

हालांकि यह सत्य है कि उपरोक्त व्यवस्था (प्रत्यक्ष वितरण माध्यम) में कतिपय दोष व्याप्त हैं, किन्तु यह एक तथ्य है कि लघु तथा दीर्घ कम्पनी इस माध्यम का प्रयोग कर रही है।

उदाहरणार्थ—बाटा कम्पनी अपने उत्पादों को स्वयं अपने शोरूम (विक्रय केन्द्रों) के माध्यम से ग्राहकों तक पहुँचाती है। इसी कड़ी में एम-वे का भी नाम लिया जा सकता है।

b. अप्रत्यक्ष वितरण माध्यम—इस वितरण माध्यम के अन्तर्गत उत्पादक मध्यस्थों की सेवाएँ लेता है। ये मध्यस्थ वितरक, डीलर, स्टाकिस्ट, थोक-विक्रेता, फुटकर-विक्रेता, प्रतिनिधि, दलाल आदि रूपों में व्याप्त होते हैं। अन्य शब्दों में अप्रत्यक्ष वितरण माध्यम के अन्तर्गत उत्पादक, उपभोक्ताओं से प्रत्यक्ष नहीं वरन् मध्यस्थों के माध्यम से सम्पर्क स्थापित करता है।

लाभ (Merits)

(i) विशेषज्ञ सेवा मध्यस्थों के माध्यम से प्राप्त करना,
(ii) मध्यस्थों से श्रेष्ठतर स्थानीय सम्पर्कों का लाभ,
(iii) उत्पादक वितरण के दायित्व से मुक्त होकर उत्पादन पर ध्यान संकेन्द्रित कर सकता है।
(iv) जोखिम में मध्यस्थ भी साझेदार होता है।
(v) रोजगार अवसरों को बढ़ाता है।

हानि (Demerits)

(i) अधिक मध्यस्थ मूल्य वृद्धि के कारण होते हैं।
(ii) ग्राहकों से प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं हो पाता।
(iii) वितरण हेतु मध्यस्थों पर निर्भरता,
(iv) सुपुर्दगी में विलम्ब,
(v) मूल्य-वृद्धि सरल नहीं होती।

उपरोक्त अवगुणों के बावजूद वितरण के कार्यों के 80% से अधिक कार्यों का सम्पादन इस वितरण-शृंखला के द्वारा किया जाता है।

अप्रत्यक्ष वितरण माध्यम के प्रकार—इस माध्यम में उत्पादक एवं उपभोक्ता के मध्य विभिन्न मध्यस्थ रहते हैं। मध्यस्थों की संख्या व्यवसाय की प्रकृति, आकार, आदि कारणों से भिन्न-भिन्न हो सकती है, किन्तु कतिपय प्रमुख मध्यस्थ अग्रलिखित हैं—

Scanned with CamScanner

(i) उत्पादक → वितरक → डीलर → उपभोक्ता
(ii) उत्पादक → थोक विक्रेता → उपभोक्ता
(iii) उत्पादक → थोक विक्रेता → फुटकर विक्रेता → ग्राहक
(iv) उत्पादक → प्रतिनिधि → थोक विक्रेता → फुटकर विक्रेता → ग्राहक

विपणन की पद्धतियाँ—यह एक व्यापक पद है जो विज्ञापन, विक्रय-संवर्द्धन, व्यक्तिगत विक्रय तथा वितरण माध्यमों को समाहित करता है। विज्ञापन, ध्यान, रुचि, इच्छा तथा क्रय-क्रिया के सृजन हेतु प्रयुक्त किया जाता है। विक्रय-संवर्द्धन तात्कालिक विक्रय-वृद्धि हेतु प्रयुक्त किया जाता है, तथा इस हेतु छूट, उपहार, कूपन आदि का प्रयोग करता है। व्यक्तिगत विक्रय के अन्तर्गत उपभोक्ताओं से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित कर विक्रय कार्य किया जाता है। वितरण-शृंखला उत्पादक से उपभोक्ता तक वस्तुओं/सेवाओं के प्रवाह का माध्यम है।

विधियाँ—जैसा कि हम जानते हैं कि विपणन की दो विधियाँ—प्रत्यक्ष विपणन पद्धति एवं अप्रत्यक्ष विपणन पद्धति है।

प्रत्यक्ष-विपणन पद्धति—जब उत्पादक विक्रय हेतु आवश्यक कार्यवाहियों यथा: विज्ञापन, विक्रय संवर्द्धन, व्यक्तिगत विक्रय तथा वितरण-शृंखलाओं का प्रबन्ध स्वयं करता है तो इसे 'प्रत्यक्ष विपणन' कहते हैं। प्रत्यक्ष-विपणन निम्नलिखित रीतियों से सम्पादित हो सकता है—

1. स्वयं की विक्रय-शक्ति—इसमें उत्पादक की अपनी स्वयं की विक्रय-शक्ति होती है जो सम्भावित क्रेताओं से सम्पर्क करते हैं, उन्हें सहमत करते हैं तथा वस्तुओं/सेवाओं का विक्रय करते हैं।

2. डाक द्वारा—इसमें उपभोक्ता पत्रों के माध्यम से उत्पाद के सम्बन्ध में सूचित किये जाते हैं तथा वस्तुओं की सुपुर्दगी भी डाक द्वारा ही होती है।

3. दूरभाष द्वारा—ग्राहकों से दूरभाष के माध्यम से सम्पर्क किया जाता है, सौदेबाजी भी दूरभाष पर ही होती है तथा तत्पश्चात् सामान की सुपुर्दगी होती है।

4. विक्रय-मशीन—ये मशीनें स्वचालित होती हैं, अर्थात् निर्धारित मूल्य का सिक्का इसमें रखने पर यह उतने मूल्य की सेवा या उत्पाद दे देती है।

उदाहरण—भार लेने की मशीन, ठंडा पेय लेने हेतु कम्पनी द्वारा लगायी गयी मशीन आदि।

5. ऑन-लाइन विधि—इसके अन्तर्गत कम्प्यूटर, लैपटॉप, मोबाइल फोन के प्रयोग से विपणन की क्रियाओं का सम्पादन होता है।

लाभ (Merits)

1. सम्भावित क्रेताओं से प्रत्यक्ष सम्पर्क,
2. विक्रय पर पूर्ण नियन्त्रण उत्पादक का रहता है,
3. मध्यस्थों के न रहने के कारण वस्तु/सेवा का मूल्य अल्प होता है,
4. अधिक निवेश की आवश्यकता नहीं पड़ती,
5. ग्राहकों के लिए सरल माध्यम,
6. विपणनकर्ता को पूरा लाभ।

हानि (Demerits)

1. क्रय-पूर्व वस्तु निरीक्षण का कार्य उपभोक्ता द्वारा नहीं किया जा सकता,
2. पारम्परिक ग्राहकों का विश्वास पाने में विलम्ब,
3. समस्त संसाधनों की पूर्ति का दायित्व विपणनकर्ता का,
4. जोखिम का सम्पूर्णत: वहन करने का दायित्व विपणनकर्ता का ही होता है।

अप्रत्यक्ष विपणन—जब उत्पादक अन्य कार्यों यथा—विज्ञापन, विक्रय-संवर्द्धन, व्यक्तिगत विक्रय तथा वितरण हेतु अन्य स्रोतों की सहायता लेता है तो यह 'वितरण का अप्रत्यक्ष माध्यम' कहा जाता है। इसमें उत्पादक तथा उपभोक्ता के अतिरिक्त मध्यस्थ एक तृतीय पक्ष के रूप में विद्यमान रहते हैं।

Scanned with CamScanner

विधियाँ

1. व्यावसायिक विज्ञापन अभिकरण—कम्पनी (उत्पादक) व्यावसायिक विज्ञापन अभिकरणों के माध्यम से उत्पादन विक्रय कार्य सम्पादित करवा सकता है।

2. वितरक/डीलर/थोक-विक्रेता सेवा—इस माध्यम के अन्तर्गत उत्पादक यथा आवश्यक वितरक/ डीलर/ थोक-विक्रेता की सहायता से विक्रय सम्बन्धी कार्यों का सम्पादन करता है।

3. फुटकर-विक्रेताओं की सेवा—आवश्यकतानुसार (यथोचित अनुभव करने पर) उत्पादक फुटकर विक्रेताओं की भी सेवा लेकर विक्रय-कार्यों का सम्पादन कर सकता है।

4. प्रतिनिधि/दलाल की सेवा—इसके अन्तर्गत कम्पनी की ओर से उसके प्रतिनिधि अथवा दलाल सम्भावित क्रेताओं से सम्पर्क करते हैं।

लाभ (Merits)

1. तृतीय पक्ष की विशेषज्ञ सेवाओं का लाभ प्राप्त होता है।
2. जोखिम में तृतीय पक्ष भी साझेदार होता है।
3. उत्पादक इन तृतीय पक्षों से पूर्व (अन्तिम) धन जमा कर सकता है।
4. उपभोक्ता उत्पादों के विषय में जानकारी रखता है।

हानि (Demerits)

(i) उपभोक्ताओं से प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं होता,
(ii) उत्पादों का मूल्य अधिक होता है,
(iii) लाभ में तृतीय पक्षों की भी हिस्सेदारी,
(iv) विपणन-गतिविधियों पर पूर्ण नियन्त्रण उत्पादक मात्र का ही नहीं होता।

सारांश

कुछ दोषों, गुणों के साथ दोनों पद्धतियाँ व्यवहारत: प्रचलित हैं। अपनी-अपनी आवश्यकतानुसार कम्पनियाँ इन पद्धतियों को अपनाती हैं। कुछ अप्रत्यक्ष विधि को, कुछ प्रत्यक्ष विधि तो कुछ इन दोनों के मिश्रण को अपनाकर विक्रय-कार्य का सम्पादन करती हैं।

प्रश्नावली

1. विक्रय विभाग से आप क्या समझते हैं? विक्रय विभाग के विभिन्न कार्यों का भी वर्णन कीजिए।
2. विक्रय बल की विक्रय पद सोपान/विक्रय संरचना में क्या स्थिति है?
3. विक्रय विभाग के प्रशासनिक, प्रबंधकीय एवं परिचालन कार्यों का वर्णन कीजिए।
4. विक्रय विभाग द्वारा निष्पादित विभिन्न कर्तव्यों का वर्णन कीजिए।
5. विक्रय पूर्वानुमान की संकल्पना का वर्णन कीजिए। इससे क्या लाभ हैं? तथा विक्रय पूर्वानुमान द्वारा कौन से निर्णय लिए जा सकते हैं?
6. अल्पावधिक एवं दीर्घावधि विक्रय पूर्वानुमान में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
7. विक्रय पूर्वानुमान की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिए।
8. विक्रय-संवर्द्धन को परिभाषित कीजिए। विक्रय संवर्द्धन के उद्देश्यों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
9. विक्रय-संवर्द्धन की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिए।
10. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—
    (a) उपभोक्ता विक्रय-संवर्द्धन

Scanned with CamScanner

(b) व्यापार विक्रय-संवर्द्धन
(c) विक्रय-बल विक्रय-संवर्द्धन।

11. विज्ञापन के आइडा (AIDA) सिद्धान्त का वर्णन कीजिए। विज्ञापन के विभिन्न आवश्यक तत्व क्या हैं?
12. 'विज्ञापन' की संकल्पना का वर्णन कीजिए। विज्ञापन के विभिन्न प्रकार क्या हैं?
13. विज्ञापन माध्यमों के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।
14. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—
    (a) प्रेस-माध्यम (पत्रकार)
    (b) बाहरी माध्यम (मीडिया)
    (c) प्रत्यक्ष पत्र-माध्यम
    (d) दूरदर्शन एवं इण्टरनेट
15. 'विज्ञापन-प्रति' को परिभाषित कीजिए। विज्ञापन-प्रति के विभिन्न आवश्यक तत्व क्या हैं?
16. विक्रय पश्चात सेवाएँ क्यों आवश्यक हैं? विशेषत: तकनीकी उत्पादों के संदर्भ में व्याख्या कीजिए।
17. विक्रय-पश्चात सेवाओं की विशेषताओं तथा महत्व को बताइए।
18. 'बाजार' पद को परिभाषित कीजिए तथा बाजार के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।
19. 'उपभोक्ता बाजार' एवं 'औद्योगिक बाजार' के मध्य अन्तर स्पष्ट कीजिए।
20. विपणन की संकल्पना की व्याख्या कीजिए।
21. विपणन के चार P_s से क्या तात्पर्य है? विपणन प्रणाली की प्रक्रिया का भी वर्णन कीजिए।
22. विपणन को परिभाषित कीजिए। इसके विभिन्न कार्य क्या हैं?
23. विपणन की समस्याओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए। विपणन समस्याओं को दूर करने हेतु अपने सुझाव दीजिए।
24. विपणन में कीमत से क्या आशय है? मूल्य निर्धारण हेतु क्या चरण अपनाये जाने चाहिए?
25. विभिन्न 'मूल्य नीति' का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
26. निम्नलिखित आँकड़ों से सम-विच्छेद बिन्दु प्राप्त कीजिए—
    (i) स्थिर लागत — ₹ 8,000
    (ii) औसत परिवर्तनशील लागत — ₹ 8.0 प्रति इकाई
    (iii) विक्रय मूल्य — ₹ 12 प्रति इकाई
27. उचित उदाहरण की सहायता से 'सम विच्छेद बिन्दु' सिद्धान्त का वर्णन कीजिए।
28. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—
    (a) लागत-उन्मुख मूल्यन
    (b) माँग-उन्मुख मूल्यन
    (c) प्रतिस्पर्द्धा-उन्मुख मूल्यन
29. अन्तर कीजिए—
    (a) प्रवेश मूल्य नीति
    (b) मलाई उतारना मूल्य नीति
30. वितरण शृंखला से आप क्या समझते हैं? वितरण शृंखला के विभिन्न कार्यों का वर्णन कीजिए।
31. वितरण के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष माध्यम का वर्णन कीजिए। प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष वितरण माध्यमों के लाभ एवं हानि का भी वर्णन कीजिए।
32. प्रत्यक्ष विपणन एवं अप्रत्यक्ष विपणन की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिए।

O

Scanned with CamScanner

अध्याय-7

श्रम विधान अधिनियम (यथा संशोधित)

[Labour Legislation Act (Amended)]

* *भारतीय कारखाना अधिनियम, 1948, कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923, प्रशिक्षु अधिनियम, 1961, भविष्य निधि अधिनियम, औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948, मजदूरी भुगतान अधिनियम 1936, बौद्धिक सम्पदा अधिकार अधिनियम।*

7.1 भारतीय कारखाना अधिनियम 1948 (The Indian Factory Act, 1948)

कारखाना अधिनियम, कारखानों में कार्यरत कर्मचारियों के हितों की रक्षा करता है, कार्यकारी दशाओं का नियन्त्रण करता है तथा उनके कल्याण सम्बन्धी उद्देश्यों की पूर्ति करता है।

इस अधिनियम को भारत के गवर्नर जनरल द्वारा 23 सितम्बर, 1948 को पारित किया गया तथा 1 अप्रैल, 1949 को इसे लागू किया गया। इस अधिनियम को बाद में सन् 1950, 1951, 1952 तथा 1976 में संशोधित किया गया। यह अधिनियम भारत में ऐसे किसी भी कारखाने पर लागू होता है जिसमें दस या उससे अधिक कर्मचारी कार्यरत हों।

लक्ष्य तथा उद्देश्य (Aims and Objectives)

कारखाना अधिनियम के उद्देश्य निम्न हैं—

(i) इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य कारखानों में कार्यरत श्रमिकों/कर्मचारियों को औद्योगिक आपदाओं से सुरक्षा प्रदान करना तथा उत्तम व सुरक्षित कार्यकारी दशाओं को सुनिश्चित करना है।

(ii) कारखाने के अन्दर चलने वाली विभिन्न सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं कल्याण सम्बन्धी गतिविधियों पर नियन्त्रण करना एवं उनकी समुचित देखभाल करना।

(iii) यह कार्य घण्टों, विश्राम घण्टों, बच्चों एवं नाबालिगों के नियोजन, महिलाओं के नियोजन, सवेतन आदि गतिविधियों पर भी नियन्त्रण करता है और उनकी समुचित देखभाल करता है।

कारखाना अधिनियम के प्रमुख प्रावधानों का अध्ययन करने से पूर्व कुछ महत्वपूर्ण पदों की परिभाषा जानना आवश्यक है—

(i) कारखाना (Factory)—"फैक्ट्री से तात्पर्य जिसमें 10 या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं, या पिछले बारह महीनों में किसी भी दिन कार्य किया हो तथा उत्पादन प्रक्रम में कहीं भी शक्ति (Power) का प्रयोग होता हो या जिससे 20 या अधिक श्रमिक काम करते हैं या पिछले 12 महीने में किसी भी दिन कार्य किया हो तथा उसमें शक्ति का प्रयोग नहीं होता" इसके अन्तर्गत वे खानें नहीं आतीं जो खान अधिनियम 1952 (Mines Act 1952) के अन्तर्गत आती हैं तथा रेलवे रनिंग रोड भी इसके अन्तर्गत नहीं आते। अन्य शब्दों में, एक प्रबन्ध तन्त्र के अधीन एक ऐसा परिस्थान अथवा कार्यक्षेत्र, जहाँ 10 या अधिक कर्मचारी कार्य करते हैं और जहाँ किसी भी प्रकार के शक्ति स्रोत जैसे विद्युत, भाप, तेल आदि का प्रयोग होता है,

Scanned with CamScanner

कारखाना कहलाता है। इसके अतिरिक्त बिना किसी शक्ति स्रोत के जहाँ 20 अथवा अधिक व्यक्ति कार्य करते हों, वह कार्य स्थल भी कारखाना कहलाता है।

(ii) फैक्ट्री की अधिष्ठाता (Occupier of Factory)—"ऐसा व्यक्ति जो फैक्ट्री के सभी मामलों का अन्तिम रूप से निर्णायक हो या ऐसा व्यक्ति जिसे फैक्ट्री के प्रबन्ध एजेन्ट (Managing Agent) के रूप में फैक्ट्री के मामलों पर निर्णय लेने का काम दिया गया हो, फैक्ट्री का अधिष्ठाता कहलाता है।" प्रत्येक अधिष्ठाता का कर्त्तव्य है कि जहाँ तक सम्भव हो श्रमिक जब तक फैक्ट्री में अपने कार्य पर रहते हैं, उनके स्वास्थ्य, सुरक्षा व कल्याण के बारे में उचित व्यवस्था करें। अन्य शब्दों में एक अधिष्ठाता वह होता है जो उद्योग अथवा कारखाने की गतिविधियों के ऊपर अन्तिम रूप से नियन्त्रण रखता है।

(iii) विनिर्माण प्रक्रिया (Manufacturing Process)—"किसी वस्तु या पदार्थ का उपयोग करने, विक्रय करने, स्थानान्तरण करने, प्रेषित करने या वितरण करने के उद्देश्य से बनाना, साफ करना, परिवर्तित करना, मरम्मत करना, अलंकारित करना, सजाना, तेल देना, धोना, तोड़ना, फोड़ना अथवा उद्देश्य पूर्ति हेतु कुछ भी अन्य क्रियायें करना आदि इस प्रकार से किया गया विनिर्माण प्रक्रिया कहलाता है।" जैसे—तेल, पेय जल, सीवेज को पम्प से उठाना, निकालना, फैंकना, विद्युत शक्ति का उत्पादन, रूपान्तरण, वितरण, छापना, फोटो खींचना, जिल्द बनाना, जहाज, रेल के इन्जन, जलयान बनाना, मरम्मत करना, फेर-बदल करना आदि। स्पष्ट शब्दों में एक विनिर्माण प्रक्रिया में निम्न को शामिल किया जाता है—

(a) किसी वस्तु को बनाने, परिवर्तन करने, मरम्मत अथवा अलंकृत करने, परिष्कृत पैकिंग, लेन देन, अनुरक्षण, धोने, साफ करने, तोड़ने अथवा क्षय करने अथवा उद्देश्य की पूर्ति हेतु अन्य कोई भी क्रिया करना है।
(b) पेय जल, तेल, गन्दे पानी को पम्प द्वारा उठाना, निकालना, फेंकना आदि।
(c) विद्युत शक्ति का उत्पादन, रूपान्तरण अथवा वितरण करना।
(d) छापना (Printing), लिथोग्राफी, जिल्द बाँधना, फोटो खींचना आदि।
(e) पानी के जहाज अथवा पात्रों को बनाना, फेर-बदल करना, मरम्मत करना, पुन: जोड़ने अथवा तोड़ने की प्रक्रिया करना।
(f) कोल्ड स्टोरेज में किसी वस्तु या पदार्थ को परिरक्षित अथवा भण्डार करना।

(iv) सक्षम व्यक्ति (Competant Persons)—इस अधिनियम के प्रावधानों के तहत सक्षम व्यक्ति से तात्पर्य संस्था या व्यक्ति से हैं जिसे मुख्य निरीक्षक ने फैक्ट्री के टेस्ट, परीक्षा, निरीक्षण करने के लिए इस नियम के तहत प्राधिकृत किया हो।

(v) वयस्क (Adult)—वह व्यक्ति जिसने 18 वर्ष की आयु पूरी कर ली है, वयस्क कहलाता है।

(vi) नवयुवक (Adolescent)—वह व्यक्ति जिसने 15 वर्ष की आयु पूरी कर ली है, लेकिन 18 वर्ष की आयु पूरी नहीं की है अर्थात् 15 से 18 वर्ष के बीच की आयु वाला व्यक्ति "नवयुवक या अल्पवयस्क" कहलाता है।

(vii) श्रमिक (Labour/Worker)—ऐसे व्यक्ति जो फैक्ट्री में सीधे या किसी एजेन्सी के माध्यम से भर्ती हुए हों, उन्हें वेतन मिलता हो या नहीं, जो किसी निर्माण कार्य में भाग लेते हों, मशीनों की सफाई करते हों या उत्पादन स्थल की सफाई करते हों अथवा उत्पादन सम्बन्धी किसी भी कार्य में भाग लेते हों, 'श्रमिक' कहलाते हैं।

(viii) बालक (Child)—वह व्यक्ति जिसने 15 वर्ष की आयु पूरी नहीं की है 'बालक' कहलाता है।

(ix) केलैण्डर वर्ष (Calendar year)—किसी भी वर्ष में 1 जनवरी से 12 माह तक की अवधि से तात्पर्य केलैण्डर वर्ष से है।

(x) मशीनरी (Machinery)—मशीनरी उद्योग में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न उपकरणों जैसे प्राइम मूवर (इंजन, मोटर आदि) मशीनों हस्तान्तरण मशीनों आदि को कहते हैं। ऐसे सभी यन्त्र जिनके द्वारा शक्ति को उपजाया, रूपान्तरित तथा वितरित किया जा सकता हो, मशीनरी कहलाते हैं।

(xi) खतरनाक प्रक्रिया (Hazardous Process)—कारखाने से सम्बन्धित ऐसी कोई प्रक्रिया खतरनाक कहलाती है जिसमें विशेष सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है जिसमें कच्चा पदार्थ, अर्धनिमित अथवा पूर्ण निर्मित उत्पाद, अवशिष्ट पदार्थ आदि का कार्य करने वाले अथवा उससे जुड़े व्यक्तियों के स्वास्थ्य पर बुरा असर होता है, अथवा जिसमें सामान्य वातावरण में प्रदूषण फैलता हो, खतरनाक प्रक्रिया कहलाती है।

Scanned with CamScanner

(xii) शक्ति (Power)—विद्युत शक्ति या अन्य किसी प्रकार की शक्ति जो यन्त्र चालित विधियों से संचालित की जाती हो और उसे मानव या पशु की शक्ति से उपजाया न गया हो शक्ति कहलाती है।

कारखाने की मंजूरी, लाइसेन्स एवं पंजीकरण
(Approval, Licensing and Registration of a Factory)

यह अधिनियम स्पष्ट करता है कि किसी कारखाने को शुरू करने से पूर्व निम्न औपचारिकताएँ सम्पन्न करना अनिवार्य है—

1. जहाँ फैक्ट्री लगानी हो या पूर्व निर्मित फैक्ट्री का विस्तार करना हो तो उस स्थल के लिये पहले राज्य सरकार अथवा उद्योगों के मुख्य निरीक्षक (Chief Inspector) की अनुमति प्राप्त करना अनिवार्य है।
2. कारखाना निरीक्षक से फैक्ट्री प्लान एवं विशिष्टयों का अनुमोदन प्राप्त करना।
3. निर्धारित शुल्क (fees) जमा करके फैक्ट्री का पंजीकरण कराना तथा लाइसेंसिंग (Licensing) की प्रक्रिया पूरी करना।

अनुमति के लिये जो आवेदन मुख्य निरीक्षक को भेजा जाता है उसमें अधिष्ठाता (Occupier) का नाम व पता, फैक्ट्री तथा विनिर्माण प्रक्रियाओं की प्रकृति, शक्ति, स्रोत की प्रकृति, कारखाना प्रबन्धक का नाम, आवश्यक श्रमिकों की संख्या आदि आवश्यक जानकारियाँ दी जाती हैं।

यदि आवेदन करने के 3 माह के अन्दर कोई सूचना प्राप्त नहीं होती है तो यह मान लिया जाता है कि आवेदन को अनुमति दे दी गई है। यदि राज्य सरकार अथवा मुख्य निरीक्षक आवेदन को इन्कार कर देते हैं तो आवेदनकर्ता इंकार के 30 दिन के भीतर केन्द्र सरकार से अपील कर सकता है।

निरीक्षक (Inspector)—यह अधिनियम राज्य सरकार को एक मुख्य निरीक्षक तथा अन्य निरीक्षक नियुक्त करने की अनुमति देता है जो—(i) कारखाने में प्रवेश कर सकते हैं, तथा (ii) प्लांट, मशीनरी तथा फैक्ट्री से सम्बन्धित कागजातों की छानबीन, निरीक्षण आदि कर सकते हैं।

प्रमाणक सर्जन (Certifying Surgeons)—यह अधिनियम राज्य सरकार को एक योग्य चिकित्सक को प्रमाणक सर्जन के रूप में नियुक्त करने की अनुमति प्रदान करता है जो—(a) युवा श्रमिक का स्वास्थ्य परीक्षण करके सर्टिफिकेट प्रदान करता है, तथा (b) खतरनाक प्रक्रियाओं में लगे श्रमिकों के स्वास्थ्य का परीक्षण करता है।

कारखाना अधिनियम की मुख्य व्यवस्थायें अथवा प्रावधान
(Main Provisions of the Factory Act)

कारखाना अधिनियम में मुख्यत: निम्नांकित बातों का विस्तृत प्रावधान रखा गया है—

(i) स्वास्थ्य (Health)
(ii) सुरक्षा (Safety)
(iii) श्रम कल्याण (Labour welfare)
(iv) वयस्कों के लिए कार्य घण्टे (Working hours for Adults)
(v) नवयुवकों के लिए रोजगार (Employment to young persons)
(vi) महिलाओं के लिए रोजगार (Employment to women)
(vii) सवैतनिक अवकाश (Leave with wages)
(viii) विशिष्ट प्रावधान (Special provisions)
  (a) खतरनाक प्रक्रियायें (Dangerous operations)
  (b) दुर्घटनायें एवं बीमारियाँ (Accidents and Diseases)
  (c) नमूना लेने का अधिकार (Power to take Samples)
  (d) दण्ड व्यवस्था (Penalties)

Scanned with CamScanner

उपरोक्त का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

1. स्वास्थ्य (Health)

दुर्घटना की सम्भावनाओं को न्यूनतम करने तथा श्रमिकों के स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए कारखाना अधिनियम में निम्न प्रावधान किये गये हैं—

(क) स्वच्छता (Cleanliness)—1. फर्श, बैंचों, सीढ़ियों व रास्तों की धूल तथा गन्दगी प्रतिदिन हटाना एवं उनका उचित तरीके से निस्तारण करना।

2. प्रत्येक माह में कम से कम एक बार सभी कार्यस्थल के फर्श की रोगाणुनाशक (Disinfectant) का उपयोग करते हुए धुलाई करना।
3. निर्माण प्रक्रिया के दौरान यदि फर्श के गीले होने की सम्भावना हो तो पानी के निकास की प्रभावी व्यवस्था होना।
4. सभी भीतरी दीवारें, पार्टीशन्स, छतें, कमरे, सीढ़ियों व रास्तों पर जहाँ पेन्ट या वार्निश की हुई हो, 14 माह में एक बार सफाई ताकि 5 वर्ष में एक बार पुन: पेन्ट या वार्निश कराना। जहाँ वाशेबल वाटर पेन्ट किया हो, वहाँ तीन वर्ष में एक बार पुन: पेन्ट कराना तथा छ: माह में एक बार उनकी धुलाई कराना। अन्य मामलों में 14 माह में एक बार सफेदी कराना। दरवाजों, खिड़कियों, शटर्स आदि पर 5 वर्ष में एक बार पेंट कराना एवं इन सबका रिकार्ड रखना।

(ख) अपशिष्ट तथा बहि:स्राव का निस्तारण (Disposal of wastes and effluents)—विनिर्माण प्रक्रमों के कारण हुए निष्प्रयोज्य (waste) तथा बहिस्राव (Effluents) के निस्तारण की प्रभावी एवं उचित व्यवस्था करना।

(ग) संवातन तथा तापमान (Ventillation and Temperature)—कार्यस्थल के प्रत्येक कमरे में प्रभावी एवं उपयुक्त व्यवस्था हो—

(a) जिससे ताजी हवा का परिसंचरण (Circulation) हो सके।

(b) दीवारों तथा छतों का अभिकल्पन इस प्रकार का हो एवं ऐसे पदार्थों की निर्मित हो ताकि तापमान अधिक न बढ़े। उद्योग में उच्च तापक्रम वाले भागों को प्रतिरोधित (insulated) किया जाना चाहिए।

(घ) धूल एवं धुआँ (Dust and Fumes)—यदि कारखाने में धूल या धुएँ या अन्य अशुद्धि निकलती हों, जो श्रमिकों के लिए हानिकारक हो, तो कार्यस्थल से उसके निकास की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।

(च) कृत्रिम आर्द्रीकरण (Artificial Humidification)—फैक्ट्री में (जैसे वस्त्र उद्योग में), जहाँ कृत्रिम आर्द्रीकरण प्रयोग किया जाता है—

(a) आर्द्रीकरण के लिए प्रयोग किये जाने वाला जल, पेय जल (Drinking water) होना चाहिए।

(b) आर्द्रीकरण के मानक प्रदान करना।

(c) वायु के कृत्रिम आर्द्रीकरण के लिए विधियों का निर्धारण करना।

(d) वायु की आर्द्रता ज्ञात करने के लिए परीक्षणों का निर्धारण एवं रिकार्ड रखना।

(e) कार्य स्थल पर पर्याप्त संवातन प्रदान करने एवं वायु को ठण्डा करने की विधियों का निर्धारण करना।

(छ) भीड़-भाड़ (Over-crowding)—(a) फैक्ट्री के किसी भी कार्य स्थल पर इतनी अधिक भीड़ नहीं होनी चाहिए जिससे श्रमिकों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़े।

(b) इस अधिनियम के अनुसार प्रत्येक श्रमिक के लिए पुरानी फैक्ट्री में (इस अधिनियम के लागू होने की दिनांक 1–4–1948 से पहले स्थापित) कम से कम 9.9 घन मीटर स्थान पर नई फैक्ट्रियों में कम से कम 14.2 घन मीटर स्थान हो। इसके लिए फर्श से 4.2 मी० से ऊपर की जगह को गणना में नहीं लिया जायेगा।

(ज) प्रकाश व्यवस्था (Lighting)—(a) फैक्ट्री के प्रत्येक भाग में जहाँ श्रमिक आते हैं या काम करते हैं, प्राकृतिक या कृत्रिम प्रकाश अथवा दोनों की समुचित व्यवस्था हो।

(b) प्रत्येक फैक्ट्री में जहाँ सूर्य का प्रकाश रोशनी के लिए कार्य-स्थल हेतु उपयोग में आता है, वहाँ शीशेदार खिड़कियों को अन्दर तथा बाहर से साफ किया जाना चाहिए।

Scanned with CamScanner

(c) फैक्ट्री में कार्य-स्थल पर ऐसी चमक या छाया जिससे श्रमिकों की आँखों पर जोर पड़े या दुर्घटना होने की सम्भावना हो, नहीं होनी चाहिए।

(d) चौंध अथवा अधिक चमकदार चीजों से ध्यान बँटता है और दुर्घटना का कारण बनता है। अत: ऐसी चीजों को हटा देना चाहिए।

(झ) पीने का पानी (Drinking Water)—फैक्ट्री में पीने के पानी की व्यवस्था उचित स्थानों पर होनी चाहिए। उन सभी स्थानों पर 'पीने का जल (Drinking water)' लिखा हो। पानी पीने के जल का स्थान, धोने के स्थान, थूकदान, मूत्रालयों एवं शौचालयों से कम से कम 6 मीटर दूर होना चाहिए। जहाँ 250 से अधिक श्रमिक कार्य करते हैं, गर्मी में ठण्डे जल की व्यवस्था एवं वितरण के लिए प्रभावी साधन होने चाहिए।

(ञ) शौचालय तथा मूत्रालय (Latrines and Urinals)—(a) फैक्ट्री में पुरुषों व स्त्रियों के लिए मूत्रालयों एवं शौचालयों की अलग-अलग व्यवस्था उचित स्थान पर उचित संख्या में होनी चाहिए।

(b) इनमें पर्याप्त प्रकाश व संवातन व्यवस्था होनी चाहिए।

(c) इनकी सफाई की समुचित व्यवस्था हो तथा स्वीपर नियुक्त होने चाहिए।

(ट) पीकदान (Spittoons)—फैक्ट्री में पर्याप्त संख्या में पीकदान उचित स्थानों पर लगे होने चाहिए। इनकी सफाई की उचित व्यवस्था होनी चाहिए ताकि हमेशा स्वच्छता बनी रहे। सभी श्रमिक फैक्ट्री में पीकदान में ही थूकेंगे। यदि कोई श्रमिक इसका उल्लंघन करता है तो उस पर 5 रु० तक जुर्माना किया जा सकता है।

2. सुरक्षा (Safety)

इस प्रावधान का उद्देश्य फैक्ट्री में श्रमिकों के लिए पूर्ण सुरक्षा प्रदान कराना है—

(a) मशीनों का आवरण तथा घेराबन्दी (Encasing and fencing of machinery)—प्रत्येक प्रधान चालक (Prime mover) के सभी चालित भागों व गति-पाल पहिये, जल टरबाइन के चालित भागों, मशीनों के चालित अंगों, ट्रांसमिशन मशीनरी तथा अन्य मशीनों के खतरनाक भागों पर सुरक्षा की दृष्टि से सुरक्षा आवरण (Safeguard) लगे होने चाहिए।

(b) चलती मशीनों पर या उनके नजदीक कार्य करना (Work on Or near the machinery in motion)—(क) फैक्ट्री में चलती हुई किसी मशीन के किसी भाग की जाँच यदि आवश्यक हो तो इसके लिए विशेष तौर पर प्रशिक्षित वयस्क पुरुष श्रमिक जो कि ढीले कपड़े न पहने हों, द्वारा ही की जानी चाहिए।

(ख) स्त्रियों व युवाओं को चलती मशीन की सफाई, इन्हें सुधारने तथा तेल डालने आदि कार्यों तथा खतरनाक मशीनों पर नहीं लगाने का प्रावधान है।

(c) युवाओं की खतरनाक मशीनों पर नियुक्ति (Employment of young persons on dangerous machines)—किसी युवा व्यक्ति को ऐसी खतरनाक मशीनों पर कार्य करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए, जब तक कि उत्पन्न खतरों तथा इनके लिए ली जाने वाले वाली सावधानियों की पूरी जानकारी न हों एवं जब तक कि वह ऐसी मशीन पर कार्य करने के लिए पर्याप्त प्रशिक्षण न प्राप्त कर चुका हो, या वह ऐसे व्यक्ति के सुपरविजन में न हो जो कि उस मशीन का पूर्ण ज्ञान तथा अनुभव रखता हो।

(d) हॉयस्ट तथा लिफ्ट (Hoists and lifts)—प्रत्येक हॉयस्ट तथा लिफ्ट की यान्त्रिक दशा अच्छी होनी चाहिए, सुरक्षित तथा पर्याप्त सामर्थ्यवान होनी चाहिए, तथा गेट आदि से सुसज्जित होनी चाहिए। इनका रखरखाव भली प्रकार होना चाहिए। प्रत्येक 6 माह में एक बार सक्षम व्यक्ति द्वारा समुचित जाँच होनी चाहिए एवं इसका उचित रिकार्ड भी रजिस्टर में रखा जाना चाहिए।

(e) उत्थापक मशीनें, चेन, रस्से तथा लिफ्टिंग टैकल्स (Lifting machines, chains, ropes and lifting tackels)—उत्थापक मशीनें, विन्च, क्रैब, टॉगल (Toggle), पूली क्लॉक आदि अच्छी संरचना तथा पर्याप्त सामर्थ्य के होने चाहिए। ये सभी एक सक्षम व्यक्ति द्वारा साल में कम से कम एक बार जाँचे जाने चाहिए जिससे कार्य के दौरान कोई दुर्घटना न हो।

Scanned with CamScanner

(f) दाब संयन्त्र (Pressure plants)—यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि किसी भी प्रकार के दाब पात्र (Pressure Vessels) जैसे बॉयलर (Boiler) आदि में दाब अनुमन्य सीमाओं से अधिक न हो।

(g) फर्श, सीढ़ी तथा पहुँचने के साधन (Floors, stairs and means of access)—फर्श, सीढ़ी तथा विभिन्न कार्यस्थलों पर पहुँचने के साधनों की संरचना मजबूत होनी चाहिए व उनकी देखभाल ठीक होनी चाहिए तथा कोई रुकावट नहीं होनी चाहिए। सीढ़ियों में रेलिंग लगे होने चाहिए।

(h) फर्श में खुला स्थान, गड्ढे (Pits), टैंक (Tank), सम्प (Sump) आदि (Pits, tanks, sumps, opening of floors etc.)—फैक्ट्री में कोई गड्ढा, टैंक, संप (Sumps), फर्श में खुला स्थान आदि अगर है तो उस पर समुचित घेराबन्दी (Fencing) की जानी चाहिए अथवा सुरक्षा आवरण द्वारा ढकी होनी चाहिए जिससे कोई दुर्घटना न हो।

(i) अत्यधिक भार (Excessive Weight)—किसी भी व्यक्ति का निर्धारित मात्रा से अधिक वजन उठाने के लिये काम पर नहीं लगाया जा सकता। इसके लिए राज्य सरकार वयस्क आदमी तथा औरत, नवयुवक तथा बालकों के लिए फैक्ट्रियों में किसी विशेष प्रकार की फैक्ट्री प्रक्रम में अधिकतम भार उठाने व ले जाने के लिये नियम बना सकती हैं।

(j) आँखों की सुरक्षा (Protection of eyes)—उड़ते हुए महीन धातु कणों (जैसे ग्राइंडिंग, फिटिंग, रिवेट, कटिंग, चिपिंग आदि प्रक्रियाओं में) अथवा वैल्डिंग की चमक से आँखों को सुरक्षित रखने के लिये प्रभावी स्क्रीन अथवा उपयुक्त चश्मों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(k) खतरनाक धुएँ से सुरक्षा (Precautions against dangerous fumes)—(क) खतरनाक धुएँ से सुरक्षा के लिये पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए। किसी भी व्यक्ति को ऐसे स्थान में प्रवेश करने की अनुमति नहीं होनी चाहिए जिसमें खतरनाक धुआँ अथवा गैस होने की सम्भावना हो।

(ख) यदि किसी विनिर्माण प्रक्रम में धूल, गैस, धुआँ आदि उपजते हैं तो उन्हें उस जगह से बाहर निकालने के लिये एग्जास्ट फैन (Exhaust fan), चिमनी आदि की व्यवस्था होनी चाहिए।

(l) आग की स्थिति में सुरक्षा (Precautions in case of fire)—फैक्ट्री में आग लग जाने पर श्रमिकों को तुरन्त बचाने की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। फैक्ट्री में आग लगने पर निकलने के लिए उचित माध्यम होने चाहिए तथा उनकी जानकारी सभी श्रमिकों को होनी चाहिए। आग लग जाने पर चेतावनी देने के ऐसे साधन होने चाहिए जिससे सभी श्रमिक साफ सुन करें।

(m) विस्फोटक या ज्वलनशील धूल, गैस आदि (Explosive or inflammable dust, gas etc.)—जिस उत्पादन प्रक्रम में वाष्प, गैस, धूम्र, धूल बनने से उनके जलकर विस्फोट होने की सम्भावना हो तो ऐसे संयन्त्र पर उचित सुरक्षा आवरण होना चाहिए। इस प्रकार से उत्पन्न गैस, धूम्र, धूल आदि को बाहर निकालने का प्रभावी स्थान होना चाहिए।

3. श्रम कल्याण (Labour Welfare)

श्रम कल्याण एक लोचपूर्ण शब्द है जिसकी परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं—

1. **सर एडवर्ड पैटन** के शब्दों में, "श्रम कल्याण कार्यों से तात्पर्य श्रम के सुख, स्वास्थ्य एवं समृद्धि के लिये उपलब्ध की जाने वाली दशाओं से है।"
2. **श्री ई० एम० ग्राउन्ड** के शब्दों में, "श्रम कल्याण से आशय विद्यमान औद्योगिक प्रणाली अथवा अपनी फैक्ट्री में रोजगार की दशाओं को उन्नत करने के लिए मालिकों द्वारा किये गये ऐच्छिक प्रयत्नों से है।"
3. **श्रम जाँच समिति 1945** के अनुसार, "श्रम कल्याण के कार्यों के अन्तर्गत होने वाले कार्यों एवं अनुबन्ध के अनुसार मिलने वाले लाभों के अतिरिक्त श्रमिकों के बौद्धिक, शारीरिक, मानसिक, नैतिक, आर्थिक, विकास के लिये किये गये कार्यों को शामिल किया जाना चाहिए चाहे यह कार्य सरकार, नियोक्ता या अन्य किसी के द्वारा किया जाता हो।"

कारखाना अधिनियम में श्रम कल्याण कार्य (Welfare work under factor Act)

भारतीय कारखाना अधिनियम 1948 में श्रम कल्याण के कार्यों के सम्बन्ध में अग्रलिखित प्रावधान हैं—

Scanned with CamScanner

(a) धुलाई सुविधायें (Washing facilities)—प्रत्येक फैक्ट्री में पुरुष व स्त्री श्रमिकों को हाथ, पाँव, मुँह धोने के लिये अलग-अलग पर्याप्त नल होने चाहिए जहाँ श्रमिक आसानी से पहुँच सकें। ऐसे स्थानों की सफाई की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

(b) कपड़ों को रखने तथा सुखाने की सुविधायें (Facilities for storing and drying clothing)—फैक्ट्री में कार्य करने के समय यदि कपड़े बदलने हों तो उनके कपड़े रखने के लिये तथा गीले कपड़े सुखाने के लिये स्थान उपलब्ध होने चाहिए।

(c) बैठने की सुविधाएँ (Facilities for sitting)—फैक्ट्री में सभी ऐसे श्रमिकों के लिए बैठने की उपयुक्त सुविधा दी जानी चाहिए जो खड़े होकर कार्य करते हों ताकि वे उन अवसरों पर बैठकर कार्य कर सकें जब उनके कार्य को कोई हानि न होती हो।

(d) प्राथमिक चिकित्सा के साधन (First-aid appliances)—(क) फैक्ट्री में प्रत्येक 150 श्रमिकों के लिये एक सुसज्जित प्राथमिक चिकित्सा बॉक्स या कपबोर्ड होना चाहिए। यह ऐसे उत्तरदायी व्यक्ति के पास हो जिसके पास प्राथमिक चिकित्सा का वैध प्रमाण-पत्र हो। यह कार्य समय पर उपलब्ध होना चाहिए।

(ख) यदि फैक्ट्री में 500 से अधिक श्रमिक कार्यरत हों तो निर्धारित माप का व निर्धारित उपकरणों से सुसज्जित एक एम्बुलेन्स कमरा होना चाहिए जिसमें निर्धारित मेडिकल तथा नर्सिंग स्टाफ हो एवं ये सुविधायें फैक्ट्री के कार्य समय में उपलब्ध रहें।

(e) कैन्टीन (Canteens)—यदि फैक्ट्री में 250 से अधिक श्रमिक कार्यरत हों तो उसमें कैन्टीन की व्यवस्था होनी चाहिए।

(f) आराम गृह तथा भोजन कक्ष (Restrooms and lunch room)—यदि फैक्ट्री में 150 से अधिक श्रमिक हों तो विश्राम गृह व खाना खाने के कमरे होने चाहिए, जिसमें पीने के पानी की व्यवस्था हो एवं रोशनी, रोशनदान की व्यवस्था हो तथा सफाई रखी जानी चाहिए।

(g) शिशुगृह (Cretches)—फैक्ट्री में, जहाँ 50 से अधिक महिला कर्मचारी कार्यरत हों, वहाँ उनके 6 साल से कम उम्र के बच्चों के लिए उपयुक्त, हवादार एवं प्रकाशयुक्त शिशुगृह (cretches) की व्यवस्था होनी चाहिए। शिशुओं की देखभाल में निपुण व प्रशिक्षित महिला को शिशुगृह का प्रभारी (incharge) बनाया जाना चाहिए।

(h) श्रम कल्याण अधिकारी (Labour welfare officer)—प्रत्येक फैक्ट्री में, जहाँ 500 से अधिक श्रमिक कार्यरत हों, एक श्रम कल्याण अधिकारी की नियुक्ति की जानी चाहिए। राज्य सरकार को इन अधिकारियों की योग्यता, कर्त्तव्य और इनकी सेवा शर्तें निर्धारित करने का अधिकार होता है।

4. वयस्कों के लिए कार्य के घण्टे (Working hours of Adults)

इस प्रावधान का उद्देश्य फैक्ट्री में वयस्कों के लिये कार्य के घण्टे निर्धारित करने की व्यवस्था है।

(a) साप्ताहिक घण्टे (Weekly hours)—फैक्ट्री में वयस्क श्रमिक से किसी भी सप्ताह में 48 घण्टे से अधिक काम नहीं लिया जा सकता है।

(b) साप्ताहिक अवकाश (Weekly holidays)—सप्ताह के प्रथम दिवस अर्थात् रविवार को कोई भी वयस्क श्रमिक कार्य नहीं करेगा जब तक कि फैक्ट्री प्रबन्धक उसे एवज में साप्ताहिक अवकाश अर्थात् रविवार के तीन दिन पूर्व से लेकर तीन दिन बाद तक क्षतिपूर्ति अवकाश (Compensatory holidays) नहीं प्रदान करता। यदि रविवार को कार्य करना परिस्थितिवश आवश्यक है तो सप्ताह के अन्य दिन वह क्षतिपूर्ति अवकाश का अधिकारी होगा।

(c) दैनिक घण्टे (Daily hours)—किसी भी दिन वयस्क श्रमिक से फैक्ट्री में 9 घण्टे से अधिक काम नहीं लिया जा सकता। इसके अतिरिक्त 5 घण्टे लगातार कार्य करने के बाद 30 मिनट का विश्राम देना अनिवार्य है।

(d) ओवर टाइम के लिये अतिरिक्त मजदूरी (Extra wages for overtime)—फैक्ट्री में जहाँ श्रमिक दैनिक 9 घण्टे से अधिक या साप्ताहिक 48 घण्टे से अधिक कार्य करता है तो उस अतिरिक्त समय की मजदूरी उसकी मजदूरी की सामान्य दर से दुगुनी देय होगी।

Scanned with CamScanner

(e) दोहरे नियोजन पर प्रतिबन्ध (Restriction on Double Employment)—किसी भी वयस्क श्रमिक की एक दिन में एक कारखाने में कार्य करने के बाद उसे दूसरे कारखाने में कार्य करने की अनुमति प्रदान नहीं की जानी चाहिए।

(f) वयस्क श्रमिक का रजिस्टर (Register of adult workers)—प्रत्येक फैक्ट्री का मैनेजर वयस्क श्रमिकों का रजिस्टर तैयार रखेंगे जिसमें फैक्ट्री में कार्यरत प्रत्येक वयस्क श्रमिक का नाम, कार्य की प्रकृति, ग्रुप जिसमें उसको रखा है (यदि कोई हो तो) तथा अन्य निर्धारित जानकारी अंकित होगी। यह फैक्ट्री निरीक्षक के लिये कार्य घण्टों के दौरान हर समय उपलब्ध रखा जायेगा।

(g) स्त्रियों के नियोजन पर प्रतिबन्ध (Restictions on employment of women)—किसी भी स्त्री को फैक्ट्री में 9 घण्टे से अधिक कार्य नहीं करना होगा। स्त्री श्रमिकों को प्रात: 6 बजे से सायं 7 बजे के बीच ही कार्य पर लगाया जा सकता है। राज्य सरकारें गजट अधिसूचना द्वारा किसी विशेष फैक्ट्री या फैक्ट्री समूह के लिए इस समय सीमा में परिवर्तन कर सकती हैं, लेकिन कार्य समय स्त्री श्रमिकों के लिये रात्रि 10 बजे से सुबह 5 बजे तक नहीं रखा जा सकता है।

(h) विश्राम के लिये अन्तराल (Interval for rest)—फैक्ट्री में प्रत्येक वयस्क श्रमिक के कार्य की अवधि इस प्रकार निश्चित की जायेगी कि कोई भी अवधि 5 घण्टे से अधिक न हो तथा लगातार 5 घण्टे तक कार्य करने के पश्चात् कम से कम आधे घण्टे का विश्राम देना आवश्यक है।

5. अल्प-वयस्कों या नवयुवकों के लिये रोजगार (Employment for young persons)

इस प्रावधान का उद्देश्य फैक्ट्रियों में अल्पवयस्क श्रमिकों के हितों की रक्षा कराना है।

(a) बालकों के रोजगार पर प्रतिबन्ध (Prohibition of employment of young children)—किसी भी कारखाने में 14 वर्ष से कम उम्र के बालकों को रोजगार नहीं दिया जा सकता है।

(b) अल्प-वयस्क श्रमिक (An adolescent worker)—14 वर्ष से अधिक तथा 18 वर्ष से कम उम्र के श्रमिक को अल्पवयस्क (Adolescent) कहते हैं। अल्पवयस्क श्रमिक को कारखाने में कार्य करने की अनुमति मिल सकती है यदि—

1. फैक्ट्री का प्रबन्धक, प्रमाण सर्जन (Certifying surgeon) द्वारा प्रमाणित स्वस्थता प्रमाण-पत्र इस आशय से प्रस्तुत करे कि अल्प-वयस्क उक्त कार्य को करने के लिये फिट है।
2. ऐसे अल्प-वयस्क को फैक्ट्री में कार्य करते समय एक टोकन रखना पड़ता है जो इस सर्टिफिकेट का सन्दर्भ प्रस्तुत करता है।

(c) योग्यता प्रमाण-पत्र (Certificate of fitness)—यह योग्यता प्रमाण-पत्र प्रमाणित करने वाले सर्जन द्वारा फैक्ट्री में कार्य करने के लिये अवयस्क श्रमिक को जाँच करने के पश्चात् योग्य पाने पर दिया जाता है। बालक को जिसने 14 वर्ष आयु पूरी कर ली है तथा अवयस्क जिसने 15 वर्ष की आयु पूरी कर ली है एवं फैक्ट्री में पूरे दिन कार्य करने योग्य है तो फैक्ट्री में वयस्क के बराबर कार्य करने का प्रमाण-पत्र दिया जाता है। यह प्रमाण-पत्र 12 माह की अवधि तक वैध होता है। इसके बाद पुन: प्रमाणित कराना होता है।

(d) बालकों के कार्य घण्टे (Working hours for children)—फैक्ट्री में बालक से प्रतिदिन 4½ घण्टे से अधिक कार्य नहीं लिया जा सकता तथा रात्रि को काम पर नहीं लगाया जा सकता। किशोर युवती को सायं 7 बजे से प्रात: 8 बजे तक काम पर नहीं लगाया जा सकता।

6. महिलाओं का नियोजन (Employment of Women)

कोई भी महिला चलती मशीनों को साफ करने, स्नेहन करने आदि समायोजित करने के लिये अनुमन्य नहीं है। इसके अतिरिक्त महिलायें सुबह 6 बजे से सायं 7 बजे तक ही कार्य करने के लिये अनुमन्य (Permissible) हैं।

7. वार्षिक सवैतनिक अवकाश (Annual leave with wages)

प्रत्येक श्रमिक जिसने फैक्ट्री में एक कलेण्डर वर्ष में 240 दिन या अधिक कार्य किया है, उसे आगामी कलेण्डर वर्ष में प्राप्त होने वाली मजदूरी सहित अवकाश की गणना अग्र दरों से की जायेगी—

Scanned with CamScanner

1. वयस्क के लिये पिछले कलेण्डर वर्ष में उसके 20 दिन कार्य के लिये एक दिन।
2. बालक के लिये पिछले कलेण्डर वर्ष में उसके 15 दिन कार्य के लिये एक दिन।

इस प्रकार के अवकाश को उपार्जित अवकाश कहते हैं। यह अवकाश वयस्क श्रमिक 30 दिन तक तथा अल्प-वयस्क श्रमिक 40 दिन तक संचित कर सकता है। श्रमिक एक वर्ष में तीन बार से अधिक यह अवकाश नहीं ले सकता। इस अवकाश के लिये श्रमिक को 15 दिन पूर्व प्रार्थना पत्र देना होगा। बीमारी की अवस्था में उसी समय प्रार्थना पत्र दिया जा सकता है।

8. विशिष्ट प्रावधान (Special Provisions)

(a) खतरनाक संक्रियायें (Dangerous operations)—यदि कारखाने में की जा रही संक्रिया शारीरिक क्षति पहुँचाने वाली, विषैली अथवा श्रमिक को बीमार करने वाली होती है तो राज्य सरकार ऐसी संक्रियाओं को खतरनाक घोषित कर सकती है। इन संक्रियाओं के लिये सरकार ने अग्रलिखित नियम बनाये हैं—

(क) ऐसी संक्रियाओं में महिला एवं अवयस्कों के नियोजन पर प्रतिबन्ध लगाया जाये।

(ख) खतरनाक संक्रियाओं से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों के लिए उचित सुरक्षा उपायों का प्रावधान किया जाये।

(ग) इन संक्रियाओं में कार्यरत सभी व्यक्तियों का सामाजिक स्वास्थ्य परीक्षण किया जा सके।

(b) दुर्घटना एवं बीमारी (Accident and Diseases)—(क) यदि किसी दुर्घटना में दुर्भाग्यवश श्रमिक की मृत्यु हो जाये अथवा शारीरिक चोट के कारण श्रमिक 48 घण्टे या इससे अधिक समय तक कार्य करने में अक्षम हो तो दुर्घटना घटने के 48 घण्टे के भीतर इसकी सूचना फैक्ट्री निरीक्षक एवं अन्य उच्च अधिकारियों को दी जानी चाहिए।

(ख) यदि कोई श्रमिक अनुसूची (Schedule) में वर्णित बीमारियों में से किसी बीमारी से ग्रसित है तो इसकी सूचना अविलम्ब मुख्य निरीक्षक (Chief inspector) के पास भेजी जाये जिससे बीमार श्रमिक का विवरण व उसकी बीमारी का वृतान्त (Particulars) दिया जाना आवश्यक है।

(c) नमूना लेने का अधिकार (Power to take samples)—कारखाने में कार्य घण्टों के दौरान कोई भी निरीक्षक, प्रबन्धक को सूचित करने के पश्चात्, कारखाने में प्रयोग हो रहे किसी भी पदार्थ या अवयव का नमूना ले सकता है।

(d) दण्ड व्यवस्था (Penalties)—इस प्रावधान का उद्देश्य श्रमिकों में अपराधी प्रवृत्ति को रोकना है।

(क) निरीक्षक के कार्य में बाधा डालने पर दण्ड व्यवस्था (Penalty for obstructing inspector)—यदि कारखाने का स्वामी अथवा प्रबन्धक, निरीक्षक को नमूना लेने से रोकता है, वाँछित जानकारी देने से इंकार करता है अथवा किसी श्रमिक से पूछताछ करते समय बाधा डालता है तो इस अधिनियम के तहत इन अपराधों के लिये उसे 6 माह कैद अथवा ₹ 10000 जुर्माना अथवा दोनों हो सकते हैं।

(ख) प्रावधानों के उल्लंघन पर सामान्य दण्ड (General penalties for offences)—इस अधिनियम के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन करने पर फैक्ट्री के मालिक, साझेदार, निदेशक को दोषी ठहराये जाने पर कैद अथवा जुर्माना या दोनों ही देने का प्रावधान है। इन्हें दो वर्ष तक की कैद की सजा या एक लाख रुपये तक का जुर्माना या दोनों दण्ड दिये जा सकते हैं। दण्ड देने के बाद भी अपराध जारी रखता है तो 1000 रुपये प्रतिदिन तक जुर्माना किया जा सकता है।

(ग) पूर्व में दोषी ठहराने के पश्चात् दण्ड में वृद्धि (Enhanced penalty after previous conviction)—यदि कोई व्यक्ति पूर्व में किसी नियम/उपनियम के उल्लंघन करने का दोषी पाया गया है और वह पुन: वही उल्लंघन करता है तो उसे 3 वर्ष की कैद या ₹ 1000 से 3 लाख तक का जुर्माना या दोनों दण्ड तक दिये जा सकते हैं।

(घ) श्रमिक द्वारा अपराध (Offences by workers)—यदि कोई श्रमिक इस अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन का दोषी पाया जाता है तो उस पर 500 रु० तक का जुर्माना किया जा सकता है। यदि कोई श्रमिक कारखाने में लगे किसी उपकरण/सुरक्षा उपायों/स्वास्थ्य सेवा सम्बन्धी उपकरणों के साथ छेड़छाड़ करता है तो इस अधिनियम के तहत उस श्रमिक को 3 माह की कैद (Imprisonment) या 100 रु० जुर्माना अथवा दोनों ही दण्ड दिये जा सकते हैं।

(ङ) गोपनीय सूचनाओं को उजागर करने पर दण्ड (Penalty on disclosure of confidential information)—यदि कारखाने का स्वामी/प्रबन्धक निरीक्षण के दौरान किसी गोपनीय सूचना को उजागर/उद्घोषित करने का दोषी पाया जाता है तो उसे 6 माह की कैद या 10000 रु० तक जुर्माना या दोनों ही दण्ड दिये जा सकते हैं।

Scanned with CamScanner

(च) झूठा प्रमाण-पत्र प्रयोग करने पर दण्ड (Penalty using false certificate of fitness)—यदि कोई नवयुवक प्रमाणित करने वाले सर्जन का झूठा प्रमाण-पत्र जानबूझकर उपयोग में लाता है, तो उसे दो माह तक की कैद या 100 रु० जुर्माना अथवा दोनों दण्ड दिये जा सकते हैं।

फैक्ट्री अधिनियम 1948 के अन्य प्रावधान

(Factory Act 1948 : Other Provisions)

1. अपील (Appeals)—इस अधिनियम के तहत फैक्ट्री निरीक्षक द्वारा लिखित में फैक्ट्री मैनेजर को दण्डित किया जाता है तो वह अथवा मालिक आदेश प्राप्त करने के 30 दिन के भीतर इसके विरुद्ध निर्धारित अधिकारी के यहाँ अपील कर सकता है। ऐसा अधिकारी राज्य सरकार द्वारा इस बारे में बनाये गये नियमों के तहत आदेश की पुष्टि, परिवर्तित या खारिज कर सकता है।

2. श्रमिकों के कर्त्तव्य (Obligations of Workers)

(i) कोई भी श्रमिक जान-बूझकर फैक्ट्री में किसी उपकरण या सुविधा के साथ, जो श्रमिकों के स्वास्थ्य सुरक्षा या कल्याण हेतु लगाये गये हैं, छेड़छाड़ नहीं करेगा या उनका गलत उपयोग नहीं करेगा।

(ii) कोई भी श्रमिक जान-बूझकर अथवा बिना कोई उचित कारण के ऐसा कार्य नहीं करेगा जिसमें स्वयं उसको या अन्य किसी को खतरा उत्पन्न हो।

(iii) यदि फैक्ट्री में नियोजित कोई श्रमिक इनमें से किन्हीं प्रावधानों या नियमों का उल्लंघन करता है तो उसे तीन माह तक कैद की सजा या 100 रु० तक का जुर्माना अथवा दोनों दण्ड दिये जा सकते हैं।

(iv) कोई भी श्रमिक फैक्ट्री में लगे किसी उपकरण या सुविधा का जो श्रमिकों के स्वास्थ्य अथवा सुरक्षा के लिये है, का जान-बूझकर उपयोग नहीं करेगा।

7.2 कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 (Workmen's Compensation Act, 1923)

यह अधिनियम 1 जुलाई, 1924 को लागू किया गया। उसके बाद समय-समय पर सन् 1926, 1929, 1933 तथा 1976 में इसमें आवश्यक संशोधन किये गये। यह श्रमिकों को औद्योगिक दुर्घटना से होने वाली हानियों से संरक्षण प्रदान करता है। इसके साथ ही यह अधिनियम कर्मचारियों का, उनके क्षतिपूर्ति के भुगतान में होने वाले शोषण से बचाव करता है। यह अधिनियम दुर्घटना के कारण श्रमिक की मृत्यु अथवा स्थायी अयोग्यता की स्थिति में श्रमिक तथा उसके आश्रितों के हितों की रक्षा करता है। क्षतिपूर्ति देने का प्रमुख उद्देश्य, श्रमिक को हुये वास्तविक नुकसान की कुछ हद तक भरपाई करना है।

इस अधिनियम की प्रमुख परिभाषायें (Important Definitions of this Act)—

1. आश्रित (Dependent)—"आश्रित" का अर्थ है प्रभावित श्रमिक का निम्न सम्बन्धी—

(a) विधवा (Widow), नाबालिग धर्मज या दत्तक पुत्र (Minor legitimate or adopted son), अविवाहित धर्मज पुत्री (Unmarried legitimate daughter) तथा विधवा माँ (widow mother)।

(b) शिथिलाँग (Infirm) पुत्र अथवा पुत्री जो 18 वर्ष पूर्ण कर चुके हों तथा श्रमिक की मृत्यु के समय उस पर पूर्ण रूप से आश्रित हो, तथा

(c) सेक्शन 2 (d) के तहत निम्न को भी आश्रित में सम्मिलित किया गया है। यदि वह कर्मचारी की मृत्यु के समय उसके उपार्जनों अर्थात् कमाई पर पूर्ण अथवा आंशिक रूप से आश्रित था—

(i) विधुर (widower),

(ii) माता-पिता जिसमें विधवा माता सम्मिलित नहीं है,

(iii) अवयस्क या दत्तक पुत्री यदि वह विवाहित और अवयस्क अथवा विधवा और अवयस्क है,

(iv) अवयस्क भाई-बहन या विधवा बहन यदि वह अवयस्क है,

(v) विधवा पुत्र-वधु,

(vi) पूर्वमृत पुत्र की अवयस्क संतान,

Scanned with CamScanner

(vii) पूर्व मृत पुत्री की अवयस्क संतान यदि उसके माता-पिता में से कोई भी जीवित नहीं है।

(viii) जहाँ कर्मचारी के माता-पिता में से कोई भी जीवित नहीं है, वहाँ दादा-दादी।

2. आंशिक अयोग्यता या अपंगता (Partial Disablement)—यह दो प्रकार की हो सकती है—

(i) अस्थायी आंशिक अयोग्यता (Temporary Partial disablement)

(ii) स्थायी आंशिक अयोग्यता (Permanent Partial disablement)

आंशिक अयोग्यता को मापने का आधार कर्मचारी के उपार्जन (Earning) करने की क्षमता में कमी आना माना जाता है। यदि कर्मचारी द्वारा अपना नियोजन कार्य करते समय दुर्घटना होने के कारण आयी अयोग्यता के कारण नियोजन के सम्बन्ध में उसकी उपार्जन की क्षमता घट जाती है तो यह "अस्थायी आंशिक अयोग्यता" कहलाती है। यदि किसी दुर्घटना के कारण क्षति के परिणामस्वरूप ऐसे नियोजन में उपार्जन क्षमता कम हो जाती है जिसे दुर्घटना के समय वह कर्मचारी किसी भी प्रतिष्ठान (Establishment) में करने के लिये सक्षम था तो उसे "स्थायी आंशिक अयोग्यता" कहते हैं।

3. पूर्ण अयोग्यता या अपंगता (Total Disablement)—जब एक कर्मचारी कोई ऐसा कार्य करने में अक्षम (Incapable) हो जाता है जिसे कि दुर्घटना के समय करने में समर्थ था और दुर्घटना के कारण उसमें यह अपंगता आयी है, तो उस समय उसे "पूर्ण अयोग्यता या अपंगता" कहेंगे।

यह अधिनियम कुछ ऐसी चोटों (Injuries) को भी स्पष्ट करता है जो परिणामस्वरूप व पूर्ण अपंगता में बदल जाती हैं। इसके अन्तर्गत—

- दोनों हाथों का क्षतिग्रस्त होना या अंगविच्छेद (Amputation) होना।
- एक हाथ-पाँव का क्षतिग्रस्त होना,
- दोनों आँखों की रोशनी इस हद तक चली जाना कि वह कोई ऐसा कार्य करने में अक्षम हो जाये जिसके लिये आँखों की रोशनी होना अनिवार्य है।
- चेहरे का विकृत (Facial disfigurement) हो जाना, तथा पूर्ण बधिर (Deafness) हो जाना।

4. नियोजक (Employer)—नियोजक का तात्पर्य निम्नलिखित व्यक्ति से होता है—

(i) कोई व्यक्ति निकाय (body of persons) चाहे वह निगमित (Incorporated) हो अथवा नहीं,

(ii) किसी नियोजक का कोई प्रबन्ध अभिकर्त्ता (managing agent),

(iii) मृत नियोजक का विधिक प्रतिनिधि, और

(iv) जबकि कर्मकार की सेवायें उस व्यक्ति द्वारा, जिसके साथ कर्मकार ने सेवा या प्रशिक्षुता की संविदा की है, अन्य व्यक्ति को अस्थायी तौर पर उधार दे दी जाती है या भाड़े पर (let on hire) दी गयी है तो ऐसी परिस्थिति में वह व्यक्ति जिसके लिये कि वह कर्मकार उतने समय तक काम कर रहा है, नियोजक माना जायेगा।

5. प्रबन्ध अभिकर्त्ता (Managing Agent)—कोई भी व्यक्ति जो कि किसी व्यक्ति के प्रतिनिधि के रूप में उस व्यक्ति के व्यापार या कारोबार के संचालन के प्रयोजन के निमित कार्य कर रहा है, उसे प्रबन्ध अभिकर्त्ता कहेंगे। प्रत्यक्षत: यह आवश्यक नहीं है कि प्रबन्ध-अभिकर्त्ता नियोजक द्वारा नियुक्त ही किया गया हो, अपितु केवल एक प्रतिनिधि के रूप में काम करना भी प्रबन्ध अभिकर्त्ता होने के लिये पर्याप्त है।

6. मजदूरी (Wages)—मजदूरी के अन्तर्गत कोई ऐसा विशेषाधिकार या फायदा सम्मिलित है जिसका प्राकलन रुपयों में किया जा सके। निम्नलिखित को मजदूरी के अन्तर्गत सम्मिलित नहीं किया जायेगा—

(क) यात्रा भत्ता या यात्रा सम्बन्धी रियायत का कोई मूल्य

(ख) नियोजक द्वारा किसी पेंशन या भविष्य निधि (Fund) में दिये गये अभिदाय (Contribution),

(ग) किसी कर्मकार (Workmen) को अदा की गयी धनराशि जोकि उसके नियोजक की प्रकृति के कारण उस पर विशेष रूप से व्यय की गई है।

(घ) ऐसा अवकाश जो अगले साल के लिये विस्तारित कर दिया गया है (Leave carried forward)

Scanned with CamScanner

विशेषाधिकार या लाभ—निम्नलिखित विशेषाधिकार और लाभ मजदूरी में सम्मिलित माने जाते हैं—

(i) निःशुल्क आवास,
(ii) प्रसूति लाभ जोकि एक महिला कर्मचारी को बच्चा पैदा होने के बाद देय होगा,
(iii) महँगाई भत्ता,
(iv) अतिकाल वेतन (Overtime pay) अथवा भत्ता,
(v) भोजन और वस्त्र के रूप में दिया गया लाभ,
(vi) कोई अन्य रियायत, लाभ या ऐसा विशेषाधिकार जिसे कि धन रूप में इस्तेमाल किया जा सके,
(vii) कर्मचारी की सेवा-निवृत्ति के बाद देय ग्रेच्युटी (Gratuity),
(viii) बोनस।

इतिहास (History)

सन् 1884 में ऐसे कर्मकारों को, जोकि नियोजन-अवधि में गम्भीर या घात रूप में दुर्घटनाग्रस्त हो गये हों, क्षतिपूर्ति देने का सवाल उस समय उठा था जबकि कारखानों के निरीक्षकों ने इस समस्या की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट किया था और इस बात पर बल दिया था कि इस समस्या के सम्बन्ध में कर्मचारियों को तत्काल कानूनी संरक्षण प्रदान करने की आवश्यकता है। परन्तु सरकार ने इस आग्रह और आवश्यकता पर उस समय कोई ध्यान नहीं दिया। यहाँ तक कि आगे चलकर सन् 1920 में सरकार ने इस प्रश्न के महत्व को उस समय स्वीकार किया जबकि जनसत्ता (Public opinion) द्वारा सरकार का ध्यान आकृष्ट किया गया। इस सम्बन्ध में एक समिति गठित की गयी जिसमें कि विधान सभा के सदस्यों, नियोजकों, कर्मचारियों के प्रतिनिधियों, चिकित्सकीय और बीमा विशेषज्ञों को समाहित किया गया। इस समिति द्वारा प्रस्तुत की गयी संस्तुतियों के आधार पर ही सन् 1923 में कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम बनाया गया तथा एक जुलाई, 1923 को कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम बनाया गया तथा एक जुलाई, 1924 को लागू किया गया। इसके उपरान्त कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम में समय-समय पर अनेक संशोधन हुए। सन् 1976 तक कर्मचारी का क्षतिपूर्ति अनुमन्य करने की पगार-सीमा (wage limit) 500 रु० तक थी परन्तु इसी वर्ष इसे बढ़ाकर 1000 रु० किया गया। साथ ही मृत्यु उपरान्त क्षतिपूर्ति की सीमा 1000 रु० से बढ़ाकर 30,000 रु० कर दी गयी तथा स्थाई पूर्ण अक्षमता (Permanent total disablement) के लिये क्षतिपूर्ति सीमा 14000 रु० से बढ़ाकर 42000 रु० कर दी गयी। इस अधिनियम का संशोधन सन् 1984 में पुनः किया गया और इसे एक जुलाई 1984 से लागू किया गया।

उद्देश्य (Object)

इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य विभिन्न वर्ग के नियोजकों द्वारा अपने कर्मचारी को ऐसी परिस्थितियों में क्षतिपूर्ति देने की व्यवस्था करना है जबकि वे नियोजन-कार्य में किसी प्रकार की दृर्घटना से ग्रस्त हो जाते हैं। मशीनों का बढ़ता हुआ प्रयोग और कर्मचारियों के दुर्घटनाग्रस्त होने की बढ़ती हुई सम्भावनायें और इसके साथ ही साथ कर्मचारियों की बढ़ती गरीबी के कारण ही यह अधिनियम बनाया गया है। इस अधिनियम का उद्देश्य कर्मचारियों को वैयक्तिक क्षति की दशा में क्षतिपूर्ति देना है। यदि दुर्घटना के परिणामस्वरूप कर्मचारी जीवित बचता है तो क्षतिपूर्ति उसे दिया जाता है और यदि उसकी मृत्यु हो जाती है तो क्षतिपूर्ति उसके आश्रितों को मिलता है।

अधिनियम के लक्षण (Features of the Act)

कर्मचारी अपने क्षतिपूर्ति के लिये दावा (Claims) कर सकता है, यदि नियोजन कार्य के अन्तर्गत दुर्घटना के कारण उसे चोट आदि लगती है या वह कार्य करने में अक्षम हो जाता है, परन्तु शर्त यह है कि कर्मचारी नशे की हालत में नहीं था या किसी नशीली दवा के प्रभाव में नहीं था या दुर्घटना का कारण उसकी अपनी लापरवाही नहीं थी। क्षतिपूर्ति की धनराशि चोट के परिणाम और लापरवाही की प्रकृति पर निर्भर करती है। सभी विनाशक दुर्घटनाओं (Fatal accidents) की जानकारी आयुक्त (Commissioner) की जानकारी में लायी जाती है और उचित तथ्यों के अनुसार नियोजक द्वारा 30 दिन के अन्दर क्षतिपूर्ति की राशि उसके (आयुक्त के) पास जमा की जाती है।

Scanned with CamScanner

अधिनियम का क्षेत्र-विस्तार (Scope of the Act)

कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 जम्मू कश्मीर राज्य को छोड़कर शेष सम्पूर्ण भारत में लागू है। यह अधिनियम सभी कर्मचारियों पर लागू नहीं होता। यह केवल कतिपय उद्योगों (जैसा कि अधिनियम में परिभाषित हैं) के ही कर्मचारियों पर लागू हैं। यह अधिनियम एक कर्मचारी को ऐसी दुर्घटनाओं से होने वाली क्षतियों से संरक्षण प्रदान करता है, जोकि उसके नियोजन के कारण और उसके नियोजन कार्य में घटित हुई हैं। यह अधिनियम केवल उन लोगों पर लागू होता है जिन्होंने सेवा की संविदा (Contract of service) किया है परन्तु उन लोगों पर लागू नहीं होता जिन्होंने काम को करने का करार (Contract for service) अर्थात् ठेकेदारी मात्र किया हो।

अधिनियम की उपयोगिता (Application of the Act)

यह अधिनियम उन सभी कर्मचारियों पर लागू होता है जो रेलवे, फैक्ट्रियों, खदानों, यान्त्रिक रूप से चालित वाहनों, संरचनात्मक कार्यों तथा अन्य खतरनाक व्यवसायों में कार्यरत हैं। यह अधिनियम उन व्यक्तियों पर लागू नहीं होता तो प्रतिष्ठान में प्रशासनिक अथवा लिपिकीय कार्यों में लगे हैं या सेना में हैं।

क्षतिपूर्ति हेतु नियोक्ता के उत्तरदायित्व (Employer's Liability for Compensation)

क्षतिपूर्ति अदा करने के सम्बन्ध में नियोजक का दायित्व सीमित है और इस अधिनियम के उपबन्ध के अन्तर्गत लागू होता है। अधिनियम की धारा 3 के खण्ड (1) के अन्तर्गत किसी दुर्घटना के कारण कर्मचारी को हुई क्षति (Injury) के लिये क्षतिपूर्ति अदा करने के सम्बन्ध में नियोजक का दायित्व निम्नलिखित चार शर्तों के अधीन है—

(i) किसी कर्मचारी को हुई वैयक्तिक क्षति (Personal injury),
(ii) ऐसी क्षति जो अवश्य ही एक दुर्घटना के कारण घटित हुई हो,
(iii) दुर्घटना नियोजन, क्रियाओं से नियोजन के दौरान हुई हो,
(Accident must arise out of and in the course of employment)
(iv) दुर्घटना के परिणामस्वरूप, या तो कर्मचारी की मृत्यु हो गई हो या किसी प्रकार की अपंगता (disablement) उत्पन्न हो गई हो।

निम्नलिखित दशाओं में नियोजक का दायित्व क्षतिपूर्ति अदा करने का नहीं होगा—

(क) यदि क्षति (Injury) से हुई पूर्ण या आंशिक अपंगता तीन से ज्यादा दिनों तक नहीं रहती,
(ख) किसी ऐसी क्षति के सम्बन्ध में जिसमें कि मृत्यु या स्थायी पूर्ण नि:शक्तता नहीं हुई, नियोजक निम्न प्रतिवाद (defence) प्रस्तुत कर सकता है—
(a) यह कि कर्मचारी पर दुर्घटना के समय मदिरा या नशीली दवाइयों का प्रभाव था,
(b) कर्मचारी की सुरक्षा सुनिश्चित करने के प्रयोजन के लिये सचेत करने को दिये किसी आदेश या सुरक्षा के निमित बनाये गये किसी नियम की अवज्ञा कर्मचारी द्वारा जानबूझकर की गयी थी,
(c) कोई ऐसा सुरक्षा-चक्र (Safety guard) या अन्य युक्ति, जिसके बारे में कर्मचारी जानता था कि कर्मचारी की सुरक्षा करने के प्रयोजन के लिये लगायी गई है, कर्मचारी द्वारा जानबूझकर हटाई गई थी या उसकी अवहेलना की गई थी।

2. व्यवसायजनित रोगों के सम्बन्ध में नियोजक का दायित्व (Employer's liability for occupational diseases)

अधिनियम की धारा-3 के खण्ड (2) में ऐसे मामलों में क्षतिपूर्ति अदा करने की व्यवस्था की गई है, जबकि क्षति किसी व्यवसाय जनित रोग के कारण घटित हुई है। व्यवसाय जनित रोगों की सूची अधिनियम की अनुसूची (III) या शैड्यूल (III) में दी गई है। अनुसूची (III) तीन भागों में विभाजित है, जिसे सारणी 7.1 में दिखाया गया है। रोग की प्रकृति अवश्य ही अनुसूची (III) में विनिर्दिष्ट ऐसा व्यवसायजनित रोग होना चाहिए जो उस कर्मचारी के नियोजन से सम्बन्धित हो।

Scanned with CamScanner

अनुसूची के पार्ट-A के व्यवसाय जनित रोगों के मामलों में क्षतिपूर्ति के दावे का समर्थन करने के लिये नियोजन का किसी विशिष्ट अवधि का होना आवश्यक नहीं है, पार्ट-B के रोगों के लिये आवश्यक हैं कि कर्मचारी उसी नियोजक के नियोजन में कम से कम छः मास की निरन्तर सेवा में उसी नियोजन में कार्यरत रहा हो जिसका कि उल्लेख उस भाग में किया गया है, और पार्ट-C के रोगों के लिये नियोजन की अवधि वह होगी जिसे केन्द्रीय सरकार द्वारा चाहे एक या एक से अधिक नियोजकों की सेवा के लिये विनिर्दिष्ट किया जाये। अनुसूची (III) में विनिर्दिष्ट किसी रोग के हो जाने को एक ऐसी क्षति के रूप में माना जायेगा जोकि ऐसी दुर्घटना से उत्पन्न हुई हो जो नियोजन के कारण और नियोजन के दौरान घटित हुई हो।

सारणी 7.1

Schedule III-Section-3 List Occupational Diseases

Part A

(i) Infectious and parasitic diseases contracted in an occuption where there is a particular risk of contamination.
(ii) Diseases caused by work in compressed air and by lead or its toxic compounds and
(iii) Poisioning by Nitrous fumes and by organo-phosphorus compounds.

Part B

(i) Diseases caused by (a) Phosphorus, mercury, chromium, arsenic, manganese, beryllium, cadmium, fluorine or their toxic compounds.
(ii) Benzene or its toxic homologues.
(iii) Nitro and amino toxic derivatives of benzene or its homologues.
(iv) Radioactive substances and ionising radiation.
(v) Carbondisulphide.
(vi) Alcohol and Ketones.
(vii) Nitroglycerine or other nitro acid esters.
(b) Occupational contract due to infrared radiations.
(c) Skin diseases caused by physical, chemical or biological agent not included in other items.
(d) Hearing impairment caused by noise occupational asthma caused by recognized sensitising agents inherent to the work process.
(e) Lung cancer and mesotheliomas caused by asbestos.
(f) Snow blindness in snow bound areas.
(g) Diseases due to effect of heat/cold in extreme hot cold climate.

Part C

(i) Pneumoraniases caused by sclerogenic mineral dust (silicosis, anthrax silicosis, asbestosis) and silico tuberculosis provided that silicosis is an essential factor in causing the resultant incapacity or death.
(ii) Bagassoris.
(iii) Broncho-pulmonary diseases caused by cotton, flax, hemp and sisal dust (byssinosis).
(iv) Estrinsic allergic diseases caused by the inhalation of organic dust.

Scanned with CamScanner

(v) Brocho-Pulmonary diseases caused by hard metals.

प्रतिफल की धनराशि (Amount of Compensation)

कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम की धारा-4 में क्षतिपूर्ति की धनराशि की गणना करने और भुगतान करने का प्राविधान है। एक कर्मचारी को देय क्षतिपूर्ति की धनराशि निम्नलिखित पर निर्भर करती है—

(i) दुर्घटना के कारण घटित क्षति (Injury) की प्रकृति,

(ii) अमुक प्रभावित कर्मचारी की मासिक पगार या मजदूरी,

(iii) सुसंगत घटक (relevant factor), जो क्षतिपूर्ति की राशि की एकमुश्त राशि की गणना में प्रयोग किया जाता है जैसा कि सारणी 7.2 में दिया गया है।

तालिका 7.2 Factors for working out lump-sum equivalent of compensation amount in case of death and permanent disablement.

Completed years of age on the last birthday of the workman immediately preceding the data on which the compensation fell due	factor
Not less than 16	228.54
17	227.49
18	226.49
19	225.22
20	222.71
21	221.71
22	221.37
23	219.95
24	218.47
25	216.91
26	215.18
27	213.57
28	211.79
29	209.92
30	207.98
31	205.95
32	203.85
33	201.66
34	199.40
35	197.06

Scanned with CamScanner

36	194.64
37	192.14
38	189.56
39	186.90
40	184.17
41	181.37
42	178.79
43	175.54
44	172.52
45	169.44
46	166.29
47	163.07
48	159.80
49	156.47
50	153.09
51	149.67
52	146.20
53	142.68
54	139.13
55	135.56
56	131.95
57	128.33
58	124.70
59	121.05
60	117.41
61	113.77
62	110.14
63	106.52
64	102.93
65 or more	099.37

Scanned with CamScanner

क्षतिपूर्ति की राशि को प्रभावित करने वाले कारक
(Factors Effecting amount of compensations)

क्षतिपूर्ति की राशि निम्न कारकों पर निर्भर करती है—

(i) श्रमिक की औसत मासिक मजदूरी,

(ii) चोट की सीमा अर्थात् — मृत्यु
— स्थायी पूर्ण अपंगता
— स्थायी आंशिक अपंगता
— अस्थायी अपंगता

(iii) श्रमिक/कर्मचारी के कार्य की प्रकृति — लिपिकीय (Clerical)
— औद्योगिक (Industrial)
— प्रशासनिक (Administration)

(iv) दुर्घटना के कारण—क्या दुर्घटना कर्मचारी की लापरवाही के कारण हुई है? आदि।

क्षतिपूर्ति की राशि का आकलन तालिका I में दिये गये विवरण द्वारा किया जाता है।

क्षतिपूर्ति तालिका 7.3

क्र० सं०	क्षति	श्रमिक की आय %
1.	कोहनी पर अथवा उससे ऊपर दाहिनी भुजा हानि	70
2.	कोहनी पर अथवा उससे ऊपर बायीं भुजा हानि	80
3.	कोहनी से नीचे दाहिनी भुजा हानि	60
4.	घुटने पर अथवा उससे ऊपर टाँग हानि	60
5.	कोहनी पर से नीचे बायीं भुजा हानि	50
6.	घुटने से नीचे टाँग हानि	50
7.	श्रवण शक्ति पूर्ण हानि	50
8.	एक आँख हानि	30
9.	एक अँगूठा हानि	25
10.	एक पैर की सभी उंगलियाँ हानि	20
11.	तर्जनी हानि	10
12.	तर्जनी के अतिरिक्त कोई उंगली हानि	5

दुर्घटना की सूचना (Notice of the Accident)

दुर्घटना में घायल कर्मचारी की तरफ से एक सूचना लिखित रूप में दुर्घटना विवरण देते हुये नियोक्ता को दी जाती है। इस सूचना में निम्न जानकारी निहित होती है—

- घायल श्रमिक का नाम तथा पता
- दुर्घटना का कारण
- दुर्घटना की तिथि

Scanned with CamScanner

मेडिकल परीक्षण (Medical Examination)

यदि नियोक्ता चाहे तो लिखित सूचना प्राप्त होने के बाद घायल श्रमिक को मेडीकल परीक्षण के लिये बुला सकता है। यह परीक्षण नि:शुल्क होगा तथा सूचना प्राप्ति के 3 दिन के भीतर होगा। यदि श्रमिक परीक्षण के लिये उपलब्ध नहीं होता है तो वह क्षतिपूर्ति का पात्र नहीं होगा।

क्षतिपूर्ति का वितरण (Distribution of Compensation)

कर्मचारी की मृत्यु अथवा अपंगता के बाद क्षतिपूर्ति की राशि, नियोक्ता कमिश्नर के पास जमा करा देता है। नियोक्ता क्षतिपूर्ति की राशि सीधे भुगतान नहीं कर सकता है।

व्यावसायिक बीमारियाँ (Occupational Diseases)

यदि कोई कर्मचारी किसी विशिष्ट व्यावसायिक बीमारी से प्रभावित है और वह 6 माह से अधिक फैक्ट्री में काम कर चुका है तो नियोक्ता को क्षतिपूर्ति देनी होगी। कुछ विशिष्ट व्यावसायिक बीमारियाँ इस प्रकार हैं—

- संपीडित वायु सम्बन्धी बीमारियाँ,
- सीसा (lead), फॉस्फोरस, पोटाश, आर्सेनिक, रेडियम आदि के कारण विषाक्त होना,
- X-ray आदि से होने वाली बीमारी।

कमिश्नर की नियुक्ति (Appointment of Commissioner)

सरकार सरकारी गजट में अधिसूचना जारी करके किसी व्यक्ति को श्रमिक क्षतिपूर्ति के लिये कमिश्नर नियुक्त कर सकती है। प्रत्येक कमिश्नर, भारतीय दण्ड विधान के अनुसार एक जनसेवक समझा जाता है।

7.3 प्रशिक्षु अधिनियम, 1961

प्रशिक्षु अधिनियम, 1961 को उद्योगों में प्रशिक्षु के प्रशिक्षण कार्यक्रम को विनियमित करने के उद्देश्य से प्रवर्तित किया गया। सरकार ने यह आवश्यक समझा कि प्रशिक्षुओं के प्रशिक्षण हेतु उपलब्ध सुविधाओं का उपयोग किया जाये। इसका उद्देश्य देश के विकास हेतु आवश्यक कुशल शिल्पियों की बढ़ती माँग की पूर्ति करता है।

Sec. 1. यह अधिनियम 1 मार्च, 1962 को प्रवर्तित हुआ तथा इसका क्षेत्र सम्पूर्ण भारतवर्ष है। उपखण्ड (4) प्रावधान करता है कि यह अधिनियम किसी क्षेत्र या किसी उद्योग में तब तक लागू नहीं होगा जब तक कि केन्द्रीय सरकार अपने अधिकारिक गजट में अधिसूचना द्वारा यह निर्देशित न कर दे कि अमुक क्षेत्र अथवा अमुक उद्योग में यह अधिक प्रवर्तित होगा।

प्रशिक्षु अधिनियम अवयस्क की ओर से व्यक्तिगत सेवाओं की संविदा में प्रवेश पर लागू नहीं होता।

Sec. 2. परिभाषायें—1.इस अधिनियम में अन्य अपेक्षित सन्दर्भ के अतिरिक्त,

(a) 'अखिल भारतीय परिषद्' से तात्पर्य भारत सरकार के संकल्प द्वारा स्थापित 'अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद्' से है।

(b) 'प्रशिक्षु' अर्थात् वह व्यक्ति जो प्रशिक्षु संविदा के अन्तर्गत स्थापित व्यापार में प्रशिक्षु प्रशिक्षण प्राप्त कर रहा हो।

(c) 'प्रशिक्षु सलाहकार' अर्थात् इस अधिनियम के तहत 'केन्द्रीय प्रशिक्षु सलाहकार'

(d) 'प्रशिक्षु परिषद्' अर्थात् 'केन्द्रीय अथवा राज्य प्रशिक्षु परिषद्'

(e) उपयुक्त सरकार अर्थात्

(i) केन्द्रीय प्रशिक्षु परिषद्,

(ii) स्नातकों का व्यावहारिक प्रशिक्षण अथवा तकनीकी प्रशिक्षुओं का व्यावहारिक प्रशिक्षण,

(iii) रेलवे, बड़े पत्तन, खान या तेल क्षेत्रों का प्रतिष्ठान,

(iv) केन्द्र सरकार अथवा केन्द्र सरकार के विभाग द्वारा नियन्त्रित अथवा प्रबन्धित कोई प्रतिष्ठान

(v) ऐसी कम्पनी जिसमें कम से कम 51% अंश केन्द्र सरकार अथवा राज्य सरकार अथवा एक से अधिक राज्य सरकारों के हों।

Scanned with CamScanner

(vi) 'नियोक्ता' अर्थात् वह व्यक्ति जो एक या अधिक व्यक्तियों को कार्य हेतु नियोजित करे। 'स्नातक अथवा तकनीकी प्रशिक्षु' से तात्पर्य उस व्यक्ति से है, जो प्रशिक्षण प्राप्त कर रहा हो। वह डिग्री (उपाधि) या डिप्लोमा या सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त अन्य कोई योग्यता धारित किये हों।

(vii) 'उद्योग' अर्थात् कोई उद्योग अथवा व्यवसाय जिसमें तकनीकी (प्रौद्योगिकी) अथवा अभियन्त्रण में कोई व्यापार, पेशा, अथवा विषय सम्मिलित है।

Sec. 3. प्रशिक्षु की योग्यता—

1. वह 14 वर्ष से अल्प आयु का न हो।
2. वह यथा निर्धारित शैक्षणिक एवं शारीरिक योग्यता को धारण करता हो।

Sec. 3-A. प्रत्येक स्थापित व्यापार में प्रशिक्षण हेतु स्थान अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लिये आरक्षित रहेगा।

Sec. 4. प्रशिक्षु संविदा—प्रत्येक प्रशिक्षु संविदा में ऐसी शर्त व दशायें रहेंगी जिन पर पक्षकार सहमत हों। अवयस्क की दशा में उसका अभिभावक, नियोक्ता के साथ संविदा कर सकता है।

Sec. 5. प्रशिक्षु संविदा का नवीनीकरण—यदि एक नियोक्ता, प्रशिक्षु के साथ किये गये संविदा के पालन में असफल रहता है, तो प्रशिक्षु या उसका अभिभावक, प्रशिक्षु सलाहकार की अनुमति से किसी अन्य नियोक्ता के साथ नवीन संविदा में प्रवेश कर सकता है।

Sec. 6. प्रशिक्षुता की अवधि—प्रशिक्षुता की अवधि सम्बन्धित व्यापार में वर्णित अवधि ही होगी।

Sec. 7. प्रशिक्षुता की अवधि—प्रशिक्षुता की अवधि प्रशिक्षण अवधि की समाप्ति दिवस पर समाप्त हो जायेगी। संविदा समाप्त हो जायेगी यदि,

(i) नियोक्ता यदि अपने शर्तों एवं दशाओं को पूर्ण करने में असफल हो जायें,

(ii) प्रशिक्षु शर्तों व दशाओं के पालन करने में असफल हो जाये।

उपरोक्त दोनों प्रकरणों में क्षतिपूर्ति/वापसी प्रशिक्षुता सलाहकार द्वारा निर्धारित किया जा सकता है।

Sec. 8. नामित व्यापार के लिये प्रशिक्षुओं की संख्या—केन्द्र सरकार अपने अधिकारिक अधिसूचना द्वारा नामित व्यापार में प्रशिक्षुओं की संख्या को निर्धारित कर सकता है।

Sec. 9. प्रशिक्षुओं का प्रयोगात्मक एवं प्राथमिक (आधारभूत) प्रशिक्षण—प्रत्येक नियोक्ता प्रशिक्षुओं की पर्याप्त प्रशिक्षण की व्यवस्था हेतु उपयुक्त व्यवस्था करेगा तथा प्रशिक्षुता सलाहकार की नियुक्ति करेगा।

Sec. 10. प्रशिक्षुओं से सम्बन्धित निर्देश—प्रत्येक प्रशिक्षु अपने व्यवसाय से सम्बन्धित निर्देशों को अपने नियोक्ता से प्राप्त करेगा। वह प्रशिक्षण सम्बन्धी समस्त सुविधायें प्रदान करेगा (उसकी व्यवस्था करेगा)।

Sec. 11. नियोक्ता के दायित्व/कर्त्तव्य—नियोक्ता सम्बन्धित क्षेत्र में बिना किसी भेद-भाव के (पक्षपात रहित) होकर प्रशिक्षण प्रदान करने की व्यवस्था करेगा।

Sec. 12. प्रशिक्षु के दायित्व/कर्त्तव्य—प्रत्येक प्रशिक्षु अपने व्यवसाय से सम्बन्धित प्रशिक्षण को प्रशिक्षुता की शर्तों एवं दशाओं के अन्तर्गत (अनुरूप) ही प्राप्त करेगा। वह प्रयोगात्मक कक्षायें नियमित रूप से लेगा। उसे नियोक्ता के आदेशों को पालन करना चाहिए।

Sec. 13. प्रशिक्षु का भुगतान—प्रत्येक नियोक्ता प्रत्येक प्रशिक्षु को प्रशिक्षण अवधि के दौरान भुगतान प्रदान करेगा। भुगतान की दर निर्धारित न्यूनतम दर से कम नहीं होगी।

Sec. 14. प्रशिक्षुओं का स्वास्थ्य, सुरक्षा एवं कल्याण—इस सन्दर्भ में कारखाना अधिनियम 1948 के प्रावधान लागू होते हैं।

Sec. 15. कार्य के घण्टे, अधिकार्य (अतिरिक्त कार्य-समय)—कोई प्रशिक्षु उस दशा के अतिरिक्त जबकि उसने इस हेतु प्रशिक्षुता सलाहकार की अनुमति प्राप्त कर ली हो, किसी भी दशा में अधिसमय कार्य नहीं करेगा।

Scanned with CamScanner

प्रशिक्षु उस संस्थान में यथानिर्धारित समस्त छुट्टियों, अवकाशों को प्राप्त करने का अधिकारी होगा।

Sec. 16. चोट की क्षतिपूर्ति हेतु नियोक्ता का दायित्व—इस सन्दर्भ में नियोक्ता का दायित्व 'कम्रचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923' से अधिशासित होता है।

अन्य—1. प्रशिक्षु, प्रशिक्षणार्थी है, मजदूर नहीं।

2. विवादों का समाधान, प्रशिक्षु एवं नियोक्ता के बीच (मध्य) किसी भी असहमति की दशा में मामला प्रशिक्षुता सलाहकार को सन्दर्भित किया जायेगा।

परीक्षणों का संचालन, प्रमाण-पत्र की स्वीकृति तथा प्रशिक्षण की समाप्ति

प्रत्येक प्रशिक्षु, प्रशिक्षणोपरान्त राष्ट्रीय परिषद् द्वारा आयोजित परीक्षण में सम्मिलित होगा। इस परीक्षण में उत्तीर्ण होने वाले प्रशिक्षुओं को उनके दक्षता का प्रमाण-पत्र प्रदान किया जायेगा।

रोजगार का प्रस्ताव एवं स्वीकृति

(a) नियोक्ता के लिये यह अनिवार्य (बन्धनकारी) नहीं है कि वह प्रशिक्षु को रोजगार प्रदान (प्रशिक्षणोपरान्त) करे।

(b) यदि संविदा में वर्णित है, तो नियोक्ता प्रशिक्षणोपरान्त प्रशिक्षु को अनुबन्ध की शर्तों के अधीन रोजगार प्रदान करेगा। प्रशिक्षुता सलाहकार इसे दोनों पक्षों (नियोक्ता एवं प्रशिक्षु) की सहमति से इन भुगतान (पारिश्रमिक) दरों को पुनरीक्षित कर सकता है।

7.4 कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम

कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम, कर्मचारी भविष्य निधि अध्यादेश के प्रवर्तन के फलस्वरूप 15 नवम्बर, 1951 को अस्तित्व में आया। अधिनियम का वर्तमान शीर्षक 'कर्मचारी भविष्य निधि एवं विविध प्रावधान अधिनियम, 1952' है।

अधिनियम जम्मू व कश्मीर के अतिरिक्त सम्पूर्ण भारतवर्ष में लागू होता है।

इस अधिनियम में निर्मित अधि० एवं योजनायें एक त्रि-पक्षीय परिषद्, जिसमें केन्द्र सरकार व राज्य सरकार के प्रतिनिधि, नियोक्ता एवं कर्मचारी सम्मिलित होते हैं, जिसे केन्द्रीय न्यासी, कर्मचारी भविष्य निधि के नाम से जाना जाता है।

परिषद्, अंशदायी भविष्य निधि, पेंशन योजना तथा बीमा योजनाओं जो कि भारत में संगठित क्षेत्र में कार्यरत कार्यबल से सम्बन्धित होती है, को अधिशासित करता है। वित्तीय लेन-देन तथा ग्राहकों की संख्या के आधार पर देखा जाये तो यह विश्व के सर्वाधिक विशाल संगठनों में से एक है। परिषद् की सहायता हेतु 'कर्मचारी भविष्य निधि' संगठन है जो भारत सरकार के 'श्रम एवं रोजगार मन्त्रालय' के अन्तर्गत कार्य करता है।

परिषद् निम्नलिखित तीन योजनाओं का संचालन करता है—

1. कर्मचारी भविष्य निधि योजना,
2. कर्मचारी पेंशन योजना,
3. कर्मचारी जमा (निक्षेप) सम्पर्क योजना।

1. कर्मचारी भविष्य निधि योजना, 1952

योजना के लाभ—त्यागपत्र, मृत्यु एवं सेवा निवृत्ति पर संचय धन पर ब्याज। विवाह, बीमारी, उच्च शिक्षा तथा भवन निर्माण के विशिष्ट व्ययों हेतु आंशिक आहरण की अनुमति।

योजना में नामिती को अधिकार

(a) परिवार धारक सदस्य अपने एक या अधिक पारिवारिक सदस्यों को नामित कर सकते हैं (यथा कर्मचारी भविष्य निधि योजना, 1952 में वर्णित)

(b) परिवार रहित सदस्य किसी अन्य व्यक्ति को नामित कर सकते हैं, किन्तु जैसे ही सदस्य परिवार रखेगा यह नामांकन (नामित करना) अवैध हो जायेगा।

विभिन्न उद्देश्यों के (दावा समाधान) लिये इस अधिनियम में अलग-अलग आवेदन-पत्र दिये गये हैं।

Scanned with CamScanner

(a) सदस्य द्वारा अन्तिम समाधान हेतु —फार्म 19
(b) पुराने खाते का नये खाते में स्थानान्तरण —फार्म 13
(c) कतिपय दशाओं में निकासी —फार्म 31
(d) जीवन बीमा निगम की पालिसी हेतु वित्तयन हेतु —फार्म 14

2. कर्मचारी पेंशन योजना

(a) सेवा निवृत्ति, सुपर एन्युएशन, शारीरिक अशक्तता, विधवा, बच्चों को मौद्रिक लाभ।
(b) पेंशन की राशि का निर्धारण उसकी निवृत्ति से 12 माह पूर्व तक के वेतन का औसत एवं कुल नियोजन वर्ष के आधार पर किया जायेगा।
(c) अशक्तता की दशा में न्यूनतम पेंशन।

योजना में नामांकन

(a) सदस्य को यथानिर्दिष्ट आवेदन-पत्र में पत्नी एवं बच्चों का नाम देना होगा।
(b) परिवार न होने की दशा में वह एक व्यक्ति का नाम सुझा (संस्तुत कर) सकता है। किन्तु व्यक्ति द्वारा परिवार रखने की दशा में यह नामांकन अवैध हो जायेगा।

पेंशन योजना में लाभ प्राप्त करने हेतु उसे; (a) मासिक पेंशन योजना हेतु फार्म 10 D तथा लाभ के आहरण (निकासी) हेतु फार्म 10 C में यथा रीति आवेदन करना होगा।

3. कर्मचारी निक्षेप सम्पर्क बीमा योजना, 1976—इस योजना के अन्तर्गत कर्मचारी, जोकि इस योजना का सदस्य रहा हो, को उसकी मृत्युपरान्त लाभ प्रदान किया जाता है।

पुनरीक्षित योजना के अनुसार लाभ-राशि उसकी मजदूरी का 20 गुना अथवा उसकी भविष्य निधि में जमा जो न्यूनतम हो उतनी होगी। साथ ही उसकी मजदूरी की न्यूनतम सीमा (प्रतिबन्धित सीमा) ₹ 6,500 से बढ़ाकर ₹ 15,000 कर दी गयी है (1/09/2014 से) तथा न्यूनतम लाभ राशि ₹ 3,00,000 तथा अतिरिक्त 20% लाभ की राशि दोनों को जोड़ के प्रदान की जायेगी।

कर्मचारी निक्षेप सम्पर्क बीमा योजना में नामांकन योजनानुसार लागू होगा।

फार्म 51 F में यथाविधि आवेदन करके इस योजना में दावे की प्राप्ति की जा सकती है।

कर्मचारी भविष्य निधि

भारत में सरकारी, सार्वजनिक अथवा निजी क्षेत्रों में कार्यरत लगभग सभी व्यक्तियों की बचत हेतु 'कर्मचारी भविष्य निधि एक प्रमुख माध्यम है। यह 'कर्मचारी भविष्य निधि' संगठन द्वारा क्रियान्वित किया जाता है।

यह अनिवार्य, कर योग्यता, परिभाषित, अंशदान संदर्भित लाभ योजना है जिसमें एक निर्धारित दर से नियोक्ता एवं कर्मचारी द्वारा अंशदान किया जाता है तथा सेवा निवृत्ति के समय एकमुश्त राशि प्रदान की जाती है।

कर्मचारी भविष्य निधि हेतु योग्य

- यह अधिनियम सम्पूर्ण भारतवर्ष में लागू होता है।
- अनुसूची 12 में निर्दिष्ट किसी उद्योग में योजित कोई संस्थान जो कारखाना हो तथा जहाँ 20 या अधिक व्यक्ति नियोजित हों।
- कोई संस्थान जिसमें 20 या अधिक व्यक्ति नियोजित हों तथा जिसे केन्द्र सरकार ने अपने अधिकारिक गजट में अधिसूचना द्वारा निर्दिष्ट किया हो।
- कोई कर्मचारी, कर्मचारी भविष्य निधि योजना में नामांकित किसी भी कम्पनी में अपने कार्यभार ग्रहण की तिथि से ही इस योजना हेतु अर्ह है।
- यदि किसी नियोक्ता के अन्तर्गत 20 या अधिक व्यक्ति नियोजित हैं तो उसके लिये यह अनिवार्य है कि वह **कर्मचारी भविष्य निधि योजना** में नामांकित हो।

Scanned with CamScanner

- यदि कर्मचारी की मासिक परिलब्धि ₹ 6,500 से अधिक है तो उसके पास यह विकल्प है कि वह अपने नियोक्ता की सहमति से इस योजना को ग्रहण करे।
- कर्मचारी को योजना का सदस्य बनने हेतु प्रपत्र सं० 2 में निर्दिष्ट सूचनायें भरकर अपने नियोक्ता के माध्यम से जमा करनी होगी।
- अंशदान की दर कर्मचारी की परिलब्धि की 12.5% होगी।
- पारिवारिक स्थिति में कोई परिवर्तन होता है तो उसे फार्म सं० 2 में वर्णित कर नियोक्ता के माध्यम से जमा करना होगा।

कर्मचारी भविष्य निधि ब्याज दर

भारत में यह दर केन्द्र सरकार द्वारा केन्द्रीय न्यासी परिषद् से विमर्श के उपरान्त निश्चित की जाती है। फिलहाल कुछ वर्षों से यह निधि में अनुरक्षित जमा के 8–12% के मध्य रही है।

गणना—प्रत्येक वर्षारम्भ में एक आरम्भिक शेष होता है जो राशि अब तक संयोजित हुयी है। अंशदान मासिक होता है, किन्तु ब्याज की गणना वार्षिक आधार पर होती है।

अर्थात् अगले वर्ष के आरम्भ में,

पुराना आरम्भिक शेष + वर्ष का अंशदान + ब्याज (पुराने आरम्भिक + अंशदान पर)

अंशदान का भुगतान—नियोक्ता कर्मचारी को उसके अंशदान का भुगतान, कर्मचारी भविष्य निधि, कर्मचारी निक्षेप सम्पर्क बीमा, तथा कर्मचारी पेंशन विधि, उसे स्वयं या ठेकेदार के माध्यम से करेगा।

कर्मचारी भविष्य निधि की निकासी (1952)

कर्मचारी अपने खाते से 90% 54 वर्ष की उम्र पार करने के पश्चात् अथवा से वास्तविक सेवा निवृत्ति के एक वर्ष पूर्व, जो भी पश्चातवर्ती हो, पर निकाल सकेगा।

दावे का आवेदन प्रपत्र संख्या 19 में वर्णित कर सम्बन्धित भविष्य निधि कार्यालय में जमा करके किया जा सकेगा।

कार्य-परिवर्तन की दशा में

इस दशा में भविष्य निधि के खाते का शेष एक नियोक्ता से दूसरे नियोक्ता को स्थानान्तरित हो जायेगा। यह शेष सतत् नये नियोक्ता के अंशदान तक जारी रहेगा।

कार्य को छोड़ना—यदि कर्मचारी अपने कार्य को अगले 6 माह तक नहीं करने का विचार करता है, तो वह अपने भविष्य निधि खाते से अपना शेष (जमा) निकाल सकता है।

कर्मचारी भविष्य निधि खाते के परिवर्तित नियम (1 सितम्बर, 2014 से)

नवीन परिवर्तनों को निम्न प्रकार से समझाया जा सकता है—

कर्मचारी भविष्य निधि में कर्मचारी का योगदान 12%	+	कर्मचारी भविष्य निधि खाते में नियोक्ता का अंशदान 12%

विभाजन आधार

→ कर्मचारी भविष्य निधि 3.67

→ कर्मचारी पेंशन योजना 8.33

→ कर्मचारी निक्षेप सम्पर्क बीमा 0.5%

→ कर्मचारी भविष्य निधि (प्रशासनिक व्यय) 1.17%

→ कर्मचारी निक्षेप सम्पर्क बीमा (प्रशासनिक व्यय) 0.01%

Scanned with CamScanner

1 सितम्बर, 2014 से प्रभावी ये परिवर्तन निम्नलिखित हैं—

(a) ₹ 15,000 से कम वेतन पाने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिये कर्मचारी भविष्य निधि अनिवार्य है। (वेतन अर्थात् मूल वेतन + महँगाई भत्ता)

(b) कर्मचारी पेंशन योजना की न्यूनतम राशि ₹ 1,000 प्रतिमाह होगी।

(c) कर्मचारी निक्षेप सम्पर्क बीमा योजना के अन्तर्गत प्रत्येक कर्मचारी की बीमा राशि को ₹ 1.56 लाख से बढ़ाकर ₹ 3 लाख किया गया है।

पहले यह सीमा ₹ 6,000 प्रतिमाह थी जिसे बढ़ाकर अब ₹ 15,000 प्रतिमाह कर दिया गया है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि उपरोक्त अधिनियम ने कर्मचारियों को सामाजिक-आर्थिक सुरक्षा का एक त्रि-स्तरीय कवच प्रदान किया है जिसमें कर्मचारी, नियोक्ता तथा सरकार तीनों का प्रयास कर्मचारी एवं उनके आश्रितों को सुरक्षा प्रदान करने वाला है।

7.5 औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 का संक्षिप्त परिचय

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की मुख्य विशेषताएँ

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 का मुख्य उद्देश्य देश में औद्योगिक शान्ति बनाए रखना तथा श्रमिकों एवं नियोक्ताओं के सम्बन्धों को सुधारना है ताकि हड़ताल, तालाबन्दी और कामबन्दी के अवसर न आएँ और देश के उत्पादन को किसी प्रकार क्षति न हो।

- औद्योगिक विवादों के निबटारे के जाँच व समझौते के लिये कार्यशाला समितियों, समझौता अधिकारी, समझौता बोर्ड तथा जाँच समितियों के गठन के प्रावधान बनाये गये हैं।
- शिकायत-निवारण तन्त्र की व्यवस्था भी इस अधिनियम में की गई है।
- लोकोपयोगी सेवा संस्थानों में हड़ताल तथा तालाबन्दी पर निषेध के सम्बन्ध में सख्त प्रावधानों की व्यवस्था की गई है।
- इस बात को भी अधिनियम में स्पष्ट किया गया है कि कब हड़ताल अवैध होगी और कब तालाबन्दी अवैध होगी।
- अवैध हड़ताल और अवैध तालाबन्दी के लिए धन खर्च करने पर रोक लगाई गई है।
- नियोक्ता द्वारा की जाने वाली छँटनी तथा कामबन्दी पर अनेक प्रतिबन्ध लगाये गये हैं।

अधिनियम के उद्देश्य

वर्तमान औद्योगिक युग में औद्योगिक अशान्ति देश की एक गम्भीर समस्या है। नियोक्ताओं और श्रमिकों में कई बातों को लेकर मतभेद बने रहते हैं। हड़ताल और तालाबन्दी आज के युग में बहुत अधिक गम्भीर रूप धारण कर रही है। प्रस्तुत अधिनियम औद्योगिक विवादों का निपटारा करने के लिए विभिन्न तन्त्र की व्यवस्था करता है।

अधिनियम का उद्देश्य औद्योगिक शान्ति बनाये रखना तथा श्रमिकों और नियोक्ताओं के सम्बन्धों में सुधार करना है ताकि हड़ताल और तालाबन्दी के अवसर न आयें और देश के उत्पादन को किसी प्रकार की हानि न हो।

परिभाषाएँ धारा-2

(a) उपयुक्त सरकार

I. निम्नलिखित से सम्बन्ध रखने वाले औद्योगिक विवादों के लिए उपयुक्त सरकार का आशय केन्द्र सरकार से है—

1. केन्द्रीय सरकार द्वारा या उसके अधीन संचालित उद्योग
2. रेलवे कम्पनी
3. केन्द्रीय सरकार की ओर से निर्दिष्ट किये गये नियन्त्रित उद्योग
4. भारतीय औद्योगिक वित्त निगम
5. कर्मचारी राज्य बीमा निगम

Scanned with CamScanner

6. भारतीय जीवन बीमा निगम आदि।

II. अन्य उद्योगों से सम्बन्ध रखने वाले औद्योगिक विवादों के सम्बन्ध में राज्य सरकार ही उपयुक्त सरकार होगी।

(aa) पंच : इसमें मुख्य पंच भी शामिल हैं।

(aaa) औसत वेतन

(c) मण्डल या बोर्ड (Board)—इससे आशय इस अधिनियम के अन्तर्गत बनाये गये समझौते मण्डल से है।

(g) सेवायोजक या नियोक्ता—केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार के किसी भी विभाग द्वारा या अधीन संचालित उद्योग के सम्बन्ध में निर्धारित अधिकारी 'नियोक्ता' होगा।

(gg) कार्यकारिणी—किसी श्रम संघ के सम्बन्ध में कार्यकारिणी का आशय उस संस्था से है जिसे श्रम संघ के कारोबार का प्रबन्ध सौंपा गया हो चाहे उसे किसी भी नाम से पुकारा जाता हो।

औद्योगिक विवादों के निबटारे के लिए अधिकारीगण

(A) विवादों की जाँच एवं समझौते हेतु

- धारा 3 के अन्तर्गत कार्यशाला समितियाँ
- धारा 4 के अन्तर्गत समझौता अधिकारी
- धारा 5 के अन्तर्गत समझौता बोर्ड
- धारा 6 के अन्तर्गत जाँच समितियाँ

(B) विवाद की न्यायालयीन कार्यवाही एवं निर्णय हेतु

- धारा 7 के अन्तर्गत श्रम न्यायालय
- धारा 7 A के अन्तर्गत औद्योगिक ट्रिब्यूनल
- धारा 7 B के अन्तर्गत राष्ट्रीय ट्रिब्यूनल
- धारा 10 A के अन्तर्गत पंच निर्णय

समझौता अधिकारी

नियुक्ति—उपयुक्त सरकार राजपत्र में अधिसूचना जारी करके उचित संख्या में समझौता अधिकारियों की नियुक्ति कर सकती हैं।

कर्त्तव्य—(i) औद्योगिक विवादों का निबटाना अर्थात् समझौता कराना।

(ii) मध्यस्थता को प्रोत्साहन देना।

क्षेत्र एवं अवधि—समझौता अधिकारी स्थायी रूप से या सीमित अवधि के लिए नियुक्त किये जा सकते हैं।

समझौता बोर्ड

गठन—राजपत्र में अधिसूचना जारी करके उपयुक्त सरकार किसी भी औद्योगिक विवाद के निबटारे के लिए, समझौता बोर्ड का गठन कर सकती है।

सदस्य तथा सभापति—उक्त बोर्ड में एक सभापति होगा तथा अन्य सदस्य विवाद से सम्बन्धित पक्षकारों की एक ओर से बराबर-बराबर संख्या में नियुक्त किये जायेंगे।

जाँच-समितियाँ

गठन—औद्योगिक विवाद से सम्बन्धित किसी भी मामले की जाँच-पड़ताल करने के लिए उत्युक्त सरकार यथा अवसर राजपत्र में अधिसूचना जारी करके जाँच समिति की नियुक्ति कर सकती है।

सदस्य एवं सभापति—जाँच समिति में एक स्वतन्त्र व्यक्ति, अथवा स्वतन्त्र व्यक्तियों की वह संख्या हो सकती है जो उपयुक्त सरकार उचित समझे। यदि समिति में दो या अधिक सदस्य हों तो उनमें से एक सभापति नियुक्त किया जायेगा।

Scanned with CamScanner

कोरम तथा कार्यवाही—यदि समिति में न्यूनतम निर्धारित उपस्थिति या कोरम पूरी हो जाती है, तो सभापति किसी भी सदस्य की अनुपस्थिति या समिति के सदस्यों की संख्या को किसी स्थान के रिक्त होने के उपरान्त भी समिति अपनी कार्यवाही सम्पन्न कर सकती है।

श्रम न्यायालय

गठन—किसी मामले से सम्बन्धित औद्योगिक संघर्ष के निर्णय के लिए तथा इस अधिनियम के अन्तर्गत सौंपे जाने वाले अन्य कार्यों को सम्पन्न करने हेतु उपयुक्त सरकार शासकीय गजट नोटिफिकेशन द्वारा एक से अधिक श्रम न्यायालय की नियुक्ति कर सकती है।

न्यायाधीश या अध्यक्ष—श्रम न्यायालय में उपयुक्त सरकार द्वारा नियुक्त किया जाने वाला केवल एक ही व्यक्ति होगा।

क्षेत्र—नियोक्ता द्वारा स्थायी आदेशों के अन्तर्गत जारी किये गये आदेशों की उपयुक्तता एवं वैधता।

स्थायी आदेशों की प्रभावशीलता एवं उनके अर्थ। हड़ताल एवं तालाबन्दी की वैधता सम्बन्धी मामले।

राष्ट्रीय न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल)

गठन—ऐसे औद्योगिक विवादों के निर्णय के लिए जो केन्द्रीय सरकार के मत में राष्ट्रीय महत्व के प्रश्नों से सम्बन्धित हों अथवा जो इस प्रकार के हों कि उनमें से एक से अधिक राज्यों में स्थित औद्योगिक संस्थानों का हित।

अध्यक्ष—राष्ट्रीय ट्रिब्यूनल में केवल एक ही व्यक्ति होगा जिसे केन्द्रीय सरकार नियुक्त करेगी।

अध्यक्ष की योजनाएँ—कोई व्यक्ति राष्ट्रीय औद्योगिक ट्रिब्यूनल के अध्यक्ष के पद के लिए योग्य नहीं होगा जब तक कि वह उच्च न्यायालय का जज न हो अथवा न रह चुका हो।

न्याय सहायकों की नियुक्ति—यदि केन्द्रीय सरकार उचित समझे, तो राष्ट्रीय औद्योगिक ट्रिब्यूनल के समक्ष कार्यवाही के सम्बन्ध में सलाह देने के लिए दो व्यक्तियों को न्याय-सहायक के रूप में नियुक्त कर सकती है।

पंच निर्णय—किसी भी औद्योगिक विवाद को पंच निर्णय हेतु सन्दर्भित किया जा सकता है। इसके लिए संघर्ष से सम्बन्धित पक्षकारों को एक लिखित ठहराव करना जरूरी है। ऐसा ठहराव अन्य न्यायालयों का मामला सन्दर्भित करने के पहले ही किया जाना चाहिए।

श्रम न्यायालय, ट्रिब्यूनल तथा राष्ट्रीय ट्रिब्यूनल के अध्यक्ष की अयोग्यताएँ

कोई भी ऐसा व्यक्ति श्रम न्यायालय, ट्रिब्यूनल अथवा राष्ट्रीय ट्रिब्यूनल के अध्यक्ष पर नियुक्त नहीं किया जायेगा और न ही उस पद पर बना रहेगा, यदि

1. यह स्वतन्त्र या निष्पक्ष नहीं है।
2. उसकी आयु 65 वर्ष हो चुकी है।

7.6 कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 (Employee's State Insurance Act, 1948)

कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 19 अप्रैल, 1948 में पास हुआ। इस अधिनियम की जरूरत तब महसूस हुई जब यह देखा गया कि कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1924 के बहुत सारे लाभ कर्मचारियों तक पहुँच ही नहीं पाते हैं। इसके प्रमुख कारण हैं—

1. कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम अनेक बीमारियों के लिए कोई प्रावधान नहीं है।
2. इसमें क्षतिपूर्ति प्राप्त करने में बहुत विलम्ब होता है।
3. बहुत-सी परिस्थितियों में यह सिद्ध नहीं हो पाता कि दुर्घटना नियोक्ता की लापरवाही के कारण घटित हुई हैं।

कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम भारत में स्वास्थ्य, प्रसव तथा दुर्घटना बीमा को लागू करने की एक विस्तृत योजना है। इस अधिनियम के द्वारा कर्मचारियों को दो प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं। एक तो इससे कर्मचारियों को धन संचय की आदत

Scanned with CamScanner

पड़ती है तथा दूसरे कर्मचारियों के भविष्य निधि की संचित राशि देश की आर्थिक और विकास योजनाओं में विनियोजित की जाती है जिससे अन्तत: श्रमिक, समाज तथा पूरे देश को लाभ होता है।

उद्देश्य (Object)—इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य आवश्यक अथवा बाह्य राज्य बीमा (Compulsory State Insurance) द्वारा बीमारी, प्रसव अथवा रोजगार के समय हुई दुर्घटना तथा अन्य लाभ कर्मचारियों को प्रदान करके एक-एक सामाजिक बीमा (Social Insurance) शुरू करना है।

कार्य क्षेत्र (Scope)—यह अधिनियम जम्मू एवं कश्मीर को छोड़कर शेष भारत में लागू होता है। यह ऐसे कारखानों या व्यावसायिक प्रतिष्ठानों पर लागू होता है। जहाँ 20 से अधिक श्रमिक कार्यरत हों या उन कारखानों पर भी लागू होता है जहाँ 10 या अधिक श्रमिक कार्यरत हों तथा जिनमें शक्ति का प्रयोग भी हो रहा हो। यह अधिनियम मौसमी (Seasonal) कारखानों पर लागू नहीं होता है।

कर्मचारी राज्य बीमा निगम का गठन
(Constitution of Employee's State Insurance Corporation) 1948

कर्मचारी राज्य बीमा निगम की प्रशासनिक व्यवस्था की देख-रेख एक स्वायत्तशासी संस्था द्वारा की जाती है, जिसमें निम्नलिखित सदस्य होते हैं—

(क) केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त एक अध्यक्ष,
(ख) केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त एक उपाध्यक्ष,
(ग) केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त पाँच से अधिक व्यक्ति,
(घ) जिन राज्यों में यह योजना लागू होगी, उन राज्यों की सरकार द्वारा नियुक्त एक व्यक्ति,
(ङ) केन्द्र शासित प्रदेशों के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त एक व्यक्ति,
(च) केन्द्र सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त कर्मचारी संगठनों की सलाह से केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त नियोक्ताओं के दस प्रतिनिधि,
(छ) केन्द्र सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त कर्मचारी संगठनों की सलाह से केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त कर्मचारियों के दस प्रतिनिधि,
(ज) चिकित्सा व्यवसाय के केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त प्रतिनिधि,
(झ) लोक सभा द्वारा चयनित लोक सभा के दो सदस्य तथा राज्य सभा द्वारा चयनित राज्य का एक सदस्य,
(ञ) निगम का महानिदेशक।

क्रमांक (च), (छ), (ज) और (झ) के सदस्यों का कार्यकाल 4 वर्ष का होता है। महानिदेशक निगम का प्रमुख अधिकारी होता है। निगम के क्षेत्रीय कार्यालय भी होते हैं। उद्योगों तथा प्रतिष्ठानों के मालिकों और कर्मचारियों के अंशदान तथा केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारों व स्थानीय निकायों द्वारा दिये गये अनुदान से इस निगम की वित्तीय व्यवस्था की जाती है। इस राशि को एक निधि में संचित किया जाता है जिसे कर्मचारी राज्य बीमा निधि कहते हैं। कर्मचारियों का अंशदान उनके वेतन के हिसाब से सप्ताह की दर पर उनके वेतन में से काटकर निश्चित तिथि तक जमा कराना उद्योग अथवा प्रतिष्ठान के मालिक की जिम्मेदारी है। निगम की सकल राशि को एक कोष के रूप में संग्रह किया जा सकता है जिसे "राज्य बीमा निधि (State Insurance Fund)" के नाम से जानते हैं।

महत्वपूर्ण परिभाषायें
(Important Definitions)

1. स्थाई पूर्ण अयोग्यता (Permanent Total Disablement)—इसका अर्थ है स्थाई रूप से कार्य करने में पूर्ण असमर्थ जबकि दुर्घटना के समय कार्य करने में पूर्ण समर्थ था।

2. बीमारी (Sickness)—जिसमें अस्वस्थता के कारण श्रमिक कार्य पर न जा सके और डॉक्टरी चिकित्सा सेवा जरूरी हो।

Scanned with CamScanner

3. कर्मचारी (Employee)—ऐसे कारखाने में कार्य करने वाला कोई व्यक्ति जिसमें यह अधिनियम लागू है।

4. लाभ अवधि (Benefit Period)—इसका अर्थ उस समय से है जो निरन्तर कम से कम 25 सप्ताह और अधिक से अधिक 27 सप्ताह जो अंशदान की अवधि के अनुरूप है।

5. अंशदान (Contribution)—कर्मचारियों के वेतन का कुछ अंश काटकर मुख्य नियोजक द्वारा कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम में देय होता है।

6. फैक्ट्री (Factory)—जो शक्ति चालित हो किन्तु 10 या 10 से अधिक श्रमिक कार्य करते हों, बिना शक्ति चालित में 20 या 20 से अधिक श्रमिक कार्य करते हैं।

7. मौसमी फैक्ट्री (Seasonal Factory)—जो कारखाने पूरे वर्ष कार्य नहीं करते जैसे—रूई धुनना, रूई या जूट दबाना, चीनी मिल आदि।

8. प्रसव अवस्था—माँ द्वारा बच्चे को जन्म देने के पूर्व से कुछ दिन बाद तक का समय है।

9. अंशदान काल (Contribution Period)—इसका अर्थ उस समय से है जो निरन्तर 5 सप्ताह से कम और 27 सप्ताह से अधिक न हो, या निरन्तर 6 माह की अवधि विनियमों द्वारा उल्लिखित की जाये।

10. परिवार (Family)—पति या पत्नी, अवयस्क बच्चे जो बीमाकृत व्यक्ति पर आश्रित हैं।

11. स्थाई आंशिक अयोग्यता (Permanent Partial Disablement)—इसका अर्थ है कार्य करने की क्षमता में कमी आना जबकि दुर्घटना से पूर्व कार्य करने में पूर्ण समर्थ हों।

कर्मचारी राज्य बीमा निगम के कार्य
(Functions of Employee's State Insurance Corporation)

निगम के प्रमुख कार्य निम्नांकित हैं—

(i) निगम को अपनी आय तथा व्यय का लेखा-जोखा ठीक उसी प्रकार रखना चाहिए जैसा कि केन्द्रीय प्रत्यावेदन केन्द्र सरकार के समक्ष प्रेषित करता है।

(ii) निगम के कार्यों अथवा उत्तरदायित्वों के मूल्यांकन केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त किसी मूल्यांकनकर्त्ता (Evaluator) द्वारा किया जाता है।

(iii) अपनी पुस्तक/रिकार्ड में सभी राशियों पर होने वाले उस धन का हिसाब-किताब रखना जो प्राप्त होता है अथवा खर्च किया जाता है, का उत्तरदायित्व निगम का ही है।

(iv) निगम का प्रमुख कार्य राज्य बीमा निधि (State Insurance Fund) की देखभाल करना है।

कर्मचारी राज्य बीमा निगम के अधिकार
(Powers of Employee's State Insurance Corporation)

निगम के प्रमुख अधिकार निम्न हैं—

(i) निगम को अपनी स्थायी समिति द्वारा कोष (Fund) के प्रचालन (Operation) व नियुक्ति के लिए अनुमोदन देने का अधिकार प्राप्त है।

(ii) कोष (Fund) के प्रशासन का अधिकार निगम को प्राप्त है।

(iii) निगम केन्द्र सरकार की अनुमति से ऋण ले सकता है तथा उसके भुगतान के उपायों को अपना सकता है।

(iv) केन्द्र सरकार द्वारा निर्धारित शर्तों के अधीन निगम को चल-अचल सम्पत्ति, क्रय-विक्रय अथवा हस्तान्तरण करने का अधिकार प्राप्त है।

(v) निगम अपने कर्मचारियों या उनके किसी वर्ग के लिए कोष की व्यवस्था करने में सर्वथा सक्षम होता है।

(vi) अंशदानों (Contributions) की अदायगी दर सुनिश्चित करने का अधिकार निगम को प्राप्त है।

(vii) किसी कारखाने या कर्मचारी की अंशदान राशि निश्चित करने का अधिकार निगम को है।

(viii) किसी व्यक्ति द्वारा अनुचित लाभ प्राप्त करने पर, निगम उसे ग्रहण कर सकता है।

Scanned with CamScanner

(ix) यदि मुख्य नियोजक अंशदान की अदायगी नहीं करता या असावधानी करता है तो निगम द्वारा यह रकम नियोजक से वसूल की जा सकती है।

(x) निरीक्षकों के क्षेत्राधिकार, उनकी नियुक्ति व संख्या तथा उनके कार्यों को निर्दिष्ट करने का अधिकार निगम (Corporation) को ही प्राप्त है।

(xi) बैठक बुलाने का अधिकार।

(xii) दान प्राप्ति का अधिकार।

दण्ड
(Penalties)

नियोक्ता द्वारा झूठा विवरण देने पर 2000 रु० जुर्माना या छ: महीने की कैद या दोनों दण्ड दिये जा सकते हैं। कर्मचारियों के वेतन में से काटा गया कर्मचारी राज्य बीमा अंशदान नियोक्ता द्वारा जमा न कराने पर 3 वर्ष की कैद (जो एक वर्ष से कम नहीं होगी) तथा 1000 रु० तक जुर्माने का प्रावधान है।

अन्य त्रुटियों के लिए नियोक्ता को एक वर्ष तक की कैद तथा 4000 रु० तक के जुर्माने का प्रावधान है।

अधिनियम के लाभ (Benefits of Act)

वह श्रमिक जिसकी मासिक आय 1000 रु० से कम है, निम्न 6 प्रकार के लाभ प्राप्त करने का अधिकारी है—

(i) अस्वस्थता लाभ (Sickness benefits)
(ii) प्रसव लाभ (Maternity benefits)
(iii) अयोग्यता लाभ (Disablement benefits)
(iv) चिकित्सा लाभ (Medical benefits)
(v) आश्रित लाभ (Dependent benefits)
(vi) अन्तिम संस्कार लाभ (Funeral benefits)

उपरोक्त का संक्षिप्त विवरण निम्न है—

(i) अस्वस्थता लाभ (Sickness Benefits)—अस्वस्थता की स्थिति में, बीमाकृत व्यक्ति (Insured Person) को औसत दैनिक मजदूरी के 50% की दर से प्रतिवर्ष 56 दिन की अवधि के लिए नकद लाभ उपलब्ध होता है। यदि श्रमिक ने 2 साल का कार्यालय पूर्ण कर लिया हो तो अस्वस्थता की विशेष परिस्थिति में घटी दरों पर अस्वस्थता लाभ प्राप्त करने की अवधि 1 वर्ष तक के लिए बढ़ाई जा सकती है। इसके लिए कर्मचारी को अधिकृत चिकित्सक से बीमारी प्रमाण-पत्र लेकर प्रस्तुत करना होता है।

(ii) प्रसव लाभ (Maternity Benefits)—एक बीमाकृत स्त्री कर्मचारी, अपनी प्रसवास्था, गर्भावस्था या प्रसव के कारण बीमार होने पर अधिकृत चिकित्सक का प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करने पर लाभ प्राप्त करने की हकदार होती है। ये लाभ 12 सप्ताह के लिये देय है।

(iii) अयोग्यता लाभ (Disablement Benefits)—बीमाकृत व्यक्ति के नियोजन अथवा कार्य करते समय हुई दुर्घटना में घायल होने के कारण कार्य करने के अयोग्य होने की स्थिति में अयोग्यता लाभ प्रदान किया जाता है। ये लाभ चोट (Injury) की प्रकृति पर निर्भर करते हैं।

7 दिन से अधिक की अस्थायी अयोग्यता के लिए बीमाकृत व्यक्ति को औसत दैनिक मजदूरी के आधे (50%) के बराबर भुगतान दिया जाता है। स्थायी अयोग्यता के लिए बीमाकृत व्यक्ति, उसकी कमाने की क्षमता के अनुपात में जीवन काल के लिए पेंशन पाने का हकदार होगा।

(iv) आश्रित लाभ (Dependents Benefits)—यदि बीमाकृत व्यक्ति की नियोजन के समय घटी दुर्घटना के कारण मृत्यु हो जाती है तो उसके आश्रितों को मिलने वाले लाभ अग्र प्रकार हैं—

Scanned with CamScanner

(a) मृतक की विधवा को मृतक के दुर्घटनाग्रस्त होने पर मिलने वाले अयोग्यता लाभ के 3/5 वें भाग (= 60%) की दर से भुगतान किया जायेगा।

(b) उसके पुत्र को उसकी 6 वर्ष की आयु पूर्ण होने तक पूर्ण दर के 2/3 वें भाग की दर से भुगतान किया जायेगा।

(c) उसकी पुत्री को 18 वर्ष पूर्ण होने अथवा शादी होने तक पूर्ण दर के 2/5 वें भाग की दर से भुगतान किया जायेगा।

(v) चिकित्सा लाभ (Medical Benefits)—यह लाभ चिकित्सा की आवश्यकता के समय बीमा कराये गये कर्मचारी व उसके परिवार को निगम द्वारा संचालित अस्पताल या सरकार द्वारा प्राधिकृत अस्पतालों में बाह्य या आन्तरिक रोगी के रूप में निगम या सरकार के नियमों के अनुसार दिया जाता है। ये लाभ निम्न प्रकार उपलब्ध होते हैं—

(a) बाह्य रोगी के रूप में,

(b) अस्पताल में भर्ती होने पर,

(c) घर पर रहकर चिकित्सक की देख-रेख

इन लाभों के मानक तथा दर, राज्य सरकार तथा कर्मचारी राज्य स्वास्थ्य बीमा निगम के मध्य हुए समझौते के अनुसार निर्धारित किये जाते हैं।

(vi) अन्तिम संस्कार लाभ (Funeral Benefits)—किसी बीमाकृत व्यक्ति की मृत्यु होने पर उसके अन्तिम संस्कार में हुये खर्च का दावा (Claim) करने पर उसके ज्येष्ठ पुत्र/पारिवारिक सदस्य को 100 रु० का भुगतान किया जा सकता है। परिवार न होने पर उस व्यक्ति को जिसने यह खर्च वास्तव में किया है, मृत्यु के तीन माह की अवधि तक माँग प्रस्तुत करने पर मिलता है।

विवादों और दावों का निस्तारण (Adjudication of Disputes and Claims)

(i) कर्मचारी बीमा अदालत (Employee's Insurance Court) का गठन—राज्य सरकार, कर्मचारी के बीमे से सम्बन्धित मामलों, प्रश्नों तथा विवादों को निपटाने हेतु एक कर्मचारी बीमा अदालत का गठन कर सकती है।

(ii) कर्मचारी बीमा अदालत द्वारा निर्णय लिये जा सकने वाले मामले (Matters to be decided by Employee's Insurance Court)—

(क) इस अधिनियम के तहत या तो कोई नियोजित व्यक्ति या कोई अन्य जो कर्मचारी के अंशदान का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है,

(ख) इस अधिनियम के तहत किसी कर्मचारी को दिये जाने वाले पारिश्रमिक की दर या औसत दैनिक पारिश्रमिक,

(ग) किसी व्यक्ति को लाभ प्राप्त करने का अधिकार, उसकी राशि एवं अवधि,

(घ) नियोक्ता तथा कर्मचारी राज्य बीमा निगम (ESI Cor) में मध्य अंशदान लाभ तथा अन्य देय (Due) को लेकर कोई विवाद।

(ङ) मुख्य नियोक्ता द्वारा किसी श्रमिक के सम्बन्ध में दिये जाने वाले अंशदान की दर।

(iii) कर्मचारी बीमा अदालत की शक्तियाँ (Powers of Employee's Insurance Court)—कर्मचारी बीमा अदालत की सिविल कोर्ट की भाँति ही किसी व्यक्ति को गवाही के लिए सम्मान जारी करने (Summoning), दस्तावेजों को प्राप्त तथा प्रस्तुत करने, शपथ लेने तथा गवाही दर्ज कराने के लिए बाध्य करने के अधिकार प्राप्त हैं।

(iv) दण्ड (Penalties)—अगर व्यक्ति जान-बूझकर गलत बयान देता है तथा तथ्यों को छुपाता है, तो वह 6 माह की कैद या 2000 रु० तक जुर्माना या दोनों दण्ड का पात्र होगा।

(v) अंशदान अदा करने में असफल रहने पर दण्ड (Punishment for failure to pay contribution)—यदि कोई व्यक्ति—

1. उस अंशदान का भुगतान करने में असफल रहता है जो इस अधिनियम के तहत देय है, अथवा
2. अस्वस्थता की अवधि में कर्मचारी के निष्कासन करने, कार्यमुक्त करने अथवा कोई अन्य दण्ड देने पर, अथवा
3. कर्मचारी का अंशदान जमा कराने की जिम्मेदारी नियोक्ता की होने के कारण पारिश्रमिक अथवा अन्य किसी लाभ में कमी, अथवा

Scanned with CamScanner

4. निरीक्षक एवं अन्य किसी अधिकारी को उसके कर्त्तव्यों को निभाने में असहयोग करने पर, अथवा
5. इस अधिनियम के किसी प्रावधान के उल्लंघन करने का दोषी पाये जाने पर, उस व्यक्ति को 3 साल तक की कैद अथवा 10000 रु० तक का जुर्माना किया जा सकता है।

7.7 मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 (The Payment of Wages Act, 1936)

मजदूरी भुगतान अधिनियम, सन् 1936 में पारित हुआ था। ऐसा होने से पहले मजदूरी के भुगतान के सम्बन्ध में कोई भी कानून न होने से नियोजकगण अपने मजदूरों को समय पर मजदूरी की अदायगी नहीं करते थे। उनकी मजदूरी में अनेक प्रकार की अनुचित कटौतियाँ करके उन्हें नाना प्रकार से प्रपीड़ित किया जाता था। नियोजकों ने एक प्रकार से मजदूरों का अधिकतम शोषण करना अपना अधिकार मान लिया था। यह सदैव संदेहपूर्ण बना रहता था। कि वेतन मिलेगा या नहीं। मजदूरों को यह ज्ञात ही नहीं होता था कि उन्हें वेतन कब मिलेगा। घर का काम चलाने के लिए उन्हें साहूकारों से भारी ब्याज पर ऋण लेना पड़ता था। ऋण दिन पर दिन बढ़ता ही जाता था तथा उससे उबर पाने का रास्ता न था। मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936, 28 फरवरी 1937 से प्रभावी हुआ। प्रस्तुत अधिनियम में 26 धाराओं का समावेश है। इसके पश्चात् अधिनियम में 1937, 1940, 1950, 1951, 1957, 1964 व 1975 तथा इसके बाद भी समय-समय पर अनेक महत्त्वपूर्ण संशोधन किये गये।

अधिनियम का क्षेत्र (Scope of the Act)—इस नियम का नाम मजदूरी अधिनियम, 1936 है। सन् 1971 में हुये एक संशोधन के अनुसार यह अधिनियम (जम्मू कश्मीर सहित) सम्पूर्ण भारत में लागू होता है। अधिनियम की धारा 1 (3) के अनुसार यह उसी दिन से लागू होगा जो केन्द्र सरकार गजट में अधिसूचना द्वारा निर्धारित करे। यह अधिनियम कारखाने में काम करने वाले व्यक्तियों, रेलवे सेवाओं में नियुक्त कर्मचारियों तथा रेलवे के किसी ठेकेदार द्वारा नियुक्त रेलवे में काम करने वाले व्यक्तियों पर लागू होता है। राज्य सरकार को यह अधिकार प्राप्त है कि वह 3 माह की पूर्व सूचना देने के उपरान्त अधिनियम के समस्त प्रावधान अथवा कोई भी प्रावधान किसी भी उद्योग में नियुक्त किसी भी वर्ग के व्यक्तियों पर लागू कर सकती हैं। पहले 400 रु० प्रतिमाह से अधिक वेतन पाने वाले कर्मचारी इस अधिनियम के क्षेत्र में नहीं आते थे किन्तु 12 नवम्बर, 1975 को जारी एक अध्यादेश के अनुसार अब यह अधिनियम 1000 रु० तक मासिक वेतन पाने वाले कर्मचारियों पर लागू होता है।

अधिनियम के उद्देश्य (Objects of the Act)—मजदूरी एक पारिश्रमिक है जो श्रमिक को उसके कार्य एवं सेवा के प्रतिफल के रूप में प्रदान किया जाता है। वर्तमान युग में औद्योगिक क्षेत्र में मजदूरी का भुगतान एक कठिन चुनौती है। मजदूरों को उचित पगार/मजदूरी प्राप्त हो, साथ ही उद्योग को भी लाभ हो इसके लिए उचित सामन्जस्य बनाना एक दुष्कर कार्य है। उद्योगों में प्राय: श्रमिक इस बात से असन्तुष्ट रहता है कि उसे उचित पगार नहीं मिलती। जबकि प्रबन्ध तन्त्र/उद्योग स्वामी की यह धारणा रहती है कि उद्योग की कमाई का एक बड़ा भाग मजदूरी भुगतान में चला जाता है और उद्योग को कम लाभ होता है। उद्योगों में होने वाले अधिकतर विवादों के मूल में मजदूरी/वेतन/भत्ते आदि से सम्बन्धित कारण होते हैं।

उपरोक्त विवादों को न्यूनतम करने तथा नियोक्ता/श्रमिक सम्बन्धों में मधुरता लाने और मजदूरों को उनकी न्यायोचित मजदूरी दिलवाने के लिए सन् 1936 में मजदूरी भुगतान अधिनियम बनाया गया। इसके पश्चात् समय-समय पर सन् 1937, 1940, 1950, 1957, 1964 व 1975 में इसमें आवश्यक संशोधन किये गये।

यह अधिनियम उद्योग में विभिन्न स्तर पर नियोजित व्यक्तियों के वेतन सम्बन्धी भुगतान को नियन्त्रित तथा नियमित करता है। यह अधिनियम मजदूरों को उनकी मजदूरी की सुरक्षा प्रदान करता है। राज्य सरकार को यह अधिकार होता है कि अगर वह चाहे तो 3 माह की पूर्व सूचना के पश्चात् अधिनियम के सभी अथवा कोई भी प्रावधान किसी भी वर्ग के व्यक्तियों पर लागू कर सकती है। यह अधिनियम निम्न को नियमित करता है—

(i) मजदूरी के भुगतान की तिथि, तथा
(ii) मजदूरी में से होने वाली कटौतियों (दण्ड अथवा अन्य कोई) के लिए नियम।

महत्त्वपूर्ण परिभाषाएँ (Important Definitions)

(i) वेतन/मजदूरी (Wages)—इस अधिनियम के अनुसार मजदूरी का अभिप्राय उस पारिश्रमिक (वेतन + भत्ते) से है जो उसके नियोजन के सन्दर्भ में श्रमिक को देय होते हैं।

Scanned with CamScanner

इसके अन्तर्गत ओवर-टाइम का पारिश्रमिक, बोनस, ग्रेच्युटी, पेंशन, भविष्य निधि, सवैतनिक अवकाश आदि निहित हैं। मजदूरी में किसी आवासीय स्थल का मूल्य, बिजली/पानी, चिकित्सा सुविधा अथवा ऐसी कोई सुख-सुविधा, जो राज्य सरकार के किसी सामान्य अथवा विशेष आदेश के तहत देय न हो, मजदूरी में सम्मिलित नहीं किये जाते।

(ii) औद्योगिक संस्थापन (Industrial Establishment)—औद्योगिक संस्थापन का अर्थ है कोई—

(a) मोटर परिवहन सेवा, जो यात्री या सामान या दोनों किराये पर होती है
(b) हवाई यातायात (Air transport)
(c) जल आपूर्ति (Water Supply)
(d) तेल के क्षेत्र, कोयला ख़दान (Coal mines), आदि
(e) कर्मशालाएँ जहाँ किसी सामान का निर्माण उसके प्रयोग, परिवहन अथवा बिक्री के लिए होता है
(f) विभिन्न प्रकार के संस्थापक जैसे—भवनों, सड़कों, पुलों आदि की संरचना, विकास और अनुरक्षण, विद्युत ऊर्जा का उत्पादन, ट्रांसमीशन तथा वितरण आदि।

मजदूरी का अभिप्राय (Concept of Wages)

मजदूरी का अभिप्राय प्रत्येक प्रकार की अभिप्राप्ति से होता है जो उस धन के रूप में अभिव्यक्त किया गया है या उसे इस प्रकार अभिव्यक्त किया जा सकता है कि यदि नियोजन के लिये अभिव्यक्त या विवक्षित नियोजन की शर्तों की पूर्ति हो जाये जो नियुक्त किये गये व्यक्ति को उसकी सेवा के सम्बन्ध में या ऐसी सेवा में किये गये कार्य के सम्बन्ध में भुगतान योग्य होंगे—मजदूरी में निम्नलिखित भी सम्मिलित हैं—

(क) किसी पंचाट या पक्षकारों के बीच समझौते या न्यायालय के आदेश के अधीन देय कोई पारिश्रमिक।
(ख) कोई पारिश्रमिक जिसके लिये नियुक्त व्यक्ति अति समय (Overtime), विश्राम के दिनों (Holidays) अथवा किसी छुट्टी की अवधि में कार्य करने का अधिकारी हो।
(ग) नौकरी की शर्तों के अन्तर्गत देय कोई अतिरिक्त पारिश्रमिक चाहे उसे लाभांश (Bonus) कहा जाये अथवा कोई अन्य नाम दिया जाये।
(घ) कोई धनराशि जो कि नियोजित व्यक्ति की सेवा की समाप्ति के कारण किसी विधि, संविदा अथवा लिखित (प्रपत्र) के अन्तर्गत विचार करने के कारण ऐसी धनराशि दिये जाने की व्यवस्था करता हो, चाहे कटौती के साथ या उसके बिना हो किन्तु जो किसी ऐसे समय की व्यवस्था नहीं करता जिसके अन्तर्गत भुगतान किया जाता है।
(ङ) कोई धन जिसको नियुक्त व्यक्ति चालू विधि के अन्तर्गत बनाई किसी योजना के अन्तर्गत पाने का अधिकारी हो।

मजदूरी में निम्नलिखित शामिल नहीं हैं—

1. कोई लाभांश (Bonus) जो कि नियोजन नियुक्ति की शर्तों के अधीन देय धनराशि का भाग नहीं है या सेवा की शर्तों के अधीन भुगतान करने योग्य धनराशि का भाग नहीं है या जो किसी पंचाट अथवा पक्षकारों के मध्य समझौता अथवा न्यायालय के आदेश के अधीन देय नहीं है।
2. किसी आवास स्थान का मूल्य या प्रकाश, जल का प्रदाय, चिकित्सक द्वारा देख-भाल या अन्य सुख-सुविधा का राज्य सरकार के सामान या विशेष आदेश द्वारा मजदूरी की संगणना में से अपवर्जित किसी संसृति (Amenity) का मूल्य।
3. नियोक्ता द्वारा पेंशन विधि (Pension fund) अथवा भविष्य निधि (Provident fund) में दिया जाने वाला अंशदान (Contribution) अथवा इन पर होने वाला ब्याज।
4. कोई यात्रा भत्ता या किसी यात्रा सम्बन्धी रियायत (Concession) का मूल्य।
5. जो मामले उपखण्ड (Sub-clauses) (घ) में निर्धारित व्यवस्था के अतिरिक्त हैं, उनमें सेवा की समाप्ति होने पर भुगतान होने योग्य कोई उपदान (Gratuity)।

Scanned with CamScanner

6. विशिष्ट रूप में किये जाने वाले व्यय के लिये, जो सेवा की प्रकृति के अनुकूल होने के कारण नियोजक द्वारा नियुक्त व्यक्ति को भुगतान किया गया हो।

मजदूरी के भुगतान का समय (Time for Payment of Wages)

या (Or)

मजदूरी भुगतान के उत्तरदायित्व (Responsibility for Payment of Wages)

1. प्रत्येक नियोक्ता अपने श्रमिक/कर्मचारियों को पारिश्रमिक के भुगतान के लिए उत्तरदायी है।
2. नियोक्ता भुगतान की अवधि तय कर सकता है जो एक माह से अधिक नहीं होनी चाहिए।
3. कोई भी उद्योग अथवा फैक्ट्री में, जिसमें 1000 से कम व्यक्ति कार्य करते हों, श्रम अवधि समाप्त होने के बाद 7 दिन के भीतर पारिश्रमिक का भुगतान अनिवार्य है।
4. 1000 से अधिक कर्मचारियों वाले उद्योग अथवा फैक्ट्री में, श्रम अवधि समाप्त होने के बाद 10 दिन के भीतर पारिश्रमिक का भुगतान अनिवार्य है।
5. यदि किसी श्रमिक/कर्मचारी की सेवा समाप्त की जाती है तो जिस दिन से पूर्व उसे उसकी श्रम अवधि के पारिश्रमिक का भुगतान हो जाना चाहिए।
6. सभी मजदूरियाँ चालू सिक्कों या करेन्सी नोटों या दोनों के रूप में दी जाएँगी। 1976 के संशोधन में यह प्रावधान किया गया है कि नियोजक चैक से भुगतान कर सकता है या उनके बैंक के खातों में उसे क्रेडिट कराकर, बशर्ते उसने नियोजित श्रमिकों से लिखित अनुमोदन प्राप्त कर लिया हो।

मजदूरी से वैध कटौतियाँ (Legal Deduction from Wages)

किसी कर्मचारी के वेतन से केवल अधिकृत कटौतियाँ ही की जा सकती हैं। ये कटौतियाँ निम्न रूपों में होती हैं—

(i) जुर्माने (Fine), यह पूरी पूछताछ के बाद ही लगाया जाना चाहिए,
(ii) कार्य पर अनुपस्थित रहने के कारण कटौती,
(iii) जहाँ कि वह हानि जो उन वस्तुओं को हुई जो कि प्रत्यक्षत: नियुक्त व्यक्ति की देख-रेख में रखी गयी थी,
(iv) गृह आवास के लिये कटौतियाँ,
(v) कर्मचारियों के सुख-सुविधाओं के लिए कटौतियाँ,
(vi) कर्मचारी द्वारा पहले किये गये अग्रिम धन (Advance) की वसूली के लिये कटौती,
(vii) नियोजित व्यक्ति द्वारा कराई गई कटौतियाँ,
(viii) किसी न्यायालय द्वारा आदेशों के पालन में की जाने वाली कटौतियाँ,
(ix) भविष्य निधि खाते में,
(x) राज्य सरकार द्वारा स्वीकृत सहकारी समितियों की किसी बीमा योजना भुगतान के लिये कटौतियाँ,
(xi) जीवन बीमा पॉलिसी के लिये देय किश्त के लिये कटौतियाँ,
(xii) E.S.I. कटौतियाँ,
(xiii) कर्मचारी के दिये गये ऋण (Loan) अथवा पुनर्प्राप्ति (Recovery) हेतु।

किसी नियोजित व्यक्ति की मजदूरी में से उपरोक्त वर्णित कटौतियों की कुल राशि सहकारी समितियों के भुगतान हेतु मजदूरी के 75 प्रतिशत से अधिक नहीं हागी तथा अन्य दूसरे मामलों में 50 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी। यदि कुल प्राधिकृत (Authorized) कटौतियाँ उपरोक्त वर्णित प्रतिशत से अधिक हों तो अधिक राशि की वसूली निर्धारित (Prescribed) तरीके से की जा सकती है।

आर्थिक दण्ड लगाना (Imposition of Fines)

किसी कर्मचारी पर आर्थिक दण्ड समुचित जानकारी एवं पूछताछ और श्रमिक को अपना पक्ष रखने का पूरा मौका देने के बाद ही लगाया जाना चाहिए। अर्थदण्ड की धनराशि, कर्मचारी के उस श्रम-अवधि के वेतन के 3% से अधिक नहीं होनी

Scanned with CamScanner

चाहिए। सभी प्रकार के दण्ड (Fines) और उनके पुनर्प्राप्ति (Recovery) का पूरा ब्यौरा एक रजिस्टर में अंकित होना चाहिए और यह रजिस्ट्रार नियोक्ता के पास उपलब्ध होना चाहिए।

अधिनियम का अनुपालन (Enforcement of the Act)

फैक्ट्री निरीक्षक (Factory Inspector) इस अधिनियम का उद्योग/फैक्ट्री में अनुपालन सुनिश्चित कराने के लिए उत्तरदायी है। किसी अधिष्ठान में अधिनियम का अनुपालन सुनिश्चित कराने के लिए वह कोई पूछताछ, छानबीन अथवा जानकारी प्राप्त कर सकता है।

राज्य सरकार, किसी श्रमिकों/कर्मचारियों को पारिश्रमिक भुगतान से हो रहे विलम्ब अथवा अनाधिकृत कटौतियों के सम्बन्ध में श्रमिकों का पक्ष सुनने/समझने के लिए एक अधिकारी नियुक्त कर सकती है। यह अधिकारी किसी श्रम अदालत का पीठासीन अधिकारी, सिविल कोर्ट का जज आदि हो सकता है। सुनवाई के बाद यदि अधिकारी उचित समझता है तो वह नियोक्ता को श्रमिक/कर्मचारी के वेतन में की गई कटौती को क्षतिपूर्ति (Compensation) के साथ वापस करने का निर्देश दे सकता है। यदि सुनवाई के बाद यह पाया जाता है कि श्रमिक का पक्ष गलत एवं भ्रामक है तो उस पर नियोक्ता को 50 रु० दण्ड के रूप में भुगतान करने का निर्णय लिया जा सकता है। इस कार्यवाही के लिये श्रमिक/कर्मचारी कटौती की सूचना प्राप्त होने के 30 दिन के अन्दर आवेदन कर सकता है।

अधिनियम का उल्लंघन करने पर दण्ड (Penalties for Offences of the Act)

यदि कोई नियोक्ता अथवा सम्बन्धित व्यक्ति, जो यह लेखा, रजिस्टर अथवा सूचना देने के लिए उत्तरदायी है, प्रति उत्तर में—

(i) रजिस्टर अथवा रिकार्ड/लेख बनाने में असफल रहता है, या
(ii) जानकारी देने में जान-बूझकर देरी अथवा मनाही करता है, या
(iii) जानबूझ कर गलत जानकारी प्रेषित करता है तो उस पर 200 रु० से 1000 रु० तक का जुर्माना लगाया जा सकता है।

अगर कोई व्यक्ति—

(i) जान-बूझकर निरीक्षक को उसका कार्य करने में बाधा डालता है,
(ii) निरीक्षक के माँगने पर कोई रजिस्टर अथवा लेखा प्रस्तुत करने से मना करता है।
(iii) इस अधिनियम के तहत् अधिकृत सुविधाओं जैसे—प्रवेश, निरीक्षण, परीक्षण, पर्यवेक्षण, इन्क्वायरी आदि की जानबूझ कर उपेक्षा करता है अथवा मनाही करता है तो उस व्यक्ति पर 500 रु० तक का दण्ड लगाया जा सकता है।
(iv) निरीक्षक के सामने किसी कर्मचारी को प्रस्तुत करने में बाधा डालता है तो 200 रु० से लेकर 1000 रु० तक का जुर्माना लगाया जा सकता है।
(v) यदि कोई व्यक्ति अधिनियम का उल्लंघन दोबारा करने का दोषी पाया जाता है तो उस पर 500 रु० से लेकर 3000 रु० तक का जुर्माना अथवा 60 माह तक की कैद का दण्ड लगाया जा सकता है।
(vi) यदि नियोक्ता जानबूझ कर मजदूरी का भुगतान नहीं करता है तो उस पर देरी के लिये 50 रु० प्रतिदिन का जुर्माना लगाया जा सकता है।

7.8 बौद्धिक सम्पदा अधिकार (Intellectual Property Rights)

बौद्धिक सम्पदा अधिकार मानव मस्तिष्क की उपज है। दुनिया के देश कई सदियों से अपने-अपने कानून बनाकर इन्हें सुरक्षित करते आ रहे हैं। सन् 1955 में विश्व व्यापार संगठन (World Trade Organization) बना। इस संगठन के ही एक समझौते द्वारा सदस्य देशों की बौद्धिक सम्पदाओं जैसे—पेटेंट, ट्रेडमार्क आदि को सम्मिलित कर बौद्धिक सम्पदा अधिकार (IPR) के अन्तर्गत लाया गया। यह समझौता ट्रिप्स (Agreement on the Trade Related Aspects of Intellectual Property Rights या TRIPS) कहलाता है। यह WTO द्वारा संचालित अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि है, जिसमें बौद्धिक सम्पदा के

Scanned with CamScanner

अधिकारों के न्यूनतम मानकों को तय किया गया है। 1994 में गैट (GATT-General Agreement of Trade and Tariff) के आठवें चक्र (उरुग्वे चक्र) के अन्त में इसे तय किया गया। सारे देश जो विश्व व्यापार संगठन (WTO) के सदस्य हैं, उन्हें इसे मानना ही है, तथा अपने बौद्धिक सम्पदा अधिकार सम्बन्धी कानून, इसके अनुसार ही बनाने पड़ते हैं। ट्रिप्स, WTO सदस्य देशों को बौद्धिक सम्पदा अधिकार के अनुपालन के लिए बाध्य करता है, जिसमें भारत भी शामिल है। इसलिए भारत ने बौद्धिक सम्पदा अधिकार से सम्बन्धित कानूनों को संशोधित किया है। ये संशोधन करने के लिए TRIPS ने अलग-अलग देशों के लिए अलग-अलग समय-सीमा निर्धारित की है। भारत की यह सीमा 31 दिसम्बर 2004 थी। भारतवर्ष की सरकार ने या तो नए कानून बना लिए हैं या पिछले कानूनों में संशोधन कर दिया गया है।

ट्रिप्स (TRIPS) के अनुसार बौद्धिक सम्पदा अधिकार के निम्न सात प्रकार होते हैं—

1. कॉपीराइट प्राप्त करने तथा उससे सम्बन्धित अधिकार (Copyright and Related Rights)
2. ट्रेडमार्क (Trade Mark)
3. भौगोलिक उपदर्शन (Geographical Indication)
4. औद्योगिक डिजाइन (Industrial Design)
5. पेटेंट (Patent)
6. इंटीग्रेटेड सर्किट की डिजाइन (Layout-designs (Topography) of Integrated Circuits)
7. अप्रकाशित सूचना का संरक्षण (Protection of Undisclosed Information)

कॉपीराइट प्राप्त करने तथा उससे सम्बन्धित अधिकार
(Copyright and Related Right)

कॉपीराइट अधिकार किसी चीज के वर्णन में निहित अधिकार है। यदि आप कोई अच्छी कहानी लिखें या कोई गाना संगीतबद्ध करें या पेंटिंग बनाएँ तो यह आपका कॉपीराइट अधिकार होगा। कोई अन्य उसे प्रकाशित करे या प्रतिलिपि बनाए तो उसे आपकी अनुमति लेनी होगी। भारतवर्ष में इस सम्बन्ध में कानून The Copyright Act, 1957 के अन्तर्गत बनाए गए हैं, जिसमें समय-समय पर संशोधन होता गया। हमारे देश में कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर प्रोग्रामों को भी इसी दायरे में देखा गया है, जबकि अमेरिका में साफ्टवेयर, पेटेंट कानूनों के अन्तर्गत सुरक्षित होते हैं। हमारे देश में लेखक की मृत्यु के 60 वर्षों के बाद तक कॉपीराइट होता था किन्तु TRIPS ने कॉपीराइट अधिकारों की अवधि घटाकर 25 वर्ष कर दी है। कॉपीराइट को कॉपीलेफ्ट भी कहते हैं।

ट्रेड मार्क (Trade Mark)

ट्रेड मार्क एक ऐसा शब्द, नाम, चिह्न, अंक या संख्या है, जो किसी निर्माता या व्यापारी द्वारा अपने उत्पाद को अन्य से पृथक् पहचान दिलाता है। आपने डाबर, कोलगेट आदि ब्रांडों को एक विशेष अंदाज में लिखा देखा होगा यही ट्रेड मार्क है। यदि नाम के बाद छोटे से अक्षरों में सीधे हाथ पर ऊपर की ओर TM दिखाई दे तो इसका अर्थ है कि उस ब्रांड नेम के निर्माता ने ट्रेड मार्क के लिए आवेदन कर रखा है एवं ट्रेड मार्क अपेक्षित है। फ्रांस में TM के स्थान पर MC (Marque de commerce) लिखा होता है। ट्रेड मार्क प्राप्त होने पर TM के स्थान पर एक छोटे से वृत्त में लिखा होता है। अमेरिका में R के स्थान पर SM प्रयुक्त किया जाता है। फ्रांस में R के स्थान पर MD (Marque deposee) लिखा होता है। ट्रेड मार्क की अवधि अनन्त होती है, किन्तु TRIPS के अनुसार प्रत्येक सात साल बाद इसका नवीनीकरण होना चाहिए। ब्रांड नेम प्रसिद्ध हो जाने पर इसे बेचा भी जा सकता है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि Coca-Cola ब्रांड की कीमत लगभग 20 बिलयन डॉलर है जबकि Nescafe के बाजार-भाव लगभग 11.5 बिलियन डॉलर है।

भौगोलिक उपदर्शन (Geographical Indication)

कई समान या प्राकृतिक उत्पाद उनकी भौगोलिक स्थिति के परिचायक होते हैं। वे किसी स्थान में ही पाये जाते हैं एवं उनके गुण तथा अभिलक्ष्ण उस भौगोलिक क्षेत्र का उपदर्शन होते हैं। जैसे दार्जिलिंग की चाय, नागपुर के सन्तरे, ह्वाना की सिगार, बासमती चावल, शैंपेन, स्कॉच आदि। इन वस्तुओं को उनके उत्पादन क्षेत्र को भुलाकर नहीं देखा जा सकता। इस प्रकार

Scanned with CamScanner

का बौद्धिक सम्पदा अधिकार किसी व्यक्ति विशेष का नहीं होता एवं उन्हें प्राय: उत्पादन संगठन, नागरिक संगठन आदि प्राप्त करते हैं।

इंडस्ट्रियल डिजाइन (Industrial Design)

ऐसे अधिकार जो किसी आकार, पैटर्न, डिजाइन या किसी औद्योगिक विधि से सम्बन्धित हों, इसके अन्तर्गत आते हैं। किसी आभूषण की डिजाइन, जूते की डिजाइन आदि का अधिकार इसके अन्तर्गत कोई विधि, चाहे यान्त्रिक हो अथवा रासायनिक, का अधिकार भी संरक्षित किया जा सकता है, जबकि TRIPS के पहले केवल उत्पाद का संरक्षण होता था, विधि का नहीं।

कोई भी ऐसी डिजाइन जो इससे पहले भारत में प्रकाशित न हुई हो। डिजाइन धारक (Proprietor) द्वारा अपने नाम पंजीकृत कराई जा सकती है। यदि वस्तु की डिजाइन है, जैसे कुर्सी तो उसे फार्म 15 भरना होगा और यदि वस्तुओं का समूह हो जैसे डाइनिंग टेबल तो फार्म 17 भरना होगा। वस्तु की तीनों विमाओं के फोटो या रेखाचित्र भी तीन प्रतियों में भेजने होंगे। वर्तमान में इंडस्ट्रियल डिजाइन का अधिकार पाँच वर्ष के लिए सुरक्षित कराया जा सकता है तथा इसे अगले दस वर्षों के लिए नवीनीकरण द्वारा बढ़वाया जा सकता है किन्तु TRIPS के अनुसार इसकी कुल अवधि 10 वर्ष है।

पेटेंट (Patent)

बौद्धिक सम्पदा अधिकार मस्तिष्क की उपज है और इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण है—पेटेंट।

पेटेंट धारक (Patentee) पेटेंट का उल्लंघन करने वाले तरीके या उत्पाद के निर्माण को न्यायालय द्वारा रुकवा सकता है। बहुत-से लोग यह कहते हैं कि पेटेंट तकनीक को आगे बढ़ाता है, पर बहुत से लोग यह भी कहते हैं कि इस युग में पेटेंट, तकनीक की प्रगति में बाधा पहुँचा रहा है। इसलिए यह जरूरी है कि हम पेटेंट को समझें और देखें कि वह हमारे देश की उन्नति में बाधा न बने।

इतिहास की दृष्टि में पेटेंट का शब्द, लैटिन के शब्द (Lilterae patents) से आया है। पेटेंट का अर्थ है 'खुला' और Lilterae patents का शाब्दिक अर्थ है (Letters patents) या खुले पत्र। पुराने जमाने में शासक या सरकारों के द्वारा पदवी, हक, विशेष अधिकार-पत्र के द्वारा दिया जाता था। यह शासकीय दस्तावेज होता था और इन्हें चूँकि सार्वजनिक रूप से दिया जाता था, इसलिए ये हमेशा 'खुले' रहते थे।

यूरोप में 6वीं शताब्दी में इस तरह के पत्र दिये जाते थे। ये शासक की ओर से विदेशी भूमि की खोज तथा उस पर विजय के लिए जारी किए जाते थे। आजकल 'पेटेंट' शब्द का प्रयोग आविष्कारों के सम्बन्ध में होता है। इस तरह का प्रयोग पहली बार 15वीं शताब्दी के आस-पास आया। सर्वप्रथम, पेटेंट कानून जैसा इसे आज समझा जाता है। 14 मार्च, 1474 को वियाना सीनेट (Venetian Senate) के द्वारा पारित किया गया।

पेटेंट, आविष्कार को अनन्य (Exclusive) अधिकार होता है। यह बहुत जल्दी इटली से यूरोप के अन्य देशों तक फैल गया। जिन देशों के पास प्रौद्योगिकी नहीं थी, उन्होंने प्रौद्योगिकी को स्थापित करने के लिए विदेशी आविष्कारों को पेटेंट देना शुरू कर दिया। इंग्लैण्ड में पहले इसकी अवधि नहीं थी पर ब्रिटिश संसद ने 1623 में नया कानून बनाकर इसे 14 वर्षों तक सीमित कर दिया।

अमेरिका के संविधान के अनुच्छेद अनुभाग 8 के अन्तर्गत अमेरिकी कांग्रेस को विज्ञान और कलाओं की प्रगति के लिए कानून बनाने का अधिकार है। इस परिप्रेक्ष्य में कांग्रेस ने 1790 में पहला पेटेंट कानून पारित किया। फ्रांस ने इसके अगले वर्ष पेटेंट कानून बनाया। 19वीं शताब्दी के अन्त तक अनेक देशों ने अपनाया, जिसमें भारतवर्ष भी सम्मिलित है। पेटेंट कानून बना लिया था।

भारतवर्ष में पहला पेटेंट सम्बन्धित कानून 1856 में पारित अधिनियम था। इसे 25 फरवरी, 1856 को गवर्नर जनरल की अनुमति प्राप्त हो गई थी पर यह कानून 1857 में अधिनियम सं० 9 के द्वारा इसलिए खारिज कर दिया गया कि इसे बनाने के पूर्व इंग्लैण्ड की महारानी की मंजूरी नहीं प्राप्त की गई थी।

नये आविष्कार के उत्पादकों को प्रोत्साहित करने के लिए 1859 में, अधिनियम सं० 15 पारित किया गया। बाद में यह Inventions and Design Act, 1888 द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया। इसके बाद Indian Patents and Design Act 1911 आया। 1967 में भारत सरकार ने पार्लियामेंट में पेटेंट बिल पेश किया जो Patent Act 1970 (पेटेंट

Scanned with CamScanner

अधिनियम) के रूप में प्राप्त हुआ। पेटेंट अधिनियम को तीन बार संशोधित किया गया है। कुछ संशोधन तो ट्रिप्स के मुताबिक कानून बनाने के लिए किए गए और कुछ अपने अधिकारों (जैसे—परम्परागत सूचना) को सुरक्षित करने के लिए। ये संशोधन निम्न हैं—

(i) संशोधन अधिनियम सं० 17, 1999 (1999 का संशोधन),
(ii) संशोधन अधिनियम सं० 38, 2002 (2002 का संशोधन),
(iii) संशोधन अधिनियम सं० 15, 2005 (2005 का संशोधन)।

पेटेंट प्राप्त करने की प्रक्रिया का सरलीकरण

प्रत्येक देश का अपना पेटेंट कानून है। साधारण तौर पर आविष्कारों को प्रत्येक देश में पेटेंट के लिए आवेदन देना है। आवश्यक है, जहाँ वे अपने आविष्कारों का प्रयोग करना चाहते हैं, किन्तु हर देश में अलग-अलग आवेदन-पत्र देना कठिन कार्य है। इस प्रक्रिया को आसान बनाने के लिए अग्र अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास किए गए हैं—

1. देशों में पेटेंट सम्बन्धी अन्तरों को कम करने का पहला प्रयास (International Convention for the Protection of Industrial Property) था। इसे पेरिस में 1883 में अंगीकार किया गया है। इसे अनेक बार संशोधित किया गया। इसने आविष्कारों को किसी एक सदस्य देश में आवेदन-पत्र प्रस्तुत करने की प्रथम तारीख का लाभ अन्य देशों में आवेदन-पत्र दाखिल करने की तिथि के लिए दिया।
2. Patent Coorperation Treaty 1970 (P.C.T. या पी० सी० टी०) पेटेंट के लिए आवेदन-पत्र प्रस्तुत करने की प्रक्रिया में सुविधा प्रदान करती है। यह पेटेंट के लिए आवेदन-पत्र का मानकीकृत प्रारूप बताती है और इसके साथ उन्हें दाखिल करने की केन्द्रीय कृत सुविधा भी देती है। हमने इसके अनुच्छेद 64 के उप-अनुच्छेद 5 के अलावा, इसे 7-12-98 को स्वीकार किया है।
3. European Patent Convention, 1977 में लागू हुआ। इसके द्वारा एक यूरोपियन पेटेंट कार्यालय की स्थापना हुई।
4. World Intellectual Property Organization WIPO (वाईपो) ने Patent Law Treaty (PLT) (पी० एल० टी०) बनाई है। यह 1 जून 2000 को अंगीकार कर ली गई है। हमने इस पर अभी तक हस्ताक्षर नहीं किए हैं। पी० एल० टी० पी० सी० टी० के अधीन है और विभिन्न देशों में पेटेंटों को प्राप्त करने की प्रक्रिया को और सरल बनाती है। यह पेटेंट के substantive law को प्रभावित नहीं करती है।
5. Substantive Patent Law को एक लय में लाने के लिए वाईपो, Substantive Patent Law Treaty (SPLT) (एस० पी० एल० टी०) का आयोजन कर रही है। भारतवर्ष इसमें भाग नहीं ले रहा है। हमें इसमें भाग लेकर अपनी बात कहनी चाहिए।

आविष्कार (Invention)—पेटेंट आविष्कारों के लिये दिया जाता है। 'आविष्कार' का अर्थ उस प्रक्रिया या उत्पाद से है, जो कि औद्योगिक उपयोजन (Industrial application) के योग्य है। आविष्कार नवीन एवं उपयोगी होना चाहिए तथा इसको उस समय की तकनीक की जानकारी में अगला कदम होना चाहिए। यह आविष्कार उस कला में कुशल व्यक्ति के लिए स्पष्ट (obvious) भी नहीं होना चाहिए।

आविष्कार को पेटेंट अधिनियम की धारा 3 के प्रकाश में भी देखा जाना चाहिए। यह धारा परिभाषित करती है कि क्या-क्या आविष्कार नहीं होते हैं। किसी बात को आविष्कार तब तक नहीं कहा जा सकता है जब तक वह नवीन न हो। यदि किसी बात का पूर्वानुमान किसी प्रकाशित दस्तावेज के द्वारा किया जा सकता था या पेटेंट आवेदन के प्रस्तुत करने के पूर्व विश्व में और कहीं प्रयोग किया जा रहा था तो इसे नवीन नहीं कहा जा सकता। यदि कोई बात सार्वजनिक क्षेत्र में है या पूर्व कला के भाग की तरह उपलब्ध है तो उसे भी आविष्कार नहीं कहा जा सकता। हमारे देश में परमाणु ऊर्जा से सम्बन्धित आविष्कारों का पेटेंट नहीं कराया जा सकता है।

पेटेंटी के अधिकार एवं दायित्व

पेटेंट एक सम्पत्ति है जो कि विरासत में प्राप्त की जा सकती है। पेटेंटी उसे किसी और को दे (assign) सकता है, या बन्धक रख सकता है। यदि दूसरे लोगों ने पेटेंटों से लाइसेन्स न लिया हो तो, पेटेंटी उन्हें अपने पेटेंट का प्रयोग करने से या

Scanned with CamScanner

उसका विक्रय करने से रोक सकता है। उसे अधिकार है कि वह लाइसेंस के द्वारा दूसरे लोगों को यह कार्य करने के लिए अनुमति दे और इसके लिए वह रॉयल्टी भी ले सकता है। यदि कोई व्यक्ति, पेटेंटी से बिना लाइसेंस लिए उसके पेटेंट का अनधिकृत प्रयोग करता है तो पेटेंटी उस पर हर्जाने का मुकदमा या injunction का मुकदमा दायर कर उचित अनुतोष प्राप्त कर सकता है।

ट्रिप्स, ट्रेड मार्क या कॉपीराइट के उल्लंघन के मामलों में दाण्डिक प्रक्रियाओं एवं शास्तियों का प्रावधान बनाने के लिए सदस्यों को कहता है लेकिन पेटेंट के उल्लंघन के लिए नहीं। हमने भी पेटेंट का उल्लंघन करने वाले के लिए दाण्डिक अभियोजन का उपबन्ध नहीं किया है। हाँ, झूठ बोलकर पेटेंट प्राप्त करने पर दाण्डिक अभियोजन की बात अवश्य है।

क्या पेटेंट करवाया जा सकता है? (What can be patented ?)

पेटेंट किसी आविष्कार के लिए प्रदान किया जाता है। Indian Patent Act, 1970 के अनुसार आविष्कार का आशय—

(i) किसी नई व उपयोगी कला, विधि, प्रक्रिया अथवा निर्माण प्रविधि से है।
(ii) कोई नया उपकरण, यन्त्र अथवा वस्तु से है।
(iii) किसी प्रक्रिया से बनने वाले उपयोगी पदार्थ से है।

उपरोक्त के अतिरिक्त यदि आविष्कार नया न होकर वर्तमान को और अधिक उपयोगी बनाए उसे भी पेटेंट करवाया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त पेटेंट तब ही प्रदान किया जा सकता है जबकि वह आविष्कार को कभी प्रदर्शनी, मंच आदि पर प्रदर्शित न किया गया हो।

क्या पेटेंट नहीं किया जा सकता? (What cannot be patented ?)

ऐसा आविष्कार जो—

(i) मूर्खतापूर्ण हो एवं पूर्ण स्थापित प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करता हो।
(ii) किसी वैज्ञानिक सिद्धान्त की खोज।
(iii) किसी ज्ञात पदार्थ का अतिरिक्त गुण।
(iv) कोई ऐसी निर्माण विधि, मशीन या उपकरण जिसका परिणाम नया न हो।
(v) किसी प्रचलित मशीन की दक्षता बढ़ाना या उसे अधिक उपयोगी बनाना।
(vi) किसी ज्ञात उपकरण को अलग-अलग कर पृथक् हिस्से का पेटेंट कराना।
(vii) कृषि या वानिकी की विधि।

इंटीग्रेटेड सर्किट की डिजाइन (Topography of ICs)

इंटीग्रेटेड सर्किट्स (ICs) की डिजाइन भी इंडस्ट्रियल डिजाइन की तरह ही सुरक्षित की जाती है। इसकी अवधि 10 वर्ष है।

अप्रकाशित सूचना का संरक्षण या ट्रेड सीक्रेट (Protection of Undisclosed Information or Trade Secret)—इस प्रकार की सम्पदा को सुरक्षित करने के लिए किसी उद्योग के कर्मचारियों, अधिकारियों से संविदा के आधार पर उद्योग की गोपनीय बातों को सुरक्षित किया जाता है। अन्य देशों में तो इससे सम्बन्धित कानून हैं, किन्तु हमारे देश में केवल संविदा तोड़ने या विश्वास तोड़ने का मुकदमा ही ठोका जा सकता है। यद्यपि TRIPS इससे सम्बन्धित कानून बनाने को कहता है। ट्रेड सीक्रेट का एक रोचक उदाहरण कोका-कोला है, कोका-कोला का असली फार्मूला उसके मालिक ही जानते हैं। बाटलिंग संयन्त्रों में वह गाढ़े (paste) रूप में आता है एवं संयन्त्र के कर्मचारी उसे केवल पानी में घोलकर बोतल में बन्द करते हैं। पूरी जिन्दगी नौकरी करने पर भी वे कोका-कोला का असली फार्मूला नहीं जान पाते।

पेटेंट एवं कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर—यह विवादास्पद विषय है कि कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर प्रोग्राम पेटेंट कराया जा सकता है अथवा नहीं। इस बारे में अलग-अलग देशों के नियम भी भिन्न हैं। इसे कराये जाने के तरीके पर भागों में बाँटना उचित होगा—

Scanned with CamScanner

1. अलग-अलग देशों में क्या नियम है?
2. यदि कम्प्यूटर प्रोग्राम पेटेंट को सकते हैं तो उसकी क्या कालावधि होनी चाहिए?
3. कम्प्यूटर प्रोग्राम को पेटेंट कराने का क्या तरीका होना चाहिए?

पहला भाग भी अपने में बहुत बड़ा है। इसे भी कुछ कड़ियों में करना होगा—

अमेरिका में पेटेंट का कानून

अमेरिका में पेटेंट का कानून यदि कम्प्यूटर प्रोग्राम औद्योगिक प्रक्रिया के साथ हो

अमेरिका में पेटेंट का कानून यदि कम्प्यूटर प्रोग्राम व्यापार के तरीके के साथ हो

अमेरिका में कम्प्यूटर प्रोग्राम से जुड़े पेटेंट के कुछ उदाहरण

यूरोप में पेटेंट का कानून

भारतवर्ष में पेटेंट का कानून

अमेरिका में पेटेंट का कानून

पेटेंट आविष्कार के लिए दिए जा सकते हैं। भारतीय पेटेंट अधिनियम की धारा 3 बताती है कि क्या आविष्कार नहीं है और जो आविष्कार नहीं है उसका पेटेंट नहीं कराया जा सकता है। अमेरिका के पेटेंट कानून में ऐसी सीमा नहीं है। अमेरिकी उच्चतम न्यायालय ने चक्रवर्ती केस (Diamond Vs. Chakrawarty 447, 45303; 65 LED 2d 144) में कहा है कि अमेरिका कांग्रेस उन सबका पेटेंट करने का आशय रखती है, जोकि मनुष्य द्वारा निर्मित की जाती हैं, पर यह भी स्पष्ट किया है कि—

(i) इसका यह अर्थ नहीं है कि पेटेंट कानून की कोई सीमाएं नहीं हैं और प्रत्येक खोज को पेटेंट कराया जा सकता है,

(ii) प्रकृति के नियम, भौतिक घटनाएँ तथा विचारों को पेटेंट नहीं कराया जा सकता है,

(iii) भूमि में खोजा गया नवीन खनिज या जंगल में पाए गए नवीन पौधों को पेटेंट नहीं कराया जा सकता है। न तो आइन्स्टीन अपने प्रसिद्ध नियम $E = mc^2$ को पेटेंट करवा सकते थे और न ही न्यूटन गुरुत्वाकर्षण के नियम को पेटेंट करा सकते थे।

ऐसी खोजें, प्रकृति की अभिव्यक्तियाँ हैं, ये सभी व्यक्तियों के लिए स्वतन्त्र हैं तथा किसी के भी लिए अनन्य रूप से आरक्षित नहीं है।

पार्कर केस (Parker Vs. Flook) 437, US-504 : 57 L Ed 2d 451) में अमेरिकी उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि गणितीय सूत्र का पेटेंट भी नहीं कराया जा सकता है।

अमेरिकी पेटेंट अधिनियम न तो कम्प्यूटर प्रोग्राम और न ही व्यापार करने के तरीकों के बारे में अलग से जिक्र करता है। गॉटसचाल्क केस (Gottschalk Vs. Benson 40 US63 = 34 L Ed 2d 273) में अमेरिका के उच्चतम न्यायालय ने यह तय किया कि डेसीमल नम्बरों को शुद्ध बाइनरी नम्बरों में बदलने वाले कम्प्यूटर प्रोग्राम को पेटेंट नहीं किया जा सकता है। यह इसलिए क्योंकि इसे मंजूर करने का परिणाम एक विचार के लिए अनुचित रूप से पेटेंट जारी करना होगा।

संक्षेप में, अमेरिका में, न तो एल्गोरिथम (Algorithm) को पेटेंट कराया जा सकता है, न ही कम्प्यूटर प्रोग्राम, यदि वह अकेले में हो। लेकिन यदि कम्प्यूटर प्रोग्राम, औद्योगिक प्रक्रिया या व्यापार के तरीके का एक हिस्सा हो तो क्या यही स्थिति रहेगी? चलिए इसके बारे में चर्चा करें।

अमेरिकी उच्चतम न्यायालय ने चार के मुकाबले पाँच से अपना फैसला सुनाया कि,

(i) यह पेटेंट कराया जा सकता है, और

(ii) पेटेंट होने योग्य दावा मात्र केवल इस बात से पेटेंट करने के लिए अयोग्य नहीं हो जाता है कि उसमें गणितीय फार्मूला या कम्प्यूटर प्रोग्राम या कम्प्यूटर का प्रयोग हुआ है।

Scanned with CamScanner

संक्षेप में, एक कम्प्यूटर प्रोग्राम यदि किसी एक औद्योगिक प्रक्रिया का हिस्सा हो तो उसके साथ में पेटेंट हो सकता है। यहीं से शुरू हुआ कम्प्यूटर प्रोग्राम का अमेरिकी पेटेंट कानून के साथ सफर। ऐसा सफर जो कि कईयों के मुताबिक एक खतरनाक मोड़ पर आ पहुँचा है।

कम्प्यूटर प्रोग्राम व्यापार के तरीके के साथ

परम्परागत तौर पर, मात्र प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित प्रक्रियाओं को ही पेटेंट किया जा सकता था। अनेक दूसरे कार्यकलाप जिनके अन्तर्गत व्यापार के ढंग या आँकड़ा विश्लेषण जो कि प्रक्रियाएँ कही जा सकती हैं, को पेटेंट नहीं किया जाता था। पर डॉह केस के बाद अमेरिका में पेटेंट देने की प्रक्रिया में बदलाया आया है। यू० एस० पेटेंट एण्ड ट्रेड ऑफिस (यू० एस० पी० टी० ओ०) ने पेटेंट करने के मार्गदर्शन की मैन्यूअल में परिवर्तन किया है। इसकी कम्प्यूटर प्रोग्राम के लिए व्यापार के तरीकों से सम्बन्धित पूर्वोत्तर पॉलिसी जो निम्नलिखित थी—

"Though seemingly within the category of a process or method, a method of doing business can be rejected as not being within the statutory classes."

इसे बदल कर इस प्रकार कर दिया गया है—

'Office Personnel have had difficulty in properly treating claims directed to methods of doing business, claims should not be categorized as methods of doing business. Instead such claims, should be treated like any other process claims.'

उपर्युक्त परिवर्तन को मद्देनजर रखते हुए स्टेट स्ट्रीट केस (Strate street Bank Vs Signature financial group 149 F 3d, 1352) में अमेरिका के एक अपीली न्यायालय ने कहा कि कोई प्रक्रिया पेटेंट करने योग्य है या नहीं, यह इस पर नहीं तय होना चाहिए कि प्रक्रिया व्यापार करती है पर यह देखना चाहिए कि, पेटेंट की जाने वाली प्रक्रिया एक उपयोगी तरीके से प्रयोग की जा रही है अथवा नहीं। अमेरिका में व्यापार के तरीकों के लिए दिए पेटेंट के कुछ उदाहरण निम्न हैं—

सामान खरीदने की स्वीकृति देने के लिए एक क्लिक का प्रयोग करना,

लेखा लिखने की एक ऑन-लाइन पद्धति,

ऑन-लाइन परिश्रमिक प्रोत्साहन पद्धति,

ऑन-लाइन बारम्बार क्रेता कार्यक्रम, और

उपभोक्ता को अपने दिए गए दाम पर सर्विस की सूचना प्राप्त करने की सुविधा।

संक्षेप में, अमेरिका में विचार पेटेंट नहीं कराये जा सकते पर जब विचार व्यावहारिक तौर पर एक उपयोगी, कंक्रीट तथा मूर्त परिणाम देते हैं तो उन्हें पेटेंट कराया जा सकता है। आजकल अमेरिका में यू० एस० पी० टी० ओ० के मैन्युअल में व्यापार के तरीके के पेटेंट के ऊपर एक अध्याय है और उपयोगी व्यापार के तरीके तथा आँकड़ा विश्लेषण के लिए कम्प्यूटर प्रोग्राम के पेटेंट मंजूर हो रहे हैं। ऑस्ट्रेलिया और जापान ने भी अमेरिका का अनुसरण किया है।

अमेरिका में व्यापार करने के तरीकों में सुधार लाने के लिए Business Patent Improvement Act, 2000 लाया गया था पर यह अभी तक पारित नहीं किया गया है और शायद यह कभी भी पारित नहीं होगा।

यूरोप में पेटेंट का कानून—यूरोपियन पेटेंट कनवेंशन 1973 (ई० पी० सी०) का अनुच्छेद 52 (2) कहता है कि मानसिक कार्य करने की प्रक्रिया, खेल खेलने के तरीके, व्यापार के तरीके और कम्प्यूटर प्रोग्रामों को पेटेंट नहीं किया जा सकता। यही ई० पी० सी० के सदस्य देशों का भी कानून हैं किन्तु व्यवहार में, यह नियम बदल गया है। इस तरह के पेटेंटों के लिए यदि आवेदन-पत्र कम्प्यूटर प्रोग्राम या व्यापार के तरीकों की जगह तकनीकी में बढ़ोत्तरी की तरह प्रस्तुत किए जाएँ तो उन पर विचार किया जा सकता है। यूरोप के भिन्न-भिन्न देशों में अलग-अलग नियम हैं और यूरोपियन कमीशन उसमें समानता लाने का प्रयास कर रहा है। वह इसमें सफल होगा अथवा नहीं यह तो भविष्य ही बतायेगा।

भारतवर्ष में पेटेंट का कानून—भारतवर्ष में पेटेंट अधिनियम की धारा 3 को 2002 में संशोधित किया गया है। इसने पेटेंट अधिनियम में धारा 3 (K) को प्रतिस्थापित किया है। इसमें गणित, व्यापार के तरीकों, कम्प्यूटर प्रोग्राम अकेले में (Computer Programme per se), अल्गोरिथम को आविष्कार नहीं माना गया है अर्थात् यह पेटेंट नहीं हो सकते हैं।

Scanned with CamScanner

यहाँ 'कम्प्यूटर प्रोग्राम' को Per se के द्वारा प्रतिबन्धित किया गया है। Per se का अर्थ अकेले में या अपने आप में है। इसका अर्थ यह हुआ कि कम्प्यूटर प्रोग्राम अपने आप में आविष्कार नहीं है, पर इसका यह भी अर्थ हुआ कि यदि वह अकेले में न हो तो आविष्कार माने जा सकते हैं और उसका पेटेंट भी हो सकता है। आगे न्यायालय इसका क्या मतलब निकालेंगे? क्या हम अमेरिका की राह जाएँगे या यूरोप की यह तो केवल भविष्य ही बता सकता है।

कम्प्यूटर प्रोग्राम के पेटेंट की कालावधि—पुरानी तकनीकी में प्रशिक्षणार्थियों को प्रशिक्षण देने में लगभग सात वर्ष लगते थे तथा प्रशिक्षणार्थियों की दो पीढ़ियों को प्रशिक्षित करने में चौदह वर्ष लगते थे, इसलिए पहले पेटेंट को चौदह वर्षों के लिए दिया जाता था। इंग्लैण्ड में बीसवीं शताब्दी के शुरू में इसे बढ़ाकर सोलह साल कर दिया गया। हमने भी इसी का अनुसरण किया और पेटेंट 16 साल के लिए दिया जाने लगा। पेटेंट अधिनियम में इसे पुन: 14 साल कर दिया गया। हालांकि यह अवधि कुछ श्रेणियों के लिए पाँच या सात साल की रही। ट्रिप्स बीस वर्षों के लिए पेटेंट को संरक्षण करने को कहता है। हमने 2002 के संशोधन द्वारा यही किया है।

सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रगति ज्यामितीय ढंग से गतिशील हैं। अनेक लोग यह कहते हैं कि—

(i) यदि कम्प्यूटर प्रोग्राम या इन्टरनेट पर व्यापार करने के तरीके के लिए पेटेंट दिया जाए तो उसके लिए 20 वर्षों की कालावधि अत्यधिक लम्बी है,

(ii) कम्प्यूटर प्रोग्राम हर दो साल में बदल जाता है,

(iii) दो साल से ज्यादा समय के लिए पेटेंट की कालावधि बेकार है। पर यह तब तक नहीं किया जा सकता जब तक ट्रिप्स में बदलाव न किया जाए।

कम्प्यूटर प्रोग्राम को पेटेंट कराने का तरीका

जब कम्प्यूटर प्रोग्राम से सम्बन्धित किसी प्रक्रिया या उत्पाद का पेटेंट कराया जाता है तब कम्प्यूटर प्रोग्राम का सोर्स कोड नहीं बताया जाता, उसे केवल फ्लो चार्ट के द्वारा दिखाया जाता है। यह भी विचारणीय प्रश्न है कि, क्या यह सही है? क्या यह उस प्रक्रिया या उत्पाद की पूरी जानकारी देता है? आशा है कि इस प्रश्न का भी उत्तर जल्दी मिलेगा।

निष्कर्ष—कम्प्यूटर प्रोग्राम पेटेंट हो सकता है कि नहीं, इस बारे में कानून स्पष्ट नहीं है। फिर भी, यदि सब किसी न किसी तरह से कम्प्यूटर प्रोग्राम पेटेंट करा रहे हैं तो हमें भी पीछे नहीं रहना चाहिए। यदि कम्प्यूटर प्रोग्राम पेटेंट हो सकता है तो उसे पेटेंट कराना चाहिए। यदि यह समय या खर्च के कारण पेटेंट नहीं कराया जा सकता है तो इसको वेबसाइट पर प्रकाशित करना चाहिए। इस कारण यह पूर्व कला के रूप में रहेगा और कम से कम दूसरे लोग इसको पेटेंट कराने में समर्थ नहीं होंगे।

ट्रिप्स में सात तरह के बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के बारे में चर्चा की गई है। भारतवर्ष में निम्न आठ अधिनियमों के अन्दर बौद्धिक सम्पदा अधिकार सुरक्षित किए गए हैं—

(i) The Biological Diversity Act, 2002
(ii) The Copyright Act, 1957
(iii) The Design Act, 2002
(iv) The Geographical Indications of Goods (Registration and Protection) Act 1999
(v) The Patent Act, 1970
(vi) The Protection of Plant Varieties and Farms Rights Act 2001
(vii) The Semiconductor Integrated Circuits Layout Design Act, 2000
(viii) The Trade Marks Act, 1999.

इनके अलावा दो और क्षेत्र निम्न हैं जिनके अन्तर्गत बौद्धिक सम्पदा अधिकारों को सुरक्षित किया जाता है—

1. ट्रेड सीक्रेट (Trade Secret)
2. संविदा कानून (Contract Act)

Scanned with CamScanner

प्रश्नावली

1. "औद्योगिक अधिनियम" पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
2. "औद्योगिक अधिनियम" से क्या अभिप्राय है? उद्योगों में इसकी आवश्यकता एवं महत्त्व को बताइए।
3. औद्योगिक अधिनियम के प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
4. विभिन्न प्रकार के श्रम अधिनियमों का वर्गीकरण कीजिए।
5. "भारतीय कारखाना अधिनिमय-1948" के प्रमुख लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की विवेचना कीजिए।
6. कारखाना अधिनिमय-1948" में श्रमिक, परिभोगी और कारखाने की परिभाषा किस प्रकार की गई है? स्पष्ट कीजिए। *(UP 2005)*
7. कारखाना अधिनिमय-1948 के प्रमुख प्रावधानों को समझाइये। *(UP 2003)*
8. कारखाना अधिनिमय-1948 के सुरक्षा सम्बन्धी मुख्य लक्षण बताइये।
9. "स्वास्थ्य रक्षा, सुरक्षा तथा कर्मचारियों का कल्याण ही कारखाना अधिनिमय-1948 का उद्देश्य है।" विवेचन कीजिए। *(UP 2000)*
10. कारखाना अधिनिमय-1948 का मुख्य उद्देश्य शारीरिक जोखिमों के प्रति श्रमिकों को संरक्षण देना है।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए। *(UP 1997)*
11. कारखाना अधिनियम के अनुसार निम्न कारकों की विवेचना करो—
    (क) फैक्ट्री (factory)
    (ख) कारखाने का अधिष्ठाता (Occupier of factory)
    (ग) विनिर्माण प्रक्रिया (Manufacturing Process)
    (घ) सक्षम व्यक्ति (Cornpetant Person)
    (ङ) श्रमिक (Labour)
    (च) यन्त्र (Machinery)
    (छ) वयस्क (Adult)
    (झ) बालक (Child)
    (ज) नवयुवक (Adolescent)
    (ञ) शक्ति (Power)।
12. कारखाना अधिनिमय-1948 में कार्य घण्टे से सम्बन्धित प्रावधानों को बताइये।
13. कारखाना अधिनिमय-1948 में श्रम कल्याण के लिये क्या प्रावधान किये गये हैं?
14. कारखाना अधिनिमय-1948 के विशेष प्रावधान क्या हैं? बताइये।
15. औद्योगिक विवाद अधिनिमय-1947 के मुख्य उद्देश्यों की विवेचना कीजिए। *(UP 2004)*
16. औद्योगिक विवाद अधिनिमय-1947 में निम्न को किस प्रकार परिभाषित किया गया है— *(UP 2005)*
    (a) कामबन्दी (Lay off)
    (b) तालाबन्दी (Lockout)
    (c) छटनी (Retrenchment)
    (d) हड़ताल (Strike)
    (e) निलम्बन (Suspension)
17. औद्योगिक विवाद अधिनिमय-1947 के प्रमुख प्रावधानों की विवेचना कीजिए।
18. औद्योगिक विवाद अधिनिमय में दण्ड व्यवस्थायें क्या हैं? बताइये।
19. औद्योगिक न्यायधिकरण तथा राष्ट्रीय न्यायाधिकार पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।
20. औद्योगिक विवाद अधिनिमय-1947 के अनुसार हड़ताल एवं तालाबन्दी के सम्बन्ध में प्रावधानों को स्पष्ट कीजिए।
21. औद्योगिक विवाद अधिनिमय-1947 के अनुसार अंशवैधानिक हड़ताल एवं तालाबन्दी होने क्या दण्ड प्रावधान किये गये हैं? स्पष्ट कीजिए।
22. औद्योगिक विवादों को सुलझाने की कौन-कौन सी विधियाँ हैं? सविस्तार समझाइये।

Scanned with CamScanner

23. औद्योगिक विवाद अधिनिमय-1947 (Industrial disputes Amendments Act, 1976) पर संक्षप्ति टिप्पणी कीजिए।
24. मजदूरी भुगतान अधिनिमय-1936 के प्रमुख उद्देश्यों और लक्ष्यों की विवेचना कीजिए।
25. मजदूरी भुगतान अधिनियम के अनुसार मजदूरी को परिभाषित कीजिए।
26. मजदूरी भुगतान के उत्तरदायित्वों (Responsibilities) की विवेचना कीजिए।
27. मजदूरी से कौन-कौन सी वैध कटौतियाँ की जा सकती है? समझाइये।
28. मजदूरी भुगतान अधिनियम का उल्लंघन करने पर क्या-क्या दण्ड व्यवस्थायें हैं? स्पष्ट कीजिए।
29. कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम पर टिप्पणी लिखिए। *(UP 1994)*
30. कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के मुख्य प्रावधानों का वर्णन कीजिए। *(UP 2002, 09)*
31. कर्मचारी राज्य बीमा अधिनिमय-1948 के अन्तर्गत कर्मचारियों को कौन-कौन से लाभ उपलब्ध है? स्पष्ट कीजिए। *(UP 1997, 2002, 06)*
32. कर्मचारी राज्य बीमा निगम का गठन किस प्रकार किया जाता है? स्पष्ट कीजिए।
33. कर्मचारी राज्य बीमा निगम के अधिकारों तथा कर्त्तव्यों को स्पष्ट कीजिए।
34. कर्मचारी राज्य बीमा निगम को प्रमुख लाभों की विवेचना कीजिए।
35. कर्मचारी राज्य बीम अधिनियम के अनुसार विवादों अथवा दावों का निस्तारण किस प्रकार किया जाता है? स्पष्ट कीजिए।
36. कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम की दण्ड व्यवस्था क्या है?
37. कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम -1923 पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।
38. कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम -1923 के अनुसार निम्न को परिभाषित कीजिए—
    (a) आश्रित (Dependent)
    (b) आंशिक अपंगता (Rential disablement)
    (c) पूर्ण अपंगता (Full or t disablement)
39. क्षतिपूर्ति हेतु नियोक्ता के उत्तरदायित्वों की विवेचना कीजिए।
40. क्षतिपूर्ति हेतु राशि या मुआवजा किन कारकों पर निर्भर करता है? स्पष्ट कीजिए।
41. प्रशिक्षु अधिनियम 1961 के प्रमुख प्रावधानों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
42. कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम 1952 का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।
43. कर्मचारी भविष्य निधि खाते के परिवर्तित नियमों पर प्रकाश डालिए।
44. औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 के उद्देश्य एवं प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
45. विवादों की जाँच एवं समझौते हेतु निकाय एवं अधिकारियों की वैयक्तिक स्थिति एवं गठन का वर्णन करिये।
46. बौद्धिक अधिकार सम्पदा किसे कहते हैं?
47. बौद्धिक अधिकार सम्पदा कितने प्रकार के होते हैं?
48. ट्रेडमार्क का संक्षिप्त विवरण कीजिए।
49. पेटेन्ट का संक्षिप्त विवरण कीजिए।
50. कम्प्यूटर साफ्टवेयर से सम्बन्धित पेटेन्ट कानून बताइये।
51. कम्प्यूटर प्रोग्राम को पेटेण्ट कराने के तरीके का विवेचना कीजिए।
52. ट्रिप्स (TRIPS) में कितने प्रकार के बौद्धिक अधिकारों की चर्चा की गई है?
53. कम्प्यूटर प्रोग्राम को पेटेन्ट की कालावधि बताइये।
54. व्यापारिक चिन्ह का अवधारणा एवं इसके इतिहास पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

Scanned with CamScanner



सामग्री प्रबन्ध

[Material Management]

* *स्कन्ध नियन्त्रण प्रतिमान, स्कन्ध नियन्त्रण तकनीकें-ABC विश्लेषण मितव्ययी आदेश मात्रा, संग्रहण उपकरण, क्रय प्रक्रिया, कार्ड अनुक्रमणिका सामग्री, उठायाधरी तकनीके, संख्यात्मक प्रश्न एवं उत्तर।*

8.1 परिचय (Introduction)

किसी भी देश या राष्ट्र को आर्थिक रूप से सुदृढ़ करने में उद्योगों की अहम् भूमिका होती है अर्थात् उद्योगों को प्रोत्साहित किये बिना कोई भी देश विकसित नहीं हो सकता और न ही उसकी अर्थव्यवस्था मजबूत हो सकती है। संसार के विकसित देश उद्योगों को प्रोत्साहित करके ही प्रगति कर सके हैं। देश के औद्योगिक प्रतिष्ठान अपनी उत्पादकता में वृद्धि करके अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की प्रतिस्पर्धा में उतर सकें तथा बेहतर ढंग से कार्य में संलग्न रहें, इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर विभिन्न उद्योगों में उपलब्ध संसाधनों के उच्च स्तरीय प्रबन्ध के लिए ही स्कन्ध या सामग्री प्रबन्ध (Inventory or material management) का सृजन किया गया। सामग्री (Material) कार्यशील पूँजी (Working capital) के घटकों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटक है। यद्यपि किसी भी वस्तु या उत्पाद (Product) के निर्माण में सामग्री, में सामग्री प्रमुख है, क्योंकि यदि सामग्री उपलब्ध न हो तो या इसका प्रबन्ध ठीक न हो तो केवल श्रम एवं व्यय के आधार पर उत्पादन कार्य (Production work) सम्पन्न नहीं हो सकता है। यही कारण है कि प्रतिष्ठानों में उत्पाद के विनिर्माण पर उसके लागत का 50 से 70 प्रतिशत सामग्री (Material) पर खर्च होता है अर्थात् औद्योगिक प्रतिष्ठानों में निवेशित पूँजी का एक बड़ा भाग पदार्थ या सामग्री पर खर्च होता है।

सामग्री प्रबन्ध (Material management) एक ऐसी सतत् एवं क्रमबद्ध प्रक्रिया है, तो मूल-सामग्री (Raw material) की खरीद से प्रारम्भ होकर उत्पाद (Product) के तैयार होने तक चलती है, सामग्री का क्रय करना, उसे वर्गीकृत करना, बिन कार्ड (Bin card) बनाना, माल का भण्डारण (Storage of material) करना, भण्डार खाता (Store ledger) बनाना तथा उत्पाद निर्मित करने हेतु माल की आपूर्ति (Supply) करना इत्यादि कार्य सामग्री प्रबन्ध (Material management) के अन्तर्गत ही आते हैं। स्कन्ध या सामग्री प्रबन्ध प्राय: दो अर्थों में प्रयोग में लाया जाता है। उत्पादन तथा क्रय विभाग के लिए सामग्री प्रबन्ध का अर्थ सामग्री खपत करने वाली इकाइयों के प्रबन्ध से होता है, जबकि लेखा एवं वित्त विभाग के लिए सामग्री प्रबन्ध का अर्थ सामग्री में विनियोजित पूँजी या धन का प्रबन्ध करना होता है। अत: संक्षेप में, निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि सामग्री प्रबन्ध का अर्थ सामग्री की मात्रा तथा इसमें विनियोजित पूँजी (Capital) का प्रबन्ध करना होता है।

स्कन्ध या सामग्री प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य सामग्री लागत को घटाना तथ सामग्री हस्तान्तरण (Material handling) को व्यवस्थित व दक्षतापूर्ण बनाना होता है, जोकि प्रतिष्ठान के उन सभी स्तरों (Stages) तथा उपभागों (Sections) के लिये इसलिए जरूरी होता है ताकि आवश्यकतानुसार सामग्री की खपत की जा सके, उनमें उचित समन्वय स्थापित किया जा सके, तथा सामग्री पर होने वाले अपव्यय को यथा सम्भव रोका भी जा सके। सामग्री प्रबन्ध का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत व व्यापक होता है जिसमें मुख्यत: सामग्री की लागत, आपूर्ति (Supply), खपत (Consumption) तथा इसके हस्तान्तरण (Handling) पर

Scanned with CamScanner

विशेष ध्यान दिया जाता है। इसके अतिरिक्त कई अन्य क्षेत्र और भी हैं जिनके साथ सामग्री प्रबन्ध का अभिन्न सम्बन्ध है— पदार्थ नियोजन व प्रोग्रामिंग (Material planning and programming), क्रय करने के लिए बाजार-अनुसंधान (Market research), पूँजीगत सामान (Capital goods), पुर्जे (Components) तथा अर्द्ध-परिष्कृत माल (Semi-finished items) इत्यादि। पैकिंग (Packing), भण्डारण (Storage), स्कन्ध नियन्त्रण (Inventory control), माल का परिवहन (Transportation of goods), सामग्री हस्तान्तरण (Material holding) जिसके अन्तर्गत अवशिष्ट (Scrap) एवं अतिरिक्त व निष्प्रोज्य सामग्री (Surplus and waste materials) भी सम्मिलित हैं।

सामग्री प्रबन्ध के सभी सम्बन्धित कार्य (Functions) सामग्री प्रबन्धक (Material manager) द्वारा सम्पादित किये जाते हैं, वह ही यह सुनिश्चित करता है कि उद्योग के संचालन के लिए आवश्यक संसाधन उचित समय व उचित मात्रा में उद्योग को प्राप्त होते रहें. साथ ही वह संसाधन सम्बन्धी निर्णय का सही व उचित दिशा प्रदान करता है और यह भी सुनिश्चित करता है कि कच्चे माल (Raw material) की आवश्यकतानुसार खपत हो, उत्पादकता (Productivity) में वृद्धि हो, कच्चा माल (Raw material) व्यर्थ में नष्ट न होने पाये तथा उत्पाद (Products) त्रुटि रहित व उच्च गुणवत्ता वाले तैयार हों। इतना ही नहीं उसे कच्चे-माल के स्कन्ध (Stock) को भी सुनियन्त्रित करना होता है। अर्थात् उसे कच्चे माल के क्रय आपूर्ति व आवश्यकता पर विशेष ध्यान होता है। इस सम्बन्ध में वह अधिकतम, न्यूनतम एवं पुनर्निर्देश के आधार पर ही किसी अन्तिम निष्कर्ष पर पहुँचता है। उसे यह देखना होता है कि कच्चा माल अधिकतम स्तर से अधिक न होने पाये, अन्यथा कच्चे माल के नुकसान होने का खतरा रहता है और कच्चा माल न्यूनतम स्तर से कम भी न हो, ताकि उत्पाद के निर्माण में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न हो सके। कच्चे माल की खरीदारी में चूँकि समय लगता है। इसीलिए पुन: निर्देश स्तर का निर्धारित करना होता है। यही वह स्तर है कि जिस पर कि नये माल को खरीदने के आदेश निर्गत किये जाते हैं। इस कार्य के लिये सामग्री प्रबन्धक को कम्पनी के गत रिकार्डों का अध्ययन करने के साथ-साथ भविष्य की सम्भावनाओं पर भी चिन्तन करना होता है। इसलिए यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि आधुनिक औद्योगिक युग में सामग्री प्रबन्धक पद बहुत ही महत्त्वपूर्ण व उत्तरदायित्वपूर्ण है।

परिभाषाएँ (Definitions)

पदार्थ प्रबन्धन पदार्थ की प्राप्ति तथा तैयार उत्पाद के उत्पादन कार्य से जुड़ी पदार्थ के प्रयोग की सभी गतिविधियों को जोड़ने की प्रक्रिया है। पदार्थ प्रबन्धन से जुड़ी कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्न हैं—

1. "पदार्थ प्रबन्धन, प्रबन्धन प्रक्रिया का वह पहलू है जिसके अन्तर्गत वाँछित पदार्थ को प्राप्त करना, उसका नियन्त्रण उपयोग, उत्पादन-प्रक्रमों के लिए पदार्थ का प्रवाह और सम्बन्धित सेवाएँ सम्मिलित हैं।"
2. "पदार्थ प्रबन्धन, पदार्थ एवं सामग्री आवश्यकताओं से जुड़ी सभी गतिविधियों के नियोजन, निर्देशन, नियन्त्रण एवं समन्वयन की प्रक्रिया है। यह पदार्थों की मात्रा और गुणवत्ता जानने से शुरू होती है तथा ग्राहक की आवश्यकता के अनुरूप एवं न्यूनतम दाम पर उपलब्ध उत्पाद के उत्पादन के लिये इसके प्रवाह पर समाप्त होती है।"
3. "पदार्थ प्रबन्धन एक पद (Term) है जो पदार्थ प्रवाह के पूर्ण चक्र से जुड़ी प्रबन्धन गतिविधियों की व्याख्या करता है। ये गतिविधियाँ उत्पादन हेतु पदार्थ के क्रय तथा आन्तरिक नियन्त्रण, जब उत्पादन कार्य प्रगति पर हो, भण्डार ग्रह तथा तैयार उत्पाद के वितरक तक हो सकती है।"

इस प्रकार पदार्थ प्रबन्धन का सम्बन्ध वाँछित पदार्थों के क्रय, उत्पादन, भण्डार, नियन्त्रण, पदार्थ, हस्तान्तरण, पैकेजिंग, परिवहन तथा वितरण आदि प्रबन्धकीय प्रक्रिया से होता है। ये सारी गतिविधियाँ सामूहिक रूप से पदार्थ प्रबन्धक द्वारा नियन्त्रित की जाती है।

सामग्री के प्रकार (Types of Inventory or Material)

स्टॉक में सामग्री मुख्यत: निम्नांकित चार प्रकार की होती हैं—

(i) कच्चा माल (Raw Material)—यह मूल पदार्थ है जो उत्पादन में प्रयोग में लाया जाता है।

(ii) अर्द्ध-निर्मित माल (Semi-finished Material)—ऐसा पदार्थ जिस पर उत्पादन की कुछ प्रक्रमें (Processes) तो हो चुकी हों तथा कुछ उत्पादन की प्रक्रियाओं से उसे और गुजरना शेष हो, अर्द्ध-निर्मित माल कहा जाता है।

(iii) निर्मित माल (Finished Material)—जोकि विक्रय हेतु एकदम तैयार हालत में होता है।

(iv) अन्य सामग्री (Other Material)—इसमें अतिरिक्त पुर्जे (Spare parts) तथा औजार (Tools) इत्यादि आते हैं, जिन्हें स्टॉक में रखा जाता है, क्योंकि ये उत्पादन कार्य में सहायक होते हैं।

Scanned with CamScanner

पदार्थ प्रबन्धन के कार्य (Functions of Material Management)

सामग्री प्रबन्ध के प्रमुख कार्य निम्नांकित होते हैं—

(i) सामग्रियों का नियोजन, प्रोग्रामिंग एवं बजटिंग (Planning, progamming and budgeting of materials)

(ii) अधिप्राप्ति या सामग्रियों को खरीदना (Procurement or Purchasing of materials)

(iii) सामग्री की आपूर्ति करना (Supply of materials)

(iv) माल को प्राप्त करना, निरीक्षण करना तथा गोदाम को व्यवस्थित करना (Receiving, inspection of goods and ware housing)

(v) भण्डारण तथा भण्डार प्रशासन (Storage and store administration)

(vi) सामग्री नियन्त्रण (Inventory control)

(vii) मानकीकरण (Standardisation), सरलीकरण (Simplification) तथा मूल्य (Value-analysis)

(viii) सामग्री हस्तान्तरण (Material handling) तथा वाह्य परिवहन (External transportation) की व्यवस्था करना अर्थात् माल का परिवहन कार्य रेल (Rail), जहाज (Ship) इत्यादि द्वारा कराना।

(ix) पैकिंग (Packing), डिस्पैचिंग (Dispatching) करना तथा अवशिष्ट (Scrap), अतिरिक्त (Surplus) व निष्प्रयोज्य (Obsolete) सामग्री का निस्तारण (Disposal) करना।

उपरोक्त सभी कार्यों (Functions) में उचित सामंजस्य (Coordination) स्थापित करना अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है, जिसकी उपलब्धता ही सामग्री प्रबन्ध की सफलता की कटौती है। एक सफल सामग्री प्रबन्ध वही होता है जो सही सामग्री सही मूल्य पर, सही गुणवत्ता वाली, सही मात्रा में, सही समय व सही स्थान पर उपलब्ध कराने की क्षमता रखे।

पदार्थ प्रबन्धन के उद्देश्य (Objectives of Materials Management)

पदार्थ प्रबन्धन के प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं—

(i) पदार्थ प्रबन्धन का मूलभूत उद्देश्य पदार्थों की लागत को न्यूनतम करना है।

(ii) वाँछित गुणवत्ता का पदार्थ प्राप्त करना तथा आवश्यकतानुसार उपलब्ध कराना।

(iii) पदार्थ की अच्छी दशायें एवं सुरक्षित प्राप्ति एवं नियन्त्रण।

(iv) उचित एवं सक्षम अधिकारी की रसीद पर पदार्थ जारी (Issue) करना।

(v) आवश्यकता से अधिक स्टॉक की पहचान करना तथा उसे कम करने के उपाय करना।

(vi) भण्डार से जुड़े निवेश को कम के उसे अन्य उपयोगी कार्यों में प्रयोग करना और उच्च टर्न-ओवर सुनिश्चित करना।

(vii) सरलीकरण, मानवीकरण, आयात विकल्प, मूल्य विश्लेषण आदि प्रक्रियाओं द्वारा पदार्थ लागत कम करना।

(viii) पदार्थ की आपूर्ति के नये स्रोतों की तलाश करना तथा उनसे अच्छे सम्बन्ध स्थापित करना जिससे बाधारहित आपूर्ति मिलती रहे।

(ix) गतिविधियों की दक्षता को बढ़ाने के लिए पदार्थ प्रबन्धन से जुड़े व्यक्तियों को प्रशिक्षित करना।

(x) उचित एवं दक्ष लेखा तैयार करना तथा त्वरित रिपोर्टिंग करना।

(xi) बाजार में होने वाले परिवर्तनों तथा अन्य प्रभावित करने वाले कारकों की सूचना कम्पनी को प्रेषित करना।

पदार्थ प्रबन्धन की कार्य सीमा (Scope of Material Management)

पदार्थ प्रबन्धन के अन्तर्गत ऐसी सभी गतिविधियाँ स्वीकार की जा सकती हैं जो पदार्थ के नियोजन (Planning), क्रय (Purchasing), उत्पादन नियन्त्रण (Production control), भण्डार (Stores), परिवहन (Traffic) तथा भौतिक वितरण (Physical distribution) से सम्बन्धित हों।

Scanned with CamScanner

पदार्थ प्रबन्धन गतिविधियों की मुख्य कार्य सीमा/कार्य क्षेत्र निम्न प्रकार हैं—

(a) नियोजन कार्य (Planning Function)—पदार्थ प्रबन्धन के नियोजन सम्बन्धी कार्य निम्न हैं—

1. विक्रय का पूर्वानुमान लगाते हुए लम्बी अवधि के लिये पदार्थों की आवश्यकता निर्धारित करना।
2. उत्पादन की वर्तमान नीति के अनुरूप नवीनतम बिक्री माँग को समायोजित करना तथा उसी के अनुरूप पदार्थ की आवश्यकता निर्धारित करना।
3. पदार्थ प्रबन्धन के लिये आवश्यक सुविधाओं की व्यवस्था करना।

(b) उत्पादन नियन्त्रण (Production Control)—यह कार्य निम्न प्रकार से किया जाता है—

1. क्रय तथा विनिर्माण किये जाने वाले पदार्थ और पार्ट्स की आवश्यकता ज्ञात करना।
2. पदार्थों तथा पार्ट्स के क्रय तथा विनिर्माण हेतु अनुसूचन (Scheduling) करना।
3. विनिर्माण विभाग (Manufacturing department) को कार्य आदेश (Work order) तथा आपूर्तिकर्त्ताओं (Suppliers) को क्रय आदेश (Purchase order) निर्गत करना।
4. उत्पादन विभागों को पदार्थ भेजना (Dispatch)।

(c) क्रय (Purchasing)—क्रय विभाग का कार्य न्यूनतम सम्भव कीमत पर उत्पादन कार्यों की माँग के अनुरूप उत्तम गुणवत्ता का पदार्थ एवं अन्य सामग्री उपयुक्त समय पर उपलब्ध कराना है। क्रय की मुख्य गतिविधियाँ निम्न हैं—

1. स्वीकार योग्य आपूर्तिकर्त्ताओं का चयन करना तथा क्रय आदेश निर्गत करना।
2. भण्डार की आवश्यकताओं के अनुरूप सामग्री की डिलीवरी करवाना सुनिश्चित करना।
3. नये पदार्थों और आपूर्तिकर्त्ता की तलाश करना जो उद्योग/उपक्रम को लाभ दे सकें।

(d) इन्वेन्ट्री एवं भण्डार नियन्त्रण (Inventory and Store Control)—इन्वेन्ट्री नियन्त्रण एक क्रमबद्ध प्रक्रिया है जो न्यूनतम लागत पर उत्पादन सम्बन्धी आवश्यक सामग्री की उपलब्धता सुनिश्चित करती है। इसके अन्तर्गत निम्न कार्य हैं—

1. आवश्यकताओं के अनुरूप सही समय पर पदार्थ की प्राप्ति।
2. पदार्थ की प्राप्ति करने, जारी करने तथा अवशेष सम्बन्धी रिकार्ड को नवीनतम स्थिति में तैयार रखना।
3. मितव्ययी क्रय आदेश मात्रा (Economic order quantity E.O.Q.) का निर्धारण करना।

(e) पदार्थ प्राप्ति एवं भण्डारण (Material Receiving and Stores)—इस विभाग की प्रमुख गतिविधियाँ निम्न हैं—

1. क्रय किये गये पदार्थों की डिलीवरी प्राप्त करना, क्रय आदेश के अनुरूप उनका सत्यापन करना, उनका निरीक्षण करना एवं भण्डार लेखा (Accounts) के लिये एक समान प्राप्ति रसीद तैयार करना तथा पदार्थों को भण्डार में अथवा उपयोग में लाने वाले विभाग में भेजना।
2. पूर्वनिर्धारित नीतियों के अनुसार सामग्री एवं पदार्थ का भण्डारण करना तथा उनकी तुरन्त पहचान सुनिश्चित कराना।
3. समय-समय सामग्री का भौतिक सत्यापन करना तथा लेखा सम्बन्धी त्रुटि, यदि कोई है, को समाप्त करना।

(f) भौतिक वितरण (Physical Distribution)—इसका सम्बन्ध उत्पादन विभागों से तैयार माल की प्राप्ति एवं उनके सत्यापन से है।

1. उत्पादन विभागों से तैयार माल की प्राप्ति करना, उनका सत्यापन करना, उन्हें उचित प्रकार से तब तक रखना जब तक उनका भौतिक वितरण न हो जाये।
2. तैयार उत्पाद की पैकिंग कर लेबल लगाना तथा ग्राहकों तक पहुँचाने से पहले तैयार करना।
3. वितरण सम्बन्धी दस्तावेज जैसे पैकिंग स्लिप लगाना, बिल बनाना, गाड़ी अथवा रेलवे के लिये कागज तैयार करना।
4. लेखा विभाग को भौतिक वितरण सम्बन्धी जानकारी देना तथा विक्रय विभाग को तैयार उत्पाद के स्टॉक की स्थिति से अवगत कराना।

(g) पदार्थ हस्तान्तरण (Material Handling)—पदार्थ हस्तान्तरण गतिविधियाँ अग्र प्रकार हैं—

Scanned with CamScanner

1. ट्रक, पैलेट तथा कन्टेनरों द्वारा प्लांट के भीतर पदार्थों का हस्तान्तरण।
2. पदार्थ हस्तान्तरण उपस्करों तथा अन्य चीजों जैसे—पैलेट, कन्टेनरों आदि की देखभाल करना।

(h) परिवहन (Transportation)—परिवहन का सम्बन्ध कच्चे माल के आने तथा तैयार उत्पाद के बाहर भेजे जाने से है। जब कोई कम्पनी स्टाफ की परिवहन व्यवस्था रखती है तथा नियमित रूप से किराये पर लेती है तब यह पदार्थ प्रबन्धन की ही एक प्रक्रिया होती है। इसके अन्तर्गत निम्न कार्य आते हैं—

1. रेलवे सामान घर, आपूर्तिकर्त्ता के उद्योग अथवा ऐसा ही किसी जगह से कच्चा माल ढोकर लाना।
2. ग्राहकों, रेलवे सामान घर, आढ़तियों या खुदरा (Retailers) के पास तैयार माल की आपूर्ति करना।
3. यदि परिवहन व्यवस्था किराये पर ली जाती है तो मार्ग तथा किराया भाड़ा आदि तय करना।
4. यदि कम्पनी वाहन है तो उसका अनुरक्षण करना।

सामग्री प्रबन्ध के आवश्यक तत्त्व (Essential Elements of Material Management)—सामग्री प्रबन्ध के कुछ आवश्यक तत्त्व अग्रांकित हैं, जो कि एक सफल सामग्री प्रबन्ध तन्त्र में विद्यमान होने चाहिए—

(i) स्कन्ध या सामग्री का वर्गीकरण एवं चिह्न (Classification and Identification of Inventories)—भण्डार (Store) में विभिन्न प्रकार की सामग्रियों को सुव्यवस्थित ढंग से रखा जाना चाहिए, साथ ही उसका उचित अभिलेख (Record) भी उपलब्ध रहना चाहिए। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य है जिसके लिए यह जरूरी है कि प्रत्येक मद (Item) को एक निश्चित कोड संख्या (Code no.) तथा चिह्न (Mark) प्रदान किया जाए तथा उसका वर्गीकरण भी किया जाए अर्थात् उसे A, B, C अथवा D इत्यादि वर्गों में क्रमश: वर्गीकृत किया जाए। इसी प्रकार कोड संख्या (Code no.) व चिह्न (Marking) हेतु आवश्यकतानुसार अक्षर (Letters) व संख्याओं (Numerals) का प्रयोग किया जाना चाहिए।

उदाहरणार्थ—माना कि पीतल (Brass) के लिए B सांकेतिक अक्षर दिया जाए और उसकी किस्म विशेष को 400 कोड संख्या दी जाए तो इस सामग्री को B-400 से उद्घोषित किया जायेगा। इस तरह भण्डार में रखी किसी भी सामग्री को इन सांकेतिक कोड संख्या व चिह्न के आधार पर ढूँढने में काफी सुगमता हो जाती है। क्रय विभाग तथा लागत लेखा विभाग के कर्मचारियों को भी इससे लेखा कार्य में सुगमता व सरलता हो जाती है।

(ii) स्कन्ध या सामग्री का सरलीकरण तथा मानकीकरण (Simplification and standardisation of Inventories)—सामग्री के क्रय तथा नियन्त्रण में सुगमता तभी अनुभव होती है, जबकि सामग्री की किस्म एवं श्रेणियाँ मानकीकृत हो साथ ही इनके आकार व प्रकार का वर्गीकरण जितना कम हो उतना ही सुगम व सुविधाजनक होगा।

(iii) पर्याप्त सूचनायें (Adequate Reports)—भण्डार में से जो भी सामग्रियाँ उपलब्ध हों उन सभी का विस्तृत अभिलेख (Record) बनाना चाहिए जिसमें मुख्यत: हस्तगत सामग्री (Material in Hand), रास्ते में सामग्री आदेशित सामग्री (Ordered material) तथा सामग्री के विभिन्न स्तरों इत्यादि विभिन्न सूचनाओं की पर्याप्त जानकारी सदैव उपलब्ध रहनी चाहिए।

(iv) न्यूनतम व अधिकतम स्कन्ध स्तर या मात्रा का निर्धारण (Determination of Minimum and Maximum Levels)—सामग्री प्रबन्ध द्वारा प्रत्येक मद (Item) की न्यूनतम एवं अधिकतम स्कन्ध मात्रा का निर्धारण विवेकपूर्ण ढंग से किया जाना चाहिए, क्योंकि अत्यधिक सामग्री भण्डार में एकत्रित होने अथवा भण्डार में सामग्री के एकदम समाप्त हो जाने से अनावश्यक संकट उत्पन्न हो सकता है। इस संकट से मुक्ति पाने के लिये प्रत्येक मद की न्यूनतम व अधिकतम मात्रा का निर्धारण किया जाना आवश्यक होता है, जिससे सामग्री के अति विनियोग पर भी अंकुश लगता है।

(v) मितव्ययी आदेश मात्रा (Economic Order Quantity)—एक फर्म को क्रय आदेश सदैव मितव्ययी आदेश मात्रा (Economic Order Quantity) में ही दिया जाना चाहिए, ताकि उत्पादन में किसी भी प्रकार का व्यवधान उत्पन्न न हो सके।

(vi) बजटन (Budgeting)—सामग्री को क्रय करने से पूर्व सामग्री का विस्तृत बजट तैयार किया जाना चाहिए। इस बजट के अनुसार ही सामग्री के क्रय की प्रकिया को अपनाया जाना चाहिए, तभी क्रय में मितव्ययिता लाना सम्भव हो पायेगा, अन्यथा नहीं।

Scanned with CamScanner

(vii) अनुभवी स्टाफ (Experienced Staff)—सामग्री का प्रबन्ध कार्य दक्षतापूर्ण ढंग से तभी सम्पन्न हो पायेगा, जबकि प्रबन्ध में योग्य एवं अनुभवी स्टाफ विद्यमान होंगे। उनमें इतनी क्षमता अवश्य होनी चाहिए कि वे सामग्री का विस्तृत अभिलेख (Record) तैयार कर सके तथा सामग्री की यथार्थ सूचनायें समय से सम्बन्धित विभागों को प्रेषित भी कर सकें।

(viii) भण्डारण के लिये पर्याप्त स्थान (Adequate Space for Storage)—सामग्री के भण्डारण के लिए पर्याप्त स्थान उपलब्ध होना चाहिए, ताकि सामग्री खराब न होने पाये तथा उसे रखना एवं निकालना भी सुगम हो।

(ix) आन्तरिक नियन्त्रण (Internal Control)—सामग्री पर उचित नियन्त्रण बनाये रखने के लिये आन्तरिक निरीक्षण एवं जाँच (Internal Inspection and Checking) की व्यवस्था चुस्त व दुरुस्त होनी चाहिए।

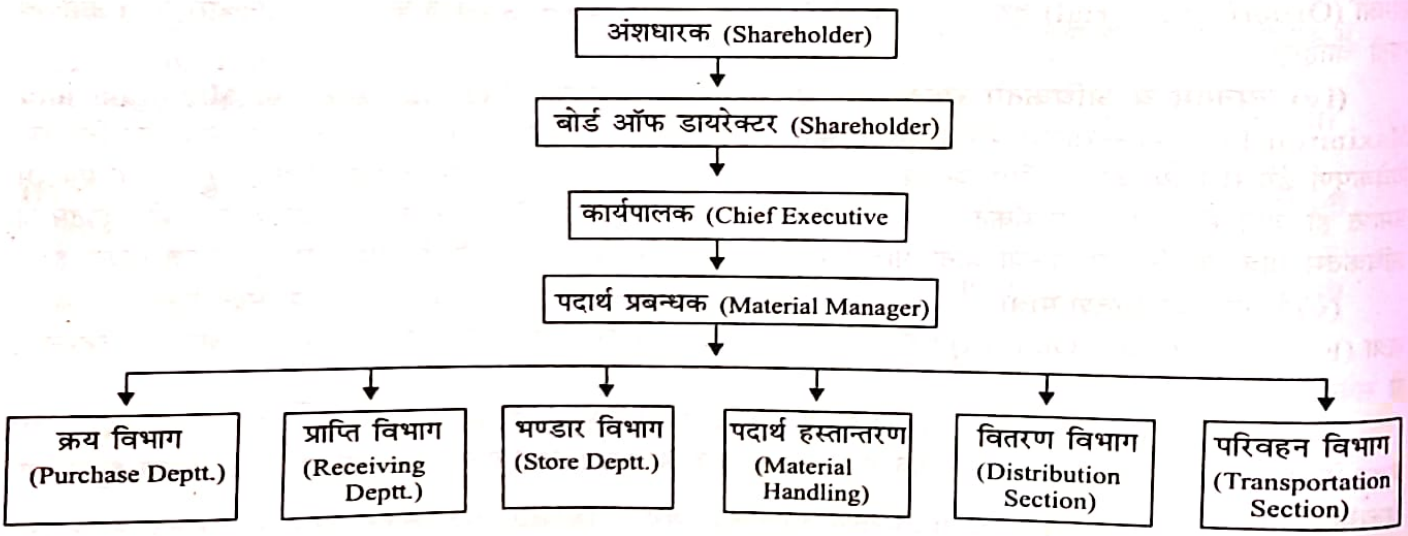
(x) क्रय, उत्पादन व विपणन विभागों के साथ उचित सामंजस्य (Proper Coordination with Purchase, Production and Marketing Departments)—सामग्री प्रबन्ध का क्रय विभाग, उत्पादन विभाग तथा विपणन विभाग के साथ अच्छा सामंजस्य (Coordination) होना चाहिए। वैसे यह कार्य वित्त प्रबन्धक के अधीन होता है।

सामग्री प्रबन्धन का संगठन (Organization of Material Management)

पदार्थ से सम्बन्धित गतिविधियों जैसे—नियोजन, निर्देशन, नियन्त्रण एवं समन्वयन आदि को चलाने के लिए पदार्थ प्रबन्धन का एक अलग विभाग होना चाहिए। संगठन के आकार एवं प्रकृति के ऊपर ही संगठनात्मक ढाँचा निर्भर करता है। सामान्य तथा सामग्री प्रबन्धन गतिविधियाँ निम्न दो प्रकार से संगठित की जाती हैं—

1. एक प्रमुख सामाजिक गतिविधि के रूप में पदार्थ प्रबन्धन (Materials Management as a Prime Corporate Function)—ऐसे उपक्रमों में, जहाँ संगठन के प्रबन्धन में पदार्थ प्रबन्धन एक मुख्य भूमिका निभाता है और एक उच्चस्तरीय सामाजिक गतिविधि के रूप में माना जाता है वहाँ एक पदार्थ प्रबन्धन नियुक्त किया जाता है। पदार्थ प्रबन्धक सीधे ही मुख्य कार्य पालक को रिपोर्ट करता है। पदार्थ प्रबन्धन को भी अन्य प्रबन्धन क्षेत्रों जैसे—वित्त, विक्रय, कार्मिक आदि की भाँति ही महत्ता दी जाती है। यदि किसी उपक्रम में उत्पाद की उत्पादन लागत का प्रमुख भाग पदार्थ की लागत हो तो पदार्थ प्रबन्धक के साथ एक उप-पदार्थ प्रबन्धक (Deputy material manager) भी रखा जाता है जो पदार्थ प्रबन्धक की ही भाँति कार्य करता है।

2. कार्यकारी गतिविधि के रूप में पदार्थ प्रबन्धन (Materials Management as an Operating Function)—लघुस्तरीय उद्योगों में सामान्यत: पदार्थ प्रबन्धन की गतिविधियों को उत्पादन गतिविधियों का ही अंग माना जाता है। इनमें पदार्थ प्रबन्धक कार्य प्रबन्धक के अधनीस्थ कार्य करता है। पदार्थ प्रबन्ध विभाग को उत्पादन विभाग से अलग रखना, विभाग में कार्यों की अधिकता और संगठन की आवश्यकता पर निर्भर करता है।



Scanned with CamScanner

पदार्थ प्रबन्धन में मितव्ययिता प्रदान करने वाले कारक (Factors Providing Economy in Material Management)—ऐसी कई गतिविधियाँ हैं जो पदार्थ प्रबन्धन में मितव्ययिता प्रदान करती हैं। परन्तु कुछ प्रमुख गतिविधियों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

1. क्रय का आकार/मात्रा (Volume of Purchase)—यदि क्रय बड़ी मात्रा में किया जाये तो संगठन के पास अधिक मोल भाव करने का अवसर होता है। आपूर्तिकर्त्ता डिस्काउण्ट दे सकता है तथा क्रय प्रक्रिया और परिवहन में होने वाला व्यय भी कम रहता है।

2. पदार्थ स्त्रोत से नजदीकता (Nearness to source of materials)—यदि उद्योग पदार्थ के स्त्रोत के नजदीक है तो निरीक्षण, बाजार, सर्वे, परिवहन आदि का खर्च स्वत: ही कम हो जाता है।

3. उत्पाद का डिजाइन (Design of the Product)—उत्पाद का डिजाइन ऐसा होना चाहिए कि विनिर्माण प्रक्रिया में अधिक जटिलता न आये। इससे पदार्थ की बर्बादी (Waste), समय की बर्बादी आदि नुकसान होते हैं। और उत्पादन लागत बढ़ती है।

4. निरीक्षण (Inspection)—क्रयादेश देने से पूर्व पदार्थ का निरीक्षण तथा पदार्थ की वास्तविक प्राप्ति से पूर्व की गई अन्य गतिविधियाँ पर्याप्त मितव्ययिता प्रदान कर सकती है।

5. निर्माण अथवा क्रय निर्णय (Make or buy Decisions)—कुछ अंग (Parts) जिनका विनिर्माण मितव्ययी नहीं रहता, उन्हें अन्य स्त्रोतों से क्रय किया जा सकता है।

6. स्क्रैप का निस्तारण (Disposal of Scrap)—स्क्रैप तथा अन्य व्यर्थ पदार्थों पर उचित नियन्त्रण रखना चाहिए और उनका उपयोग किसी अन्य कार्य में करके मितव्ययिता प्राप्त की जपा सकती है।

स्कन्ध (Inventory or Stock)—"स्कन्ध (Inventory) उन चल पदार्थों की विस्तृत सूची (Detailed list of movable goods) है जो विक्रय हेतु उत्पाद की उत्पादन प्रक्रिया में सीधे अथवा परोक्ष (Directly or indirectly) रूप से मदद करते हैं।"

स्कन्ध या स्टॉक, उत्पादन में सेवा का कार्य करते हैं। ये मशीनों एवं अन्य उपकरणों को कार्यकारी स्थिति (Working order) में रखने के लिये भी आवश्यक होते हैं। ये प्लान्ट की सुविधाओं (facilities) को कार्यकारी स्थिति में बनाये रखने में मदद करते हैं।

स्कन्ध अथवा इन्वेन्ट्री का वर्गीकरण (Classification of Inventories)

स्कन्ध अथवा इवेन्ट्री को मुख्यत: दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है—

1. प्रत्यक्ष स्कन्ध (Direct Inventories)
2. अप्रत्यक्ष स्कन्ध (Indirect Inventories)

1. प्रत्यक्ष स्कन्ध (Direct Inventories)—वे स्कन्ध, जो उत्पाद के विनिर्माण में सीधे तौर पर भूमिका अदा करते हैं और तैयार उत्पाद का अभिन्न अंग होते हैं, प्रत्यक्ष स्कन्ध कहलाते हैं। प्रत्यक्ष स्कन्ध को पुन: निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है—

(a) कच्च पदार्थ (Raw Materials)—ये वे पदार्थ हैं जो तैयार उत्पाद में संयोजन (assembly), पूर्व मशीनन, अथवा अन्य विनिर्माण प्रक्रियाओं से गुजरते हैं। ये सामान्यत: वे पदार्थ होते हैं जिनमें उद्योग में अवयवों, अंगों अथवा उत्पाद का निर्माण होता है। जैसे—स्टील, कॉपर, टिन, कपास, रबड़, फोर्जिंग, कांस्टिंग, लकड़ी, चमड़ा आदि।

(b) प्रक्रिया के अन्तर्गत स्कन्ध (In Process Inventories)—प्रक्रिया के अन्तर्गत स्कन्ध, वे अर्द्धनिर्मित उत्पाद हैं जो कार्य की प्रक्रियाओं के अन्तर्गत दो ऑपरेटिंग मशीनों के बीच रुके हुए हैं और जो अगले ऑपरेशन या परिवहन के लिये इंतजार में हैं।

(c) क्रय किये गये पार्ट्स (Purchase Parts)—क्रय किये गये ऐसे पार्ट्स अर्द्धनिर्मित एसेम्बली अथवा अवयव (परिष्कृत और अर्द्ध-परिष्कृत) तथा ऐसे पदार्थ जिन्हें एसेम्बली में प्रयोग करने के लिए किसी अन्य ऑपरेशन की आवश्यकता नहीं है। उदाहरण के लिये बॉल बियरिंग, नट-बोल्ट, टायर आदि।

Scanned with CamScanner

(d) परिष्कृत उत्पाद (Finished Product)—ये फैक्ट्री में ही तैयार किये गये वे उत्पाद हैं जो वितरण के लिये अथवा ग्राहक के पास भेजने के लिये तैयार हैं।

2. अप्रत्यक्ष स्कन्ध (Indirect Inventories)—अप्रत्यक्ष स्कन्ध वे पदार्थ हैं जो कच्चे माल को तैयार उत्पाद में बदलने में मदद तो करते हैं परन्तु तैयार उत्पाद का अभिन्न अंग नहीं होते हैं। इन्हें पुन: निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है—

(a) औजार (Tools)—ये दो प्रकार के हो सकते हैं—प्रथम प्रकार के अन्तर्गत वे मानक टूल आते हैं जिनको मशीन पर प्रयोग किया जाता है। जैसे—खराद टूल, मिलिंग कटर, ड्रिल, रीमर टैपस, ब्रोच, फार्मटूल हॉब आदि।

द्वितीय प्रकार के औजार वे हस्त औजार होते हैं जिनको प्रयोग अन्य सहायक क्रियाओं में होता है। जैसे—आरी, पेचकस, ड्रिल मशीन, हथौड़े, पंच आदि।

(b) अन्य उपयोगी सामग्री (Other Useful Inventories)—ये वे उपयोगी सामग्रियाँ हैं जो प्लांट को चलाने में आवश्यक हैं, परन्तु उत्पाद का अंग नहीं है।

उदाहरणत:

(i) विभिन्न खर्च होने वाली वस्तुएँ जैसे—सूती कपड़ा, टॉयलैट पेपर, फिनाइल आदि।
(ii) वेल्डिंग, सोल्डरिंग आदि क्रियाओं हेतु इलेक्ट्रोड, सोल्डर, स्पेल्टर आदि।
(iii) अपघर्षी पदार्थ जैसे—रेगमाल, एमरी बेल्ट, ग्रेफाइट आदि।
(iv) नक्शे, ब्रुश, बॉब आदि।
(v) बैग, काँच की बोतलें, ड्रम कार्ड के डिब्बे, पाट, टिन के डिब्बे आदि।
(vi) तेल और ग्रीस जैसे—कैरोसीन, तेल, ट्रांसफार्मर का तेल, डीजल, पेट्रोल आदि।
(vii) सामान्य कार्यालय उपभोग हेतु सामग्री जैसे—पैन, पेन्सिल, रबड़, कार्बन पेपर, लैटर हैड, स्टेन्सिल पेपर, फाइल, पिन, क्लिप, इंकपैड, रिफिल आदि।
(viii) छपे हुये प्रपत्र जैसे—कोटेशन/ टेंडर-फार्म इंक्वायरी फार्म, सामान प्राप्ति रसीद, आउट पास, वाउचर, इनवॉइस, जमा-उधार पर्ची आदि। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के रजिस्टर जैसे—हाजिरी रजिस्टर, सामान प्राप्ति रजिस्टर, कैशबुल, ऋण बुक, सामान्य बहीखाते आदि।
(ix) बिजली का सामान जैसे—तार, स्विच, बोर्ड, बल्ब, ट्यूब, प्लग, कटआउट आदि।

स्कन्ध नियन्त्रण (Inventory Control)

स्कन्ध (Stock or Inventory) भण्डार में उपलब्ध उन चल पदार्थों या मालों (Movable Goods) की विस्तृत सूची (Detailed list) है, जो कि उत्पाद (Product) के निर्माण के लिये आवश्यक होते हैं, साथ ही मशीनरी (Machinery) व उपकरणों (Equipments) को कार्यकारी स्थिति (Working order) में रखने के लिये भी आवश्यक होते हैं। इस सूची में प्रत्येक सामग्री की मात्रा (Quantity) तथा उसका मूल्य (Value) अंकित होता है। इस सूची में उन मशीनरी, फर्नीचर तथा स्थिरकों (Fixtures) को सम्मिलित नहीं किया जाता जो कि कार्यालय (Office) अथवा शॉप फ्लोर में प्रयोग हो रहे हैं।

स्कन्ध नियन्त्रण (Inventory Control) ही एक ऐसा साधन है जिसके बल पर जिन दो प्रतियोगी उद्देश्यों (Competing Objectives) के मध्य यथासम्भव अधिकतम सन्तुलन (Optimum Balance) की स्थिति प्राप्त की जा सकती है। वे निम्नांकित हैं—

(i) स्कन्ध (Inventory) में निवेश (Investment) को यथासम्भव कम करना।
(ii) फर्म के ग्राहकों (Frim's Customers) तथा इसके अपने निजी परिचालन विभागों (Operating Departments) के लिये सेवा स्तरों (Service Levels) का यथासम्भव अधिक से अधिक उच्च करना।

अत: निष्कर्षत: स्कन्ध नियन्त्रण को अग्रांकित ढंग से परिभाषित किया जा सकता है—

"स्कन्ध नियन्त्रण (Inventory Control) एक ऐसी वैज्ञानिक विविध है जिसके द्वारा यह ज्ञात किया जा सकता है कि उत्पादन माँग की आपूर्ति के लिये कितनी मात्रा में आवश्यक सामग्री भण्डार में उपलब्ध रखी जाए, जिससे सही समय पर, सही मात्रा में सही पदार्थ की मितव्ययी ढंग से पूर्ति की जा सके।"

Scanned with CamScanner

एक अच्छी स्कन्ध नियन्त्रण प्रणाली के उद्देश्य (Objectives of Good Stock Control System)

एक अच्छी स्कन्ध नियन्त्रण प्रणाली के प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं—

(i) पदार्थों का क्रय उचित मूल्य, उचित समय तथा उचित मात्रा में किया जाये जिससे विनिर्माण प्रक्रिया भी बाधित न हो और न ही ओवर-स्टाक के कारण माल एवं धन की बर्बादी हो।

(ii) भण्डार में सामान के रखने, लाने-ले जाने के लिये उचित प्रबन्ध हो।

(iii) भण्डार (Store) के लिये सुरक्षित एवं पर्याप्त स्थल उपलब्ध होना चाहिए।

(iv) स्कन्ध सामग्री की पहचान (Identification) करने के लिये एक स्पष्ट प्रणाली होनी चाहिए।

(v) भण्डार के लिये योग्य एवं कुशल कर्मचारी पर्याप्त संख्या में होने चाहिए।

(vi) वांछित सामग्री की माँग के लिये उचित आवेदन प्रक्रिया होनी चाहिए।

(vii) अद्यतन (Up to date) तथा यथार्थ (Accurate) लेखा बनाया जाये।

(viii) स्कन्ध पदार्थों की भौतिक स्थिति की जाँच के लिये आवर्ती निरीक्षण (Periodic Inspection) की व्यवस्था सुनिश्चित की जानी चाहिए।

(ix) A,B,C विश्लेषण द्वारा पदार्थों का वर्गीकरण करके उनका नियन्त्रण सुनिश्चित किया जाना चाहिए और निष्प्रयोज्य सामान हटाया जाना चाहिए।

(x) आपूर्तिकर्त्ताओं एवं ग्राहकों से अच्छे सम्बन्ध बनाये रखना।

(xi) बाजार में प्रत्येक आवश्यक पदार्थ की उपलब्धता पर पैनी नजर रखना। यदि किसी पदार्थ की बाजार में उपलब्धता अनिश्चित रहती हो तो उसका कुछ अतिरिक्त स्टॉक बनाये रखना जिससे उत्पादन कार्य निर्विघ्न चलता रहे।

(xii) बाजार में आवश्यक पदार्थों के भाव ऊपर नीचे होते रहते हैं। उन पर कड़ी नजर रखना और उद्योग के हित में सही समय पर क्रय करने का फैसला लेना।

(xiii) कभी-कभी अधिक मात्रा में कच्चा माल खरीदरने पर डिस्काउण्ट मिलता है जो उद्योग के लिये एक फायदेमन्द सौदा हो सकता है। इससे पदार्थ लागत तो कम होती ही है साथ ही बार-बार क्रय करने की प्रक्रिया में होने वाला खर्च भी बचता है।

स्कन्ध नियन्त्रण के लाभ (Advantages of Inventory Control)

स्कन्ध पदार्थों (Inventories) पर अच्छे नियन्त्रण के प्रभाव से निम्नांकित लाभ दृष्टिगोचर होते हैं—

(i) विनिर्माण प्रक्रमों के लिये पदार्थों (Materials) की किसी भी अवस्था (Stage) में नहीं होती।

(ii) अच्छे गुण स्तर वाले पदार्थ जो कि उचित समय पर खरीद लिये जाते हैं, परिष्कृत सामानों (Finished Goods) को दोष रहित बनाने में सहायक होते हैं।

(iii) उत्पादन शैड्यूलों (Production Schedules) में होने वाले विलम्बों (Delays) को रोकता है।

(iv) उत्पादन के अभीष्ट लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

(v) पूर्णत: निर्मित माल (Finished Products) की निर्धारित वितरण की तारीखों (Delivery Dates) में कोई भी परिवर्तन नहीं होता और कम्पनी की साख (Credit) में वृद्धि होती है तथा ग्राहकों के साथ सम्बन्धों में भी सुधार होता है।

स्कन्ध पदार्थों का कार्य क्षेत्र (Functional Area of Inventories)

जिन कार्यों के सम्पादन में स्कन्ध पदार्थों की सूची (Inventories) की अहम् भूमिका होती है, वे मुख्यत: निम्नांकित हैं—

(i) यह विभिन्न प्रकार की संक्रियाओं (Different Operations) को एक-दूसरे से पृथक् (Separate) करती हैं और उन्हें पूर्णत: निराश्रित (Independent) बनाती है। ताकि कच्चे पदार्थ की खरीद से लेकर उत्पाद के

Scanned with CamScanner

परिष्कृत होने तक की प्रत्येक संक्रिया मितव्ययी ढंग (Economically) से सम्पादित की जा सके। उदाहरणार्थ—कच्चे पदार्थ का क्रयादेश (Purchasing order or Raw Material) तथा निर्मित उत्पादों के वितरण या आदेश (Order of Distributing Finished Goods) नामक दोनों ही संक्रियाओं पृथक-पृथक रूप से मितव्ययी ढंग से सम्पादित इस तरह की जा सकती है कि कच्चे पदार्थ का क्रयादेश तथा निर्मित उत्पादों के वितरण का आदेश छोटे-छोटे बैचों (Small Batches) की अपेक्षा एक ही बड़े लॉट (Single Big Lot) में दिया जाये जो कि मितव्ययी रहता है। इस मितव्ययिता के अलावा श्रम (Labour) व मशीनरी (Machinery) का उपयोग भी तभी श्रेष्ठ (Better) हो सकता है, जबकि विभिन्न संक्रियायें पृथक-पृथक विभिन्न विभागों में सम्पादित की जाये न कि सभी संयुक्त रूप से एक ही स्थान पर।

(ii) यह उत्पाद प्रवाह (Product Flow) को सतत (Continuous), निर्विघ्न (Smooth) तथा दक्ष (Efficient) बनाती है।

(iii) इससे कच्चे माल पदार्थों की खरीद पर्याप्त मात्रा में सम्भव हो जाती है, जिससे आपूर्ति (Supply) या कीमतों (Prices) में परिवर्तनों के प्रभाव (Effect of Changes) अक्षम (Nullify) करने में सहायता मिलती है।

(iv) यह उत्पादन का परिचालन प्रक्रम (Operating Process) को सतत् रखने में भी योगदान देती है।

(v) इससे प्रेरणात्मक प्रभाव (Motivational Effect) उत्पन्न किया जा सकता है। अर्थात् स्कन्ध सामग्री (Inventory) को भारी परिमाण (Bulk) में प्रदर्शित करने से व्यक्ति में इसके प्रति आकर्षण पैदा होने की वजह से उसकी क्रय क्षमता में वृद्धि की जा सकती है।

8.2. स्कन्ध सामग्री नियन्त्रण की तकनीकें (Techniques of Inventory Control)

स्कन्ध नियन्त्रण हेतु जिन महत्वपूर्ण तकनीकों का प्रयोग किया जाता है, वे निम्न हैं—

(i) A,B,C विश्लेषण तकनीक (A,B,C Analysis Technique)

(ii) स्कन्ध के विभिन्न स्तरों को ज्ञात करने की तकनीक (Determining Technique of Inventory Level)

(iii) मितव्ययी आदेश मात्रा (Economic Order Quantity) की तकनीक।

उपरोक्त तकनीकों का संक्षिप्त विवरण निम्न है—

(i) स्कन्ध सामग्री की 'A', 'B', 'C' विश्लेषण तकनीक ('A', 'B', 'C' Analysis Technique of Inventory)

किसी उद्योग के आकार में जैसे-जैसे विस्तार होता जाता है, वैसे-वैसे उसका कार्य क्षेत्र भी विस्तृत होता जाता है जिसके परिणामस्वरूप क्रय किये जाने वाले मदों (items) में वृद्धि होती जाती है। ऐसी परिस्थिति में विभिन्न प्रकार के सभी आवश्यक मदों को एक साथ एक ही समय पर, भारी परिणाम में खरीदने के कारण उन पर निवेशित धन एकदम बन्धित हो जाता है, जब तक कि उनका सही इस्तेमाल न किया जाए। इतना ही नहीं सभी मदों की खरीद प्रक्रिया में उनकी आपूर्ति से सम्बन्धि अनेक समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं। भारी मात्रा में धन और समय का अपव्यय होने के कारण खरीद प्रक्रिया मितव्ययी भी नहीं रहती।

स्कन्ध सामग्री की 'A', 'B', 'C' विश्लेषण तकनीक के द्वारा उद्योग में प्रयोग में लाये जाने वाले सभी मदों को उनके मूल्य एवं महत्व के आधार पर पृथक्कृत करने में बहुत सहायता मिलती है। यह तकनीक यह भी स्पष्ट करती है कि अमुक मद कितना मूल्यवान है और किस हद तक औद्योगिक संगठन के हित में नियन्त्रित किया जा सकता है।

'A', 'B', 'C' विश्लेषण तकनीक की प्रक्रिया (Procedure of 'A', 'B', 'C' Analysis Technique)

'A', 'B', 'C' विश्लेषण के अन्तर्गत सभी नगों/चीजों (items) के उनके कुल मूल्य (value) के प्रतिशत तथा नगों की संख्या के प्रतिशत के आधार पर तीन समूहों (groups) में बाँटा जाता है। 'A', 'B', 'C' विश्लेषण के अन्तर्गत महत्वपूर्ण चीजों/नगों (माध्यम प्रायोगिक मूल्य वाले नगों) समूह 'A' उससे कम महत्वपूर्ण चीजों/नगों (मध्यम प्रायोगिक मूल्य वाले नगों) को समूह 'B' तथा सबसे कम महत्वपूर्ण चीजों/नगों (न्यूनतम प्रायोगिक मूल्य वाले नगों) को समूह 'C' के अन्तर्गत रखा जाता है। स्कन्ध नियन्त्रण की प्रक्रिया "अपवाद द्वारा प्रबन्धन (Management by Exception)" के सिद्धान्त पर क्रियान्वित की

Scanned with CamScanner

जाती है। अर्थात् समूह 'A' के अन्तर्गत आने वाले चीजों/नगों पर कठोर नियन्त्रण तथा समूह 'B' के अन्तर्गत आने वाले चीजों/नगों पर मध्यम प्रकार का नियन्त्रण तथा समूह 'C' के अन्तर्गत आने वाले चीजों/नगों पर दैनिक एवं ढीला (Routine & Loose) नियन्त्रण रखा जाता है।

विभिन्न चीजों/नगों को उनके प्रयोग के आधार पर निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जाता है—

	वर्ग (Category)	नगों का लगभग प्रतिशत %	लगभग % माल
A.	उच्च मूल्य वाले नग	10%	70%
B.	मध्यम मूल्य वाले नग	20%	20%
C.	निम्न मूल्य वाले नग	70%	10%

A- नग (A-Items)—कुल स्कन्ध सामग्री में A नग संख्या में बहुत कम (लगभग 10%) होते हैं। परन्तु अपनी उच्च कीमत तथा अधिक खर्चा (Consumption) होने के कारण ये कम्पनी के कुल खर्चों का एक बड़ा प्रतिशत (लगभग 70%) प्रदर्शित करते हैं। इन चीजों/नगों को कड़े नियन्त्रण के अन्तर्गत यथार्थ एवं सावधानी से बनाये गये लेखा, सावधानी हस्तान्तरण एवं भण्डारण आदि की आवश्यकता होती है। A नगों के लिए अधिकतम तथा न्यूनतम सीमा व पुनर्आदेश बिन्दु सुनिश्चित किया जाता है। इन चीजों की पहले से ध्यान में रखा जाना चाहिए एवं समय पर (Well in time) क्रय किया जाना चाहिए। इन चीजों की प्राप्ति एवं जारी करने का एक विस्तृत विवरण रखा जाना चाहिए और उनके हस्तान्तरण की उचित सुविधा रखी जानी चाहिए।

महँगे होने के कारण इन चीजों/नगों को इनके प्रयोग से ठीक पहले तथा कम मात्रा/संख्या में क्रय किया जाता है। यद्यपि ऐसा करने की लागत (Procurement Cost) बढ़ जाती है और अनुपलब्धता का खतरा भी बढ़ जाता है। फिर भी स्कन्ध (Inventory) को रखने का खर्च घटता है और उनके भण्डारण एवं देखभाल सम्बन्धी समस्यायें न्यूनतम होती हैं।

B- नग (B-Items)—यह माध्यम स्तर की चीजें/नग होते हैं और इन्हें A-नगों की भाँति विस्तृत एवं पैने नियन्त्रण की आवश्यकता नहीं होती है। फिर भी इन्हें C-नगों की अपेक्षा अधिक सावधानी एवं नियन्त्रण की आवश्यकता होती है। ये संख्या में लगभग 20% होते हैं तथा कुल खर्चों का लगभग 20% ही होते हैं।

C- नग (C-Items)—ये नगों की कुल संख्या का लगभग 70% होते हैं तथा कुल पदार्थ लागत का लगभग 10% होते हैं।

A-नगों की नियन्त्रण नीति (Control Policies for A-Items)

(i) अधिक मूल्य के नग होने के कारण A-नगों का बार-बार परन्तु कम मात्रा/संख्या में क्रयादेय करना पड़ता है।
(ii) भविष्य की आवश्यकताओं का पूर्व में ही नियोजन करना पड़ता है जिससे वांछित मात्रा, प्रयोग होने से कुछ समय पहले ही उपलब्ध हो जाये।
(iii) क्रय विभाग के उच्च कार्यपालकों द्वारा ही A-नगों का क्रय एवं नियन्त्रण किया जाना चाहिए।
(iv) डिलीवरी के शीघ्र भेजने के लिए अधिकतम प्रयास किये जाने चाहिए। सुरक्षित स्टॉक अधिक से अधिक 15 दिन का होना चाहिए।
(v) A-नगों को जारी करने, अवशेष तथा भण्डारण विधियों पर कठोर नियन्त्रण होना चाहिए।
(vi) आदेश की गयी मात्रा, पुनर्आदेश बिन्दु तथा न्यूनतम स्टॉक स्तर को जल्दी-जल्दी पुनर्निर्धारण करना पड़ता है।

B-नगों की नियन्त्रण नीति (Control Policies for B-Items)

(i) इसकी सामान्य नीतियाँ A तथा C नगों वाली ही हैं।
(ii) इन नगों का बार-बार आदेश नहीं करना पड़ता है।
(iii) सुरिक्षत भण्डार लगभग 3 माह का होता है।
(iv) B-नगों पर मध्यम नियन्त्रण रहता है।

Scanned with CamScanner

C-नगों की नियन्त्रण नीति (Control Policies for C-Items)

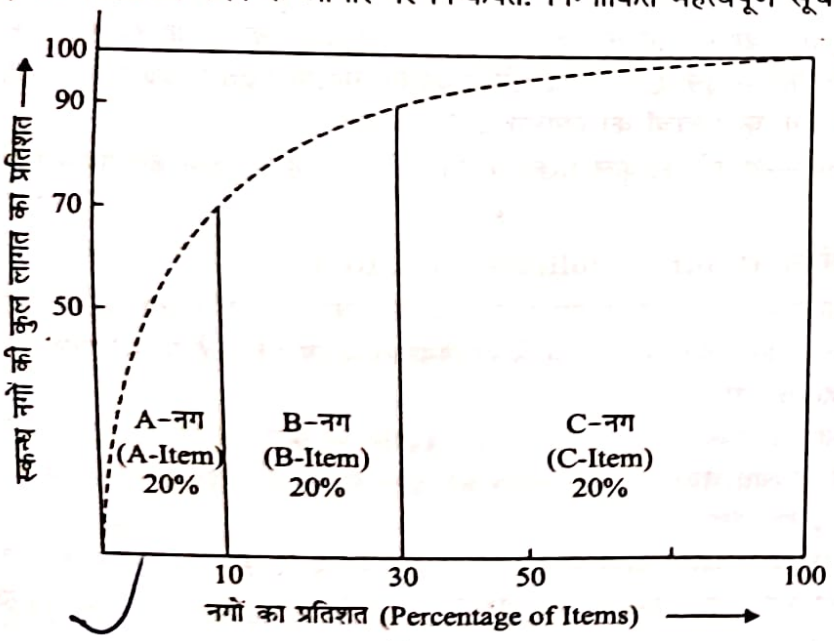
(i) C-नगों का मूल्य निम्न होता है। अत: इनका सुरक्षित भण्डार 3 माह से अधिक रहता है।
(ii) छमाही अथवा वार्षिक क्रयादेय दिया जाता है। इससे कागजी कार्यक्रम होता है।
(iii) ऐसे नगों के लिए केवल नियमित (Routine) निरीक्षण पर्याप्त होता है।

'A', 'B', 'C' विश्लेषण के प्रमुख पद (Steps in 'A', 'B', 'C' Analysis)

(i) प्रत्येक नग (Item) के लिए वार्षिक उपभोग यूनिटों में ज्ञात करते हैं।
(ii) रूपयों के रूप में प्रत्येक नग का वार्षिक उपभोग ज्ञात करते हैं।
(वार्षिक उपभोग × यूनिट लागत)
(iii) प्रत्येक नग को उच्चतम वार्षिक उपयोग में निम्नतम वार्षिक उपभोग (रु० में) तक वर्गीकृत करते हैं।
(iv) कुल मान का आगणन करते हैं।
(v) नगों के कुल मान के पदों में उच्च, मध्यम तथा निम्न मान वाले नगों का प्रतिशत ज्ञात करना।
(vi) अब एक ग्राफ बनाते हैं, जिसकी X-अक्ष पर नगों का प्रतिशत (%) तथा Y-अक्ष पर कुल मान (Total Value) का प्रतिशत (%) रखते हैं। (चित्र 1 देखें)

चित्र में प्रदर्शित ग्राफ से स्पष्ट है कि स्कन्ध सामग्री की कुल लागत (Total Inventory Cost) का 70% भाग कुल नगों (Total Items) के 10% भाग A-नगों (A-Items) पर खर्च होता है जबकि स्कन्ध पदार्थ की कुल लागत (Total Inventory Cost) का 20% भाग कुल नगों के 20% भाग B-नगों (B-Items) पर खर्च होता है और इस प्रकार स्कन्ध पदार्थ की कुल लागत (Total Inventory Cost) का 10% भाग कुल नगों के 70% भाग (अर्थात् नगों (C-Items) पर खर्च होता है।

नगों का 'A', 'B', 'C' विश्लेषण करने के आधार पर निष्कर्षत: निम्नांकित महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होती हैं—



चित्र 1

(i) A-श्रेणी में आने वाले नग उच्च मूल्य वाले होते हैं। किन्तु A-नगों (A-Items) की संख्या अत्यन्त सीमित अर्थात् कम होती है। यही कारण है कि इन A-नगों (A-Items) के स्कन्ध नियन्त्रण (Inventory Control) में अत्यन्त सूझ-बूझ व विवेकशीलता की आवश्यकता होती है। इसीलिए A-नगों (A-Items) की

Scanned with CamScanner

न्यूनतम व अधिकतम सीमाओं (Minimum & Maximum limits) के साथ-साथ इनके पुनर्आदेश बिन्दु (Reorder point) का भी (Setting) किया जाना आवश्यक होता है। अर्थात् A-नगों की न्यूनतम व अधिकतम सीमायें निर्धारित करने के साथ-साथ इनके समुचित स्कन्ध (Stock) की सीमा भी नियत की जानी चाहिए। A-नगों की खरीदारी के बारे में पहुँचना चाहिए और तदनुसार समय रहते A-नगों के क्रय करने की प्रक्रिया पूर्ण कर लेनी चाहिए। इसके अलावा A-नगों के प्राप्त होने तथा निर्गत (Issue) करने का तिथियार विस्तृत अभिलेख (Detailed Record) सही ढंग से बनाया जाना चाहिए तथा इनके हस्तान्तरण (Handling) तथा भण्डारण (Storage) की भी समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए। चूँकि A-श्रेणी में आने वाले मद या नग महंगे होते हैं तथा ये कम मात्रा (Small Quantity) में खरीदे जाते हैं। ये प्राय: ऐसे समय में खरीदे जाते हैं जब इनकी आवश्यकता अपरिहार्य या अनिवार्य हो। दूसरे शब्दों में A-नगों (A-Items) को इनकी आवश्यकता पड़ने पर या उससे बिल्कुल पहले ही प्राय: खरीदा जाता है। ऐसी खरीदारी से नि:सन्देह इनकी अधिप्राप्ति लागतों (Procurement Costs) में वृद्धि हो जाती है, साथ ही इनकी अप्राप्यता की जोखिम (Risk of Non-availability) कुछ बढ़ जाती है। किन्तु A-नगों (A-Items) की ऐसी खरीदारी से एक लाभ यह होता है कि इनकी खरीदारी में निवेशित पूँजी बन्धित होने से बच जाती है। जिसके फलस्वरूप स्कन्ध की लॉकअप लागत (Lock up Inventory Cost) घट जाती है। साथ ही माल के भण्डारण (Storage) की समस्या एवं देखभाल करने की परेशानी कम हो जाती है। अतएव यह बात निर्विवाद सत्य है कि A-नगों (A-Items) की खरीदारी पर स्कन्ध पदार्थ की कुल लागत (Total Inventory Cost) कर लगभग 70% धन खर्च होता है, किन्तु इन A-नगों की संख्या स्कन्ध के कुल नगों की संख्या की लगभग 10% ही होती है। अर्थात् A-नग महंगे होने के कारण बहुत कम संख्या में खरीदे जाते हैं।

(ii) B-श्रेणी के अन्तर्गत आने वाले मद मध्यम मूल्यों वाले (Medium valued) होते हैं, तथा B-नगों का मूल्य A-नगों से कुछ कम तथा C-नगों से कुछ ज्यादा होता है। इसीलिए B-नगों को औसत नियन्त्रण (Moderate Control) की आवश्यकता होती है तथा ये नग C–नगों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण होते है। B-नगों की खरीदारी विगत आवश्यकताओं (Post Requirement) व विगत अभिलेखों (Post Records) के आधार पर की जाती है। इन B-नगों की प्राप्ति व निर्गमों का सुव्यवस्थित अभिलेख सुरक्षित रखना आवश्यक होता है तथा इनका अधिप्राप्ति अभिलेख सुरक्षित रखना आवश्यक होता है। तथा इनका अधिप्राप्ति आदेश (Procurement Orders) ठीक उसी समय निर्गत करना होता है, जबकि इन नगों की स्कन्ध मात्रा, पुनर्आदेश बिन्दु तक पहुँचाने वाली हो। A-नगों की तुलना में B-नगों का मूल्य अपेक्षाकृत कम होता है और इनका स्कन्ध लगभग तीन माह तक ही सुरक्षित रखा जाता है। जबकि A-नगों का लगभग 15 दिन तक ही। अत: B-नगों का भण्डारण व हस्तान्तरण सावधानीपूर्वक किया जाना जरूरी होता है। B-श्रेणी में आने वाले नगों की खरीदारी पर स्कन्ध पदार्थ की कुल लागत का 20% धन ही खर्च होता है। किन्तु इन B-नगों की संख्या स्कन्ध के कुल नगों की संख्या की लगभग 20% होती है। B-नगों को सभी प्रकार के देख-रेख की जरूरत होती है, किन्तु A-नगों की तुलना में अपेक्षाकृत कम होती है।

(iii) C-नगों की लागत सबसे कम होती है। किन्तु ये संख्या में अधिकतम होते हैं। इन नगों के नियन्त्रण की कोई आवश्यकता नहीं होती और इनका नियन्त्रण मितव्ययी भी नहीं पड़ता। C-नगों को अधिक देख-रेख की आवश्यकता इसलिए नहीं होती है क्योंकि ये अधिक महत्वपूर्ण नहीं होते हैं। (श्रेणी के अन्तर्गत आने वाले नगों में रबड़ बैंड, वाशर, क्लिप तथा आलपिन इत्यादि वस्तुएँ) आती हैं। C-नगों की खरीद में शीघ्रता करने की आवश्यकता नहीं होती है और सामान्यत: इनका अभिलेख रखना भी आवश्यक नहीं होता। तीन या इससे अधिक माह तक के स्कन्ध हेतु किसी भी क्षण इसकी खरीददारी की जा सकती है। C-नगों की भविष्य की माँग की गणना करने का कोई औचित्य नही होता, मात्र दो बिन प्रणाली (Two Bin System) के आधार पर ही इनकी खरीद का संकेत पर्याप्त होता है।

Scanned with CamScanner

C-श्रेणी में आने वाले नगों की खरीददारी पर स्कन्ध पदार्थ की कुल लागत का लगभग 10% धन ही खर्च होता है और इन नगों की संख्या स्कन्ध के कुल नगों की संख्या की लगभग 20% ही होती है।

2. स्कन्ध के विभिन्न स्तरों का निर्धारण (Determination of Different Levels of Materials)

सामग्री प्रबन्ध की तकनीकों में एक महत्वपूर्ण तकनीक सामग्री के विभिन्न स्तरों का निर्धारण तथा उनके अनुसार सामग्री की मात्रा को नियन्त्रित करना है। सामग्री के विभिन्न स्तरों का निर्धारण उपभाग की दर, वस्तु के गुण व किस्म, आदेश के बाद सामग्री प्राप्त करने में लगने वाला समय, सामग्री क्रय के लिए उपलब्ध कोष, ब्याज दर, सामग्री के मूल्यों में परिवर्तन की सम्भावना, अप्रचलन तथा सामग्री की विकृति की सम्भावना, सरकारी नीति आदि तत्वों के आधार पर किया जाता है।

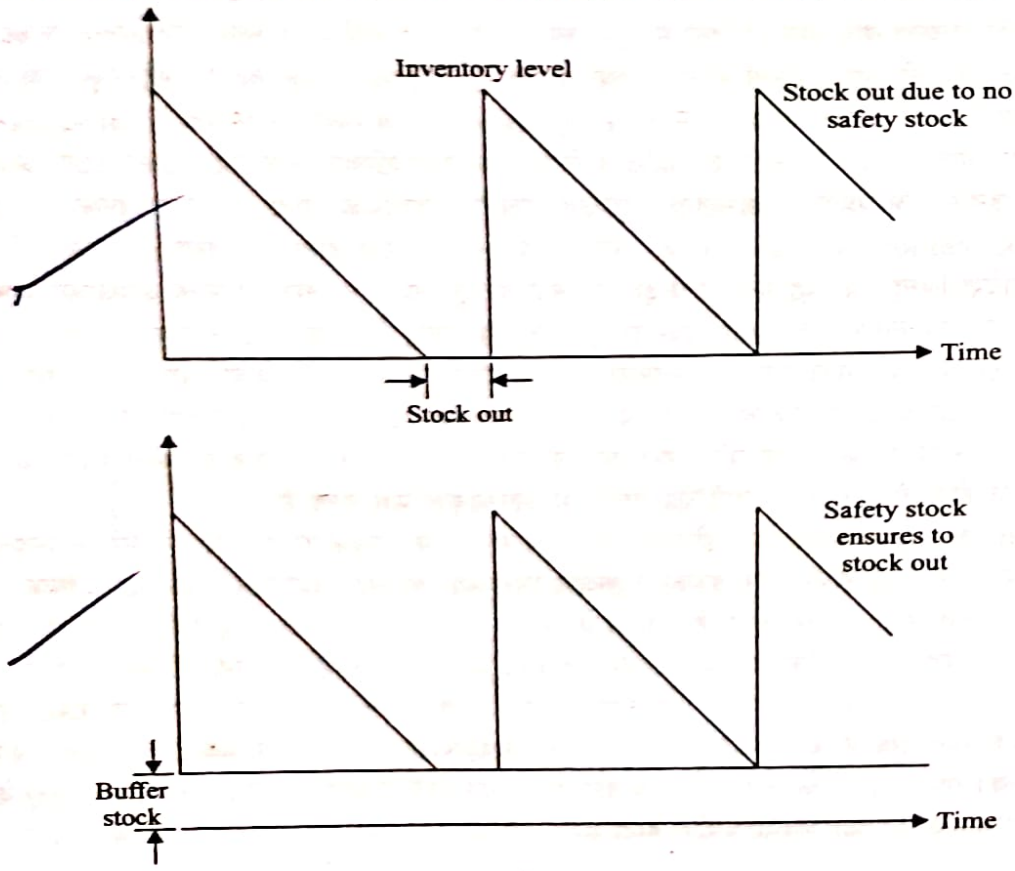
सामग्री के मुख्य स्तर इस प्रकार हैं—

(i) न्यूनतम स्कन्ध स्तर (Minimum Inventory Level)
(ii) अधिकतम स्कन्ध स्तर (Maximum Inventory Level)
(iii) आदेश स्तर या पुन: आदेश स्तर (Ordering Level or Reorder Level)
(iv) औसत स्कन्ध स्तर (Average Inventory Level)
(v) खतरे का स्तर (Danger Level)।

(i) न्यूनतम स्कन्ध स्तर (Minimum Inventory Level)

इसे सुरक्षित स्टॉक या बफर स्टॉक (Safety Stock or Buffer Stock) भी कहते हैं क्योंकि स्टॉक न रहने की दशा में भी इसे सुरक्षित रखा जाता है। इसे रिजर्व स्टॉक (Reserve Stock) भी कहते हैं।

यह सामग्री की वह न्यूनतम मात्रा होती है जो सामान्यता हर समय भण्डारण में होनी चाहिए। यह वह न्यूनतम मात्रा होती है, जिसके अभाव में उत्पादन बन्द होने की स्थिति आ सकती है। इसकी विभिन्न स्थितियों को चित्र द्वारा समझा जा सकता है।



चित्र 2

Scanned with CamScanner

न्यूनतम स्कन्ध स्तर को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Minimum Stock Level)

किसी भी उत्पादन करने वाली औद्योगिक इकाई के न्यूनतम स्कन्ध स्तर को निम्नलिखित घटक प्रभावित करते हैं—

(i) माल प्राप्त करने में लगने वाला समय (Lead Time)—माल के आदेश देने से लेकर माल की प्राप्ति तक का समय संस्था के न्यूनतम स्कन्ध स्तर को बहुत हद तक प्रभावित करता है। यदि यह समय अधिक होता है तो न्यूनतम स्कन्ध स्तर भी अधिक ही होगा। इसके विपरीत स्थिति में उपक्रम में न्यूनतम स्कन्ध स्तर नीचा रखा जा सकता है।

(ii) स्कन्ध की उपलब्धता (Availability of Inventory)—यदि सामग्री की आपूर्ति अधिक सुलभ है तो सामग्री का कम भण्डार रखने से काम चल सकता है। परन्तु यदि सामग्री कठिनता से उपलब्ध हो पाती है तो न्यूनतम स्कन्ध स्तर ऊँचा रखना आवश्यक होता है। इस प्रकार स्कन्ध की पूर्ति का सुलभता अथवा दुर्लभता, न्यूनतम स्कन्ध स्तर को एक बड़ी सीमा तक प्रभावित करती है।

(iii) उत्पादन में रुकावट की सम्भावनाएँ (Possibilities of Interruptions in Production)—यदि उत्पादन कार्य निर्बाध रूप से चलता है। तो न्यूनतम स्कन्ध स्तर को पूर्ण निश्चितता के साथ निर्धारित किया जा सकता है, परन्तु यदि उत्पादन कार्य में विभिन्न कारणों जैसे—विद्युत संकट, श्रमिकों की हड़ताल, मशीनों के बार-बार खराब होने आदि से रुकावट की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं तो न्यूनतम स्कन्ध स्तर निर्धारित करने में अनिश्चितता का वातावरण बना रहता है।

(iv) देशी अथवा आयात किया जाने वाला स्कन्ध (Inland or Importable Inventory)—यदि सामग्री अपने देश के बाजारों से ली जाती है तो उसे माँगने में अधिक निश्चितता होती है, एवं कम समय लगता है। अत: स्कन्ध में न्यूनतम स्तर कम रखने पर भी कार्य सुचारु रूप से चल सकता है। इसके विपरीत स्थिति में, यदि सामग्री विदेशों से आयात की जाती हैं, तो उसे माँगने में निश्चिता कम रहेगी तथा समय अधिक लगेगा, अत: भण्डार में स्कन्ध का स्तर ऊँचा रखना पड़ेगा।

(v) अन्य तत्व (Other Factors)—ऊपर वर्णित तत्वों के अतिरिक्त कुछ अन्य अन्य तत्व जैसे—सामग्री के परिवहन की लागत, सामग्री के रख-रखाव की कीमतों में परिवर्तन की सम्भावनाएँ, राजनीतिक अस्थिरता सामग्री की निकट भविष्य में उपलब्धि की सम्भावनाएँ आदि भी उसके न्यूनतम स्कन्ध स्तर को एक बड़ी सीमा तक प्रभावित करते हैं।

न्यूनतम स्कन्ध अथवा बफर स्टॉक के लाभ

अल्पतम भण्डारण (Buffer Stock) के निम्नलिखित लाभ हैं—

(i) उपभोक्ता दर में होने वाले उच्चावचन पर पर्याप्त ध्यान रखा जा सकता है।
(ii) उत्पादन में देरी होने की अवधि में पर्याप्त समय की व्यवस्था कर सकते हैं।
(iii) समय की देरी होने की स्थिति में उसका हिसाब रख सकते हैं।
(iv) उत्पादन लाइन पर कार्य की रुकावट को रोक सकते हैं।

न्यूनतम स्कन्ध स्तर की गणना (Computation of Minimum Stock Level)

न्यूनतम स्कन्ध स्तर की गणना निम्नलिखित सूत्रों द्वारा की जा सकती है—

Minimum Level = Re-order level – Average usage of normal lead time

Or

Minimum level = Reorder level – [Average usage rate × lead time]

उदाहरणस्वरूप किसी संस्थान में आदेश की पूर्ति के लिए 10 दिन का समय लगता है तथा प्रतिदिन 1 क्विंटल माल का प्रयोग निर्माण कार्य में होता है और पुन: आदेश स्तर 20 क्विंटल है, तो

Minimum level = 20 – (1 × 10) = 10 क्विंटल

न्यूनतम स्कन्ध (Minimum Stock) को केवल निम्न परिस्थितियों में ही प्रयोग किया जाता है—

(i) जबकि सामग्री की आपूर्ति में विलम्ब हो रहा हो।
(ii) जबकि उत्पाद की खपत में उतार-चढ़ाव हो रहा हो।

Scanned with CamScanner

(iii) जबकि लीड समय में परिवर्तन हो रहा हो।

II. अधिकतम स्कन्ध स्तर (Maximum Stock Level)

भण्डार ग्रह में स्कन्ध की वह मात्रा जिससे अधिक स्कन्ध बढ़ाने पर प्रति इकाई संग्रहण लागत तथा सामग्री में पूँजी का अभाव बढ़ जाता है अर्थात् जिससे अधिक स्कन्ध संग्रहित करने से व्यय बढ़ जाता है, अधिकतम स्कन्ध स्तर कहलाता है।

अधिकतम स्कन्ध स्तर को प्रभावित करने वाले कारक
(Factors Affecting the Maximum Stock Level)

एक उत्पादन इकाई में अधिकतम स्कन्ध स्तर को निम्नलिखित कारक प्रभावित करते है—

(i) मूल्यों में परिवर्तन की सम्भावना (Possibility of Change in Prices)—स्कन्ध के मूल्यों में निकट भविष्य में होने वाले परिवर्तनों की सम्भावनाओं का अधिकतम स्कन्ध स्तर पर प्रभाव पड़ता है। यदि निकट भविष्य में मूल्यों में कमी की सम्भावनाएँ हैं तो अधिकतम स्कन्ध स्तर नीचा निर्धारित किया जा सकता है। परन्तु इसके विपरीत स्थिति में इसे ऊँचा रखा जा सकता है।

(ii) चोरी की सम्भावनाएँ (Possibilities of Theft)—यदि औद्योगिक इकाई में अधिकतम स्कन्ध स्तर ऊँचा रखने पर सामग्री के चोरी होने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती है तो इसे नीचा ही रखना उसके हित में होता है। इसके विपरीत यदि उपक्रम में भण्डारण पूर्ण सुरक्षित है तो इस स्तर को ऊँचा भी रखा जा सकता है।

(iii) सामग्री का मूल्य (Price of the Inventory)—यदि काम में आने वाली सामग्री कीमती है तो उसकी अधिकतम सीमा सामान्यत: नीची रखी जाती है। जबकि आवश्यक सामग्री कम मूल्य की होने की स्थिति में वह सीमा ऊँची निर्धारित की जा सकती है।

(iv) भण्डारण की सुविधा (Facilities of Storing)—भण्डारण सुविधाएँ भी अधिकतम स्कन्ध स्तर के निर्धारिण को प्रभावित करती है। यदि उपक्रम के पास सामग्री के भण्डारण की पर्याप्त व्यवस्था है तो अधिकतम स्कन्ध स्तर ऊँचा निर्धारित किया जा सकता है। परन्तु इसके विपरीत स्थिति में इसे नीचा रखना अनिवार्य हो जाता है।

(v) उपक्रम की वित्तीय स्थिति (Financial Position of the Unit)—यदि उत्पादक इकाई के पास पर्याप्त मात्रा में वित्त की व्यवस्था है, तो अधिकतम स्कन्ध स्तर ऊँचा रखना भी सम्भव है जबकि संस्था के पास वित्त की कमी होने पर यह स्तर नीचा ही रखा जाता है।

(vi) अन्य कारक (Other Factors)—ऊपर वर्णित कारकों के अतिरिक्त कुछ अन्य तत्व जैसे—सामग्री के अप्रचलन की सम्भावनाएँ, सरकारी नीति, राजनैतिक उथल-पुथल आदि भी अधिकतम स्कन्ध को ऊँचा निर्धारित करने के मार्ग में बाधा डालते हैं। अत: इन परिस्थितियों में इसे नीचा ही निर्धारित करना संस्था के हित में होता है।

III. आदेश स्तर या पुनः आदेश स्तर (Ordering Level or Recording Level)

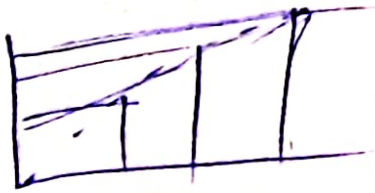
आदेश स्तर या पुन: आदेश स्तर या बिन्दु (Re-order point) सामग्री के स्कन्ध का स्तर वह है जिस पर सामग्री को क्रय करने के लिए आदेश दे देना चाहिए जिससे कि सामग्री के स्कन्ध न्यूनतम सीमा आते-आते सामग्री प्राप्त हो जाये। आदेश स्तर अथवा पुन: आदेश स्तर ज्ञात करने के लिए सामग्री के स्तर की न्यूनतम सीमा में उतनी मात्रा और जोड़ दी जाती है जो कि सामग्री क्रय करने की कार्यवाही शुरू करने से लेकर सामग्री प्राप्त होने तक उत्पादन कार्य में औसत रूप से प्रयुक्त होने की सम्भावना होती है।

दूसरे शब्दों में आदेश स्तर या पुन: आदेश स्तर सामग्री के अधिकतम तथा न्यूनतम स्तर को मध्य किसी स्थान पर इस प्रकार निश्चित किया जाता है जिससे कि आदेश सीमा या पुन: आदेश सीमा और सामग्री के न्यूनतम स्कन्ध के मध्य की सामग्री उत्पादन की आवश्यकताओं को उस समय तक पूरा कर सके जिस समय तक आदेशानुसार सामग्री प्राप्त न हो जाये। आदेश स्तर या पुन: आदेश स्तर मुख्यत: निम्नलिखित दो घटकों पर निर्भर करता है—

(i) उपयोग की अधिकतम दर (Rate of Maximum Usage)

Scanned with CamScanner

(ii) समय की वह दूरी जो क्रय आदेश देने तथा स्कन्ध प्राप्ति के बीच होती है। (Maximum Re-order Period or Maximum Delivery Time)



आदेश स्तर या पुनः आदेश स्तर की गणना (Computation of Ordering Level or Re-order Level)

आदेश सीमा या पुन: आदेश स्तर को निम्न सूत्र से ज्ञात किया जा सकता है—

Ordering level or Re-ordering level = Maximum Usage Per day × Maximum Re-order Period or Maximum Delivery Time

Or

= Maximum Level + [Normal Usage or Average rate of Consumption × Average Re-order Period or Average Delivery Time]

पुन: आदेश बिन्दु पर स्कन्ध का स्तर समयान्तर उपयोग (Lead Time Consumption) तथा सुरक्षित स्टॉक के योग के बराबर होता है।

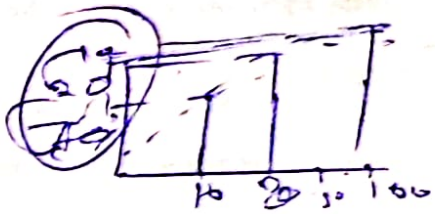
पुन: आदेश स्तर = समयान्तर उपयोग + सुरक्षित स्टॉक

$P + L + B$

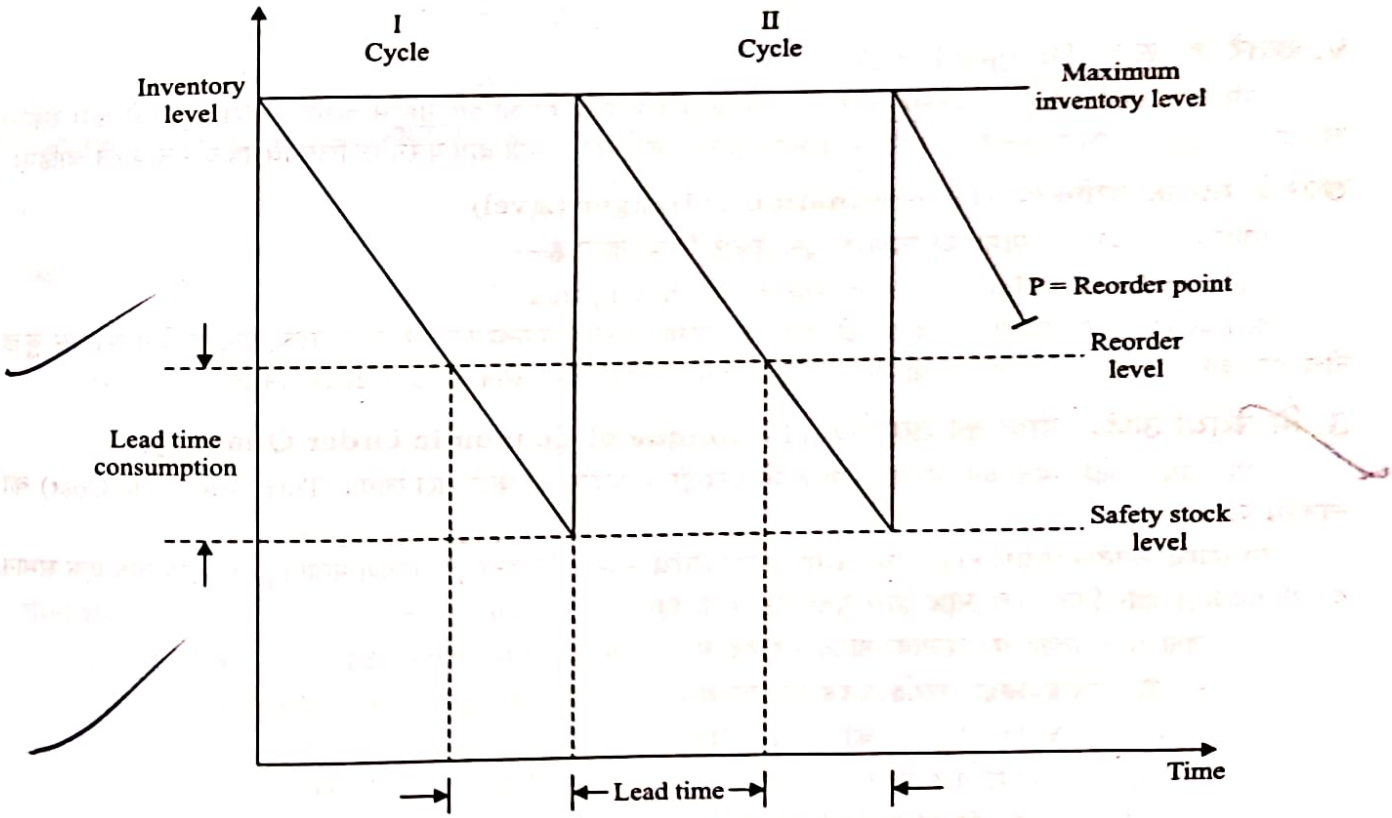
P = Reorder Point

L = Lead Time Consumption

B = Buffer Stock



इसे चित्र द्वारा भी दिखाया जा सकता है—



चित्र 3 : पुनः आदेश

Scanned with CamScanner

पुनः आदेश बिन्दु की मान्यताएँ (Assumptions of Re-order Point)

पुनः आदेश बिन्दु निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है—

(i) आदेशों की पूर्ति का समय पूर्व निश्चित होता है।

(ii) आदा समय (Lead Time) स्थिर रहता है।

(iii) उपयोग इकाई द्वारा समयों के उपयोग की दर में कोई परिवर्तन नहीं होता।

IV. औसत स्कन्ध स्तर (Average Stock Level)

समयों के स्कन्ध का वह स्तर जो भण्डारगृह में रखी जाने वाली समयों के औसत स्कन्ध को बताता है। औसत स्कन्ध स्तर कहलाता है।

औसत स्कन्ध स्तर की गणना (Computation of Average Stock Level)

औसत स्कन्ध की गणना निम्नलिखित सूत्र की सहायता से की जाती है—

$$\text{Average Stock Level} = \frac{1}{2}(\text{Minimum Level} + \text{Maximum Level})$$

औसत स्कन्ध स्तर को मापने के लिए आदेश मात्रा पर आधारित एक अन्य विधि भी है जिसका गणना सूत्र निम्न प्रकार है—

$$\text{Average Stock Level} = \text{Minimum Level} + \frac{1}{2}(\text{Re-order Quantity})$$

Or

$$\text{Average Stock Level} = \frac{2(\text{Minimum Level}) + \text{Re-order Quantity}}{2}$$

V. खतरे का स्तर (Danger Level)

सामान्यतः खतरे का स्तर न्यूनतम स्कन्ध स्तर से कुछ कम होता है। भण्डार गृह में कभी भी इस सीमा से कम स्कन्ध नहीं होना चाहिए। स्कन्ध के खतरे का स्तर आ जाने पर क्रय-प्रबन्ध को समयों क्रय करने के लिए विशेष प्रयत्न करने चाहिए।

खतरे के स्तर का निर्धारण (Determination of Danger Level)

सामान्यतः खतरे की सीमा का निर्धारण इस प्रकार किया जाता है—

Danger Level = Two Days of Normal Consumption

कुछ व्यवसायों में समयों के स्कन्ध की खतरे की सीमा, न्यूनतम स्कन्ध स्तर से ऊपर परन्तु पुनः आदेश स्तर से कुछ नीचे निश्चित की जाती है। यदि समयों के स्कन्ध की पुनः आदेश सीमा आने पर क्रय आदेश निर्धारित हो जाये।

3. मितव्ययी आदेश मात्रा की तकनीक (Technique of Economic Order Quantity)

"मितव्ययी आदेश मात्रा वह आदेश मात्रा है जो इन्वेन्ट्री के प्रबन्ध की कुल चल लागत (Total Variable Cost) को न्यूनतम करती है।"

मितव्ययी आदेश मात्रा (EOQ) के आगणन की विधि—माना कि इन्वेन्ट्री, आदेश मात्रा (q) से शून्य तक एक समान दर से घटती है और फिर अन्य मात्रा द्वारा पुनः भर जाती है।

पुनः माना S = उत्पाद की वार्षिक खपत (यूनिट में)

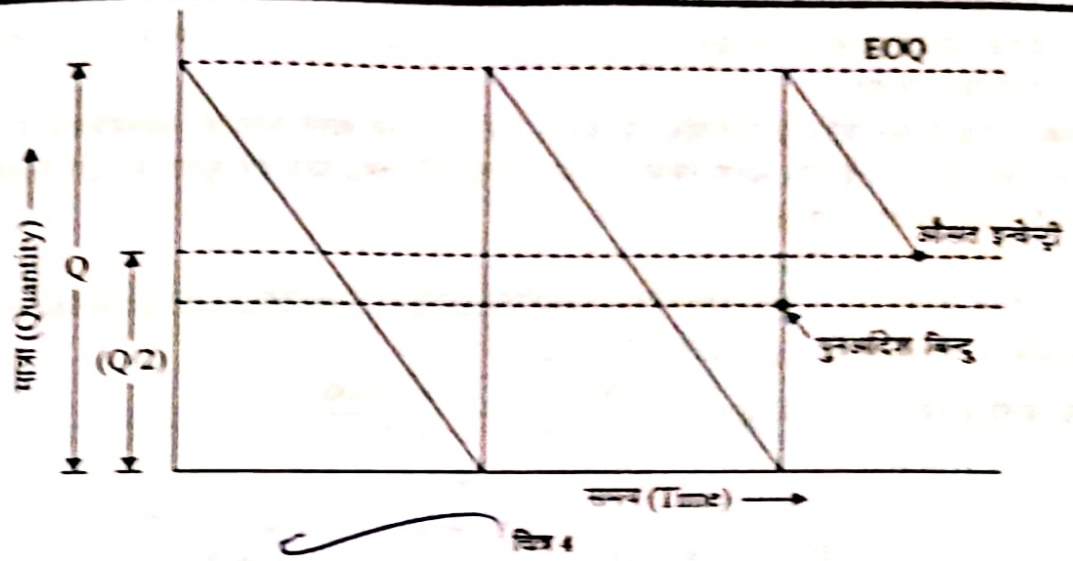
C_0 = एक आदेश निर्गत करने की लागत

C_1 = एक मद (Item) की यूनिट लागत

q = आदेश मात्रा (यूनिट में)

i = प्रतिवर्ष प्रति यूनिट चार्ज की गई ब्याज दर।

Scanned with CamScanner



चित्र 4

यहाँ इन्वेन्ट्री धारण लागत को औसत इन्वेन्ट्री निवेश (Average Investment) के प्रतिशत के रूप में अभिव्यक्त करते है। अब, प्रति वर्ष इन्वेन्ट्री के प्रबन्धन में व्यय कुल चल लागत (Total Variable Cost) = वार्षिक आदेश लागत + वार्षिक इन्वेन्ट्री धारण लागत = E (माना)

अतः E = (प्रतिवर्ष आदेशों की संख्या) × (एक आदेश निर्गत करने की लागत) + (औसत इन्वेन्ट्री) × (इन्वेन्ट्री धारण लागत)

$$\therefore \quad E = \left[\frac{S}{q} \times C_0\right] + \left[\frac{q}{2} \times C_s \times i\right]$$

मितव्ययी आदेश मात्रा (q_0) ज्ञात करने के लिए, जो इन्वेन्ट्री के प्रबन्धन अथवा धारण करने की कुल लागत को न्यूनतम करता है। E को चल राशि 'q' के सापेक्ष अवकलन करके शून्य के बराबर रखने पर, अर्थात् न्यूनतम कुल लागत के लिए

$$\frac{dE}{dq} = 0$$

अतः
$$\frac{dE}{dq} = \frac{C_0 S}{2} + C_s \cdot i \cdot \frac{1}{2} = 0$$

$$\therefore \quad \frac{C_0 \cdot S}{q^2} = C_s \cdot i \cdot \frac{1}{2}, \qquad \text{या} \qquad \therefore q_0 = \frac{2 C_0 S}{C_s \cdot i}$$

या
$$q = \sqrt{\frac{2 C_0 S}{C_s \cdot i}}$$

अतः मितव्ययी आदेश मात्रा (EOQ) = $\sqrt{\frac{2 C_0 S}{C_s \cdot i}}$

मान्यतायें (Assumptions)—मितव्ययी आदेश मात्रा (EOQ) के निर्धारण हेतु ली गई कुछ मान्यतायें निम्न है—

(i) सम्पूर्ण वर्ष में प्रति आदेश निर्गत करने की लागत स्थिर होगी।

(ii) सम्पूर्ण वर्ष में इन्वेन्ट्री की कीमतें स्थिर रहेंगी तथा इसकी मात्रा छूट का कोई प्रावधान भी नहीं होगा।

(iii) इन्वेन्ट्री की वार्षिक उपयोग की मात्रा में परिवर्तन नहीं होगा।

(iv) सम्पूर्ण वर्ष में सामग्री की प्रति इकाई धारण लागत स्थिर रहेगी।

Scanned with CamScanner

(v) प्रत्येक बार अनुकूलतम क्रय आदेश (Optimum Purchase Order) की मात्रा के अनुसार ही क्रय आदेश जारी किया जायेगा।

उदाहरण 1. एक कम्पनी को ₹ 2 प्रति यूनिट की दर से 16000 यूनिट कच्चे माल की आवश्यकता है। क्रय आदेश निर्गत करने की लागत Rs. 45 है तथा धारण लागत, औसत इन्वेन्ट्री की 10% प्रति वर्ष यूनिट है। ज्ञात कीजिए—

(i) मितव्ययी आदेश मात्रा (EOQ)

(ii) चक्र समय (Cycle Time)

(iii) इन्वेन्ट्री धारण करने की कुल चल लागत (Total Variable Cost of Managing the Inventory)

हल—दिया है, $S = 16000, C_0 = \text{Rs.}45, C_u = 2, i = 10\% = 0.1$

(i) हम जानते हैं कि, $$EOQ = \sqrt{\frac{2\,C_0 S}{C_u \cdot i}} = \sqrt{\frac{2 \times 45 \times 16000}{2 \times 0.1}}$$

$$\therefore \quad EOQ = 2684 \text{ यूनिट}$$

(ii) $$\text{प्रतिवर्ष आदेशों की संख्या} = \frac{\text{वार्षिक खपत}}{\text{E.O.Q.}} = \frac{16000}{2684} = 6$$

$$\therefore \quad \text{चक्र समय (Cycle Time)} = \frac{1}{\text{प्रतिवर्षआदेशों की संख्या}}$$

$$= \frac{1}{6}\text{yr} = 2 \text{ months}$$

(iii) इन्वेन्ट्री धारण करने की कुल चल लागत

$$E = C_0 \cdot \frac{S}{q_o} + \frac{C_u \cdot i \cdot q_o}{2}$$

$$= 45 \times 6 + \frac{2 \times 0.1 \times 2684}{2}$$

$$= 270 + 268.4 = \text{Rs. } 538.4$$

उदाहरण 2. एक उत्पादक अपनी 4 month की आवश्यकता के लिए 800 यूनिट का एक लॉट (Lot) क्रय करता है। एक यूनिट की लागत Rs.100 तथा एक बैच की आदेश लागत Rs.120 है। इन्वेन्ट्री धारण लागत, औसत इन्वेन्ट्री निवेश की 20% है। ज्ञात कीजिए—

(i) इन्वेन्ट्री के प्रबन्धन के लिए वार्षिक चल लागत (Annual Variable Cost)

(ii) E.O.Q. क्रय करने पर होने वाली बचत।

हल—दिया है, वार्षिक खपत $S = 800 \times 3 = 2400$ यूनिट

$C_0 = 120, C_u = 100, i = 0.20$

(i) ∴ वार्षिक चल लागत $$E = \frac{C_0 \cdot S}{q} = C_u \cdot i \cdot \frac{1}{2}$$

$$= \frac{120 \times 2400}{800} + 100 \times 0.2 \times \frac{800}{2} = 360 + 8000 = \text{Rs.}8360$$

(ii) $$\text{मितव्ययी आदेश मात्रा} = \sqrt{\frac{2\,C_0 \cdot S}{C_u \cdot i}} = \sqrt{\frac{2 \times 120 \times 2400}{100 \times 0.2}}$$

$$= 170 \text{ units} = q_0$$

Scanned with CamScanner

$$\therefore \quad E = \frac{C_0 \cdot S}{q_0} + \frac{C_u \cdot i \cdot q_0}{2}$$

$$= \frac{120 \times 2400}{170} + 100 \times 0.2 \times \frac{170}{2}$$

$$= 169.412 + 1700$$

$$= ₹\ 339.412$$

अगर प्रत्येक 4 माह पर क्रय करने के स्थान पर E.O.Q. द्वारा क्रय किया जाये तो वार्षिक बचत

$$= 8360 - 3994.12$$

$$= ₹\ 4965.88$$

उदाहरण 3. दिया है कि—

(i) प्रयोग में लायी गई वार्षिक मात्रा (U) = 70 इकाइयाँ (units)

(ii) अधिप्राप्ति (Procurement Cost), P = ₹ 20 प्रति आदेश

(iii) प्रति इकाई मूल्य (Per Unit Cost), C = ₹ 100

(iv) प्रतिअवधि सामग्री की धारण लागत की प्रतिशत (जिसमें खराबी या निष्प्रयोज्यता लागत, बीमा तथा कर इत्यादि सम्मिलित हैं) अर्थात् I = 10% हो तो मितव्ययी आदेश मात्रा (E.O.Q.) की गणना कीजिए। साथ ही प्रतिवर्ष दिये जाने वाले आदेशों की संख्या भी बताइये।

हल—

$$\text{EOQ} = \sqrt{\frac{2U \times P}{C \times I}}$$

जहाँ U = प्रतिवर्ष प्रयोग की गयी कुल मात्रा (Total Quantity used Annually)

P = एक क्रय-आदेश हेतु अधिप्राप्ति लागत (Procurement Cost Associated with One Order)

C = प्रति इकाई मूल्य (Cost for One Item)

I = कर, बीमा तथा खराबी का निष्प्रयोज्यता इत्यादि सहित प्रति-अवधि स्कन्ध सामग्री धारण की लागत प्रतिशत में (Cost of carrying Inventory in Percentage Per period including Taxes, Insurance and Obsolescence etc.)

$$\text{सूत्रानुसार} = \sqrt{\frac{2 \times 70 \times 20}{100 \times (10/100)}} = 16.73$$

$$= 17 \text{ पूर्णांक}$$

$$\text{अब आदेशों की संख्या (प्रतिवर्ष)} = \frac{70}{16.73} = 4.18 = 5 \text{ इकाइयाँ (units)}$$

मितव्ययी आदेश मात्रा के सूत्र की मान्यताएँ (Assumptions of the formula of EOQ)

मितव्ययी आदेश मात्रा का सूत्र निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित हैं—

(i) सम्पूर्ण वर्ष में सामग्री की कीमत स्थिर रहेगी और मात्रा छूट का कोई प्रावधान हैं।

(ii) सम्पूर्ण वर्ष में प्रति आदेश देने की लागत स्थिर रहेगी।

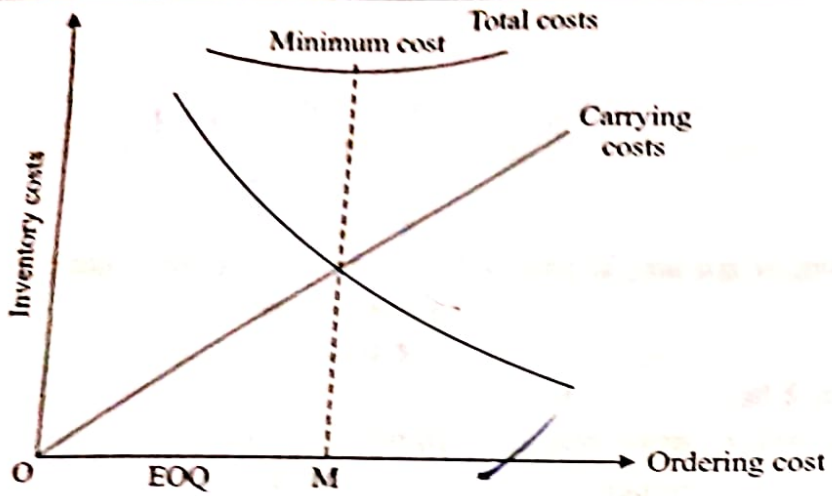
(iii) सम्पूर्ण वर्ष में सामग्री की प्रति इकाई संग्रहण लागत स्थिर रहेगी।

(iv) सामग्री की वार्षिक उपभोग मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होगा।

(v) प्रत्येक बार अनुकूलतम आदेश मात्रा के अनुसार ही सामग्री को क्रय करने का आदेश दिया जायेगा।

मितव्ययी आदेश मात्रा को अगले पृष्ठ पर ग्राफ द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है—

Scanned with CamScanner



चित्र 5

उपरोक्त लेखाचित्र में OY-अक्ष पर सामग्री से सम्बन्धित लागत तथा OX-अक्ष पर आदेश मात्रा दिखाई गई है। कुल लागत रेखा (Total Costs curve), सामग्री रखने की लागत (Carrying Costs) तथा आदेश देने की लागत (Ordering Costs) का योग है तथा यह OM आदेश मात्रा पर न्यूनतम है, अत: OM मात्रा ही EOQ या मितव्ययी आदेश मात्रा होगी।

मितव्ययी आदेश मात्रा को निर्धारित करने वाले घटक

अनुकूलतम आदेश मात्रा (EOQ) को निम्नलिखित घटक निर्धारित करते हैं—

(i) इकाइयों में सामग्री का वार्षिक उपयोग (Annual Usage of Materials in Units)—सर्वप्रथम यह अनुमान लगाया जाता है कि सम्पूर्ण वर्ष में उत्पादन के लिए सामग्री की कितनी इकाइयों की आवश्यकता होगी।

(ii) क्रय लागत या प्रति आदेश देने की लागत (Buying Cost or Cost of Placing an Order)—सामग्री को क्रय करने हेतु एक आदेश देने में जो लागत आती है। उसे क्रय लागत या प्रति आदेश देने की लागत कहते हैं। इसमें क्रय माँग पत्र तैयार करने, सामग्री के पूर्तिकर्त्ताओं से निविदा आमन्त्रित करने, चुने गये प्रतिकर्त्ता को क्रय आदेश प्रेषित करने में आने वाली लागतों को सम्मिलित किया जाता है। एक वर्ष में जितनी अधिक बार अर्थात् क्रय मात्रा में सामग्री क्रय करने के लिए आदेश दिये जायेंगे, प्रति आदेश लागत में तो कोई परिवर्तन नहीं होगा परन्तु पूरे वर्ष में कुल आदेश देने की लागत उतनी ही अधिक आएगी। इसके विपरीत स्थिति में कुल आदेश देने की लागत उतनी ही अधिक आएगी। इसके विपरीत स्थिति में कुल आदेश देने की लागत उतनी ही कम आएगी। अत: प्रति आदेश देने की लागत इस बात पर जोर देती है कि एक वर्ष में सामग्री क्रय करने के आदेशों की संख्या कम होनी चाहिए। अर्थात् सामग्री की अधिक मात्रा क्रय करने के लिए आदेश दिया जाना चाहिए।

(iii) सामग्री की प्रति इकाई को संग्रह करने की वार्षिक लागत (Annual Carrying and Storing Cost of One Unit of Material)—यह प्रति इकाई सामग्री को भण्डार-गृह में एक वर्ष तक रखने की औसत लागत होती है। इसमें सामग्री के स्कन्ध में विनियोजित पूँजी पर ब्याज, सामग्री की अप्रचलन लागत, सामग्री के भण्डार ग्रह में संग्रह की लागत बीमा लागत, परिवहन लागत आदि को सम्मिलित किया जाता है। एक वर्ष में जितनी अधिक बार अर्थात् कम मात्रा में सामग्री क्रय करने के लिए आदेश दिये जाये सामग्री की प्रति इकाई संग्रह करने की वार्षिक लागत में तो कोई परिवर्तन नहीं होगा, परन्तु सामग्री को संग्रह करने की कुल लागत उतनी ही कम आएगी। इसके विपरीत स्थिति में सामग्री का संग्रह करने की कुल लागत अधिक आएगी। अत: सामग्री की प्रति इकाई को संग्रह करने की वार्षिक लागत इस बात पर जोर देती है कि एक वर्ष में सामग्री क्रय करने के आदेशों की संख्या अधिक होनी चाहिए अर्थात् सामग्री की कम मात्रा को क्रय करने के लिए आदेश दिया जाना चाहिए।

Scanned with CamScanner

8.3 (a) संग्रहण उपकरण (Storage Equipments)

स्टोर्स मे सामग्री के संग्रहण के लिए कई प्रकार के उपकरण प्रयुक्त किये जाते हैं। सामान्यत: निम्नलिखित उपकरणों का प्रयोग किया जाता है—

(i) टोट पैन (Tote pen)—ये छोटे-छोटे उपकरणों के रखने के काम आते हैं।

(ii) पैलेट (Pallets)—थैलों, बॉक्सों और सामान्य आकार की भारी वस्तुओं को रखने के लिए समतल पैलेट (Plain pallets) का उपयोग किया जाता है, जबकि असामान्य आकार की वस्तुओं को रखने के लिए बॉक्स पैलेट उचित होती है।

(iii) बिन (Bin)—इनका उपयोग सामान्य आकार की वस्तुओं को रखने के लिए किया जाता है।

(iv) स्टैण्ड (Stand)—छड़, एंगल छड़ व पाइप एवं ट्यूब्स को रखने के लिए A-type स्टैण्ड उचित रहते हैं। अन्य प्रकार के स्टैण्ड सामग्री को देखकर बनाये जाते हैं।

(v) स्टील अलमारी (Steel Almirah)—इनका उपयोग महंगी वस्तुओं तथा जिन पर धूल तथा नमी का प्रभाव पड़ता है, को रखने में किया जाता है।

(vi) रैक (Rack)—बन्द (Packed) सामान को रखने के लिए खुली हुई रैक का प्रयोग किया जाता है जबकि खुले माल (loose material) के लिए बन्द रैक का प्रयोग किया जाता है।

8.3 (b) क्रय विभाग की स्थापना (Establishment of Purchase Department)

स्कन्ध सामग्री की प्रभावी खरीदारी के लिए संगठन में एक क्रय विभाग (Purchase department) की स्थापना की जानी चाहिए। इस क्रय विभाग के स्थापित करने के कई उद्देश्य हैं जैसे—उत्पादन विभाग के लिए उचित मात्रा में आवश्यक सामग्री उपलब्ध करवाना, सामग्री की खरीदारी संतोषजनक व मितव्ययी ढंग से करना, सामग्री की अभीष्ट मात्रा की आपूर्ति (Supply) सुनिश्चित करना, आपूर्ति के स्रोतों (Sources of supply) का उचित चयन करना, आपूर्ति बाजार (Supply market) में वैकल्पिक सामग्री की उपलब्धता के बारे में जानकारी रखना एवं उपलब्ध सूचनाओं के बारे में अन्य सम्बन्धित विभागों (जैसे—डिजाइन, उत्पादन, विक्रय व वित्त विभाग इत्यादि) से उचित परामर्श करना, विभिन्न प्रकार के कच्चे मालों (Raw materials) की पुर्जों (Components) इत्यादि हेतु बाजार शोध (Market research) करना व उनका मूल्य विश्लेषण करना, अभीष्ट मात्रा व श्रेष्ठ गुणवत्ता वाली सामग्री की सतत् आपूर्ति (Continuous supply) सुनिश्चित करना एवं इस कार्य के लिए नये विक्रेताओं (Vendors) का पता लगाना व उनके साथ अच्छे सम्बन्ध बनाना तथा सभी सम्बन्धित विभागों के साथ उचित सामंजस्य बनाना इत्यादि।

संक्षेप में, क्रय विभाग व्यावसायिक संस्था के नाम विभागों की सामग्री सम्बन्धी आवश्यकताओं को मालूम करके उनके क्रय की व्यवस्था का दायित्व सम्भालता है। क्रय विभाग केवल उत्पादन विभाग के लिये कच्चा माल ही नहीं, बल्कि भण्डार (Store), मशीनरी एवं स्टेशनरी इत्यादि की क्रय व्यवस्था भी करता है। एक ही व्यक्ति द्वारा सामग्री का क्रय कार्य केन्द्रित होना चाहिए, क्योंकि इससे क्रय दक्षता बढ़ जाती है, सौदेबाजी (Bargaining) का लाभ प्राप्त होता है, क्रय प्रक्रिया सुगम हो जाता है तथा सामग्री प्राप्ति में एकरूपता (Uniformity) व सघनता (Consistency) आती हैं, किन्तु केन्द्रीय क्रय पद्धति में एक दोष यह है कि क्रय प्रक्रिया धीमी होती है। यह केन्द्रीय क्रय व्यवस्था केवल उन्हीं उद्योगों में कारगार सिद्ध होती है, जहाँ पर उत्पादन में कुछ ही पदार्थ प्रयोग में लाये जाते हैं और जिनका उत्पादन एक ही स्थान पर होता है। विकेन्द्रीय क्रय (Decentralized purchasing) पद्धति केवल वृहद व बड़े व्यावसायिक संगठनों में जहाँ विभिन्न प्रकार के संयन्त्रों (Plants) के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के पदार्थों (Materials) की आवश्यकता होती हो, उपयोगी सिद्ध होती है।

(ii) क्रय बजट तैयार करना (Preparation of Purchase Budget)—क्रय बजट तैयार करने से पूर्व, संगठन का उत्पादन लक्ष्य निर्धारित किया जाता है। उत्पादन लक्ष्य के अनुरूप ही क्रय किये जाने वाली सामग्री का बजट बनाया जाता है। इस क्रय-बजट में बजट अवधि के अन्तर्गत क्रय किये जाने वाली कुल सामग्री का विस्तृत विवरण होता है। क्रय बजट तैयार करते समय निम्न बातों का अवश्य ध्यान रखना चाहिए—

(a) उत्पादन लक्ष्य के अनुरूप सामग्री के वाँछित गुण व मात्रा।

(b) सामग्री/पदार्थ के स्रोत।

Scanned with CamScanner

(c) सामग्री आपूर्ति की आपेक्षित तिथि।
(d) वर्तमान अवशेष सामग्री की स्थिति।
(e) आगत वाहन सम्बन्धी सूचना।
(f) सामग्री मूल्य एवं छूट आदि की शर्तें
(g) लेनदारों के भुगतान हेतु उपलब्ध धनराशि।
(h) क्रय आवेशित माल के आने की सम्भावना।

(iii) **क्रय माँग पत्र तैयार करना** (Preparation of Purchase Requisition Slip)—जब किसी विभाग में अमुक सामग्री अथवा पदार्थ का स्टॉक न्यूनतम पुर्नआदेश स्तर तक आ जाता है तब विभागाध्यक्ष अथवा अधिकृत सुपरवाइजर इसकी अधिकृत सूचना एक माँगपत्र पर लिखकर क्रय विभाग को भेजता है। अर्थात्—

"क्रय माँग पत्र एक ऐसा प्रपत्र है जिसमे क्रय विभाग के समक्ष अन्य सम्बन्धित विभागों द्वारा अपनी माँग के अनुरूप आवश्यक सामग्री के क्रय हेतु विवरण नियमित रूप से भेजा जाता है।"

क्रय माँग पत्र में क्रय सम्बन्धी निम्न जानकारियाँ होती है—

(a) पदार्थ/सामग्री का नाम, विशिष्टयाँ (Specifications) एवं गुणवत्ता।
(b) कोड संख्या तथा सामग्री की मात्रा (Quantity)।
(c) आपूर्ति की अभीष्ट तिथि, जब तक सामग्री की आवश्यकता होगी।
(d) आपूर्ति का स्थान।

इसको तीन प्रतियों में तैयार करके मूल प्रति क्रय विभाग को भेज देते हैं। विभिन्न व्यावसायिक संस्थायें अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप इस क्रय माँग पत्र को तैयार करते हैं। क्रय माँग पत्र का एक विशिष्ट प्रारूप चित्र में प्रदर्शित है—

No. Pr : Date :

Cost Center :

Jai Prakash Nath Publications

Nauchandi Road, Meerut

(Purchase Requisition Slip)

Please Purchase for ..... department .....

Item No.	Code No.	Description	Required	Remarks

Required by ..... Checked by ..... Approved by .....

For use of Department Issuing this Purchase requisition			For use of Purchase Department			
Item No.	Qty. in Hand	Consumption Per day/month	Qty. Required	Purchase Order No.	Supplier Name	Delivery Date
Store keeper						

चित्र 6 : क्रय माँग पत्र (Purchase Requisition Slip)

Scanned with CamScanner

साधारणतया हर विभाग क्रय माँग पत्र को तीन प्रतियों में तैयार करता है, क्योंकि—

(i) इसकी मूल प्रति क्रय विभाग को भेज दी जाती है।

(ii) दूसरी प्रति स्वागत नियन्त्रण विभाग को भेज दी जाती है।

(iii) तीसरी प्रति (अन्तिम प्रति) प्रेषक विभाग स्वयं अपने पास आपने सन्दर्भ के लिए रख लेता है।

स्कन्ध सामग्री को क्रय करने का निर्णय लेने के उपरान्त सम्बन्धित विक्रेताओं (Vendors) से निविदा आमन्त्रित किये जाते हैं। क्रय विभाग (Purchase Department) को सम्बन्धित विक्रेताओं या आपूर्तिकर्त्ताओं (Suppliers) के बारे में पर्याप्त जानकारी रखनी चाहिए। विभिन्न विक्रेताओं से प्राप्त समस्त निविदाओं (Tenders) का तुलनात्मक अध्ययन करने एवं भविष्य के सन्दर्भ के लिए क्रय विभाग द्वारा एक निविदा सूची (Tender list) तैयार की जाती है, जिसका एक नमूना चित्र में दर्शाया गया है—

Jai Prakashnath Publications

Nauchandi Road, Meerut

(Schedule of Quotation)

S. No. ..... Material ..... Date .....

Name of the Party	Qty offered	Rate Per Unit	Terms	Time of Delivery	Mode of Delivery	Remaks
Purchase Order No.—						Date—

चित्र 6 : निविदा सूची (Tender List)

विक्रेताओं से प्राप्त निविदाओं (Tenders) में अंकित मूल्य, सामग्री की मात्रा एक और विक्रेताओं की शर्तों (Terms and conditions) का तुलनात्मक अध्ययन करके न्यूनतम मूल्य (Lowest price) वाले विक्रेता को अभीष्ट सामग्री की खरीदारी के लिये क्रय आदेश भेजा जाता है। कौन-कौन आपूर्तिकर्त्ताओं से निविदायें आमन्त्रित करनी है यह क्रय विभाग तय करता है।

निविदा प्रपत्र में निम्न बातों/जानकारियों का समावेश होना चाहिए—

(a) क्रय किये जाने वाले पदार्थ की मात्रा।

(b) नग (Item) की विशिष्टतायें/गुणवत्ता। अगर आवश्यक हो तो प्रपत्र के साथ नग की ड्राइंग भी नत्थी (Enclosed) की जा सकती है।

(c) अगर आवश्यक हो तो एक नमूना (Sample) भी आपूर्तिकर्त्ता को भेजा जा सकता है।

(d) आपूर्ति का समय।

(e) जमा किये जाने वाला ब्याना (Earnest money), यदि कोई है।

(f) क्रय की शर्तें (Terms and conditions)।

(g) निविदायें प्राप्त करने एवं खोलने का दिन, समय तथा स्थान।

निविदा प्रपत्र का एक प्रारूप आगे चित्र में दर्शाया गया है—

Notice for Inviting Tenders.

To, ...

Jai Prakash Nath Publications, Nauchandi Road, Meerut

ENQ No. .....

Subject : Quotation for the supply of .....

Scanned with CamScanner

Sir,

We wish to invite quotation for the purchase of the material listed below/on the attached sheets. You are requested to quote your rates so as to reach this office on or before ..... The quotations should be sent in a sealed cover mentioning prescribed quotation for ..... Enquiry No. ..... Due date ..... . The quotations will be opered at ..... a.m./p.m. on ..... The following conditions may please be noted in this connection.

1. Detailed specification of each item should be given.
2. Rates quoted by you will be valid for a period of 12 months from due date.
3. Please mention whether the material will be supplied F.O.R. Delhi or otherwise.
4. Taxes, if any should be shown separately.
5. Samples of the items at Sl. No. ..... should be sent along with quotation.
6. The condition governing supply of material should be mentioned clearly.

S. No.	Name & Description of the material with Specification	Quantity

Yours Faithfully
(Purchase officer)

विभिन्न विक्रेताओं से प्राप्त समस्त निविदाओं (Tenders) का एक तुलनात्मक विवरण (Comparative statement) बनाया जाता है जिसका एक नमूना चित्र में प्रदर्शित किया जा रहा है—

Please supply the following items in accordance with the terms and conditions mentioned here in .....

Item No.	Description	Quantity	Price	Units	Amount	Remarks

Terms & Conditions

1. .....
2. .....
3. .....

Delivery at . ..... Sales Tax : .....

Discount ..... Freight .....

Excise Duty ..... Terms of Payment .....

for Jai Prakash Nath Publications

Meerut (Signature)

Acknowledgement :

Kindly acknowledge the receipt of the order.

Scanned with CamScanner

Received on .....Date of Delivery .....

Challan No ..... Date ..... Invoice No. ..... Date .....

चित्र 7 : क्रय आदेश (Purchase order)

Comparative statement

Section .....

Enquiry Letter No. ..... Department .....

Code No. .....

Date of Opening quotations .....

Account Head .....

Comparative Statement prepard by ..... Checked by.....

S. No.	Description of materials required	Quantity required	Rates Quoted			Remarks
			Supplier	Supplier	Supplier	
			1	2	3	
1						
2						
3						
4						
5			Terms & Conditions			
			1.	1.	1.	
			2.	2.	2.	
			3.	3.	3.	
			4.	4.	4.	
			5.	5.	5.	

चित्र 8

1. Delivery date
2. Place of delivery
3. Terms of payment
4. Taxes
5. Packing and forwarding charges

उपरोक्त तुलनात्मक विवरण का अध्ययन करके न्यूनतम मूल्य (Lowest price) वाले विक्रेता/आपूर्तिकर्त्ता को अभीष्ट सामग्री की खरीदारी के लिये क्रय आदेश भेजा जाता है।

(iv) क्रय आदेश भेजना (Sending Purchase Order)—सभी विक्रेताओं (Vendors) से प्राप्त निविदाओं (Tenders) में अंकित मूल्य, सामग्री की मात्रा, गुण और शर्तों का गहनता से अध्ययन करने के उपरान्त उचित विक्रेता का चयन करे उसी विक्रेता के पास क्रय आदेश (Purchase order) प्रेषित किया जाता है। क्रय आदेश (Purchase order) में

Scanned with CamScanner

क्रेता (Purchase) द्वारा विक्रेता से निर्दिष्ट मात्रा में, निर्दिष्ट मूल्य पर तथा निर्दिष्ट तिथि तक आपूर्ति करने का आग्रह किया जाता है। एक क्रय आदेश में सामान्यत: निम्नांकित बातों का उल्लेख किया जाता है—

(i) क्रेता का नाम, क्रम संख्या और आदेश प्रेषण की तिथि
(ii) विक्रेता का नाम तथा उसका पता
(iii) क्रय की जाने वाली सामग्री का पूर्ण वृतान्त व मात्रा इत्यादि।
(iv) मूल्य, छूट शर्त एवं भुगतान की शर्तें इत्यादि।
(v) सुपुर्दगी का स्थान व समय।
(vi) अनुकरण कार्यवाही की विधि।
(vii) पैकिंग (Packing) तथा प्रेषण सम्बन्धी निर्देश।
(viii) क्रय अधिकारी के हस्ताक्षर।

नीचे चित्र में जय प्रकाश नाथ पब्लिकेशन्स, मेरठ नामक कम्पनी का क्रय आदेश का एक नमूना प्रदर्शित किया गया है—

Jai Prakash Nath Publications
Nauchandi Road, Meerut
(Purchase Order)
E. Mail ..... S. No. .....
Fax ..... Telephone No. .....
To,
M/s .....
..... Reg. No. .....
..... Our Ref. no. .....

Please supply the following items in accordance with the terms and conditions mentioned herein .....

Items No. Description Quantity Price Units Amount Remarks.

Terms & Conditions :
1. .....
2. .....
3. .....

Delivery at ..... Sales Tax .....
Discount ..... Freight .....
Excise Duty ..... Terms of Payment .....

For Jai Prakash Nath Publications,
Meerut
(Signature)

Acknowledgement
Kindly acknowledge the receipt of the order.
Received on ..... Date of delivery .....
Challan No. ..... Date ..... Invoice No. ..... Date .....

चित्र 9 : क्रय आदेश (Purchase Order)

Scanned with CamScanner

(v) क्रय की गई सामग्री की प्राप्ति तथा निरीक्षण (Receival and Inspection of Purchase Material)—सामग्री की प्राप्ति के पश्चात् उसका विस्तृत परीक्षण/निरीक्षण किया जाता है। सम्बन्धित लिपिक द्वारा वास्तव में प्राप्त की गई सामग्री की प्राप्ति रिपोर्ट बनाई है। इस रिपोर्ट का एक नमूना निम्न है—

ABC Co. Ltd.
Meerut
Goods Received Note
From : .....
M/s ..... No. VRN .....
..... Date .....

Goods		Quantity received	No. of packets etc.	Delivery note no.	Demanded by departmets	Remarks	Inspection	
Description	Code						Quantity rejected	Reasons
Carrier	Received by	Ledger store						Inspector signature

चित्र 10

इस प्रक्रिया में किये जाने वाले प्रमुख कार्य निम्न हैं—

1. प्राप्ति रिपोर्ट की तुलना क्रय आदेश से करके यह सुनिश्चित करते हैं कि दोनों की मात्राओं में अन्तर तो नहीं है।
2. यह सुनिश्चित करते हैं कि प्राप्त सामग्री वाँछित विशिष्टयों के अनुसार ही है। अगर सामग्री की मात्रा एवं गुणवत्ता में कोई अन्तर हो तो तुरन्त उस बात से आपूर्तिकर्त्ता को अवगत कराना चाहिए।
3. कोटित मूल्य तथा बिल मूल्य में तुलना करते हैं।
4. अगर कोई सामग्री क्रय आदेश में वर्णित विशिष्टताओं के अनुरूप नहीं है तो उसे बदलने अथवा वापस करने की कार्यवाही करना।

प्राप्ति लिपिक यह रिपोर्ट तीन प्रतियों में तैयार करता है। एक प्रति सम्बन्धित विभाग को, एक कापी आपूर्तिकर्त्ता और प्रति सम्बन्धित विभाग को, एक कापी आपूर्तिकर्त्ता और एक कापी प्राप्ति विभाग को रिकार्ड रखने हेतु भेज दी जाती है।

(vi) क्रय की गई परन्तु दोषी सामग्री की वापसी (Return of defected purchased Materials)—निरीक्षण के दौरान कोई सामग्री त्रुटिपूर्ण पायी जाती है तो उसे लौटाने की कार्यवाही की जाती है। इस कार्यवाही के लिये माल की वापसी की सूचना चार प्रतियों में तैयार की जाती है जिसकी एक प्रति दोषी सामग्री के साथ विक्रेता को भेज दी जाती है। दूसरी प्रति आवश्यक समायोजन हेतु लेखा विभाग को, तीसरी प्रति भण्डारी (Store keeper) को तथा अन्तिम प्रति माँगकर्त्ता विभाग को भेज दी जाती है—

माल लौटाने की स्थिति में इनवाइस (Invoice) की राशि का समायोजन करने हेतु एक डेबिट नोट तैयार करके विक्रेता के पास भेज दिया जाता है।

(vii) क्रय की गयी सामग्री का भुगतान (Payment of purchased Materials)—क्रय की गई सामग्री की भली-भाँति निरीक्षण एवं संशोधन के बाद उसकी सूचना क्रय अधिकारी (Purchase officer) के समक्ष भेज दी जाती है।

Scanned with CamScanner

क्रय अधिकारी उस पर भुगतान की संस्तुति करता है। उसके संस्तुति के अनुरूप ही भुगतानकर्त्ता एकाउन्टेन्ट को भुगतान करने का आदेश देता है। आदेश प्राप्त होने पर एकाउन्टेन्ट द्वारा विक्रेता को उसका भुगतान दे दिया जाता है।

सामग्री भण्डारण प्रक्रिया
(Material Storing or Store Keeping Process)

भण्डारण (Storing or store keeping) उत्पादन विभाग के लिए सेवा कार्य करता है। यह विभिन्न सामग्रियों के उचित भण्डारण तथा सम्बन्धित विभागों की उचित माँग पर उन्हें जारी करने के लिए उत्तरदायी है। वह व्यक्ति जो स्टोर की देखभाल करता है, भण्डारी कहलाता है तथा वह स्थल जहाँ यह सामग्रियाँ रखी जाती हैं, स्टोर कहलाता है।

भण्डारण सम्बन्धित विभागों के लिए कच्चे पदार्थों (Raw materials), औजारों, अतिरिक्त पुर्जे (Spare parts), दैनिक उपभोग की सामग्री आदि की प्राप्ति, संग्रह तथा जारी (Issue) करने की प्रक्रिया है।

भण्डारण के उद्देश्य (Objectives of Store keeping)

भण्डारण के प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं—

1. उत्पादन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु बच्चे पदार्थों, अवयवों, औजारों, उपकरणों तथा अन्य आवश्यक सामग्रियों का सन्तुलित प्रवाह बनाये रखना।
2. क्रय की अनियमितताओं से बचने के लिए पर्याप्त स्टॉक बनाये रखना।
3. स्थान (Space) का प्रभावी उपयोग।
4. पदार्थ हस्तान्तरण उपस्करों की आवश्यकता को न्यूनतम करना।
5. परिवहन में होने वाली देरी को दूर करना, उचित स्थान उपलब्ध कराना तथा नगों (Items) की तुरन्त पहचान करना।
6. उत्पादन कार्यक्रम को लचीला बनाने में मदद करना।
7. अपेक्षाकृत कम दरों पर अधिक मात्रा क्रय लेने की सुविधा देना।
8. भण्डार में रखी सामग्री को चोरी, क्षय, बर्बादी अथवा टूट-फूट होने से बचाना।
9. स्टॉक में रखी सामग्रियों के आने-जाने का उचित एवं अपटूडेट रिकार्ड रखना।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भण्डार नियन्त्रण से सही स्थान पर, सही समय पर सही मात्रा में पदार्थ/सामग्री उपलब्ध होती है तथा तुरन्त व उत्साही सेवा द्वारा उत्पादन में होने वाली देरी अथवा व्यवधान (Interruptions) से बचा जा सकता है।

भण्डारी के कर्त्तव्य (Duties of Store Keeper)

भण्डारी के प्रमुख कर्त्तव्य निम्न हैं—

(i) स्टोर को साफ-सुथरा बनाये रखना।
(ii) भण्डार में अनाधिकृत प्रवेश को रोकना।
(iii) संगठन को दक्ष एवं प्रभावी सेवा उपलब्ध कराना।
(iv) पदार्थों को जारी करने, प्राप्ति तथा स्टॉक अवशेष का उचित एवं अपटूडेट लेखा रखना।
(v) सामग्री का न्यूनतम स्तर होने से पूर्व क्रय विभाग को सूचित करना जिससे कि सामग्री यथासमय क्रय की जा सके।
(vi) यह सुनिश्चित करना कि पदार्थ केवल अधिकृत माँग पत्र के विरुद्ध ही जारी (Issue) किया जाये।
(vii) किसी भी प्रकार की चोरी, लीकेज, क्षय, बर्बादी आदि से पदार्थ को बचाना।

Scanned with CamScanner

(viii) भण्डारी का प्रमुख कर्त्तव्य भण्डार का क्रमबद्ध नियोजन करना है। स्टोर में प्रत्येक नग ऐसे रखा होना चाहिए जिससे उसे आसानी से ढूँढ़ा जा सके।

(ix) भण्डार में अनधिकृत प्रवेश को रोकना।

(x) विभिन्न पदार्थों/सामग्रियों का मूल्य सहित लेखा बनाना।

2. सामग्री संग्रहण प्रक्रिया (Inventory Storing Process)

पदार्थों/सामग्री का भण्डारण या संग्रहण प्रक्रिया पदार्थ प्रबन्धन (Material management) की एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है, जिसके अन्तर्गत मुख्यत: निम्न कार्य सम्पादित होते हैं—

I. भण्डार में सामग्री प्राप्त करना तथा बिन कार्ड बनाना (Receiving materials store and preparing bin card)

II. सामग्री का उचित भण्डारण करना (Proper storage of materials)

III. भण्डार का उचित रख-रखाव करना (Proper store maintenance)

उपरोक्त का संक्षिप्त विवरण निम्न हैं—

I. भण्डार में सामग्री प्राप्त करना तथा बिन कार्ड बनाना (Receiving Materials in Store and Preparing Bin Card)—क्रय विभाग द्वारा सामग्री क्रय किये जाने के पश्चात् प्राप्ति व परीक्षण विभाग सामग्री की जाँच करता है तथा माल प्राप्ति नोट के साथ भण्डार गृह को प्रेषित कर देता है। छोटे उद्योगों में विक्रेता के माल की सुपुर्दगी सीधे भण्डार गृह में ही होती है।

सामग्री प्राप्त होने पर भण्डारी की भी माल प्राप्ति नोट बनाना चाहिए तथा माल की मात्रा आदि की जाँच कर लेनी चाहिए। इसके पश्चात् भण्डारी माल को आवश्यक बिन, खानों, शैल्फ, रैंक, आदि में सजा देता है। माल को अलमारियों या दराजों या रैंक में एक टोकरी में रखा जाता है, जिसे Bin (बिन) कहते हैं। प्रत्येक बिन में जो सामान रखा है, उस सामान का लेखा एक कार्ड पर लिखा होता है जिसे बिन कार्ड या स्टोर्स कार्ड (Stores card) कहा जाता है। यह कार्ड बिन में ही इस प्रकार लगा होता है कि देखने पर (बिना निकाले) वस्तु का नाम, सांकेतिक चिह्न, वस्तु का नम्बर, सामग्री की न्यूनतम तथा अधिकतम सीमा आदि स्पष्ट दिखाई दे।

इन विवरणों के नीचे बिन कार्ड पर एक सारणी बनी होती है, जिसमें सामग्री के आगमन तथा निर्गमन की तिथियों (Dates of Receipts & Issues) मात्रा आदि का वर्णन होता है।

जब माल न्यूनतम सीमा से कुछ ऊपर बचता है, तो बिन कार्ड के ऊपर एक लेबल लगा दिया जाता है, ताकि यह स्पष्ट रहे कि इस किस्म के माल को मंगाने के लिए अग्रिम देने की आवश्यकता है।

बिन कार्ड का नमूना

Jai Prakash Nath Publications
Nauchandi Road,
Meerut

Bin Card

Description	Maximum level .....
Material code	Minimum level .....
Location code	Danger level .....
Bin No.	Ordering level .....
Store ledger F. No.	Re-order level .....

Scanned with CamScanner

Receipts			Issues			Balance	Audit	
Date	G.R.N. No.	Qty.	Date	Regd.	Qty.	Qty.	Date	Initial

कई बार बिन कार्ड के स्थान पर गोदाम में एक ढीले कागज की पुस्तक (Loose leaf book) या कार्ड फाइल भी रखी जा सकती है जिसमें गोदाम के माल की मात्रा लिखी जाती है और मौद्रिक मूल्य, माल खाताबही में लिखे जाते हैं। इस लेखे का लाभ यह भी है कि भण्डारी के पास सभी प्रकार के विवरण रहते हैं। जहाँ अन्तर-विभागीय स्थानान्तरण (Inter-department transfer) अधिक होते हैं वहाँ इन लेखों में एक और खाना ऐसे लेखों के लिए बना दिया जाता है।

भण्डार लेजर (Store ledger)

भण्डार लेजर लगभग वही कार्य करता है जो बिन कार्ड करता है परन्तु बिन कार्ड खुले रहते हैं और इनके खोने का भय रहता है। भण्डार लेजर यद्यपि बहुत भारी और रखरखाव में कठिन होते हैं परन्तु इसके खोने अथवा नष्ट होने की सम्भावना बहुत कम होती है। भण्डार लेजर में बिन कार्ड जैसी प्रविष्टियों के साथ-साथ नगों का मूल्य भी अंकित होता है। इसका रखरखाव लेखा विभाग (Account department) अथवा छोटे उद्योगों में स्वयं भण्डारी (Store keeper) द्वारा ही किया जाता है।

चित्र द्वारा भण्डार लेजर का एक नमूना प्रदर्शित है—

Jai Prakash Nath Publications

Nauchandi Road, Meerut

Store Ledger Account

Material ..... Code ..... Maximum Quantity .....

Bin No. ..... Folio ..... Minimum Quantity .....

Ordered					Received					Issued						Balance		
S.N.	Date	PO. No.	Qty.	Exp. Dt.	PO. No.	Date	Qty.	Unit Cost	T. Cost	Date	R. No.	De pt.	Qty.	Unit Cost	T. Cost	qty.	Unit Cost	T. Cost

उपरोक्त प्रपत्र में प्रयुक्त चिह्न इस प्रकार हैं—

P.O. No. — क्रय आदेश मात्रा (Purchase order no.)

Qty. — मात्रा (Quantity)

R. No. — माँग संख्या (Requisition No.)



Scanned with CamScanner

भण्डार लेजर खाते क्रयादेश भाग की प्रविष्टियों को उस समय किया जाता है जब क्रय विभाग को क्रय आदेश की प्रति प्राप्त हो जाती है। सामग्री प्राप्त होने पर जाँच के उपरान्त प्राप्ति विभाग की सूचना के आधार पर निर्गति विभाग (Issuing section) की प्रविष्टियाँ सामग्री माँग पत्र स्लिप में की जाती हैं।

II. सामग्री का उचित भण्डारण करना (Proper Storage of Materials)—भण्डार विभाग का सबसे प्रमुख कार्य विभिन्न सामग्रियों, पदार्थों, औजारों तथा अन्य सामानों को तब तक सुरक्षित प्रकार से भण्डार करके रखना है जब तक वे उत्पादन तथा अन्य विभाग को निर्गत न हो जाये। ये पदार्थ उपयुक्त पात्रों (Containers) में रखे जाने चाहिए। कुछ पदार्थ फर्श पर ढेर बनाकर भी रखे जा सकते हैं जैसे—रेत, कोयला आदि।

भण्डारण के सिद्धान्त (Principles of Storing)

निम्न सिद्धान्तों द्वारा भण्डार का दक्ष नियन्त्रण रखने में मदद मिलती हैं—

(i) सभी पदार्थों/सामग्रियों की पहचान, लेबलिंग तथा कोडिंग उचित प्रकार से होनी चाहिए। जब कोड के साथ स्थान कोड भी अंकित हो तो इससे यह आसानी से पता चल जाता है कि अमुक पदार्थ स्टोर में किस स्थान पर रखा है।

(ii) पदार्थ को खराब अथवा क्षय होने से बचाने के लिए उन्हें उचित स्थान पर रखना आवश्यक है।

(iii) भण्डार ग्रह को विभिन्न सेक्शन में बाँट देते हैं तथा एक अमुक श्रेणी का पदार्थ ही उस सेक्शन में रखते है।

(iv) स्टोर की गई प्रत्येक सामग्री का नाम, श्रेणी एवं सन्दर्भ नं० होना चाहिए। इसमें आसान एवं तुरन्त पहचान में मदद मिलती है।

(v) सभी प्रकार के बिन, खाने तथा सेल्फ आदि हस्ताक्षरित एवं टैग लगे होने चाहिए।

(vi) स्टोर का फ्लोर प्लान ऐसा होना चाहिए जिससे सामग्री के भण्डारण में सुविधा हो। इससे पदार्थ की बर्बादी कम होती है।

III. भण्डार का उचित रख-रखाव (Proper Store Maintenance)—भण्डार में रखे गये सामान का उचित रखरखाव करना एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है। भण्डार में सामग्री को लम्बी अवधि तक संग्रहित करने के लिए उनका उचित स्नेहन करना, विभिन्न संक्षरणरोधी लेप (Anti-corrosion coatings) करना, स्टोप का तापमान व आर्द्रता को नियन्त्रित करना आदि अनेक उपाय हैं।

सामग्री निर्गमन प्रक्रिया (Material Issuing Process)—भण्डारी द्वारा पदार्थ, केवल एक इन्डेन्ट (Indent) को प्रस्तुत करने पर ही जारी अथवा निर्गमित होता है। यह माँग पत्र अथवा इन्डेन्ट प्राय: फोरमैन से हस्ताक्षरित होता है परन्तु जब बहुत बड़ी संख्या में सामग्री की आवश्यकता हो तो उच्च अधिकारी द्वारा अनुमोदित करवाना आवश्यक होता है।

भण्डार के लिए इन्डेन्ट तीन प्रतियों में बनता है और सिली हुई किताबों (Bound books) के रूप में प्रत्येक विभाग में उपलब्ध होता है। इसकी मूल प्रति लागत विभाग को, दूसरी भण्डारी के पास तथा तीसरी प्रति इन्डेन्ट वाले व्यक्ति के पास रिकार्ड के रूप में रहती है। इन्डेन्ट का एक नमूना देना आवश्यक है।

इसका चित्र द्वारा प्रदर्शन इस प्रकार है—

Indent						
Material Required for						
Shop/Deptt.			Order No.	Indent No.		Date
S.No.	Material with Specification	Quantity		Rate	Enter Store Register No.	Remarks
		Required	Issued			

Scanned with CamScanner

Requisi-tioned by	Approved by		Materials Issued by			Reveived by

3. सामग्री निर्गमन प्रक्रिया (Material Issuing Process)—भण्डार में सामग्री निर्गत करते समय विशेष सावधानी की जरूरत होती है। इसमें विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि भण्डार के माल की बर्बादी (Wastage) या कमी (Shortage) अथवा अतिरिक्तता (Surplus) की स्थिति न आने पाये। साथ ही सामग्री निर्गत करने में उसका रिकार्ड रखा जाये। इस कार्य के लिये फोरमैन की आदेश पुस्तिका (Order book) या इन्डैन्ट बुक (Indent book) का प्रयोग करके उसकी हस्ताक्षर युक्त माँग पर ही सामान को निर्गत (Issue) किया जाये। फोरमैन द्वारा जारी किये गये आदेशों (Orders issued) के आधार पर ही भण्डारी (Storekeeper) माल को निर्गत (Issue) करता है, साथ ही निर्गत किये गये माल की लागत का आकलन भी करता है, जिससे काफी राहत महसूस होती है तथा इससे किसी भी प्रकार की भूल होने की गुंजाइश भी नहीं रहती। सामग्री निर्गत करने की इस प्रक्रिया से स्कन्ध (Stock) का लेखा (Account) एकदम स्वच्छ व त्रुटिरहित बना रहता है।

4. अप्रयुक्त सामग्री की भण्डार में वापसी की प्रक्रिया (Returning Process of Unused Material of Store)—यदि सामग्री की माँग कराने वाले विभाग में खपत से अधिक सामग्री शेष रह जाये तो ऐसी अवशिष्ट सामग्री को पुन: भण्डार ग्रह के लिये वापस भेज दिया जाता है और सामग्री की वापसी के साथ ही विभाग द्वारा एक सामग्री वापसी नोट (Material Returning Note) भी भेजा जाता है, जिसमें भेजने वाले विभाग के नाम के साथ-साथ वे सभी विवरण भी अंकित किये जाते हैं जो कि माँग पत्र में वर्णित होते हैं। इस सामग्री वापसी नोट को यह विभाग तीन प्रतियों में तैयार करता है। इसकी प्रारम्भिक दो प्रतियाँ तो सामग्री के साथ ही भण्डार गृह को भेज दी जाती है तथा एक प्रति अपने पास सन्दर्भ के लिये सुरक्षित रखी जाती है। भण्डारी (Storekeeper) उक्त सामग्री को बिन कार्ड में चढ़ाने के बाद सामग्री वापसी नोट की एक प्रति लागत लेखांकन विभाग (Cost Accounting Department) को भेज देता है। ध्यान रहे इस सामग्री वापसी नोट का रंग सामग्री माँग पत्र (Material requisition slip) के रंग से भिन्न रखा जाता है ताकि इसे पहचानने में किसी प्रकार संभ्रम (Confusion) पैदा न हो सके।

Material Return Note							
Issuing Deptt.					No.		
Please reveive the undermentioned					Date		
Materials							
Quantity	Description	Code No.	Weights	Rate	Amount		Remarks
					Rs.	Rs.	

Scanned with CamScanner

	Authorized by		Reveived by			Costr office Ref.	
	From Job No.		To Bin No.			To Bin No.	
	Reveived Signature Storekeeper						

5. सामग्री स्थानान्तरण प्रक्रिया (Material Transferring Process)—कभी-कभी पदार्थ अथवा सामग्री का स्थानान्तरण एक शॉप में तथा एक जॉब से दूसरे जॉब में करना आवश्यक हो जाता है हालांकि यह प्रतिबन्धित होता है क्योंकि इससे सामग्री नियन्त्रण में काफी कठिनाई उत्पन्न होती है। ऐसा स्थानान्तरण केवल तभी होता है।

जब किसी विशिष्ट परिस्थिति में कोई अति आवश्यक क्रय आदेश तुरन्त पूर्ण करना हो तथा कम आवश्यक क्रय आदेश थोड़ा अधिक समय लेने में कोई परेशानी न हो। इस प्रयोजन हेतु एक पदार्थ स्थानान्तरण नोट चार प्रतियों में तैयार किया जाता है जिससे सभी आवश्यक डाटा अंकित रहते हैं। इसी स्थानान्तरण नोट के आधार पर लागत लेखा विभाग सामग्री पाने वाले विभाग के खाते में जमा (Debit) करता है तथा सामग्री भेजने वाले विभाग के खाते में क्रेडिट (Credit) करता है। चित्र में एक सामग्री स्थानान्तरण नोट का नमूना प्रदर्शित है।

Material Transferring Note							
Issuing Deptt.					No.		
Please reveive the undermentioned					Date		
Quantity	Description	Code No.	Weights	Rate	Amount		Remarks
					Rs.	Rs.	
	Authorized by		Reveived by			Costr office Ref.	
	From Job No.		To Job No.			Priced No.	

पदार्थ संक्षिप्त प्रक्रिया (Material Abstracting Process)—वे उद्योग, जिनमें उत्पादन कार्य बहुत अधिक होता हो और प्रत्येक दिन सामग्री की आगत, निर्गत और हस्तान्तरण भारी मात्रा में हो ऐसे बड़े उद्योगों के लिए साप्ताहिक अथवा पाक्षिक (Fortnightly) रूप से, भण्डार नियन्त्रण के लिए, भौतिक सत्यापन कराया जाता है जिसे पदार्थ संक्षिप्त अथवा

Scanned with CamScanner

सामग्री संक्षिप्त (Material abstract) कहते हैं। सामग्री संक्षिप्त एक निर्धारित अवधि में तैयार किया गया एक ऐसा विवरण है जो उक्त अवधि के अन्तर्गत भण्डार में उपलब्ध सामग्री की सही वस्तु स्थिति तथा इसके प्राप्ति एवं निर्गम का एक स्पष्ट लेखा (Record) प्रबन्धकों के समक्ष प्रस्तुत करता है।

इस प्रक्रिया से सामग्री नियन्त्रण प्रक्रिया को प्रभावी प्रकार से किया जा सकता है। सामग्री के भौतिक सत्यापन से विभिन्न विभागों में उपलब्ध वास्तविक सामग्री तथा अभिलेखों में अंकित सामग्री में अन्तर का पता लगाया जाता है। अगर कोई अन्तर पाया जाता है तो इसके लिए दोषी व्यक्ति की पहचान की जाती है। इस प्रकार दोषी व्यक्ति को दण्डित करने और भण्डार पर नियन्त्रण बनाये रखने के लिए पदार्थ संक्षिप्त प्रक्रिया बहुत सहायक सिद्ध होती है।

8.3. (c) कार्ड-अनुक्रमणिका

कार्ड + अनुक्रमणिका = कार्ड-अनुक्रमाणिका।

अनुक्रमाणिका प्रणाली को जब कार्ड पर प्रयुक्त किया जाता है, तो इसे 'कार्ड-अनुक्रमणिका' कहते हैं।

कार्ड-अनुक्रमाणिका एक फाइल अथवा सूची होती है जिसमें कार्ड होते हैं तथा इसमें सूचनाएँ इस प्रकार दर्ज होती हैं जिससे इच्छित मद अथवा आँकड़े सरलता (आसानी से) प्राप्त प्राप्त की जा सके।

संक्षेप में कार्ड-अनुक्रमाणिका एक अनुक्रमाणिका है, जिसमें प्रत्येक मद (आइटम) व्यवस्थित ढंग से प्रबन्धित कार्ड पर पृथकत: सूचित रहते हैं।

कार्ड-अनुक्रमाणिका उद्योग में किसी मद विशेष हेतु त्वरित संदर्भ निर्देशिका के रूप में प्रयुक्त होती है। परम्परागत कार्ड प्रणाली वर्तमान में संगणक (कम्प्यूटर) फाइल विधि (फाइलिंग) से प्रतिस्थापित हो गयी है। प्राचीन/परम्परागत प्रणाली में प्रत्येक मद के लिए एक मोटा कार्ड स्टाक पेज खाँचे में भीतर रखा जाता था (सन्निविष्ट)। पृष्ठ प्रत्येक बार स्टोर/सामग्री की प्राप्ति एवं निर्गत (निकासी) की दशा में अद्विनांकित (अपडेटेड) किये जाते थे। यह सामग्री के नाम, सामग्री के कोड (कूट चिन्ह), उसके विशेष विवरण एवं स्कन्ध स्थान को सम्मिलित करता है और कम्पनी इसे पाना चाहती है तो सर्वप्रथम हम कम्पनी का कूट शब्द (कोड) संकेत कार्ड खोजेंगे तब आलमारी से फाइल का पता लगाया जा सकता है।

कार्ड-अनुक्रमणिका के गुण

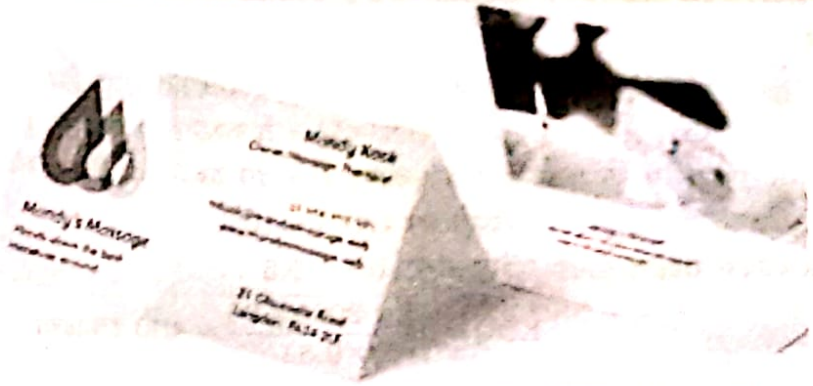
1. यह लोचशील है।
2. पुराने कार्डों को हटाया व नये कार्ड को लगाया जा सकता है।
3. तैयार करने में सरल/सुविधाजनक।
4. कार्ड किसी भी क्रम में वर्गीकृत किये जा सकते हैं।
5. विशेष उपभोक्ताओं हेतु रंगीन कार्ड प्रयोग किये जा सकते हैं।
6. यह मितव्ययी होता है।
7. व्यापक रूप में प्रयुक्त होने की समर्थता (बैंक, पुस्तकालय, कार्मिक विभाग)।

कार्ड-अनुक्रमणिका के दोष

1. आरम्भ करने में अत्यधिक लागत।
2. कार्ड प्राप्ति समय-साध्य होती है।
3. अंधी फाइल व्यवस्था कहा जाता है।
4. खोये/स्थान परिवर्तित कार्ड को खोजना श्रम एवं समय साध्य होता है।
5. संयन्त्र रखने हेतु अतिरिक्त स्थान की आवश्यकता होती है।

2. नाम कार्ड—प्रत्येक ग्राहक हेतु पृथक् कार्ड तैयार किया जाता है। कार्ड में ग्राहक से सम्बन्धित कतिपय सूचनायें यथा ग्राहक का नाम पता, पृष्ठ संख्या, फाइल संख्या एवं अन्य व्यावसायिक सूचनाएँ अंकित होती हैं। कार्ड किसी भी अनुक्रम यथा: वर्णनात्मक/आंकिक/भौगोलिक अथवा विषयवार में रखे जा सकते हैं।

Scanned with CamScanner



चित्र 11 : नाम कार्ड

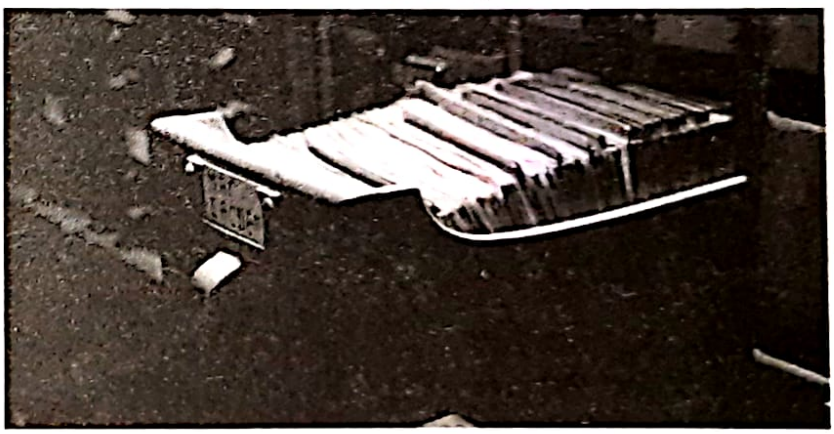
3. संकेत कार्ड—विशाल संगठनों में जहाँ बड़ी संख्या में कार्ड प्रयुक्त होते हैं, आवश्यक कार्ड शीघ्र प्राप्त कर पाना समय-साध्य होता है, अत: यहाँ संकेत कार्ड का प्रयोग इस खोजने की प्रक्रिया को सरल बनाता है। संकेत कार्ड मोटे कागज का होता है तथा यह विभिन्न रंगों का हो सकता है। कार्ड का ऊपरी भाग उठा हुआ होता है, तथा संकेत प्रतीक (चिन्ह) इस पर बने होते हैं। कार्ड अनुक्रमिक ढंग से व्यवस्थित हो सकता है, यथा: A से Z.

उदाहरणार्थ—गोदरेज कम्पनी की फाइल है सूचना विवरणात्मक/आंकिक/भौगोलिक या विषयवार रखी जाती है।

वर्तमान में स्वचालित कार्ड-अनुक्रमणिका का प्रयोग भण्डारण एवं सामग्री के निर्गत हेतु किया जा रहा है। आधुनिक जगत में कार्ड-अनुक्रमणिका का उपयोग उद्योगों के अलावा बैंक-प्रतिष्ठानों में भी किया जा रहा है।

कार्ड-अनुक्रमणिका संचालन हेतु आवश्यक सामग्री

1. दराजवाली आलमारी—लम्बी दराजवाली अलमारी की आवश्यकता होती है। एक अलमारी में दराजों की संख्या व्यवसाय की आवश्यकता के अनुसार व्यवस्थित की जाती है। सामान्यत: चार (4) दराज की अलमारी प्रयोग की जाती है। दराज सरलता से बाहर खींची जाने वाली होनी चाहिए। कार्ड की सुरक्षा हेतु स्टील की छड़ों का प्रयोग दराजों में किया जाता है।



चित्र 12 : दराज वाली आलमारी

साधित संख्यात्मक प्रश्न
(Solved Numeric Problems)

उदाहरण 1. किसी कम्पनी की एक आइटम के लिए कुल वार्षिक खपत 2000 यूनिट की है जिसकी कीमत 10,000 रु० है। पचास आदेश की कीमत 1000 रु० है। यदि इन्वेण्ट्री ब्याज की दर 10% हो तो एक उचित आर्थिक आदेश मात्रा (EOQ) ज्ञात कीजिए।

Scanned with CamScanner

हल—यहाँ पर

$$\text{वार्षिक माँग } U = 2000$$
$$\text{इकाई लागत } C_u = 5 \text{ रु०}$$
$$\text{इकाई आदेश लागत } P = 20 \text{ रु०}$$
$$\text{इन्वेण्ट्री ब्याज दर } i = 10\%$$

अत: इकाई की वार्षिक संग्रहण लागत $S = 5 \times 0.1 = 0.5$

अत: $$EOQ = \sqrt{\frac{2 \times 2000 \times 20}{0.5}} = 400 \text{ इकाइयाँ}$$

या उचित आर्थिक आदेश मात्रा = 400 इकाइयाँ

∴ आदेशों की संख्या $= \frac{2000}{400} = 5$ आदेश **उत्तर**

टिप्पणी—उचित आदेश मात्रा को Q OPT (Optimum Quantity) भी कहा जाता है।

उदाहरण 2. किसी वस्तु की कुल वार्षिक माँग 80,000 इकाइयाँ हैं। प्रति इकाई लागत 5 रु० है। आदेशित लागत 125 रु० प्रति आदेश है तथा वार्षिक लागत (Carrying cost) का औसत इन्वेण्ट्री विनियोग से अनुपात 0.25 है। विल्सन मॉडल के अनुसार E.O.Q. की गणना कीजिए।

हल—

P = प्रति इकाई आदेश लागत = 125 रु०

C_u = प्रति इकाई वस्तु लागत = 5 रु०

U = वार्षिक बिक्री = 80,000 इकाइयाँ

i = इन्वेण्ट्री लागत पर ब्याज = 0.25

$S = C_u \times i = 5 \times 0.25 = 1.25$

$$Q_{opt} = \sqrt{\frac{2 \times UP}{S}}$$

$$= \sqrt{\frac{2 \times 80{,}000 \times 12.5}{1.25}} = 4{,}000 \text{ इकाइयाँ}$$

∴ E.O.Q. = 400 **उत्तर**

उदाहरण 3. एक औद्योगिक इकाई में एक वस्तु 4000 मात्रा में एक वर्ष में रु० 40,000 का व्यय करके खरीदी जाती है। एक आर्डर को भेजने का प्रशासनिक व्यय रु० 20 है। यदि इन्वेण्ट्री के वार्षिक वहन लागत (Annual carrying cost) का वार्षिक लागत के साथ अनुपात 0.10 है, तो मितव्ययी आदेश संख्या ज्ञात कीजिए।

हल—यहाँ पर,

$$\text{वार्षिक माँग } U = 4000$$
$$\text{इकाई लागत } C_u = 10 \text{ रु०}$$
$$\text{लागत प्रति आदेश } P = 20 \text{ रु०}$$
$$\text{इन्वेण्ट्री ब्याज दर } i = 0.1\%$$
$$Q_{opt} = ?$$
$$S = C_u \times i = 10 \times 0.1 = 1$$
$$Q_{opt} = \sqrt{\frac{2UP}{S}} = \sqrt{\frac{2 \times 4000 \times 20}{1}}$$

Scanned with CamScanner

$$Q_{opt} = 400 \text{ इकाइयाँ}$$

$\therefore$ आदेशों की संख्या $= \frac{4000}{400} = 10$ आदेश **उत्तर**

उदाहरण 4. किसी वस्तु की कुल वार्षिक माँग 3,20,000 इकाइयाँ हैं और प्रति इकाई लागत 10 रु० प्रति वस्तु है। आदेशित लागत 250 रु० प्रति आदेश है तथा वार्षिक वहन लागत (Carrying cost) का औसत, इन्वेण्ट्री विनियोग से अनुपात 0.25 है। विल्सन मॉडल (Wilson model) के आधार पर EOQ की गणना कीजिए।

हल—यहाँ पर,

P = प्रति इकाई आदेश लागत = 250 रु०

C_u = प्रति इकाई वस्तु लागत = 10 रु०

U = वार्षिक बिक्री = 3,20,000 इकाइयाँ

i = इन्वेण्ट्री लागत पर ब्याज = 0.25

$$S = C_u \times i = 10 \times 0.25 = 2.5$$

$$Q_{opt} = \sqrt{\frac{2UP}{S}} = \sqrt{\frac{2 \times 3,20,000 \times 250}{2.5}} = 8000$$

$\therefore$ $Q_{opt} = 8000$ इकाइयाँ **उत्तर**

उदाहरण 5. विद्युत मोटर निर्माता को एक विशेष गेज के ताँबे की 36 किग्रा० प्रतिदिन के औसत से आवश्यकता पड़ती है। एक अपरिवर्तित उत्पादन चक्र (Non-variable production cycle) में, नए स्टॉक के लिए आदेश सामान्यत: नए चक्र के प्रारम्भ के पाँच दिन पहले दिया जाता है। प्रदाय नए चक्र के प्रारम्भ के अनुरूप होता है। इन्वेण्ट्री अधिकारी 3% स्टॉक आउट का नियोजन कर रहा है। बफर स्टॉक पर अभिलेखी स्तर ज्ञात कीजिए।

हल—यहाँ पर,

अग्र समय (Lead time) $L = 5$ दिन

औसत दैनिक माँग $D = 36$ किग्रा०

3% स्टॉक न रहने की सम्भावना को ध्यान में रखते हुए, बफर स्टॉक की मात्रा होगी—

$$B = 2\sqrt{D \times L} = 2\sqrt{36 \times 5}$$

$$= 12\sqrt{5} = 26.8 \text{ किग्रा०}$$

$\therefore$ बफर स्टॉक = 27 किग्रा० (लगभग)

अत: अभिलेख स्तर $= B + (D \times L) = 12\sqrt{5} + (36 \times 5)$

$$= 26.8 + (180)$$

पुन: आदेश स्तर = 206.8 किग्रा०

$\therefore$ अभिलेख स्तर (Record level) = 207 किग्रा० (लगभग) **उत्तर**

उदाहरण 6. एक सिलाई मशीन का निर्माता तैयार शटल व अन्य सामान बाजार से क्रय करता है और उसकी माँग गत 5 दिन की क्रमश: 220, 240, 160, 180 व 200 है। नवीन चक्र के लिए बाजार से माल क्रय करने में उसे 5 दिन लग जाते हैं। न्यूनतम स्तर (Buffer stock) तथा पुन: आदेश स्तर (Re-order level) की गणना कीजिए।

हल—यहाँ पर, अधिकतम माँग $D_{max} = 240$ प्रतिदिन

औसत माँग $D_{max} = \frac{220 + 240 + 160 + 180 + 200}{5}$

$$= 200 \text{ प्रतिदिन}$$

लीड समय $L = 5$ दिन

Scanned with CamScanner

∴ सुरक्षित स्टॉक $B = (D_{max} - D_{mean}) \times L$

B = (अधिकतम माँग – औसत माँग) × लीड टाइम

$= (240 - 200) \times 5$

$= 40 \times 5 = 200$

∴ बफर स्टॉक $B = 200$

रिआर्डर स्तर $= B + (D_{mean} \times L)$

$= 200 + 200 \times 5 = 1200$

∴ रिआर्डर स्तर = 1200 इकाइयाँ उत्तर

उदाहरण 7. एक विशेष प्रकार के यन्त्र के लिए दैनिक औसत माँग 80 इकाइयाँ हैं। 400 इकाइयों का सुरक्षित स्टॉक सदैव बनाए रखना है। पिछले रिकार्ड से ज्ञात होता है कि आदेश की प्राप्ति से माल की पूर्ति करने में विक्रेता को 10 दिन लग जाते हैं। पुन: आदेश स्तर (Re-order level) की गणना कीजिए।

हल—यहाँ पर,

दैनिक माँग $D = 80$ इकाइयाँ

सुरक्षित स्टॉक $B = 400$ इकाइयाँ

लीड समय = 10 दिन

अत: पुन: आदेश स्तर = सुरक्षित स्टॉक + (लीड समय × प्रति इकाई औसत माँग)

$= B + (D \times L)$

$= 400 + (80 \times 10)$

$= 400 + 800$

= 1200 इकाइयाँ

∴ रिआर्डर लेवल = 1200 इकाइयाँ उत्तर

8.4 सामग्री उठायाधरी तकनीकें

जैसा कि हम जानते हैं कि सामग्री उत्पादन के पाँच प्रमुख घटकों में से एक है। इस प्रकार यह उत्पादन प्रक्रिया का एक अनिवार्य तत्व हैं। इसका समुचित प्रबन्ध जहाँ इसके अपरूप को रोकता है। वहीं संगठन की सामग्री लागत को कम करने लाभ सीमान्त को बढ़ाने में सहायक होता है।

सामग्री उठायाधरी सामग्री प्रबन्धन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। सामग्री की मानकों के अनुसार, उच्च स्तरीय उठायाधरी नि:सन्देह संगठन को अशातीत परिणाम प्रदान कर सकती है।

अमेरिका सोसायटी ऑफ मटेरियल इन्जीनियर्स सामग्री उठायाधरी को, "पदार्थ, अन्वेष्ठन, एवं भण्डारण के विज्ञान एवं कला के रूप में परिभाषित किया है।"

सामग्री उठायाधरी की तकनीकों में सामग्री की विशेषताओं गुण, धर्म, प्रकार के आधार पर विभिन्नता होती है। वर्तमान में सामग्री के उठायाधरी की निम्नलिखित प्रकार दृष्टगम्य होते हैं।

हस्त उठायाधरी

यह उठायाधरी का प्राचीन तथा प्रमुख प्रकार है। इस तकनीक के अन्तर्गत मानव-शक्ति के प्रयोग द्वारा संग्राहक सन्दूकों, को उठाना, एक स्थान से अन्यत्र ढ़ोना, उनमें सामग्री रखना आदि कार्य सम्पादित कराये जाते हैं।

अर्द्ध स्वचालित उठायाधरी

यह मानव मशीन तकनीक भी करी जा सकती है। क्योंकि इसमें मानव की आवश्यकता होतीहै। इसमें अपेक्षाकृत अल्प आर्थिक रूप से व्यवहारिक उपकरण क्षेत्र में प्रयुक्त की जाती है। यह वर्तमानों सर्वाधिक प्रचलित उठायाधरी तकनीक है। अत:

Scanned with CamScanner

यह कहा जा सकता है कि अर्द्ध स्वचालित उठायाधरी मानव-शक्ति के बोझ/थकान को कम करने में सहायक तकनीकी है। इसमें वे उपकरण उपयोग में लाये जाते हैं जो वस्तुओं को पकड़ने रखने आदि हेतु निर्मित होते हैं।

स्वचालित उठायाधरी

इसमें अपेक्षाकृत उच्च तकनीक की तथा भारी मशीनों क्षेत्रों/उपकरणों का प्रयोग किया जाता है। जिसमें मानवीय प्रयास की न्यूनतम आवश्यकता होती है।

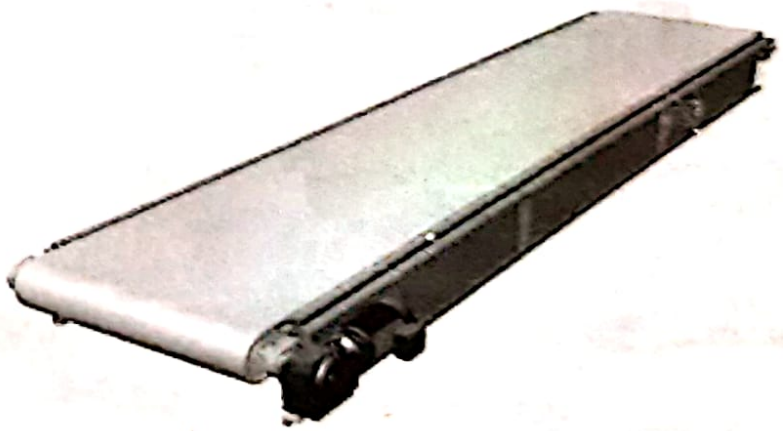
मानव का कार्य इस तकनीक में बटन टूल मशीनों का पर्यवेक्षण संचालन निरीक्षण एवं नियन्त्रण करना होता है।

सामग्री उठायाधरी तकनीक के महत्त्व/लाभ

1. सामग्री का स्तर एवं मानकों के अनुसार संचालन।
2. अपव्यय को रोकना,
3. समय की बचत,
4. श्रम की बचत,
5. उत्पादकता में वृद्धि,
6. श्रेष्ठतम कार्य दशाओं का निर्माण
7. उन्नत सेवाएँ, व्यवहारिक/प्रतिस्पर्धा मूल्य पर प्रदान करने में सहायक,
8. जोखिम से बचाव,
9. संयन्त्र, उपकरण, मशीन आदि का श्रेष्ठतर
10. लागत में कमी।

सामग्री उठायाधरी तकनीक के चरण/स्तर

- आवश्यकतानुसार पद्धति का चिन्हित करना
- पद्धति का लक्ष्य/उद्देश्य
- कार्य सम्बन्धों की खोज
- सम्बन्धित आवश्यकताओं की पड़ताल
- सामग्री का पूर्ण विश्लेषण
- अन्य उपलब्ध प्रणाली पर विचार
- श्रेष्ठतम का चयन
- प्रणाली को अपनाना।

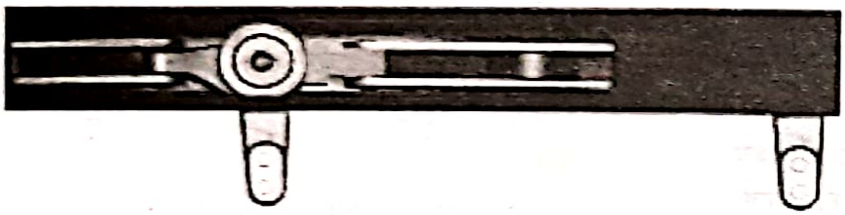


चित्र 13 : Belt Conveyor

Scanned with CamScanner



चित्र 13 : Roller Conveyor



चित्र 15 : Mono Rail



चित्र 16 : Mobile Crane

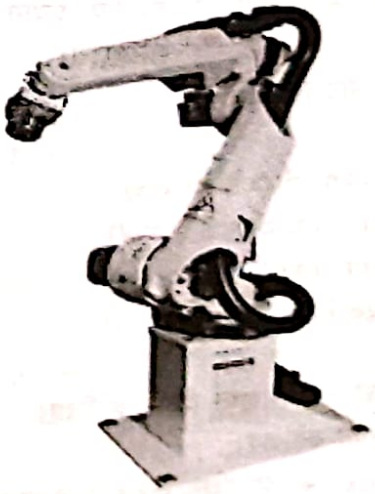
Scanned with CamScanner



चित्र 17 : Hand Trolley



चित्र 18 : Forklist Truck



चित्र 19 : Industrial Robots

Scanned with CamScanner

प्रश्नावली

1. सामग्री प्रबन्धन से आप क्या समझते हैं?
2. सामग्री प्रबन्धन का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
3. सामग्री प्रबन्धक को परिभाषित कीजिए।
4. सामग्री प्रबन्ध के प्रमुख कार्य कौन-कौन से है? बताइये।
5. कुशल भण्डार व्यवस्था का क्या महत्व है?
6. सामग्री कितने प्रकार की होती है? *(UPBTE 2006)*
7. सामग्री प्रबन्धन के प्रमुख उद्देश्यों की विवेचना कीजिए।
8. सामग्री प्रबन्धन के कार्यों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
9. सामग्री प्रबन्धन की कार्य सीमाओं पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।
10. सामग्री प्रबन्ध के आवश्यक तत्व कौन-कौन से हैं? बताइये।
11. "पदार्थ प्रबन्धन" की निम्न गतिविधियों पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए—
    (a) क्रय (Purchasing)
    (b) इन्वेण्ट्री एवं भण्डार नियन्त्रण (Inventory & Store Country)
    (c) पदार्थ प्राप्ति एवं भण्डारण (Materials Receiving & Storing)
12. सामग्री अथवा पदार्थ प्रबन्धन के आवश्यक तत्व कौन-कौन से हैं? बताइये।
13. पदार्थ प्रबन्धन के संगठन पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।
14. उन कारकों को स्पष्ट कीजिए जो पदार्थ प्रबन्धन में मितव्यत प्रदान करते हैं।
15. स्कन्ध से आप क्या समझते हैं? समझाइये।
16. स्कन्ध अथवा इन्वेण्ट्री का वर्गीकरण कीजिए।
17. प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष स्कन्ध से आप क्या समझते हैं?
18. स्कन्ध नियन्त्रण से क्या अभिप्राय है?
19. एक अच्छी स्कन्ध नियन्त्रण पद्धति के उद्देश्य बताइये।
20. स्कन्ध पदार्थों पर अच्छे नियन्त्रण के प्रभाव से क्या लाभ हो सकते हैं? बताइये।
21. स्कन्ध पदार्थों का कार्य क्षेत्र बताइये।
22. स्कन्ध सामग्री के नियन्त्रण के लिये कौन-कौन सी तकनीकें प्रयोग में लायी जाती हैं? सविस्तार समझाये।
23. सामग्री नियन्त्रण की A,B, C Analysis तकनीक समझाइये।
24. ABC विश्लेषण पर एक संक्षिप्त नोट लिखिए। *(UPBTE 2006, UP 2006)*
25. निम्न से आप क्या समझते हैं— *(UP 2006)*
    (i) न्यूनतम स्कन्ध स्तर (Minimum Stock Level)
    (ii) अधिकतम स्कन्ध स्तर (Maximum Stock level)
    (iii) आदेश स्कन्ध स्तर (Re-order level)
    (iv) औसत स्कन्ध स्तर (Average Inventory level)
    (v) खतरे का स्तर (Danger level)
26. स्कन्ध नियन्त्रण की प्रमुख तकनीकों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए। *(UP 2008)*
27. स्कन्ध के मॉडल पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।
28. न्यूनतम स्कन्ध पर (Buffer Stock) को प्रभावित करने वाले कारक कौन-कौन से है?
29. मितव्ययी आदेश मात्रा तकनीक को समझाइये।

Scanned with CamScanner

30. स्कन्ध लागत अथवा स्कन्ध सामग्री धारण लागत से आप क्या समझते हैं?
31. बिन कार्ड क्या होता है? बिन कार्ड और स्टोर लेजर में अन्तर स्पष्ट कीजिए। *(UPBTE 2006)*
32. स्कन्ध सामग्री अधिप्राप्ति लागत में प्राय: कौन-कौन से व्यय सम्मिलित किये जा सकते हैं? समझाइये। *(UPBTE 2008)*
33. स्कन्ध नियन्त्रण की विभिन्न तकनीकों की व्याख्या कीजिए।
34. टेलीविजन बनाने के कारखाने में 36cm स्क्रीन के मॉडल (Band W) की वार्षिक माँग 9000 है। जबकि 12000 प्रतिवर्ष हैं। यदि स्थापन मूल्य 4000 रू० प्रति नग मूल्य 1000 रू० हो और माल भण्डारन वहन 20% हो तो EOQ ज्ञात कीजिए।
35. 'मितव्ययी आदेश मात्रा' क्या है? उदाहरण सहित समझाइये। *(UPBTE 2008)*
36. स्कन्ध नियन्त्रण क्या है? बिन कार्ड और सामग्री खाता वहीं में प्रमुख अन्तर बताइये।
37. सामग्री क्रय प्रक्रिया समझाइये।
38. स्कन्ध नियन्त्रण क्या है? बिन कार्ड और सामग्री खाता बही में प्रमुख अन्तर बताइए। *(UPBTE 2008, 09)*
39. सामग्री नियन्त्रण प्रक्रिया का वर्गीकरण कीजिए।
40. स्कन्ध सामग्री धारण लागत में कौन-कौन से खर्चों को सम्मिलित किया जाता है? बताइये।
41. सामग्री क्रय प्रक्रिया को विस्तार से समझाइये।
42. स्कन्ध नियन्त्रण से आपका क्या अभिप्राय है? समझाइये। *(UPBTE 2010)*
43. एक अच्छी स्कन्ध नियन्त्रण प्रणाली के उद्देश्यों की विवेचना कीजिए।
44. स्कन्ध नियन्त्रण के प्रमुख लाभों पर टिप्पणी कीजिए।
45. सामग्री क्रय प्रक्रिया के प्रमुख पदों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
46. "क्रय" को परिभाषित कीजिए तथा उसका वर्गीकरण कीजिए।
47. "क्रय" अथवा अधिप्राप्ति के विभिन्न उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।
48. वैज्ञानिक क्रय के सिद्धान्तों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
49. क्रय विभाग के प्रमुख कार्यों, दायित्वों एवं कर्त्तव्यों की विवेचना कीजिए।
50. क्रय विभाग के संगठन पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए तथा इसकी स्थापना का क्या महत्त्व है?
51. निम्नांकित पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए—
    (i) क्रय बजट तैयार करना,
    (ii) क्रय माँग पत्र तैयार करना,
    (iii) बिन कार्ड
    (iv) निविदा आमन्त्रित करना।
52. सामग्री भण्डारण प्रक्रिया को समझाइए।
53. सामग्री भण्डारण के उद्देश्यों की विवेचना कीजिए।
54. भण्ड़ारी के प्रमुख कर्त्तव्यों की विवेचना कीजिए।
55. सामग्री भण्ड़ारण के विभिन्न सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
56. कारखाना उपरित्यय पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए। *(UPBTE 2011)*
57. सामग्री स्थानान्तरण प्रक्रिया को समझाइये।
58. सामग्रही संक्षिप्त प्रक्रिया से आप क्या समझते हैं? समझाइये।
59. सामग्री उठायाधरी को परिभाषित कीजिए।
60. सामग्री उठायाधरी के महत्व/आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।
61. प्रमुख सामग्री उठायाधरी तकनीकों का वर्णन कीजिए।

Scanned with CamScanner

अध्याय-9

वित्तीय प्रबन्ध

[Financial Management]

** खाता बही एवं रोकड़ बही का महत्त्व, लाभ-हानि खाता एवं आर्थिक चिट्ठ, वित्तीय विवरणों का विश्लेषण एवं निर्वचन निवेशों पर प्राप्तियाँ, परियोजना मूल्यांकन एवं वित्तयन।*

9.1 खाताबही (Ledger)

अर्थ—"Ledger" शब्द को फ्रेंच भाषा में "Ligrand wire" कहा जाता है जिसका अर्थ है ''एक महान पुस्तक''। खाताबही खातों का एक समूह है जिसमें सभी व्यक्तिगत, वास्तविक और अवास्तविक खाते रखे जाते हैं। यह लेखों की प्रधान पुस्तक (Principal of accounts) है जिसमें एक ही प्रकृति के लेखें एक खाते में वर्गीकृत किये जाते हैं। परिणामस्वरूप किसी खाता विशेष से सम्बन्धित सभी सूचनाएँ एक जगह एकत्रित हो जाती हैं और उनका शेष मालूम हो जाता है।

परिभाषाएँ

1. आर्थर फील्ड हाउस के अनुसार, ''वह बही, जो प्रारम्भिक लेखों की पुस्तकों से हस्तान्तरित या खतौनी करके व्यवसाय के सभी वित्तीय लेन-देनों को संकुचित एवं वर्गीकृत रूप में दर्ज करती है, खाता बही कहलाती है।''
2. एल० सी० क्रापर के अनुसार, ''वह पुस्तक, जिसमें एक व्यापारी के सौदों को एक वर्गीकृत रूप में लिखा जाता है, खाताबही कहलाती है।''

खाताबही के उद्देश्य और उपयोगिता

खाताबही के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य और उपयोगिता है—

1. आर्थिक स्थिति का ज्ञान—खाताबही से व्यापार की कुल आर्थिक स्थिति ज्ञात हो जाती है। यह व्यापार की पूँजी, सम्पत्तियों और दायित्वों की जानकारी के लिये बनायी जाती है।

2. तलपट और अन्तिम खाते बनाने का आधार—खाताबही से प्राप्त शेषों के आधार पर तलपट बनाना खाताबही का उद्देश्य है। तलपट के आधार पर अन्तिम खाता बनाकर व्यापार के लाभ-हानि की जानकारी मिलती है।

3. वैधानिक प्रमाण—न्यायालय में प्रमाण के रूप में खाताबही को वैधानिक मान्यता प्राप्त है।

खाताबही के कार्य

खाताबही के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं—

(i) इसमें व्यक्तिगत खाता, वास्तविक खाता और नाममात्र खाता का पृथक्-पृथक् निर्माण किया जाता है।
(ii) खाताबही से खातों के नाम शेष और जमा शेषों की जानकारी हो जाती है।
(iii) इसका कार्य तलपट और अन्तिम खातों के निर्माण हेतु सुविधा प्रदान करना है।
(iv) खाताबही व्यापारिक लेन-देनों का निपटारा करने में सहायता करती है।

Scanned with CamScanner

खाताबही का प्रारूप

खाताबही एक मोटे सजिल्द रजिस्टर के रूप में रहती है। इस रजिस्टर के विभिन्न पृष्ठों पर पृथक्-पृथक् व्यक्तिगत, वास्तविक और नाममात्र खातों से सम्बन्धित एक अलग पृष्ठ रहता है। इसका प्रारूप अग्रलिखित प्रकार से है—

Dr. Name of Account Cr.

Date	Particulars	J.F.	Amount	Date	Particulars	J.F.	Amount

ऊपर प्रारूप में दिये गये चार स्तम्भों में निम्नलिखित विवरण लिखे जाते हैं—

1. **तिथि** (Date)—इस स्तम्भ में लेन-देन की तिथि लिखी जाती है।

2. **विवरण** (Particulars)—खाताबही के बायें पक्ष के विवरण में प्रत्येक लेखे के पहले "To" तथा दाहिने पक्ष में "By" लिखा जाता है। इसके बाद लेन-देन से प्रभावित खाते का नाम लिखा जाता है।

3. **रोजनामचा पृष्ठ संख्या** (Journal Folio or J.F.)—इस स्तम्भ में रोजनामचा के उस पृष्ठ की संख्या लिखी जाती है जहाँ से यह प्रविष्टि हुई है। इस स्तम्भ का उपयोग व्यावहारिक रूप से होता है परन्तु सैद्धान्तिक अध्ययन के समय इस स्तम्भ में कुछ नहीं लिखा जाता है।

4. **राशि** (Amount)—इस स्तम्भ में लेन-देन की राशि लिखी जाती है।

खतौनी (Posting)

अर्थ—रोजनामचा से खाताबही में प्रविष्टियों को हस्तान्तरण करने की प्रक्रिया को खतौनी कहते हैं।

खतौनी के नियम (Rules of Posting)

रोजनामचा से खाताबही में खतौनी करने के निम्नलिखित नियम हैं—

1. रोजनामचा में उल्लेखित सभी खातों का पृथक्-पृथक् खाता खाताबही के अलग-अलग पृष्ठ पर खोला जाता है।
2. जिस नाम का खाता खोला जाता है उसका नाम उस खाते के डेबिट या क्रेडिट पक्ष में कभी भी नहीं लिखा जाता है।
3. रोजनामचा में जिस खाते को डेबिट किया जाता है, खाताबही में उस खाते के डेबिट पक्ष में उस खाते का नाम लिखा जाता है जिसे कि रोजनामचा में क्रेडिट किया गया है तथा डेबिट किये गये खाते की राशि लिखी जाती है।
4. रोजनामचा में जिस खाते को क्रेडिट किया जाता है, खाताबही में उस खाते के क्रेडिट पक्ष में उस खाते का नाम लिखा जाता है जिसे कि रोजनामचा में डेबिट किया गया है तथा क्रेडिट किये गये खाते की राशि लिखी जाती है।
5. खाताबही के डेबिट पक्ष के विवरण स्तम्भ के डेबिट पक्ष में "To" और क्रेडिट पक्ष में "By" शब्द लिखा जाता है।
6. रोजनामचा के स्पष्टीकरण को खाते में नहीं लिखा जाता है।

उदाहरण—10 अप्रैल 2014 को राम से ₹ 40,000 का माल खरीदा। (Goods purchased from Ram worth ₹ 40,000 on 10th April 2014)

Journal Entry

Date	Particulars	L.F.	Dr. Amount	Cr. Amount
2014 April 10	Purchases A/c dr. To Ram (Being goods purchased)		40,000 —	— 40,000

Scanned with CamScanner

उपर्युक्त प्रविष्टि में दो खातें प्रभावित हो रहे हैं—

1. Purchases A/c and
2. Ram's A/c

खतौनी के नियमानुसार "Purchases A/c" के Dr. पक्ष में "To R Furniture A/c" लिखा जाना चाहिए।

Purchases A/c

Date	Particulars	L.F.	Amount	Date
2014 April 10	To Ram's A/c		40,000	

Ram's A/c

Date	Particulars	L.F.	Amount	Date
				2014 April 10

मिश्रित प्रविष्टियों की ख

(Posting of Compound Jour

मिश्रित प्रविष्टियों में कई खाते एक साथ डेबिट या क्रेडिट किये ग

उदाहरण—राम को 12 April 2014 को ₹ 35,500 भुगतान कि

(On 12th April 2014, payment made to Ram ₹ 35,5 4,500)

Journal Entr

Date	Particulars	L.F.
2014 April 12	Ram's A/c Dr. To Cash A/c To Discount A/c	

उपर्युक्त रोजनामचे में तीन खाते Ram's A/c, Cash A/c तथा

Scanned with CamScanner

Ram" तथा "Ram's A/c" के Cr. पक्ष में "By

/c	Particulars	L.F.	Amount

	Particulars	L.F.	Amount
0	By Purchases A/c		40,000

स्खतौनी

urnal Entries)

गये होते हैं।

दिया और उससे ₹ 4,500 की छूट प्राप्त की।

5,500 and discount received from him ₹

ntry

	Dr. Amount	Cr. Amount
	40,000	—
	—	35,500
	—	4,500

या Discount A/c प्रभावित हो रहे हैं।

Ledger

Ram's A/c

Dr.

Date	Particulars	L.F.	Amount	Date	Particulars	L.F.	Amount
2014 April 12	To Cash A/c		35,500				
"	To Discount A/c		4,500				

Cash Account

Date	Particulars	L.F.	Amount	Date	Particulars	L.F.	Amount
				2014			₹
				April 12	By Ram's A/c		35,500

Discount Account

Date	Particulars	L.F.	Amount	Date	Particulars	L.F.	Amount
				2014			₹
				April 12	By Ram's A/c		4,500

खातों का शेष निकालना और बन्द करना

(Balancing and Closing of Accounts)

अर्थ—खातों का शेष निकालना वह प्रक्रिया है जिसमें दोनों पक्षों को बराबर करने हेतु उस पक्ष में अन्तर को लिखा जाता है जहाँ रकम कम है। अन्तर की रकम को लिखने से खाते का शेष भी ज्ञात हो जाता है और खाता बन्द हो जाता है।

प्रक्रिया

1. खाते के डेबिट और क्रेडिट पक्ष की रकमों को जोड़ते हैं (किन्तु इस योग को Ledger में नहीं लिखा जाता)
2. यदि डेबिट और क्रेडिट पक्षों का योग बराबर है तो कोई शेष प्राप्त नहीं होगा।
3. यदि खाते के डेबिट पक्ष का योग क्रेडिट पक्ष से अधिक हो तो रकमों के अन्तर को क्रेडिट पक्ष के Amount स्तम्भ में लिखा जाता है और विवरण (Particulars) स्तम्भ में "By balance C/d" लिखते हैं। ऐसे शेष को नाम शेष (Debit balance) कहते हैं।
4. यदि खाते के क्रेडिट पक्ष का योग डेबिट पक्ष से अधिक हो तो रकमों के अन्तर को डेबिट पक्ष के Amount स्तम्भ में लिखा जाता है और विवरण (Particulars) स्तम्भ में "To balance c/d" लिखते हैं। ऐसे शेष को जमा शेष (Credit balance) कहते हैं।

Scanned with CamScanner

5. अन्तर की रकम को खाते के उचित पक्ष की ओर लिखकर दोनों पक्षों का योग लिख
6. नाममात्र खातों का शेष नहीं निकाला जाता है। केवल व्यक्तिगत एवं वास्तविक खातों का नाममात्र खातों का शेष व्यापारिक खाता या लाभ-हानि खाता में स्थानान्तरित कर दिय

उदाहरण—

Ledger

Capital Account

Date	Particulars	L.F.	Amount	Date	Particulars
2011				2012	
Dec. 31	To balance b/d		1,50,000	Jan. 1	By Cash A/c
			1,50,000		
				2012	
				Feb. 1	By balance c/d

Cash Account

Date	Particulars	L.F.	Amount	Date	Particulars
2011				2011	
Jan. 1	To capital A/c		1,50,000	Jan. 5	By Purchases A/c
Jan. 3	To Sales A/c		50,000	Jan. 7	By Ram's A/c
				Jan. 9	By Rent A/c
				Jan. 15	By Wages A/c
				Dec. 31	By balance c/d
			2,00,000		
Feb. 1	To balance b/d		1,40,000		

रोजनामचा का उप-विभाजन : रोकड़ बही
(Sub-Division of Journal : Cash Book)

व्यापारिक लेन-देन संख्या में बहुत अधिक होने के कारण उन्हें एक जर्नल में रिकार्ड करना ल है। अतः इस कार्य को सुलभ बनाने के लिए रोजनामचे (Journal) को अन्य उप-भागों में विभा सहायक पुस्तकों (Subsidiary books) के नाम से जाना जाता है।

बिग और विलसन के अनुसार, "वर्तमान काल में रोजनामचा को विभिन्न भागों में बाँटा गया कहा जाता है और यह विभिन्न भागों में रखी जाती हैं।"

सहायक पुस्तकों को **प्रारम्भिक लेखे की पुस्तकें** (Book of original entry) या **विशेष पुस्तकें** (Special purpose subsidiary books) भी कहते हैं। रोजनामचा या सहायक पु अग्रलिखित प्रकार से किया जाता है—

Scanned with CamScanner

1. **रोकड़ बही**—इस पुस्तक में सभी नकद प्राप्तियां और भुगतान का लेखा किया जाता है।
2. **क्रय बही**—इसमें उधार क्रय का लेखा करते हैं।
3. **विक्रय बही**—इस पुस्तक में माल का उधार विक्रय का लेखा किया जाता है।
4. **क्रय वापसी बही**—इस पुस्तक में वापस किये गये माल का लेखा किया जाता है।
5. **विक्रय वापसी बही**—ग्राहकों द्वारा वापस किये गये माल से सम्बन्धित लेखे इस पुस्तक में किये जाते हैं।
6. **प्राप्य विपत्र बही**—इस पुस्तक में प्राप्य विपत्रों का लेखा किया जाता है।
7. **देय विपत्र बही**—इस बही में देय विपत्रों का लेखा किया जाता है।
8. **मुख्य रोजनामचा**—इस पुस्तक में वे लेन-देन लिखे जाते हैं जो सहायक पुस्तकों या अन्य पुस्तकों में स्थान नहीं प्राप्त करते।

रोकड़ बही

अर्थ—व्यवसाय में होने वाले नकद लेन-देनों का तिथिवार लेखा जिस बही में किया जाता है उसे रोकड़ बही कहते हैं। रोकड़ बही में नकद लेन-देनों का लेखा किया जाता है। इसके डेबिट पक्ष में रोकड़ प्राप्ति और क्रेडिट पक्ष में भुगतान की प्रविष्टि की जाती है। इस बही का सर्वथा नाम शेष (Debit balance) प्राप्त होता है।

रोकड़ बही : सहायक बही और प्रधान बही
(Cash book : A Subsidiary Book and a Principal Book of Ledger)

रोकड़ बही सहायक बही तथा खाताबही दोनों ही उद्देश्यों की पूर्ति करती है। इसे सहायक बही इसलिए कहा गया है कि सर्वप्रथम नकद लेन-देन का लेखा इसी बही में किया गया है और खाताबही इसलिए कहा जाता है क्योंकि रोकड़ बही के बनाने से खाताबही (Ledger) में रोकड़ खाता (Cash account) अलग से नहीं बनाना पड़ता है।

रोकड़ बही को **"प्रारम्भिक लेखे की बही"** भी कहते हैं, क्योंकि इसमें नकद तथा बैंक के सभी लेन-देन लिखे जाते हैं। इसी प्रकार से यह खाताबही का अंग है क्योंकि इसमें रोकड़ खाता तथा बैंक खाता दोनों खोले जाते हैं।

रोकड़ बही के प्रकार—रोकड़ बही को मुख्यत: निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है—

1. साधारण रोकड़ बही या मात्र रोकड़ स्तम्भ
2. दो खाने वाली रोकड़ बही—
   (a) रोकड़ और छूट खाने सहित
   (b) बैंक और छूट स्तम्भ
   (c) रोकड़ एवं बैंक स्तम्भ
3. तीन खाने वाली रोकड़ बही
4. खुदरा रोकड़ बही

1. साधारण रोकड़ बही—सहायक पुस्तकों के अन्तर्गत आने वाली यह वह बही है जिसके डेबिट पक्ष में नकद प्राप्तियाँ तथा क्रेडिट पक्ष में केवल नकद भुगतानों का लेखा किया जाता है। इस बही को एक खाने वाली रोकड़ बही भी कहते हैं। इसमें बैंकिक लेन-देन तथा छूट सम्बन्धित लेखा नहीं किया जाता है।

Single Column Cash Book

Dr. Cr.

Date	Particulars	V.No.	L.F.	Amount	Date	Particulars	V.No.	L.F.	Amount
Year Month Date									

Scanned with CamScanner

				Total					Total

साधारण रोकड़ बही में निम्नलिखित प्रकार से लेखा किया जाता है—

(i) साधारण रोकड़ बही एक प्रकार का वास्तविक खाता है तथा इसमें वास्तविक खाते के नियम के अनुसार लेखे होते हैं।

Debit—What comes in (All cash receipts)

Credit—What goes out (All cash payments)

(ii) इस बही में तिथिवार सभी नकद प्राप्तियों और नकद भुगतानों को क्रमश: डेबिट और क्रेडिट पक्ष में लिखा जाता है।

Enter the following transactions in single column cash book.

निम्नलिखित सौदों को साधारण रोकड़ पुस्तक में प्रविष्टि कीजिए—

2017		Amount (in ₹)
January 01	Opening balance cash	50,000
02	Goods sold for cash	35,000
03	Cash purchases	40,000
05	Rent paid	15,000
07	Payment received from Ramesh	9,500
	Discount allowed	500
09	Cash sales	10,000
10	Cash withdrawn for personal use	5,000
11	Goods withdrawn for personal use	8,000
15	Payment made to Ram	12,000
20	Salary paid	20,000
22	Received from Shyam	50,000

Cash Book

Dr. Cr.

Date	Particulars	V.No.	L.F.	Amount	Date	Particulars	V.No.	L.F.	Amount
2017 Jan. 1	To balance b/d			50,000	2017 Jan. 3	By Purchases A/c			40,000

Scanned with CamScanner

Jan. 2	To Sales A/c			35,000	Jan. 5	By Rent A/c			15,000
7	To Ramesh			9,500	10	By Drawings A/c			5,000
9	To Sales A/c			10,000	15	By Ram			12,000
22	To Shyam			50,000	20	By Salary A/c			20,000
					31	By Balance c/d			62,500
				1,54,500					1,54,500
Feb. 1	To balance b/d			62,500					

Note : 1. 1 जनवरी की प्रविष्टि रोकड़ बही में नहीं की जायेगी। इस सौदे में नकद पक्ष प्रभावित नहीं हो रहा है।

2. दो खाने वाली रोकड़ बही—इसके निम्नलिखित भेद हैं—

(i) रोकड़ और छूट खाना
(ii) बैंक और छूट
(iii) रोकड़ और बैंक

1. रोकड़ और छूट खाने सहित रोकड़ बही—इस रोकड़ बही में रकम के दो स्तम्भ होते हैं (एक रोकड़ के लिए और दूसरा छूट के लिए) यह स्तम्भ रोकड़ बही के दोनों पक्षों में होता है। सभी नकद प्राप्तियाँ और देय छूट इस बही के डेबिट पक्ष में लिखे जाते हैं और समस्त नकद भुगतान और प्राप्त छूट बही के क्रेडिट पक्ष में लिखे जाते हैं। छूट खाने का मात्र जोड़ किया जाता है तथा उसका शेष नहीं निकाला जाता है।

रोकड़ और छूट खाते सहित रोकड़ बही प्रारूप
(Cash Book with Cash & Discount Column)

Date	Particulars	V.No.	L.F.	Cash	Discount	Date	Particulars	V.No.	L.F.	Cash	Discount

2. रोकड़ और बैंक खाने सहित रोकड़ बही—इस बही में निम्नलिखित नियमों के अनुसार लेखा किया जाता है—

(i) आधार पर किया जाता है। नकद मिलने पर इसे रोकड़ बही के डेबिट पक्ष के Cash column में लिखा जाता है।

(ii) नकद भुगतान होने पर रोकड़ बही के क्रेडिट पक्ष के Cash column में लेखा किया जाता है।

(iii) जिन प्रवृष्टियों द्वारा बैंक शेष बढ़े उसे डेबिट पक्ष में तथा जिन लेन-देनों के द्वारा बैंक शेष घटे क्रेडिट पक्ष में लिखा जाता है।

(iv) **दोहरी प्रवृष्टियाँ**—कुछ विशिष्ट लेन-देनों की दोहरी या उभय पक्ष प्रविष्टियाँ की जाती हैं। उभय पक्ष प्रविष्टियों को दिखाने के लिए पृष्ठ संख्या (L.F.) के खाने में दोनों ओर 'C' शब्द का प्रयोग किया जाता है। यहाँ C का अर्थ होता है—

Scanned with CamScanner

उभय पक्ष प्रविष्टि (Contra Entry)

3. बैंक और छूट खाने सहित रोकड़ बही—इसकी लेखा विधि निम्न प्रकार से की जाती है—

(क) इस बही के प्रारम्भिक डेबिट शेष को डेबिट पक्ष में 'To balance c/d' और प्रारम्भिक क्रेडिट शेष को By balance b/d के अन्तर्गत लिखा जाता है।

(ख) भुगतान में प्राप्त चेक और रोकड़ (यह मानकर कि चेक उसी दिन बैंक में जमा करा दिया गया है) को इस बही के डेबिट पक्ष में लिखा जाता है।

(ग) भुगतान हमेशा चेक से किया जाता है और इसे इस बही के क्रेडिट पक्ष में लिखा जाता है।

(घ) चेक अनादरित होने पर इसकी प्रवृष्टि क्रेडिट पक्ष में की जाती है।

(ङ) बैंक के द्वारा लिए गए बैंक व्यय (Bank expenses) को क्रेडिट पक्ष में लिखा जाता है।

(च) खाताबही में बैंक खाता नहीं खोला जाता है।

(Cash Book with Cash & Bank Columns)

Date	Particulars	V.No.	L.F.	Cash	Bank	Date	Particulars	V.No.	L.F.	Cash	Bank

तीन खाने वाली रोकड़ बही

अर्थ (Meaning)—जिस रोकड़ बही के डेबिट और क्रेडिट पक्ष में क्रमश: रोकड़, बैंक और छूट के तीन खाने होते हैं उसे तीन खाने वाली रोकड़ बही कहते हैं। इस बही को रोकड़ बैंक और छूट खानों वाली रोकड़ बही (Cash book with Cash, Bank and Discount) भी कहा जाता है।

तीन खानों वाली रोकड़ बही का प्रारूप

Date	Particulars	L.F.	Cash	Bank	Discount	Date	Particulars	L.F.	Cash	Bank	Discount

तीन खाने वाली रोकड़ बही में लेखा दो खानों वाली रोकड़ बही के लेखा विधि के अनुरूप किया जाता है। इस पुस्तक में प्रत्येक पक्ष में रकम के तीन खाने होते हैं (रोकड़, बैंक और छूट)। समस्त नकद प्राप्तियाँ बैंक जमा तथा देय छूट इस बही के डेबिट पक्ष में रखी जाती हैं एवं समस्त नकद भुगतान, बैंक से निकासी तथा प्राप्त छूट क्रेडिट पक्ष में लिखी जाती हैं। तीन खाने वाली रोकड़ बही रोकड़ खाता और बैंक खाता दोनों का कार्य करती है। अत: खाताबही में पृथक् रूप से रोकड़ और बैंक खाते को नहीं खोला जाता है। रोकड़ खाते हमेशा डेबिट शेष दर्शाते हैं जबकि बैंक खाते डेबिट या क्रेडिट (Overdraft) अधिविकर्ष) शेष प्रदान कर सकते हैं।

Scanned with CamScanner

खुदरा रोकड़ बही (Petty Cash Book)

इस पुस्तक का प्रयोग फुटकर व्ययों को रिकॉर्ड करने हेतु बनाया जाता है। बड़े व्यापारिक संस्थानों में होने वाले अनेक प्रकार के छोटे-छोटे व्ययों (जैसे—भाड़ा, कुली, जलपान, इत्यादि) के भुगतान हेतु पृथक् रूप से बनायी गयी बही को खुदरा रोकड़ बही कहते हैं। व्यापारी इस बही को अपनी सुविधा एवं सुगमता के लिए रखते हैं।

इस बही में फुटकर व्ययों का लेखा किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप समय एवं श्रम दोनों की बचत होती है। छोटा रोकड़िया (Petty cashier) खुदरा रोकड़ बही का रख-रखाव करता है। प्रधान रोकड़िया एक निश्चित अवधि के बाद खुदरा रोकड़ बही की जाँच करता है।

खुदरा रोकड़ बही प्रारूप

Simple Petty Cast Book

Dr. Cr.

Amount Receipts	Date	Cash Book Folio (C./B. Folio)	Particulars	Ledger Folio (L.F.)	Voucher No.	Amount Payments
₹ Amount	Receiving date of Amount		To Cash/Bank A/c			₹
			By Expenses			
	Date of Expenses		By Coolie Charges			
			By			
			By			
			By			
	Closing date		By Balance c/d			(Diff. Amt.)
Total Amount						Total Amount
(Diff. Amt.) Receiving amount (Total of expenses)	Opening Date		To Balance b/d			

Format of Analytical Petty Cash Book

Dr. Cr.

Analytical Petty Cash Book

Amount (Receipt)	Date	C.B. Folio	Particulars	L.F.	V. No.	Amount (Payments)	Analysis of Expenses							
							Postage	Carriage	Auto fare	Telephone	Cartage	Octroi	Courier	Mis. Expenses
₹ Amount			To Cash/Bank											
			By Expenses											
			—			—								
			—			—								

Scanned with CamScanner

			By Balance c/d			–								
Amount						Am oun t								
			To Balance b/d											
			To Cash/Bank											

9.2 तलपट (Trial Balance)

अर्थ—तलपट खाताबही का सूक्ष्म रूप है।

परिभाषा—कार्टर के अनुसार, "तलपट उन डेबिट व क्रेडिट बाकियो की एक अनुसूची या सूची है जो खाताबही के खातों से निकाली जाती है और इसमें रोकड़ पुस्तक की रोकड़ व बैंक की बाकियाँ भी शामिल की जाती हैं।"

स्पासर एवं **पेगलर** के अनुसार, "यदि एक निश्चित तिथि पर सब पोस्टिंग्स पूरी हो जाती हैं (अर्थात् प्रत्येक सौदे का दोहरा लेखा हो जाता है) तो बाकियों की सूची बनायी जा सकती है। इस सूची को तलपट कहा जाता है।"

तलपट बनाने के उद्देश्य/विशेषताएँ

(i) तलपट एक विशेष प्रकार का विवरण पत्र है न कि किसी प्रकार का खाता।

(ii) तलपट बनाने से अंकगणितीय शुद्धता का ज्ञान होता है। दोहरा लेखा प्रणाली के अनुसार प्रत्येक डेबिट के लिए एक क्रेडिट होता है, अत: दोनों का योग अवश्य बराबर होना चाहिए।

(iii) तलपट की सहायता से ही व्यापारिक खाता, लाभ-हानि खाता तथा चिट्ठा सरलता से बनाये जाते हैं।

(iv) तलपट एक निश्चित समय पर बनाया जाता है, ज्यादातर इसे वर्ष के अन्त में बनाते हैं। व्यापारीगण अपने आवश्यकता अनुसार इसे छमाही, तिमाही या मासिक के आधार पर भी बना सकते हैं।

तलपट बनाने की विधियाँ

तलपट बनाने की मुख्यत: तीन विधियाँ होती हैं—

1. योग विधि—इस विधि में प्रथम स्तम्भ खातों का शीर्षक, दूसरा खाना खाताबही की पृष्ठ संख्या के लिए, तीसरा खाना डेबिट के योग के लिए और चौथा खाना क्रेडिट के योग के लिए होता है।

2. अन्तर विधि—इस विधि में प्रथम दो स्तम्भ योग विधि की तरह होते हैं, परन्तु तृतीय खाने में डेबिट की बाकियाँ और चतुर्थ खाने में क्रेडिट की बाकियाँ लिखी जाती हैं।

3. योग और अन्तर विधि—इस विधि में प्रथम दो स्तम्भ तो योग विधि की तरह ही होते हैं परन्तु राशियों के लिए चार खाने बनाये जाते हैं। प्रथम खाना डेबिट योग के लिए, द्वितीय खाना क्रेडिट योग के लिए, तृतीय और चतुर्थ खाना क्रमश: डेबिट बाकी और क्रेडिट बाकी के लिए होती है।

तलपट द्वारा प्रकट न होने वाली अशुद्धियाँ

तलपट के मिलान से यह आशय नहीं निकाला जा सकता कि पुस्तक में किये गये लेखे पूर्ण तथा सटीक हैं। तलपट के मिलने से लेखों का मात्र अंकगणितीय शुद्धता का ज्ञान हो सकता है, अर्थात् तलपट का मिलना लेखों की शुद्धता का अन्तिम प्रमाण नहीं है। ऐसी बहुत-सी अशुद्धियाँ हैं जो तलपट के मिल जाने पर भी प्रकट नहीं होतीं—

(i) छूट जाने वाली अशुद्धियाँ (Errors of omission)

(ii) सैद्धान्तिक अशुद्धियाँ (Errors of principles)

Scanned with CamScanner

(iii) प्रारम्भिक लेखे की अशुद्धियाँ (Errors of opening record)
(iv) क्षतिपूरक अशुद्धियाँ (Compensating errors)
(v) पोस्टिंग से छूट जाने वाली अशुद्धियाँ (Errors of omission in posting)
(vi) गलत खाने में पर सही पक्ष में खतियाना (Posting in wrong account but correct side)

उचन्त खाता (Suspense Account)

यदि तलपट में किसी प्रकार का अन्तर है और अत्यधिक प्रयत्न करने पर भी अशुद्धि नहीं मिलती है तो उस अन्तर को उचन्त खाते में डाला जा सकता है। उचन्त खाते को खोलने का मुख्य उद्देश्य अन्तिम खातों के निर्माण में किसी प्रकार के विलम्ब को रोकने के लिए होता है।

9.3 अन्तिम खाते

वार्षिक निष्कर्ष निकालने तथा लाभ-हानि एवं व्यापारिक स्थिति ज्ञात करने हेतु जो लेखांकन प्रक्रिया अपनायी जाती है उसे अन्तिम खाते बनाना कहा जाता है। प्रत्येक व्यापारी अपने व्यवसाय की लाभ-हानि ज्ञात करने के लिए इसे बनाता है। अन्तिम खाते के मुख्यत: तीन भाग होते हैं—

(i) व्यापारिक खाता (Trading account)
(ii) लाभ-हानि खाता (Profit and loss account)
(iii) आर्थिक चिट्ठा (Balance sheet)

(i) व्यापारिक खाता—व्यापारिक खाता लाभ-हानि खाते का ही एक अंग है। इसका आशय एक ऐसे खाते से है जिसमें क्रय एवं विक्रय द्वारा लाभ या हानि ज्ञात होती है, यदि विक्रय की राशि क्रय एवं प्रत्यक्ष व्ययों से अधिक होती है तो उस अन्तर को सकल लाभ (Gross profit) कहते हैं। दूसरी ओर यदि क्रय और प्रत्यक्ष व्ययों की राशि कुल विक्रय से अधिक हो जाये तो उससे प्राप्त होने वाले अन्तर को सकल हानि (Gross loss) कहते हैं।

लाभ-हानि खाता

व्यापारिक खाते को बनाने के पश्चात् लाभ-हानि खाता बनाया जाता है। लाभ-हानि खाते में सभी अप्रत्यक्ष व्यय (प्रशासन, वित्त एवं विक्रय से सम्बन्धित) आते हैं। इसका निर्माण कुल लाभ या कुल हानि को ज्ञात करने के लिए बनाया जाता है।

लाभ-हानि खाते का प्रारूप

Format of Profit and Loss Account

Profit and Loss A/c

Dr. Cr.

Particulars	Amount (₹)	Particulars	Amount (₹)
To Gross Loss b/d		By Gross Profit b/d	
(Transferred from Trading A/c)		(Transferred from Trading A/c)	
Office Expenses :		By Rent from Tenant	
To Salaries		By Rent (Cr.)	
To Rent, Rates and Taxes		By Discount received OR Discount (Cr.)	

Scanned with CamScanner

To Printing & Stationery		By Commission Received	
To Postage & Telegram		By Interest on Investments	
To Lighting		By Dividend on Shares	
To Legal Charges		By Bad Debts Recovered	
To Audit Fees		By Apprentice Premium	
Selling And Distribution Expenses :		By Profit on Sales of Assets	
To Carriage outwards or Carriage on Sales		By Income from other source	
To Advertisement		By miscellancous Receipts	
To Commission		By Net Loss (if any)	
To Bad debts & Export duty		Transferred to Captain A/C	
To stable Expenses			
Miscellaneous Expenses			
To Discount			
To Deprecation			
To Repairs			
To Interest (Dr.)			
To Bank charges			
To Loss on Sales of Assets			
To Net profit			
Transferred to Capital A/C			

आर्थिक चिट्ठा

आर्थिक चिट्ठे का आशय एक ऐसे विवरण-पत्र से है जो एक निर्धारित तिथि पर व्यवसाय की वित्तीय स्थिति को ज्ञात करने के लिए बनाया जाता है। आर्थिक चिट्ठा एक निश्चित तिथि पर सम्पत्तियों और दायित्वों का विवरण-पत्र है।

चिट्ठे का प्रारूप

Format of Balance Sheet

as on or as at .....

Liabilities	Amount (₹)	Assets	Amount (₹)
Current Liabilities :		**Current Assets :**	

Scanned with CamScanner

Bank Over draft		Cash in hand	
Bill payable		Cash at Bank	
Sundry Creditor		Bill Receivable	
Outstanding Expenses		Short Term Investments	
Unearned Incomes		Sundry Debtors	
Fixed Liabilities :		Closing Stock	
Long term loans		Prepaid Expenses	
Reserves		Accrued Income	
Capital		**Fixed Assets**	
Add : Net Profit		Furniture	
Less : Drawings		Loose Tools	
Less : Income Tax		Motor Vehicles	
Less : Life Insurance Premium		Long Term Investments	
		Plant and Machinery	
		Land and Buildings	
		Patents	
		Good will	

चिट्ठे एवं तलपट में अन्तर

अन्तर का आधार	तलपट	चिट्ठा
खातों की बाकियाँ	इसमें खाताबही में खोले गये सभी खातों की बाकियों का लेखा किया जाता है।	चिट्ठे में खाताबही के केवल व्यक्तिगत एवं वास्तविक खातों का बाकियाँ लिखी जाती हैं।
उद्देश्य	यह खाताबही में खोले गये खातों की अंकगणितीय शुद्धता ज्ञात करने के लिए बनाया जाता है।	यह व्यवसाय की वित्तीय स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक निश्चित तिथि पर बनाया जाता है।
शीर्षक	दो स्तम्भों का शीर्षक क्रमश: डेबिट और क्रेडिट होते हैं।	इसके दोनों स्तम्भों के शीर्षक क्रमश: सम्पत्ति एवं दायित्व होते हैं।
समायोजन लेखे	यह समायोजन के लेखे करने के पूर्व बनाया जाता है।	यह समायोजन के लेखे करने के बाद बनाया जाता है।
अवधि	यह वर्ष में किसी भी समय बनाया जा सकता है।	यह वर्ष में छमाही या सालाना बनाया जाता है।
प्रमाणिकता	यह न्यायालय में लेखा कर्म के सन्दर्भ में प्रमाण की तरह नहीं माना जाता।	इसे न्यायालय में प्रमाण की तरह माना जाता है।

Scanned with CamScanner

9.3 वित्तीय विवरणों का विश्लेषण एवं निर्वचन

वित्तीय विवरण व्यावसायिक संगठनों के क्रिया-कलापों से होने वाले सन्दर्भित परिणामों तथा वित्तीय दशा के बारे में विविध सूचनाएँ प्रदान करते हैं।

वित्तीय विवरणों के विश्लेषण का आशय वित्तीय विवरणों में दी गयी सूचनाओं के आलोचनात्मक परीक्षण की व्यवस्थित प्रक्रिया से है। इसके द्वारा संगठन के कई महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त किये जा सकते हैं तथा उचित निर्णय प्रबन्ध के द्वारा लिए जा सकते हैं।

परिभाषा—(i) **एन० सी० जोशी** के शब्दों में, "वित्तीय विश्लेषण का विज्ञान चालू व्यवसाय के वास्तविक मूल्य के मूल्यांकन हेतु एक उपकरण के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका प्राप्त कर रहा है। इसके द्वारा विवरणों में सन्निहित आशय को समझने में सहायता मिलती है।"

(ii) **बेलवर्ड नीडलैस** के अनुसार, "वित्तीय विवरण विश्लेषण में उन सभी तकनीकों को शामिल किया जाता है जो इन विवरणों के प्रयोगकर्त्ताओं द्वारा वित्तीय विवरणों में महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध दिखाने के लिए प्रयोग की जाती है।

वित्तीय विवरणों का निर्वचन—व्यावहारिकता में 'विश्लेषण' एवं 'निर्वचन' दोनों एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं किन्तु तकनीकी दृष्टि से दोनों में अन्तर है। विश्लेषण तथ्य ज्ञात करने और अंकों की जटिलताओं को सुगम करने की प्रक्रिया है, जबकि निर्वचन विश्लेषण के आधार पर उपलब्ध समंकों से निष्कर्ष निकालने की व्यवस्था है अर्थात् विश्लेषण पहले है और निर्वचन उसके बाद की प्रक्रिया है।

स्पाइसर एवं **पेगलर** के अनुसार, "लेखों के निर्वचन को वित्तीय समंकों के इस प्रकार अनुवाद करने की कला एवं विज्ञान के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसमें व्यवसाय की आर्थिक सुदृढ़ता एवं कमियाँ उनके कारणों सहित स्पष्ट हो सके।"

वित्तीय विवरणों के विश्लेषण के प्रकार

1. विश्लेषण की प्रकृति एवं प्रयुक्त सामग्री के आधार पर—इस आधार पर वित्तीय विवरण विश्लेषण दो प्रकार के हो सकते हैं—

(i) आन्तरिक विश्लेषण—यह विश्लेषण संगठन के सदस्यों द्वारा किया जाता है। प्रबन्ध द्वारा संगठन की वित्तीय स्थिति तथा कार्य कुशलता के लिए यह विश्लेषण किया जाता है।

(ii) बाह्य विश्लेषण—यह विश्लेषण बाहरी व्यक्तियों और पक्षकारों द्वारा किये जाते हैं। यह विश्लेषण प्रमुख रूप से प्रकाशित लेखों, संचालक द्वारा दी गयी रिपोर्ट तथा अंकेक्षक रिपोर्ट पर आधारित होता है। यह सरकारी एजेन्सियों तथा विनियोक्ताओं द्वारा किया जाता है।

2. कार्य विधि के आधार पर—इसके आधार पर विश्लेषण निम्न दो प्रकार के होते हैं—

(i) क्षैतिज या गतिशील विश्लेषण—एक ही फर्म के विभिन्न वर्षों के विवरणों के आधार पर किये गये विश्लेषण को क्षैतिज विश्लेषण कहते हैं। इसे अन्तर-फर्म विश्लेषण (Intra-firm analysis) के नाम से भी जाना जाता है।

उदाहरण—कोष प्रवाह विश्लेषण रोकड़, प्रवाह विश्लेषण इत्यादि इसके अन्तर्गत आते हैं।

(ii) लम्बवत् या स्थिर विश्लेषण—इस विश्लेषण में एक विशिष्ट वर्ष के वित्तीय विवरणों के आधार पर ही विश्लेषण किया जाता है। इस प्रकार का विश्लेषण एक निश्चित तिथि पर वित्तीय समंकों का विश्लेषण करता है। अत: इसे स्थिर विश्लेषण भी कहते हैं। इसके अन्तर्गत एक ही उपक्रम के विभिन्न विभागों अथवा विभिन्न उपक्रमों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। इसे क्रॉस सेक्शन विश्लेषण भी कहा जाता है।

वित्तीय विवरणों के विश्लेषण की तकनीक या उपकरण

इस विश्लेषण की मुख्य विधियाँ निम्नवत् हैं—

1. रोकड़ प्रवाह विवरण—यह विवरण एक निश्चित अवधि में रोकड़ के प्रवाह को दर्शाने वाला विवरण है। यह विवरण किसी उपक्रम के चिट्ठे एवं लाभ-हानि खाते की सूचनाओं के आधार पर रोकड़ की प्राप्ति और प्रयोग को दर्शाता है, साथ ही साथ यह रोकड़ के प्रारम्भिक एवं अन्तिम शेष के बीच मिलान करता है।

Scanned with CamScanner

किसी उपक्रम की रोकड़ की स्थिति में परिवर्तन के कारणों को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करने का कार्य रोकड़ प्रवाह विवरण करता है। जिन व्यवहारों से रोकड़ स्थिति में वृद्धि होती है, उन्हें रोकड़ अन्तर्वाह (Cash in flow) माना जाता है और जिन व्यवहारों से रोकड़ में कमी आती है उन्हें रोकड़ बहिर्वाह (Cash out flow) कहा जाता है।

रोकड़ प्रवाह विवरण का प्रारूप

	Items	Amount	Amount
	Cash Balance in the Opening :	—	—
	Souces of Cash	—	—
Add :	Cash from Operations		
	Sale of Fixed Assets		
	Sale of Investment		
	Issue of Shares & Debentures		
	Increase in current liabilities		
	Decrease in current assets		
	Interest/Dividend Received		
	Bank Overdraft		
	Other Receipts		
	Total Cash Inflow	—	—
Less :	Uses of Cash		
	Loss from Operations		
	Purchase of Fixed Assets		
	Purchase of Investment		
	Redemption of Shares & Debentures		
	Increase in Current Assets		
	Decrease in Current Liabilities		
	Dividends/Interest Paid		
	Other Payments		
	Total Outflow of Cash	—	—
	Closing Balance of Cash	—	—

2. कोष प्रवाह विवरण—यह विवरण दो आर्थिक चिट्ठों की अवधि के मध्य कोषों के प्रवाह की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए बनाया जाता है।

रॉबर्ट ऐन्थोनी के अनुसार, "कोष प्रवाह विवरण उन स्रोतों का वर्णन करता है, जिनसे अतिरिक्त कोष प्राप्त किये गये थे और वे प्रयोग जिनमें इन कोषों को लगाया गया है।"

कोष प्रवाह विवरण की प्रक्रिया में दो विवरण तैयार करने होते हैं।

(i) कार्यशील पूँजी में परिवर्तन का विवरण या अनुसूची,

(ii) कोष के स्रोत एवं कोष के प्रयोग का विवरण

(i) कार्यशील पूँजी में परिवर्तन का विवरण या अनुसूची—यह विवरण

Scanned with CamScanner

चालू सम्पत्ति – चालू दायित्व = कोष

के आधार पर बनाया जाता है और इसका प्रारूप इस प्रकार तैयार किया जा सकता है—

Funds Flow Statement (Statement of Sources and Uses of Fund)

(For the year ended .....)

Sources of Fund	Amount (₹)	Uses of Fund	Amount (₹)
Profit from Operations	***	Losses from Operations	***
Issue of Share Capital	***	Redemption of Shares	***
Issue of Debentures/Bonds	***	Redemption of Debenture bonds	***
Receipts from Long Term Loans	***	Payment of long-term loans	***
Sale of Fixed/Non-current Assets		Purchase of fixed assets	
Non-trading Receipts (Interest, dividends etc.)		Non-trading payment (Dividends, Taxes etc.)	
Net Decrease in working capital		Net increase in working capital	

(ii) कोष के स्त्रोत एवं कोष के प्रयोग का विवरण—इस विवरण का कोई निर्धारित प्रारूप नहीं होता और इसे खाता रूप (Account form) अथवा विवरण रूप (Statement form) में बनाया जा सकता है। इसका प्रारूप निम्न प्रकार है—

Schedule of Changes in Working Capital

(For the year ended .....)

Particulars	Previous year ₹	Current year ₹	Working Capital Changes	
			Increase ₹	Decrease ₹
Current Assets :				
Cash in hand				
Cash at bank				
Short-term investments				
Sundry debtors				
Bills receivable				
Accured income				
Prepaid expenses				
Inventories				
Other current assets				

Scanned with CamScanner

(A)				
Current Liabilities :				
Sundry creditors				
Bills payable				
Outstanding expenses				
Income received in advance				
Bank overdraft				
Other current liabilities				
(B)				
Working capital (A – B)				
Increase/Decrease in working capital				

3. समान माप विवरण या विश्लेषण—वित्तीय विश्लेषण की इस विधि में विभिन्न मदों को किसी एक आधारभूत मद के प्रतिशतों के रूप में प्रदर्शित किया जाता है। वित्तीय विवरणों के सन्दर्भ में समान माप विवरण दो प्रकार के हो सकते हैं—

(a) समान आकार का आय विवरण, तथा

(b) समान आकार का स्थिति विवरण

समान माप के आय विवरण (Common size income statement) में विभिन्न मदों को शुद्ध बिक्री के प्रतिशत के रूप में दिखाते हैं, जबकि समान माप के चिट्ठे (Common size balance sheet) में कुल सम्पत्तियों और कुल दायित्वों को उनके विभिन्न मदों के प्रतिशत के लिए आधार बनाया जाता है।

सूत्र—

1. आय विवरण के सम्बन्ध में प्रतिशत (%)

$$= \left(\frac{\text{Individual items}}{\text{Net sales}}\right) \times 100$$

2. स्थिति विवरण के सम्बन्ध में प्रतिशत (%)

$$= \left(\frac{\text{Individual Assets /Liabilities}}{\text{Total Assets /Liabilities}}\right) \times 100$$

उदाहरण (Illustration)

निम्न सूचनाओं से 31 मार्च, 2013 को समाप्त होने वाले वर्ष के लिए समान माप का आय विवरण तैयार कीजिए।

Prepare a common size income statement from the following for the year ended 31st March, 2013.

Scanned with CamScanner

Particulars	31.3.2012	31.3.2013
परिचालन से आय (Revenue from operations)	25,000	40,000
प्रयुक्त सामग्री की लागत (Cost of material consumed)	10,000	15,000
कर्मचारी लाभार्थ व्यय (Employees benefit expenses)	6,000	10,000
वित्तीय लागत (Finance cost)	2,000	2,000
ह्रास (Depreciation)	3,000	5,000
कर (Tax) 50%		

Sol.

Common Size Income Statement

(For the year ended 31st March 2012 and 2013)

Particulars	Absolute Amount		Percentage of Revenue	
	2012	2013	2012	2013
	₹	₹	₹	₹
Revenue from operation	25,000	40,000	100.00	100.00
Other income	—	—	—	—
(A) Total Revenue	25,000	40,000	100.00	100.00
Less : Expenses				
Cost of materials consumed	10,000	15,000	40.0	37.5
Employees benefits expenses	6,000	10,000	24.0	25.0
Finance cost	2,000	2,000	8.0	5.0
Depreciation	3,000	5,000	12.0	12.5
(B) Total expenses	21,000	32,000	84.0	80.0
Profit before tax (A – B)	4,000	8,000	16.0	20.0
Tax 50%	2,000	4,000	8.0	10.0
Profit after tax (PAT)	2,000	4,000	8.0	10.0

4. प्रवृत्ति विश्लेषण—व्यावसायिक तथ्यों की प्रवृत्ति का विश्लेषण निम्नांकित रूपों में किया जा सकता है—

(अ) प्रवृत्ति अनुपात या प्रतिशत।

(ब) बिन्दुरेखीय पत्र अंकन।

(अ) प्रवृत्ति अनुपात (Trend Ratios)—इसकी गणना करने के लिए विभिन्न वर्षों के वित्तीय विवरणों की सूचनाओं का सारणीयन करके विभिन्न मदों में से किसी एक मद की रकम को आधार मानकर अन्य वर्षों की उसी मद की रकम का अनुपात ही प्रवृत्ति अनुपात कहलाता है।

सूत्र—प्रवृत्ति अनुपात $= \left(\frac{\text{चालू वर्ष का मूल्य}}{\text{आधार वर्ष का मूल्य}}\right) \times 100$

Scanned with CamScanner

(ब) बिन्दुरेखीय पत्र प्रदर्शन—प्रवृत्ति अनुपातों को बिन्दुरेखीय पत्र पर अंकित कर प्रदर्शित किया जा सकता है। भारत में अधिकांश कम्पनियाँ अपने वार्षिक खातों के साथ चित्रों एवं रेखाचित्र का प्रकाशन करती हैं। इन चित्रों द्वारा विभिन्न वर्षों की बिक्री, पूँजी, कर्मचारियों की संख्या, कुल लाभ, आदि को प्रदर्शित किया जाता है।

5. तुलनात्मक वित्तीय विवरण या विश्लेषण—इस विवरण में दो या अधिक लेखा अवधियों के वित्तीय समंक तुलनात्मक रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं। ये विवरण आय तथा स्थिति दोनों के सम्बन्ध में तैयार किये जाते हैं। इनमें निरपेक्ष समंकों के साथ उन समंकों में तथा उनके प्रतिशतों में वृद्धि या कमी को भी दर्शाया जाता है। यह क्षैतिज विश्लेषण की मुख्य विधि है।

6. अनुपात विश्लेषण—यह विश्लेषण वित्तीय विवरण विश्लेषण का एक महत्त्वपूर्ण उपकरण है। इसमें वित्तीय विवरणों की दो मदों या मदों के दो समूह के मध्य संख्यात्मक सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। यह सम्बन्ध साधारण अनुपात (जैसे–5 : 7 या प्रतिशत जैसे 33% या दर जैसे 3 गुना इत्यादि) में व्यक्त किया जा सकता है।

अनुपातों का वर्गीकरण

(i) तरलता अनुपात—तरलता का आशय फर्म की उस क्षमता से है जिसमें वह अपने दायित्वों का उनके देय होने पर भुगतान करने में समर्थ है।

(ii) पूँजी संरचना अनुपात/दीर्घकालीन शोधन क्षमता—इस अनुपात में दीर्घकालीन दायित्वों का भुगतान करने की क्षमता की जाँच की जाती है। इन अनुपातों को 'वित्तीय स्थिति के अनुपात' या 'स्थायित्व अनुपात' के नाम से जाना जाता है।

(iii) क्रियाशीलता या आवर्त अनुपात—आवर्त अनुपातों को निष्पादन के अनुपात भी कहा जाता है, इनकी गणना का उद्देश्य उपक्रम के कार्य निष्पादन तथा प्रबन्धकों की कार्यकुशलता का मूल्यांकन किया जा सकता है।

(iv) लाभदायकता अनुपात—लॉर्ड कीन्स के शब्दों में, "लाभ वह इंजन है जो व्यावसायिक उपक्रम को गति प्रदान करता है।" किसी भी व्यावसायिक संगठन की लाभदायिकता उसकी कार्य कुशलता का महत्त्वपूर्ण मापदण्ड है। इन अनुपातों को सामान्यत: प्रतिशत के रूप में निकाला जाता है।

1. तरलता अनुपात—यह अनुपात मुख्यत: निम्न प्रकार के हैं—

(क) चालू अनुपात (Current Ratio)—यह अनुपात फर्म की अल्पकालीन वित्तीय स्थिति का पता लगाते हैं।

सूत्र—

$$\text{Current Ratio} = \frac{\text{Current assets}}{\text{Current liabilities}}$$

$$\text{चालू अनुपात} = \frac{\text{चालू सम्पत्ति}}{\text{चालू दायित्व}}$$

1. चालू सम्पत्तियाँ (Current Assets)

(a) हाथ में रोकड़ (Cash in hand)
(b) बैंक में रोकड़ (Cash in Bank)
(c) विपणनयोग्य प्रतिभूतियाँ (Marketable securities)
(d) अल्पकालीन विनियोग (Short term investment)
(e) देनदार (Debtors)
(f) प्राप्य विपत्र (Bills receivables)
(g) स्कन्ध (Inventories)
(h) अर्जित आय (Accured income)
(i) पूर्वदत्त व्यय (Prepaid expenses)

2. चालू दायित्व (Current Liabilities)

(a) लेनदार (Creditors)

Scanned with CamScanner

(b) देय विपत्र (Bills Payable)
(c) करों के लिए दायित्व (Liability for taxes)
(d) अदत्त व्यय (Outstanding expenses)
(e) बैंक अधिविकर्ष (Bank overdraft)
(f) प्रस्तावित लाभांश (Proposed dividend)

टिप्पणी—चालू अनुपात का आदर्श स्तर 2 : 1 माना जाता है।

(ख) तरल अनुपात/त्वरित अनुपात या/अम्ल परख अनुपात—

$$\text{Liquid ratio or quick ratio} = \frac{\text{Quick assets}}{\text{Quick liabilities}}$$

Quick assets = Current assets

Less : Inventories
Prepaid expenses

Quick liabilities = Current liabilities

Less : Bank overdraft
Cash credit

आदर्श अनुपात 1.33 : 1 माना जाता है।

2. पूँजी संरचना अनुपात—

(क) ऋण समता अनुपात (Debt Equity Ratio)

सूत्र—Debt Equity Ratio = $\frac{\text{Debt}}{\text{Equity}}$ or $\frac{\text{Long term debts (दीर्घकालीन ऋण)}}{\text{Shareholder's funds (अंशधारी कोष)}}$

(ख) ऋण का कुल कोषों से अनुपात—यह अनुपात दीर्घकालीन वित्तीय सुदृढ़ता का माप है।

सूत्र—Debts to total funds ratio = $\frac{\text{Debts (Long-term loans)}}{\text{Shareholders funds + Long term loans}}$

टिप्पणी—यह अनुपात कुल दीर्घकालीन कोषों में दीर्घकालीन ऋणों के माध्यम से एकत्रित कोषों के अनुपात को दर्शाता है।

3. लाभदायकता अनुपात—

(क) सकल लाभ अनुपात—

सूत्र—सकल लाभ अनुपात = $\left(\frac{\text{सकल लाभ}}{\text{शुद्ध बिक्री}}\right) \times 100$

(ख) स्वामित्व कोषों अथवा अंशधारियों के निवेश पर प्रत्याय—इस अनुपात को 'Return on Equity, Return on net worth या Return on shareholder's funds भी कहा जाता है।

सूत्र—

$$\text{Return on proprietors/shareholder's funds} = \frac{\text{Net profit (after interest and tax)}}{\text{Shareholder's funds}} \times 100$$

Share holders fund or net worth = Equity share capital + Preference share capital + Reserves and surplus – Accumulated losses and Fictitious assets

(ग) समता अंशधारियों के कोष—

सूत्र—Return on equity (shareholder's funds) = $\frac{\text{Net profit}}{\text{Equity shareholders' funds}} \times 100$

Scanned with CamScanner

4. आवर्त अनुपात—

(क) स्कन्ध आवर्त अनुपात (Stock turnover ratio or Inventory turnover ratio)—यह अनुपात एक निश्चित समयावधि में बेचे गये माल की लागत का उस अवधि के औसत अनुपात से सम्बन्ध स्थापित करता है।

सूत्र—Stock turnover ratio or Inventory turnover ratio = $\frac{\text{Cost of goods sold}}{\text{Average stock or inventory}}$

स्कन्ध आवर्त अनुपात = $\frac{\text{बेचे गये माल की लागत}}{\text{औसत स्कन्ध या इन्वेण्ट्री}}$

नोट—1. Cost of goods sold = Sales – Gross profit

or = Opening stock + Purchases + Wages + Direct exp. – Closing stock

या = प्रारम्भिक स्कन्ध + क्रय + मजदूरी + प्रत्यक्ष व्यय – अन्तिम स्कन्ध

2. Average stock = $\frac{\text{Opening stock + Closing stock}}{2}$

$= \frac{\text{प्रारम्भिक स्कन्ध + अन्तिम स्कन्ध}}{2}$

(ख) देनदार आवर्त अनुपात अथवा व्यापारिक प्राप्य आवर्त अनुपात (Debtors turnover ratio or trade receivables turnover ratio)—यह अनुपात वर्ष भर में शुद्ध उधार बिक्री का उस वर्ष के औसत देनदारों से सम्बन्ध स्थापित करता है।

सूत्र—देनदार आवर्त अनुपात = $\frac{\text{शुद्ध उधार बिक्री}}{\text{औसत देनदार/प्राप्य}}$

9.4 परियोजना मूल्यांकन एवं वित्तयन

मूल्यांकन वस्तुत: एक विस्तृत परीक्षण होता है जिसके आधार पर किसी परियोजना की तकनीकी, आर्थिक एवं वित्तीय पक्षों की सक्षमता की जाँच-पड़ताल की जाती है। यह एक दलीय कार्य होता है जो अनेक विशेषज्ञों के एक दल के द्वारा किया जाता है।

परियोजना की जीव्यता की जाँच परख करने के लिए प्राय: तीन साध्यता प्रतिवेदन तैयार किये जाते हैं जो क्रमश: आर्थिक, तकनीकी एवं वित्तीय पक्षों से सम्बन्धित होते हैं।

परियोजना मूल्यांकन हेतु उपलब्ध प्रविधियाँ इस प्रकार हैं—

(i) प्रत्यावर्तन अवधि या अदायगी अवधि पद्धति (Pay back Period Method)—यह विधि विनियोग प्रस्तावों के मूल्यांकन की विधियों में सर्वाधिक सरल तथा लोकप्रिय विधि है। प्रत्यावर्तन अवधि समय की उस अवधि को कहते हैं जिसमें किसी स्थिर सम्पत्ति पर किये जाने वाले निवेश की राशि व्यवसाय द्वारा पुन: वसूल कर ली जायेगी। प्रत्यावर्तन अवधि जितनी कम होगी उतनी बेहतर होगी, क्योंकि इस दौरान निवेश की राशि जल्द वसूल हो जायेगी।

$$\text{Payback period} = \frac{\text{Initial investment}}{\text{CFAT per annum}}$$

प्रारम्भिक निवेश (Initial investment)

रोकड़ अन्तर्वाह प्रतिवर्ष कर के बाद [CFAT (Cash flows after tax)]

उदाहरण : एक परियोजना की लागत ₹ 40,00,000 है। कर के बाद किन्तु ह्रास के पूर्व रोकड़ अर्जन प्रतिवर्ष ₹ 10,00,000 प्रतिवर्ष है। अदायगी अवधि ज्ञात कीजिए।

Sol. $\text{Payback period} = \frac{\text{Initial investment}}{\text{CFAT}}$

Scanned with CamScanner

$$= \frac{40,00,000}{10,00,000} = 4 \text{ years}$$

अत: इस परियोजना की अदायगी अवधि 4 वर्ष है।

प्रत्यावर्तन अवधि के गुण

1. यह विधि अत्यन्त सरल एवं सर्वाधिक प्रचलित है।
2. इसकी गणना हेतु किसी विशेष तकनीकी व लेखांकन दक्षता की आवश्यकता नहीं होती।
3. यह विधि पूँजी को कमी वाली परियोजनाओं के लिए अत्यन्त उपयोगी होती है।
4. इस विधि के अन्तर्गत परियोजना के सम्पूर्ण जीवन काल पर विचार न करके अपितु परियोजना की लागत की पुनर्भुगतान की अवधि पर ही विचार किया जाता है।

प्रत्यावर्तन अवधि विधि के दोष

1. इस विधि में आरम्भिक वर्षों की प्रत्याय पर अधिक ध्यान दिया जाता है जबकि पश्चात्वर्ती वर्षों में अत्यधिक प्रत्याय वाली परियोजनाओं की उपेक्षा कर दी जाती है।
2. इस विधि के अन्तर्गत केवल परियोजना में लगी लागत की वसूली पर ही सम्पूर्ण ध्यान केन्द्रित किया जाता है। परियोजना की लाभदेयता की उपेक्षा की जाती है।
3. इस विधि में विनियोजित कोषों की शीघ्र वापसी को बहुत महत्त्व दिया जाता है अर्थात् विनियोग की तरलता पर अधिक ध्यान देकर लाभदेयकता तत्त्वों की उपेक्षा की जाती है।
4. इस विधि के अन्तर्गत सम्पत्ति के अवशेष मूल्य को गणना में स्थान नहीं दिया जाता है, जबकि प्रत्येक मशीन का कुछ न कुछ अवशिष्ट मूल्य अवश्य होता है।
5. इस विधि में परियोजना में निहित जोखिम तत्त्व की उपेक्षा की जाती है।

2. डिस्काउन्टेड पे-बैक विधि—यह प्रत्यावर्तन अवधि विधि का संशोधित रूप है जिसमें पूँजी के समय मूल्य को मान्यता दी जाती है। इस विधि द्वारा प्राप्त होने वाले परिणाम परम्परागत प्रत्यावर्तन अवधि विधि द्वारा ज्ञात होने वाले परिणामों से भिन्न होंगे क्योंकि इसमें वार्षिक नकद-आगमों की उचित ब्याज दर पर कटौती की जाती है।

उदाहरण : निम्नांकित सूचनाओं से डिस्काउन्टेड पे-बैक अवधि की गणना करें—

परियोजना लागत	₹ 12,00,000
जीवनकाल	5 वर्ष
वार्षिक रोकड़	₹ 4,00,000

10% पर वर्तमान मूल्य कारक है।

Year :	1	2	3	4	5
P.Y.F. :	0.909	0.826	0.751	0.683	0.621

Sol. Discounted Pay-back Period at 10% Interest

Year	Annual cash inflow	Present value factor	Discounted cash inflow	Cummulative dis. cash inflow
	₹	₹	₹	₹
1.	4,00,000	0.909	3,63,600	3,63,600

Scanned with CamScanner

2.	4,00,000	0.826	3,30,400	6,94,000
3.	4,00,000	0.751	3,00,400	9,94,400
4.	4,00,000	0.683	2,73,200	12,67,600
5.	4,00,000	0.621	2,48,400	15,16,000

$$\text{Discounted pay-back period} = 3 \text{ years} + \frac{2,05,600}{2,73,200} \times 12 \text{ months}$$

$$= 3 \text{ years and } 9 \text{ months}$$

3. शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि—शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि समय समायोजित प्रत्याय दर पर आधारित पूँजी व्ययों के विश्लेषण हेतु सर्वोत्तम विधि है। इसका आधार मुद्रा का समय मूल्य (Time value of money) है।

प्रो० एस० पी० सिंह के अनुसार, "रोकड़ अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य के योग से रोकड़ बहिर्वाहों के वर्तमान मूल्य को घटाकर शुद्ध वर्तमान मूल्य की गणना की जाती है, जबकि संस्था की पूँजी लागत के समान कटौती दर से रोकड़ अन्तर्वाहों एवं बहिर्वाहों में कटौती की जाती है।"

$$\text{NPV} = \frac{C_1}{(1+r)} + \frac{C_2}{(1+r)^2} + \ldots\ldots \frac{C_n}{(1+r)^n} - I$$

जहाँ NPV = Net Present Value

$C_1, C_2, \ldots\ldots, C_n$ = Cash inflows for n number of years

I = Initial investment

r = Rate of interest

शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि के गुण

1. इस विधि के अन्तर्गत आगत प्राप्ति की दृष्टि से परियोजना के समग्र जीवन काल में प्राप्य लाभों के आधार पर गणना की जाती है।
2. इसके अन्तर्गत मुद्रा के वर्तमान मूल्य की अवधारणा और अत्यधिक पुष्टि होती है।
3. यह विधि दीर्घकालीन निर्णयों के लिए बहुत उपयोगी साबित होती है। इस विधि के माध्यम से विभिन्न जीवन कालों तथा अन्तर्वाहों वाली परियोजनाओं की सापेक्षिक लाभ देयकता प्राप्त करके तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि के दोष

1. यह विधि वास्तविक प्रयोग में अपेक्षाकृत कठिन है।
2. यह विधि पूँजी की लागत पर कटौती पर आधारित होती है, जबकि वास्तविकता में पूँजी लागत का समुचित निर्धारण अत्यन्त कठिन होता है।
3. यह विधि स्थैतिक है, गत्यात्मक नहीं।

4. आन्तरिक प्रत्यय दर विधि—आन्तरिक प्रत्याय दर वह दर होती है जिसके माध्यम से किसी परियोजना के भावी रोकड़ अन्तर्वाहों का वर्तमान मूल्य उस परियोजना के वर्तमान विनियोग मूल्य के समान हो जाता है।

नेशनल एसोसिएशन ऑफ एकाउन्टैन्ट्स अमेरिका के अनुसार, "आन्तरिक प्रत्याय दर ब्याज की वह अधिकतम दर होती है जो किसी विनियोग में विनियोजित पूँजी पर बिना किसी हानि के विनियोजन के जीवन काल में विनियोजित पूँजी पर चुकता की जा सकती है।"

अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि यह वह दर है, जो कि भावी नकद प्रवाहों के वर्तमान मूल्य को परियोजना के प्रारम्भिक पूँजी निवेश के स्तर के बराबर ला देती है।

Scanned with CamScanner

आन्तरिक प्रत्याय दर की गणना हेतु कोई उपयुक्त गणितीय विधि नहीं होती है अपितु इसकी गणना हेतु भूल एवं सुधार विधि (Trial and error method) का प्रयोग किया जाता है। इस विधि में बाजार में प्रचलित कोई दर ले ली जाती है और उसके आधार पर भावी नकद प्रवाहों का वर्तमान मूल्य ज्ञात किया जाता है तथा PV की तुलना NI से की जाती है। इस प्रकार यह ज्ञात किया जाता है कि NPV धनात्मक है अथवा ऋणात्मक। इस विधि में यह ज्ञात किया जाता है कि किस दर पर परियोजना की PV उसकी NI के बराबर हो जायेगी।

प्रत्याय दर की गणना

1. जब रोकड़ अन्तर्वाह प्रतिवर्ष समान हो—इस दशा में प्रत्याय दर की गणना निम्न प्रकार से की जाती है—

(क) $$\text{P.V. Factor} = \frac{\text{Investment}}{\text{Annual cash inflow}}$$

$$r = r_1 + \frac{V_1 - V}{V_1 - V_2}(r_2 - r_1)$$

where, r = Rate of return

r_1 =

r_2 =

V_1 =

V_2 =

V =

2. जब रोकड़ अन्तर्वाह प्रतिवर्ष असमान हो—

$$\text{I.R.R.} = \text{L.R.} + \frac{\text{Calculated P.V.} - \text{P.V. of cash outlay}}{\text{Diff. in calculated present value}} \times \text{Diff. in rate}$$

(i) If IRR > RRR, then the project should be accepted.

(ii) If IRR = RRR, then accept or reject.

(iii) If IRR < RRR, then project should be rejected.

इस विधि में IRR की तुलना RRR (Required rate of return) से की जाती है। RRR किसी फर्म की औसत भार युक्त दर अथवा काट दर हो सकती है।

प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि के गुण

1. इस विधि के अन्तर्गत विनियोग पर आये उपार्जन की दृष्टि से परियोजना के समग्र जीवन काल पर विचार किया जाता है।
2. इस विधि के अन्तर्गत विनियोग सम्बन्धी जोखिम एवं अनिश्चितता के तथ्य को सम्मिलित करते हैं। यह विधि मुद्रा के समय मूल्य (Time value of money) को मान्यता प्रदान करती है।
3. यह विधि व्यवसाय के मूल उद्देश्य के अनुरूप है तथा इसके आधार पर लिये गये निर्णय स्वामियों के आर्थिक हितों में वृद्धि करने में सहायक होते हैं।

प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि के दोष

1. छूट की दर का निर्धारण अत्यन्त कठिन होता है।
2. इस विधि के अन्तर्गत परियोजना की स्वीकारिता ज्ञात करने हेतु प्रत्यासित प्रत्याय दर का निर्धारण सहज नहीं होता।
3. इसकी गणना वैज्ञानिक न होकर अपितु भूल एवं सुधार पर आधारित होती है।

Scanned with CamScanner

प्रश्नावली

1. खाताबाही क्या हैं? इसमें खतौनी किन नियमों के आधार पर की जाती है?
2. रोकड़बही के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।
3. खातों के सम्बन्ध में विविध शेषों के महत्व को स्पष्ट कीजिए।
4. तलपट क्या है? इसकी प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए। इसकी क्या सीमाएँ हैं?
5. उन अशुद्धियों का वर्णन कीजिए तो तलपट से प्रकार नहीं होती।
6. संक्षिप्त टिप्पणी—
   (a) अशुद्धियों के प्रकार,
   (b) अन्तिम खाते के प्रकार,
   (c) आर्थिक चिट्ठा,
   (d) उचन्त खाते।
7. वित्तीय विवरणों से आप क्या समझते हैं? इनके प्रकार एवं उनकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
8. रोकड़ प्रवाह विवरण को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
9. आर्थिक चिट्ठे एवं तलपट में अन्तर बताइये।
10. निधि (कोष) प्रवाह विवरण को समझाइये।
11. वित्तीय विवरणों के विश्लेषण की विभिन्न तकनीकें को समझाइये।
12. अनुपातों के प्रमुख वर्गों का वर्णन कीजिए।
13. परियोजना मूल्यांकन तकनीक में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख वित्तीय घटकों का वर्णन कीजिए।
14. **Profit and Loss Account**

Prepare profit and loss Account for the year ended 31st December 2016 from the following :

	Amount (₹)		Amount (₹)
General Expenses	1,200	Gross profit	76,900
Charity	300	Carriage outwards	2,000
Offices lighting	500	Offices expenses	1,600
Law charge	580	Fire Insurance Premium	1,800
Advertisement	1420	Telephone expenses	1,350
Bank Charges	120	Establishment expenses	250
Commission	700	Miscellaneous expenses	710
Rent, Rates and Taxes	3,000	Discount Received	620
Interest on investments	1,200	Travellers Salary	6,000
Sundry Receipts	600	Repair	430
Indirect expenses	210	Commission Cr.	200
Printing and stationery	150		

Scanned with CamScanner

Ans. Net Profit Rs. 57,200

15

Balance Sheet

From the following balances of Sya Ram prepare a balance sheet as on 31st December 2005

	Dr.	Cr.
	30,000	
Plant and Machinery	60,000	
Land and Building	15,000	
Furniture	2,000	18,000
Cash in hand	32,000	24,000
Bank over draft	10,000	6,000
Debtors and creditors	40,000	
Bills Receivable and Bills payable	8,000	
Closing Stock		1,50,000
Investment (Short term)	13,000	
Capital		62,000
Drawing		
Net Profit	2,60,000	2,60,000

Ans. Balance Sheet Total 2,47,000

Scanned with CamScanner

अध्याय-10

उद्यमिता विकास

[Entrepreneurship Development]

** उद्यमी की संकल्पना तथा प्रचलित रोजगार दशाओं में उद्यमिता की आवश्यकता, उद्यमी को प्राप्त सुविधायें एवं प्रोत्साहन (प्रेरणा) उद्यमी एवं प्रबन्धक में अन्तर, परियोजना, पहचान एवं चयन, परियोजना निरूपण, परियोजना मूल्यांकन।*

10.1 परिचय (Introduction)

तात्कालिक तीन दशकों से विश्व के प्राय: प्रत्येक भाग में उद्यमिता विकास को तीव्र आर्थिक विकास तथा जनसाधारण के लिए लाभप्रद रोजगार की उत्पत्ति के रूप में एक आकस्मिक घटना माना गया है। यह कल्पना कि उद्यमी उत्पन्न होते हैं, बनाये नहीं जा सकते, अब लुप्त होने लगी है। सावधानीपूर्वक अभिकल्पित तथा क्रमानुसार चलाये गये उद्यमिता विकास कार्यक्रम इस उपकल्पना ग्रहीत पक्ष को सुदृढ़ करते हैं कि उद्यमी बनाये भी जा सकते हैं। उद्यमिता विकास की प्रक्रिया में यह दबाव देना व्यर्थ है कि इस कार्यक्रम की गुणवत्ता तथा परिमाण प्रामणित हैं। उद्यमिता प्रशिक्षण तथा उसमें किये गये प्रत्यनों का क्षेत्र, उद्यमिता के प्रकार ही विवादास्प्रद है। फिर भी उद्यमिता, लघु उद्योग तथा प्रबन्ध के विशेषज्ञ इस दृष्टिकोण को मानते हैं कि यह एक बहु-विषयी क्षेत्र है। उद्यमी, लघु उद्योग को प्रोत्साहित करने वाले, प्रशिक्षक, लघु उद्योग अध्यापक को अनेकों विषयों जैसे—प्रबन्ध, अर्थशास्त्र, नैतिकशास्त्र, समाजशास्त्र, वित्त तथा लेखा, तकनीकी तथा सरकार की व्यापार नीतियों को अच्छा ज्ञान होना चाहिए, जिससे वे उद्यमिता विकास पर प्रभावी कार्यक्रम चला सकें। अधिकतर उद्यमी एक विशेष क्षेत्र के ज्ञाता होते हैं तथा अन्य क्षेत्रों का ज्ञान उन्हें नहीं होता। इसी कार्य के लिये उद्यमिता विकास कार्यक्रम चलाये जाते हैं।

आधुनिक युग औद्योगिक युग है। किसी देश की आर्थिक प्रगति उसके औद्योगिक विकास पर निर्भर करती है। भारत जैसे विकासशील देश के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि ग्रामीण एवं पिछड़े इलाकों, दूरदराज के मैदानी एवं पहाड़ी इलाकों में छोटे-बड़े उद्योगों की स्थापना करके औद्योगिक विकास को बढ़ावा दिया जाये। पिछड़े एवं अविकसित क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापना करने के लिए वांछित सुविधाओं का अभाव होता है। अत: ऐसे क्षेत्रों में उद्योग लगाने के लिए किसी नए उद्यमी को जोखिम उठाने की आवश्यकता होती है। इसके लिए उद्यमी को अदम्य साहसी एवं उद्यमशील होना आवश्यक है। भारत सरकार भी इस दिशा में विशेष रूप से प्रयासरत है। सरकार ने अपनी नीतियों में पिछड़े एवं अविकसित इलाकों में औद्योगिकीकरण को विशेष महत्त्व दिया है। सरकार की मूल नीति भी ऐसे इलाकों में लघु एवं कुटीर उद्योग-धन्धों को बढ़ावा देने तथा उनके विकास में आने वाली बाधाओं को दूर करके पूँजी के विकेन्द्रीकरण करने की है जिससे अधिक से अधिक नये एवं बेरोजगार युवकों को स्वयं का रोजगार स्थापित करने एवं सुचारु रूप से चलाने में मदद मिल सकें।

औद्योगिक विकास को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक निम्न हैं—

(i) प्राकृतिक स्त्रोतों की उपलब्धता (Availability of natural resources)

(ii) तकनीकी सुविधाएँ (Technical facilities)

Scanned with CamScanner

(iii) बुनियादी सुविधाएँ (Infrastructural facilities)
(iv) पूँजी (Capital)
(v) प्रेरित व्यक्ति (Inspired people)।

उद्यमिता की विचारधारा
(Concept of Entrepreneurship)

व्यावसायिक प्रबन्धन के लिए उद्यमिता का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान है। किसी भी देश के विकास के लिए उद्यमिता महत्वपूर्ण योगदान निभाती है। उद्यमिता महत्वपूर्ण व्यावसायिक अवसरों की खोज का एक साधन है यह व्यावसायिक संसाधनों के सर्वोत्तम उपयोग से सम्बन्धित है। वास्तव में उद्यमिता क्रियाओं का एक ऐसा समूह है जो उद्यमी द्वारा सम्पन्न की जाती है। इस सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों द्वारा भिन्न-भिन्न विचार प्रस्तुत किये गये हैं—

1. ए० एच० कोल के अनुसार—"उद्यमिता एक व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह की एक उद्देश्यपूर्ण क्रिया है, जिसमें निर्णयों की एक एकीकृत शृंखला सम्मिलित होती है। यह आर्थिक वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन अथवा वितरण के लिए एक लाभप्रद व्यावसायिक इकाई का निर्माण, संचालन एवं विकास करता है।"

"Entrepreneurship can be defined as the purposeful activity of an individual or a group of associated individuals, undertaken to initiate, maintain or aggrandize a profit oriented business unit for the production or distribution of economic goods and services."—***A. H. Cole***

2. प्रो० राव एवं मेहता के अनुसार—"उद्यमिता वातावरण का सृजनात्मक एवं नवप्रवर्तनशील प्रत्युत्तर है।"

"Entrepreneurship can be described as creative and innovative response to the environment."
—***Rao and Mehta***

3.एच० डब्ल्यू० जॉनसन के अनुसार—"उद्यमिता तीन आधारभूत तत्वों का जोड़ है—अन्वेषण, नवप्रवर्तन एवं अनुकूलन।"

"Entrepreneurship is composite of three basic elements invention, innovation and adaption."
—***Howard W. Johnson***

4.एफ० एच० फ्रेंज के अनुसार—"उद्यमिता उत्पादन के विभिन्न साधनों का एक उत्पादक इकाई के रूप में संगठन एवं संयोजन है। साहसी प्रबन्धक से बड़ा होता है। यह नवप्रवर्तक व प्रवर्तक दोनों ही है।"

"Entrepreneurship involves the organization and combination of the factors of production into a productive entity. The entrepreneur is more than a manager. He is an innovator and a promotor as well."
—***Forest H. Frantz***

5.जे० ई० स्टेपनेक के अनुसार—"उद्यमिता किसी उपक्रम में जोखिम उठाने की क्षमता, संगठन की योग्यता तथा विविधीकरण एवं नव-प्रवर्तनों को जन्म देने की इच्छा है।"

"Entrepreneurship is the capacity to take risk, ability to organize and desire to diversity and make innovations in the enterprise."
—***Dr. J.R. Stepanek***

6. हिगिन्स के अनुसार—"उद्यमिता विनियोग एवं उत्पादन के अवसरों को देखने, नयी उत्पादन प्रक्रिया को प्रारम्भ करने हेतु साधनों को संगठित करने, पूँजी लाने, श्रम को नियुक्त करने, कच्चे माल की व्यवस्था करने, संयन्त्र का स्थान ढूँढ़ने, नई वस्तुओं व तकनीक को अपनाने, कच्ची सामग्री के नये स्रोतों का पता लगाने तथा उपक्रम के दैनिक संचालन हेतु उच्च प्रबन्धकों का चयन करने का कार्य है।"

"Entrepreneurship is meant for the function of seeing investment and production opportunity, organizing and enterprise to undertake a new production process, raising capital, hiring labour, arranging the supply of raw materials, finding site, introducing a new technique and commodities, discovering new sources of raw materials and selecting top managers for day-to-day operation of the enterprise."
—***Higgins B.***

Scanned with CamScanner

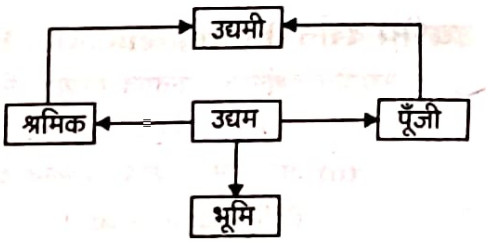
रिचमेन तथा कोपेन के अनुसार—"उद्यमिता किसी सृजनात्मक, बाह्य अथवा खुली प्रणाली की ओर संकेत करती है। यह नव-प्रवर्तन, जोखिम वहन तथा गतिशील नेतृत्व का कार्य है।"

"Entrepreneurship implies more creative, outernal or open system orientation. It involves innovation, risk bearing and relatively dynamic leadership." ***—Richman & Kopen***

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह स्पष्ट है कि पिछड़े, अविकसित तथा ग्रामीण क्षेत्रों में जहाँ पर उद्योग स्थापित करने के लिए उचित औद्योगिक वातावरण वांछनीय हो, तो ऐसे स्थानों पर नये व अनुभवहीन व्यक्ति द्वारा उद्योग-धन्धे स्थापित करने अथवा किसी अन्य नये उद्योग या व्यवसाय को प्रारम्भ करने का साहस व उपक्रम करना ही उद्यमिता या उद्यमशीलता कहलाता है। दूसरे शब्दों में, नये ढंग से कुछ नयी सृजनात्मक तथा नवकरणात्मक करने की उत्तरदायी स्पृहा, जो व्यवसाय, कृषि शिक्षा या सामाजिक कार्य के किसी भी क्षेत्र से जुड़ी हो, को उद्यमिता या उद्यमशीलता की संज्ञा दी जा सकती है और इस उत्तरदायी स्पृहा के लिए व्यक्ति में अदम्य साहस, धैर्य, नेतृत्व, स्वत: प्रेरणा तथा जोखित उठाने की क्षमता की परमावश्यकता होती है। यदि वास्तव में देखा जाए तो किसी औद्योगिक क्षेत्र अथवा उद्योग उपक्रम के लिए यह अति आवश्यक व महत्वपूर्ण क्रिया-कलाप है। उद्यमिता या उद्यमशीलता केवल वस्तु का उत्पादन करने अथवा उत्पाद तैयार करने तक ही सीमित नहीं होती, बल्कि इसके अन्तर्गत वस्तु का विक्रय व्यापार, बाजार रुख एवं सेवायें इत्यादि को भी सम्मिलित किया जाता है।

उद्यम तथा उद्यमी
(Enterprise and Entrepreneur)

एक उद्यम किसी आर्थिक संगठन की मूल यूनिट होता है। यह प्रयोग किये गये संसाधनों की तुलना में अधिक चीजों का उत्पादन करता है। अथवा सेवा प्रदान करता है। उद्यम एक ऐसा व्यवसाय है, जो विशेषतया चार प्रमुख कारकों भूमि, श्रमिक, पूँजी, तथा उद्यमी पर निर्भर करता है।



उद्यमी में आर्थिक गतिविधियों में जोखिम उठाने की इच्छा होनी चाहिए। उसमें नयेपन को स्वीकारने तथा निर्णय लेने की इच्छा शक्ति होनी चाहिए। उद्यम उद्यमी एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। किसी उद्यम की सफलता उद्यमी पर निर्भर करती है।

परिभाषाएँ—उद्यमी के सन्दर्भ में कुछ परिभाषाएँ निम्न हैं—

1. **शक्पीटर** के अनुसार—"उद्यमी व्यापार को नेतृत्व प्रदान करता है और सिर्फ पूँजी का स्वामी ही नहीं होता बल्कि उत्साही एवं काबिल भी होता है जो मौका या अवसरों को खोजता है और उनका व्यवसाय के हित में दोहन करता

2. **फ्राँसीसी अर्थशास्त्री जे०बी० से** (J.B.Say) के अनुसार—"उद्यमी वह व्यक्ति है जो आर्थिक संसाधनों को निम्नतम स्तर से उठाकर उच्चतम उत्पादकता और उच्च पराभव ले जाता है।"

3. **फ्राँसीसी परम्परा** के अनुसार—"उद्यमी वह व्यक्ति है जो एक लाभदायक विचार को उत्पादन गतिविधि में अनुवादित करता है।"

4. **जोसेफ ए० शुम्पीटर** (Joseph A. Schumpeter) के अनुसार—"उन्नत अर्थव्यवस्था में उद्यमी वह व्यक्ति है जो अर्थव्यवस्था में कुछ नया जोड़ता है, उत्पादन की नई विधि प्रयोग करता है और ग्राहकों अथवा उपभोक्ताओं को कुछ नया उत्पाद देता है जिससे उपभोक्ता पूर्व परिचित न हो, कच्चे माल के नये स्रोतों तथा उत्पाद के लिए नया बाजार तलाशता है।"

सारांश में हम कह सकते हैं कि, "एक उद्यमी वह है जो एक लाभदायक विचार को उत्पादन गतिविधि में अनुवादित करता है।"

किसी नये उद्योग को स्थापित करने एवं उसके संस्थापन के बाद आने वाली प्रारम्भिक कठिनाइयों से सफलतापूर्वक पार पाकर अपने उद्योग को ऐसी स्थिति तक, जिसमें कि उसका उद्योग अधिक से अधिक लाभ अर्जन कर सके, ले जाने वाले अदम्य साहसी व्यक्ति को उद्यमी कहते हैं।"

Scanned with CamScanner

उद्यमी के कार्य (Functions of An Entrepreneur)

एक उद्यमी मुख्यत: निम्नांकित कार्य सम्पादित कार्य करता है—

(i) वह अपने व्यवसाय का प्रबन्ध करता है तथा निर्णय भी खुद ही लेता है।
(ii) वह बाजार सर्वेक्षण करके सही वस्तु-स्थिति का अध्ययन करके उचित व्यवस्था का चयन करता है।
(iii) वह अपने उद्योग या संयन्त्र के आकार का चयन स्वयं करता है।
(iv) अपने संयन्त्र के लिए स्थल का चयन खुद करता है।
(v) वह बिक्री की व्यवस्था स्वयं देखता है तथा ग्राहाकों को स्वयं बाँधकर भी रखता है।
(vi) वह सदैव नयी खोजों की तलाश में रहता है।
(vii) वह उत्पादन के विभिन्न क्रिया-कलापों में सामंजस्य स्थापित करता है।
(viii) वह अपने व्यवसाय के लिए कच्चे माल, मशीनरी तथा वित्त की व्यवस्था भी स्वयं ही करता है।
(ix) वह अपने व्यवसाय के लिए श्रमिकों की नियुक्ति करता है।
(x) वह अपने व्यवसाय से सम्बन्धित सभी औपचारिकताओं को पूर्ण करने के लिए बिक्री कर, श्रम, विद्युत, आयात-निर्यात तथा रेलवे इत्यादि विभिन्न विभागों के साथ उचित सम्पर्क साधता है।
(xi) वह अपने उत्पादों के मूल्यों के निर्धारण हेतु नीतियाँ स्वयं बनाता है।
(xii) वह मजदूरों को उनके पारिश्रमिक का भुगतान करता है, और पूँजीपतियों को ब्याज को खुद ही चुकाता है।

उद्यमीय दर्शन (Entrepreneurial Philosophy)

उद्यमीय दर्शन के अन्तर्गत मुख्यत: निम्नांकित बातों का समावेश होता है—

(i) आकलित जोखिम का उठाना (To take Calculated Risk)
(ii) अपने निजी कार्य के लिए दायित्व स्वीकार करने की इच्छा
(Willingness to Accept Responsibility for one's own work)
(iii) असफलता को कुछ सीखने का अनुभव मानना
(Acceptance of failure considering as learning Experience)
(iv) लक्ष्य प्राप्ति की उत्सुकता (Keen Desire of Goal Orientedness)
(v) पूरिपूर्ण परिणामों की तुलना में स्वीकार्य परिणामों को अधिक महत्त्व देना।
(Giving more Importance to Acceptable Results than Perfect Results)
(vi) व्यक्तिगत विकास (Personal Growth)।

एक उद्यमी के गुण/लक्ष्य (Characteristics/Qualities of an Entrepreneur)

एक उद्यमी जिसमें उच्च स्तरीय प्रशासनिक क्षमता हो, मन तथा भावों की स्थिरता हो, निर्णय लेने की समझ एवं क्षमता हो, पहल करने वाला (Initiative) हो, सृजन (Creative) करने वाला हो, आत्मविश्वासी हो, प्रभावी संचार योग्यता (Communication ability), हो, उच्च बौद्धिक स्तर हो, संगठित कौशल, मानवीय सम्बन्धों की योग्यता और उच्च तकनीकी योग्यता हो, में एक उपक्रम को सफलतापूर्वक चलाने की सम्भावना बहुत अधिक होती है।

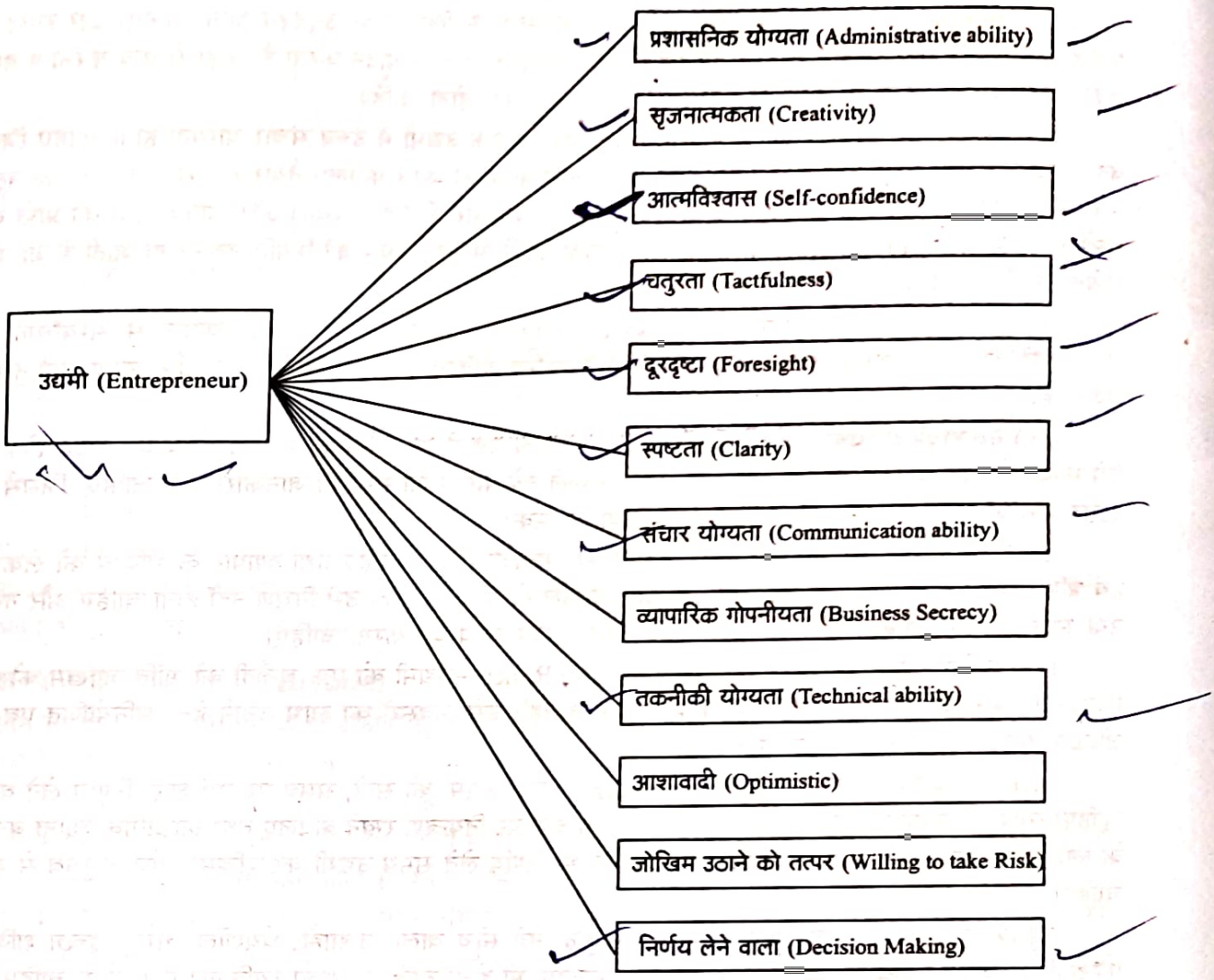
एक उद्यमी के व्यक्तिगत गुण किसी उपक्रम को एक साधारण व्यक्ति की तुलना, बिल्कुल अलग बना देते हैं। उद्यमी में कुछ गुण जन्मजात अथवा पारिवारिक संस्कार से आते हैं तथा कुछ उसमें बाद में विकसित होते हैं। उद्यमी की काबलियत को उच्च तकनीकी ज्ञान, सुनियोजित प्रशिक्षण एवं विकास कार्यक्रम द्वारा और बढ़ाया जा सकता है।

उद्यमी में इन्हीं गुणों अथवा योग्यताओं के आधार पर एक उद्यमी को परिभाषित करता है और उद्यमियों को प्राप्त होने वाली विशेष सुविधओं, छूटों, अनुदान आदि प्रदान करता है। एक उद्यमी के प्रमुख गुण इस प्रकार हैं—

(i) प्रशासनिक योग्यता (Administrative Ability)—एक सफल उद्यमी में उच्च प्रशासनिक योग्यता होनी चाहिए। किसी कार्य को करने के लिए उपयुक्त व्यक्तियों का चुनाव करना, उन्हें प्रोत्साहित करना और प्रत्येक को विकास का

Scanned with CamScanner

मौका देना एक उद्यमी का प्रशासनिक गुण है। किसी व्यक्ति अथवा समूह से कोई बिना उनकी भावना को चोट पहुँचाये, कराना ही उच्च प्रशासनिक योग्यता कहलाती है।



(ii) सृजनात्मकता (Creativity)—एक उद्यमी बुद्धिमान एवं सृजनात्मक विचारों वाला होना चाहिए। वह कुछ नया सोचने (Innovative), एकदम नये उत्पाद प्रक्रिया एवं बाजार आदि खोजने वाला, परिवर्तनों को स्वीकार करने वाला, कोमल और नम्य (Flexible) होना चाहिए।

(iii) आत्मविश्वास (Self-confidence)—व्यवसाय में सफलता पाने के लिए एक उद्यमी में भरपूर आत्मविश्वास का होना जरूरी है। इसके लिए उद्यमी को ज्ञान, कौशल एवं जानकारी होने के साथ-साथ कार्य का अनुभव होना भी आवश्यक है।

(iv) चतुरता (Tactfulness)—एक उद्यमी को पर्याप्त चतुर होना आवश्यक है। उद्यमी को चाहिए कि वह अपनी चतुराई से ग्राहकों आपूर्तिकर्त्ताओं, श्रमिकों, ऋणदाताओं और समाज से अच्छे सम्बन्ध बनाकर रखे। इन अच्छे सम्बन्धों का सीधा लाभ व्यवसाय को पहुँचता है।

Scanned with CamScanner

(v) दूरदृष्टा (Foresight)—एक उद्यमी में व्यवसाय में हो सकने वाले उतार-चढ़ाव, अवसरों और बदलते हुए हालात को देखने व समझने की दूरदृष्टि होनी चाहिए। उसमें भविष्य में आ सकने वाली समस्याओं, कठिनाइयों आदि को देख लेने की दूर-दृष्टि होनी चाहिए जिसे कि इन समस्याओं को दूर करने के उपाय पहले से ही किये जा सकें।

(vi) स्पष्टता (Clarity)—एक उद्यमी का अपने व्यवसाय के लिए स्पष्ट उद्देश्य होना चाहिए। उसे स्पष्ट रूप से पता होना चाहिए कि क्या उत्पादन करना है, कितना उत्पादन करना है, कहाँ उत्पादन करना है, कहाँ से क्रय करना है तथा माल कहाँ बेचना है। उसे किसी भी प्रकार से भ्रमित (Confused) नहीं होना चाहिए।

(vii) संचार योग्यता (Communication Ability)—एक उद्यमी में उच्च संचार योग्यता होनी चाहिए जिससे कि वह अपनी बात औरों को स्पष्ट रूप से समझा सके, उन्हें किसी कार्य को करने के लिए तैयार कर सके तथा उनका नेतृत्व कर सके। संचार वह प्रक्रिया है जिसमें संगठन में कार्यरत श्रमिक या कर्मचारी निर्देशों, विचारों और जानकारियों को प्राप्त करते हैं, समझते हैं तथा पारेषित (Transmit) करते हैं। गलत अथवा अधूरे संचार से भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जो उद्योग के भविष्य के लिए खतरनाक है।

(viii) व्यापारिक गोपनीयता (Business Secrets)—एक उद्यमी को अपने व्यापार से सम्बन्धित गोपनीय जानकारियों को उजागर नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे व्यापारिक प्रतिस्पर्धी लाभ उठा सकते हैं और व्यापार को नुकसान हो सकता है।

(ix) तकनीकी योग्यता (Technical Ability)—एक उद्यमी को तकनीकी रूप से योग्य एवं सुदृढ़ होना चाहिए। उसे मार्किट में आने वाली नई मशीनों, अपनाये जा सकने वाले नये प्रक्रमों की समुचित जानकारी होनी चाहिए, जिससे उत्पादन लागत कम की जा सके और अधिक लाभ प्राप्त किया जा सके।

(x) आशावादी (Optimistic)—एक उद्यमी को आशावादी होना चाहिए तथा व्यापार के भविष्य को लेकर चिंतित एवं भ्रमित नहीं होना चाहिए। अगर किसी कार्य में वह असफल हो भी जाता है तो उसे निराश नहीं होना चाहिए और नयी उमंग, नयी सोच और नये तरीके से, भविष्य के प्रति आश्वसत रहकर कार्य को करना चाहिए।

(xi) जोखिम उठाने को तत्पर (Willing to take Risk)—उद्यमी को एक चुनौती की भाँति जोखिम को उठाने के लिए तैयार रहना चाहिए, एक जुआ (Gamble) की भाँति नहीं। उसे अवसरों का लाभ उठाने हेतु, सुनियोजित एवं अगणित जोखिम उठाने के लिए तत्पर रहना चाहिए।

(xii) निर्णय लेने वाला (Decision Making)—एक उद्यमी को सही, समय पर एवं शीघ्र निर्णय लेने वाला होना चाहिए। व्यापारिक समस्याओं को सुलझाने के लिए, गतिविधियों पर नियन्त्रण रखने के लिए तथा औद्योगिक शान्ति बनाये रखने के लिए तुरन्त निर्णय लेना अति आवश्यक होता है। कोई भी निर्णय लेते समय उद्यमी को बुद्धिमता एवं अनुभव से काम लेना चाहिए।

उपरोक्त गुणों के अतिरिक्त एक उद्यमी को भावुक, नये सोच वाला, उत्साही, धैर्यशील, भरपूर इच्छा शक्ति वाला, परिश्रमी, समय को महत्त्व देने वाला, सत्यनिष्ठ एवं ईमानदार भी होना चाहिए। उसका व्यक्तित्व ऐसा होना चाहिए कि सभी उसकी इज्जत करें और उस पर विश्वास करे। समाज में उसकी अच्छी प्रतिष्ठा भी होनी चाहिए।

उद्यमीय भावना का विकास (Development of Entrepreneurial Attitude)

निम्न तत्व उद्यमीय भावना के विकास में सहायक होते हैं—

(i) एक ऐसे कार्य-क्षेत्र का चयन करो जो आपको स्वयं को रचनात्मक, वैयक्तिक तथा व्यवसायी कार्य करने की स्वतन्त्रता स्वीकृत करे।

(ii) अपना कार्य स्थापित करने के बाद अपनी गतिविधियों को उन सफल व्यक्तियों के अनुसार नियन्त्रित करो जो उसी प्रकार के धन्धे तथा तकनीकी में सफलता प्राप्त कर चुके हैं।

(iii) स्पष्ट लक्ष्य विकसित करो।

(iv) अपने कार्य-क्षेत्र के विषय में अधिकतम जानकारी प्राप्त करो जिससे आप उस क्षेत्र में विशेषज्ञ हो सकें।

Scanned with CamScanner

(v) वर्तमान की सोचों तथा भूतकाल की असफलताओं का विचार करके समय नष्ट न करो। भविष्य में अधिक सफलता के लिए प्रयत्नशील रहो।

(vi) निर्णय लेना एक सफल उद्यमी का आवश्यक गुण होता है। अधिकतर मामलों में सीमित तथ्यों तथा सूचनाओं के आधार पर ही निर्णय लेने पड़ते हैं।

(vii) जब आप किसी कार्य में व्यक्तिगत रूप से सम्बन्धित हों तो अपना दायित्व स्वीकार करके उस कार्य को सफल बनाओ।

(viii) अपनी स्वयं की छवि अच्छी रखो।

(ix) हर वस्तु परिवर्तनशील है। अत: तुम्हें भी परिवर्तनशील होना चाहिए। परिवर्तन को स्वीकार करके उच्चतम लक्ष्य स्तरों की प्राप्ति के लिए उत्प्रेरक के रूप में कार्य करना चाहिए।

(x) स्वयं तथा अपने कर्मचारियों में विश्वास प्रदर्शित करो।

(xi) वे व्यक्ति जो आपके लिए कार्यरत हों, उनके गुणों एवं योग्यता का अधिकतम व पूर्ण लाभ उठाना चाहिए।

(xii) सदैव सुधारने का प्रयत्न करो। भूतकाल की उपलब्धियों से सन्तुष्ट रहो। परन्तु भविष्य में स्वविकास के स्रोत के रूप में नवीन लक्ष्यों का निर्धारण करो।

(xiii) कर्मशील (Action-oriented) बनो। कर्म के ही द्वारा नये कार्य-क्षेत्रों में सफल होने का मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

(xiv) अपनी व्यक्तिगत दृढ़ता तथा कमजोरियों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करो।

उद्यमीय योग्यता का मूल मन्त्र रचनात्मक भावना है। इसके साथ-साथ निश्चय, अनुभव, निरन्तर प्रयास तथा कठिन परिश्रम आदि सफलतम उद्यमी के आवश्यक अंग हैं।

मानसिक भावना (Mental Attitude)

जीवन के विषय में उद्यमियों का दृष्टिकोण सुदृढ़ एवं मानसिक होता है। वे परिपक्व व्यक्ति होते हैं जो स्वस्थ प्रवृत्ति में अनुभवों को विकसित करते हैं। स्वच्छ मानसिक भावना के विकास में निम्नलिखित सुझाव बहुत सहायक होते हैं—

(i) आपका मन एक शक्तिशाली यन्त्र है। आपकी बुद्धि प्राय: विचारवान गतिविधियों में लगी रहती है।

(ii) उद्यमी वे व्यक्ति होते हैं, जो अपने कार्य में सन्तुष्टि तथा उपलब्धि पर गर्व करते हैं। उनका मानसिक दृष्टिकोण कार्य के प्रति रचनात्मक होता है क्योंकि इससे ही सफलता प्राप्त होती है।

(iii) स्वस्थ मानसिक भावना के निर्माण में रसिकता की भावना (Sense of Humour) महत्वपूर्ण है। आवश्यकता से अधिक गम्भीरता कार्य के लिए अस्वस्थ तथा हानिकारक होती है। रसिकता प्रदर्शित करके अन्य व्यक्तियों में आशावाद तथा शान्ति का प्रादुर्भाव होता है। उद्यमियों के कथन एवं कार्य के अध्ययन द्वारा उनकी मानसिक भावना को देखा जा सकता है। धनात्मक मानसिक भावना सफल उपलब्धियों की प्राप्ति में बहुत सहयोग देती है।

(iv) अधिकतर व्यक्ति अपने विचारों को प्रतिदिन की समस्याओं तथा गतिविधियों तक सीमित रखते हैं। अत: अपने विचारों को महान् बनाने के लिए अपनी कल्पना शक्ति में प्रसार कीजिए। वे व्यक्ति जो बड़े चित्रों का अवलोकन करते हैं, उद्यमीय तथा व्यापार व समुदाय में नेतृत्व करते हैं।

उद्यमियों के विभिन्न स्वरूप (Different forms of Entrepreneur)

उद्यमियों के विभिन्न स्वरूपों को निम्नलिखित आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है—

I. तकनीकी शिक्षा के आधार पर

A. तकनीकी उद्यमी (Technical Entrepreneur)

B. गैर-तकनीकी उद्यमी (Non-technical Entrepreneur)

Scanned with CamScanner

II. क्षेत्र (Area) के आधार पर

A. ग्रामीण (Rural) उद्यमी,
B. शहरी (Urban) उद्यमी

III. उद्योग के स्वरूप के आधार पर

A. वैयक्तिक उद्योग (Individual Industry) उद्यमी
B. साझेदारी उद्योग (Partnership Industry) उद्यमी
C. सहकारी उद्योग (Co-operative Industry) उद्यमी
D. प्राइवेट लिमिटेड उद्योग (Private Limited Industry) उद्यमी

IV. आरक्षित वर्ग के आधार पर

A. भूतपूर्व सैनिक (Ex-soldiers) उद्यमी
B. विकलांग (Physical Handicapped)
C. अनुसूचित जाति या पिछड़ी जनजाति के उद्यमी (SC/BC)
D. राजनैतिक पीड़ित (Political Sufferers)

V. तकनीकी स्तर के अनुसार

A. स्नातक (Graduate) उद्यमी
B. डिप्लोमाधारी (Diploma-holder) उद्यमी
C. शिल्पकार (Craftsman) उद्यमी।

उद्यमी की सफलता के मार्ग में प्रमुख बाधाएँ

(Main Constraints in the way of Success of Entrepreneur)

एक उद्यमी की सफलता के मार्ग में आने वाली बाधाएँ निम्नलिखित हैं—

1. तकनीकी बाधायें (Technical Constraints)—लघु उद्योगों के स्वामियों अर्थात् उद्यमियों द्वारा उनके उद्योग के लिए बाजार में आने वाली नित नई मशीनों एवं उन्नत तकनीकों का प्रयोग कर पाना सम्भव नहीं हो पाता है। इसके अतिरिक्त वे अपनी निर्माण प्रक्रियाओं में सतत सुधार लाने में भी सफल नहीं हो पाते हैं। इस तरह की तकनीकी बाधाओं से उत्पाद की गुणवत्ता प्रभावित होती हैं तथा बाजार में उत्पाद की आशातीत सफलता नहीं मिलती।

2. हानि बर्दाशत करने की सामर्थ्य (Loss Bearing Capability)—किसी लघु उद्योग की स्थापना एवं उसके संचालन में बहुत अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है। एक उद्यमी अपनी सारी पूँजी तो उद्योग में लगा ही देता है, साथ ही विभिन्न स्रोतों जैसे—बैंक, वित्तीय निगमों, साहूकारों, अथवा रिश्तेदारों से पैसा उधार लेकर उद्योग में लगा देता है, जिसका बहुत अधिक ब्याज भी उसे चुकाना होता है। ऐसे में अगर उद्योग को स्थापना के शुरू के वर्षों में आशातीत सफलता न मिल पाये तो उद्यमी निराश हो जाता है। यदि उद्यमी में हानि के कारण बन्द करना पड़ सकता है। ऐसे में उद्यमी का मानसिक रूप से सुदृढ़ होना आवश्यक होता है।

3. वित्तीय बाधायें (Financial Constraints)—किसी भी लघु उद्योग के संचालन में वित्त एक प्रमुख समस्या है। अपनी वित्तीय सीमितताओं के कारण लघु उद्योग गुणवत्ता का वह स्तर बनाये रखने में असफल हो जाते हैं जो बड़े उद्योग आसानी से हासिल कर लेते हैं। इसके परिणामस्वरूप वे बाजार में पिछड़ जाते हैं और बाजार के एक सीमित वर्ग की आवश्यकताओं को ही पूरा कर पाते हैं।

4. संगठनात्मक बाधायें (Organizational Constraints)—प्राय: किसी लघु उद्योग की स्थापना एक या दो व्यक्तियों द्वारा की जाती है। उद्योग के समस्त कार्य जैसे—कच्चे माल का क्रय, उत्पादन प्रक्रिया का निरीक्षण, उत्पाद की गुणवत्ता नियन्त्रण, मार्केटिंग, बिक्री, भण्डार व्यवस्था आदि उद्यमी द्वारा सम्पादित किये जाते हैं। लघु उद्योग की वित्तीय स्थिति

Scanned with CamScanner

ऐसी नहीं होती है कि वे क्रय, विक्रय, उत्पादन वित्त मार्केटिंग आदि विशिष्ट कार्यों के लिए विशिष्ट व्यक्तियों का नियोजन कर सके। इन समस्त कार्यों की जिम्मेदारी उद्यमी या उसके द्वारा नियोजित किसी व्यक्ति की ही होती है। इस संगठनात्मक बाधा से उद्योग के संचालन में व्यवधान उत्पन्न होता है तथा उत्पाद की गुणवत्ता तथा उत्पादकता भी अच्छी नहीं रहती।

उद्यमियों की विशेषतायें (Qualities of Entrepreneurs)

आर्थिक विकास में उद्यमियों का महत्वपूर्ण योगदान है। प्राचीन काल की अपेक्षा आधुनिक युग में विशेषत: प्रगतिशील देशों के मध्य उद्यमियों की परिभाषा पर मतभेद है परन्तु इस ओर सभी राष्ट्रों का ध्यान आकर्षित है। इस परिप्रेक्ष्य में अनेकों प्रश्नों पर शोध कार्य चल रहा है। अर्थात् उद्यमी कौन है? इसका विकास किस प्रकार किया जाता है? इसकी पहचान क्या है? इसके क्या उद्देश्य हैं? आदि। अत: उपरोक्त समस्त प्रश्नों के लिए यह आवश्यक है कि एक उद्यमी के प्रशिक्षण, मार्गदर्शन तथा विकसित करने की दिशा में पूर्णत: ध्यान दिया जाये। शुम्पीटर (Schumpeter) के अनुसार, एक उद्यमी की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—

"उद्यमी परिवर्तन की शक्तिशाली एजेण्ट या अभिकर्त्ता या उत्प्रेरक होता है तो प्रकृति तथा मानवीय स्रोतों को उत्पादन सम्भावनाओं में स्थानान्तरित करता है।" उद्यमी की यह परिभाषा समाजशास्त्रियों, दार्शनिकों, मनोवैज्ञानिकों तथा अर्थशास्त्रियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती है।

उद्यमी के गुण एक समाजशास्त्री की दृष्टि में एक वर्ग, जाति, परिवार, समाज की प्रतिष्ठा एवं विकास के रूप में होते हैं। दार्शनिक इसे व्यक्ति विशेष से अलग उद्देश्यों की पूर्ति का साधन मानते हैं। मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि में उद्यमी व्यक्तिगत गुणों, इच्छा, स्वयं उत्पादकता, जोखिम उठाने की सामर्थ्यता आदि को अधिक महत्व देते हैं। अर्थशस्त्री इसे धन, व्यवसाय, तकनीकी अनुभव तथा प्रबन्ध कौशल पर आधारित मानते हैं। उद्यमी में कुछ गुण तो जन्मजात पाये जाते हैं तथा कुछ विकसित किये जाते हैं। उद्यमियों के गुणों के विषय में दो विशेषज्ञों मैकलान (Mechlon) तथा क्रिस्टोफर (Christopher) ने कुछ गुणों का वर्णन किया है जो निम्न प्रकार हैं—

मैकलान (Mechlon) के अनुसार—मैकलान के अनुसार उद्यमी में निम्न गुणों का होना आवश्यक है—

(i) लक्ष्य प्राप्ति की तीव्र इच्छा (Keen desire of achieving goal)
(ii) धैर्य (Patience)
(iii) असन्तुष्ट व्यक्ति (Unsatisfied person)
(iv) उत्पादकता (Productivity)
(v) दूरदर्शिता (Foresightness)
(vi) आत्मविश्वासी (Self-confidence)
(vii) समुदाय स्थापित करने वाला (Scatter of community)
(viii) प्रयत्नों का परिणाम जानने की इच्छा (Desire to know the result of efforts)
(ix) वैयक्तिक दायित्व का निर्वहन (Fulfilment of Personal Responsibilities)
(x) जोखिम उठाने की सामर्थ्यता (Capacity of Risk taking)
(xi) जोखिम उठाने को पसन्द करने वाला (Liking risk taking)
(xii) भविष्य के प्रति आशावादी (Optimist for Future)

क्रिस्टोफर (Christopher) के अनुसार—एक उद्यमी में निम्न गुण पाये जाते हैं—

(i) परिश्रमी तथा प्रयत्नशील,
(ii) नवीनता का इच्छुक तथा हीनता की भावना से मुक्त,
(iii) शोध, विकास तथा परिवर्तन की इच्छा,
(iv) कुशल विक्रेता, मित्रों के हृदय जीतने में सक्षम,
(v) परिचितों को प्रभावित करने वाला,
(vi) कठिन परिस्थितियों से जूझने वाला,

Scanned with CamScanner

(vii) नवीन सम्प्रदाय स्थापित करने वाला,
(viii) प्रयत्नशील,
(ix) चतुर, प्रसन्न तथा आकर्षक व्यक्तित्व वाला,
(x) आत्मविश्वासी,
(xi) जोखिम उठाने वाला,
(xii) चुनौतियों को स्वीकार करने वाला,
(xiii) समय का मूल्य पहचानने वाला,
(xiv) सत्य, निष्ठा तथा कर्म में विश्वास रखने वाला,
(xv) सफलता के प्रति पूर्ण आशावादी,
(xvi) समय अनुसार स्वयं को ढालने वाला,
(xvii) परिणाम प्राप्ति के लिए दायित्व उठाने वाला,
(xviii) लाभ अर्जित करने का इच्छुक,
(xix) इच्छा शक्ति से परिपूर्ण।

उद्यमिता विकास के मूल उद्देश्य (Basic Objectives of Entrepreneurial Development Programme)

(i) प्रोजेक्ट को व्यवस्था बनाना।
(ii) उद्यमिक गुणवत्ता, प्रोत्साहन को विकसित करना तथा मजबूती प्रदान करना।
(iii) स्कूल अथवा कॉलेज से निकलने वाले शिक्षित तथा अल्पशिक्षित युवाओं को स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराना।
(iv) प्रोजेक्ट अथवा उत्पाद का चयन करना।
(v) प्रबन्धन के मूल गुणों एवं कौशल को अपनाना।
(vi) इन कार्यक्रमों द्वारा रोजगार के बेहतर अवसर प्राप्त होते हैं।
(vii) एक उपक्रम को शुरुआत करने के लिए आवश्यक सहारा देने वाले संस्थाओं/व्यक्तियों की पहचान करना।
(viii) लघु उद्योगों तथा लघु व्यापारों से सम्बन्धित वातावरण को विश्लेषित करना।

उद्यमिता को बढ़ावा देने वाले प्रमुख कारक (Factors Promoting Entrepreneurship)

उपयुक्त सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक वातावरण देकर निम्न कारक उद्यमिता को बढ़ावा देते हैं—

(i) विदेशी अथवा भारतीय सहकार्यता (Collaboration),
(ii) संस्थागत स्रोतों से वित्तीय सहायता,
(iii) किराये पर मशीनों की उपलब्धता,
(iv) नये उद्योग लगाने के लिए सरकार से मिलने वाला सहयोग,
(v) पर्याप्त लाभांश,
(vi) समान अथवा सम्बन्धित व्यापार का अनुभव,
(vii) विभिन्न उत्पादों की भारी माँग,
(viii) स्वदेशी कच्चे माल की पर्याप्त उपलब्धता,
(ix) आर्थिक गतिविधियों में परिवार एवं सामाजिक सहयोग एवं उत्साह वर्धन,
(x) पहले से स्थापित बड़े उद्योगों द्वारा दिया गया प्रोत्साहन,
(xi) औद्योगिक आस्थनों (Industrial Estate) में स्थान,
(xii) जीवन में कुछ नया एवं स्वतन्त्र करने की कोशिश,

Scanned with CamScanner

(xiii) तकनीकी ज्ञान एवं विनिर्माण का अनुभव,
(xiv) बढ़ते हुए आयात पर प्रतिबन्ध लगाकर उद्योगों को सुरक्षा प्रदान करना।
(xv) सरकारी एवं गैर-सरकारी स्रोतों से वित्त की उपलब्धता।

उद्यमिता विकास का लक्ष्य
(Task of Developing Entrepreneurship)

उद्यमी बनाने का लक्ष्य प्राप्त करना आसान कार्य नहीं है। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु चलाये जा रहे उद्यमिका विकास कार्यक्रमों को, उद्यमिता को प्रोत्साहित करने वाली वर्तमान सरकारी नीतियों की जानकारी होनी चाहिए। यह आवश्यक है उद्यमिता को प्रोत्साहित करने वाला वातावरण बने तथा इसके लिए विभिन्न संस्थाओं से वांछित सहयोग भी प्राप्त हो उद्यमिता विकास के लक्ष्य में निहित हैं—

1. उन व्यक्तियों को पहचानना एवं सावधानीपूर्वक चयन करना जो कि उद्यमी के रूप में विकसित किये जा सकते हैं।
2. उनकी उद्यमिक क्षमताओं को विकसित करना।
3. यह सुनिश्चित करना कि वे उपयुक्त औद्योगिक प्रोजेक्ट का चयन करें।
4. उनमें मूल प्रशासनिक, वित्तीय एवं प्रबन्धकीय क्षमताओं को विकसित करना।
5. वित्त तथा अन्य आवश्यक संरचनात्मक सहायता प्राप्त करने में मदद करना।

भविष्य की निम्न सम्भावनाओं/विचारों को ध्यान में रखकर ही सम्पूर्ण प्रशिक्षण के साथ ही किसी उपक्रम की स्थापना हेतु भविष्य के उद्यमी तैयार किये जाने चाहिए—

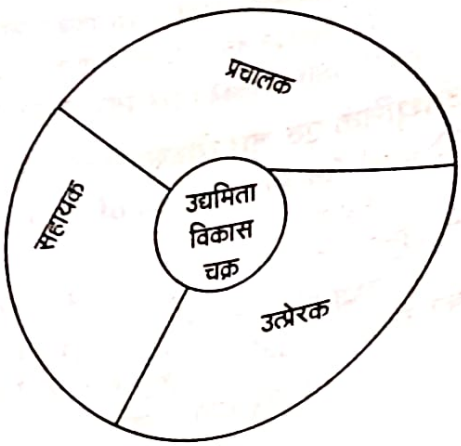
1. आधुनिकीकरण के अवसर एवं तकनीक,
2. ISO-9000 की आवश्यकताओं सहित गुणवत्ता,
3. ग्राहक की संतुष्टि/सेवा,
4. ऊर्जा संरक्षण,
5. प्रदूषण एवं अन्य पर्यावरण के विचार,
6. उत्पादन की लागत,
7. राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धा।

उद्यमिता विकास कार्यक्रम को उपरोक्त विचारों को दृष्टिगत रखते हुए ही तैयार किया जाना चाहिए। प्रतिस्पर्धात्मक विकास केन्द्रित तथा गुणवत्ता के प्रति सचेत उद्यमी को बढ़ावा देना तथा उत्साहित करना आज के समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है। उनकी सोच विश्वस्तरीय तथा कार्य दक्षतापूर्ण होना अत्यन्त आवश्यक है।

उद्यमिका विकास चक्र
(Entrepreneurship Development Rotation)

समस्त विश्व में उद्यमिता के बढ़ते हुए महत्त्व के साथ उद्यमिता को विकसित करने के लिए कई तरह की नीतियाँ व कार्यक्रम बनाये गये हैं। उद्यमिका विकास के क्षेत्र में अनुसंधानों व अनुभवों से यह प्रकट होता है कि एक क्षेत्र में उद्यमिता विकसित करने व बढ़ाने में होने वाले सारे प्रयत्न एक चक्र का स्वरूप ग्रहण करते हैं। इनमें जो गतिविधियाँ सम्मिलित होती हैं, उन्हें निम्न तीन श्रेणियों के अन्तर्गत आसानी से वर्गीकृत किया जा सकता है—

I. उत्प्रेरक,
II. सहायक और
III. प्रचालक गतिविधियाँ।



Scanned with CamScanner

I. उत्प्रेरक (Initiative)

1. उद्यमिता अवसरों हेतु नियोजित प्रचार।
2. उद्यमिता शिक्षा।
3. नये उद्यमियों को प्रेरणात्मक प्रशिक्षण।
4. वैज्ञानिक तरीको के माध्यम से सम्भावित उद्यमियों को चिहिन्त करना।
5. तकनीकी आर्थिक सूचना व उत्पादों के लाभ को उपलब्ध कराना।
6. स्थानीय रूप से समुचित नये उत्पादों व प्रक्रियाओं को विकसित करना।
7. उत्पाद चुनाव, परियोजना रिपोर्ट व मार्ग दर्शन में सहायता।
8. उद्यमिता मंच बनाना।
9. उद्यमिता सलाह व प्रशिक्षण के लिये स्थानीय एजेन्सियों की उपलब्धता।

II. सहायक (Subsidiaries)

1. इकाई का पूँजीकरण।
2. वित्त प्रबन्ध।
3. दुर्लभ कच्चा माल प्राप्त करने में सहायता प्रदान करना।
4. उत्पाद विपणन में सहायता प्रदान करना।
5. मशीनरी चुनने में मार्गदर्शन करना।
6. सूचना प्रदान करना।
7. सामान्य सुविधायें देना।
8. लाइसेन्स प्राप्त करना।
9. भूमि, सड़क, पॉवर आदि देना।
10. प्रबन्धकीय सलाह प्रदान करना।
11. कर, छूट व अन्य अनुदान प्रदान करना।

III. प्रचालक (Administrative)

1. पूर्ण क्षमता का उपयोग करने के लिए।
2. स्थानापन्न उत्पादन हेतु सहायता देना।
3. गुणवत्ता परीक्षण व सेवाओं में सुधार लाना।
4. उत्पाद आरक्षण व विपणन हेतु नई सम्भावनाओं का सृजन करना।
5. आवश्यकता पर आधारित सामान्य सुविधाओं के केन्द्र।
6. औद्योगिक प्रसार व सलाहकार स्रोत उपलब्ध कराना।
7. उत्पादन इकाई विधि व नीति परिवर्तन में सहायता प्रदान करना।
8. आधुनिकीकरण को सहायता प्रदान करना।

आधुनिक एवं लघु व्यवसायों को बढ़ावा देने की आवश्यकता (Need for Promotion of Entrepreneurship and Small Business)

लघु स्तरीय इकाइयों को बढ़ावा देने की आवश्यकता पर विचार करने से पूर्व लघु एवं मध्यम एवं उच्चस्तरीय इकाइयों में अन्तर को स्पष्ट रूप से जानना आवश्यक है।

उद्योगों का स्तर (Scale of Industry)—नियोजित कर्मचारियों की संख्या एवं निवेशित पूँजी के आधार पर उद्योगों को निम्न तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है—

(i) लघु स्तरीय उद्योग,

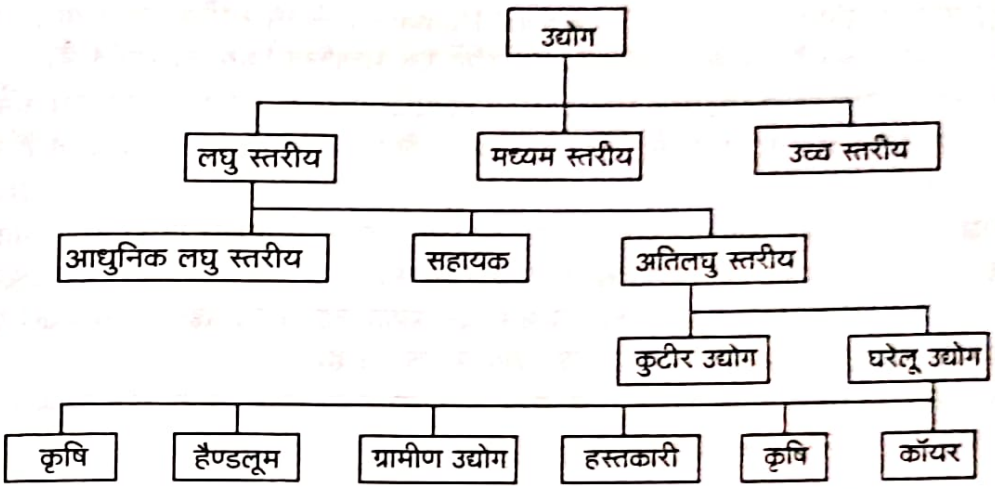
Scanned with CamScanner

(ii) मध्यम स्तरीय उद्योग,

(iii) उच्च स्तरीय अथवा बड़े उद्योग।

वे उद्योग, जिनमें प्लांट एवं मशीनरी में निवेशित की गई पूँजी रु० 60 लाख से अधिक न हो, लघुस्तरीय उद्योग (Small scale industries) कहलाते हैं। लघु स्तरीय उद्योगों के अन्तर्गत एक विशिष्ट वर्ग भी होता है जिसे अतिलघु (Tiny) उद्योग कहते हैं। इस वर्ग की इकाइयों में अचल सम्पत्ति (Fixed Assets) में निवेशित पूँजी की अधिकतम सीमा रु०5 लाख होती है और यह ऐसे गाँव अथवा कस्बे में स्थापित होती है जिसकी जनसंख्या 50,000 से अधिक न हो।

सहायक इकाइयाँ (Auxiliary Units) वह उपक्रम है जिनमें अचल सम्पत्ति में निवेशित पूँजी की अधिकतम सीमा रु० 75 लाख होती है और बड़े उद्योग में बन रहे उत्पाद अथवा मशीन के पुर्जों, अंगों, अर्धनिर्मित एसेम्बली आदि का निर्माण करती है अथवा कोई अन्य सेवा उपलब्ध कराती है। इस प्रकार की इकाइयों का आधे से ज्यादा उत्पादन प्राय: किसी अन्य उद्योग के लिए होता है।



रु० 50 लाख से लेकर रु० 5 करोड़ तक की निवेशित पूँजी वाले तथा बिना लाइसेंस की आवश्यकता वाले उद्योग प्राय: मध्यम स्तरीय उद्योग कहलाते हैं। रु० 5 करोड़ से अधिक अचल सम्पत्ति वाले उद्योग बड़े उद्योग की श्रेणी में रखे जाते हैं।

लघु स्तरीय इकाइयों एवं उद्यमिता को बढ़ावा देने की आवश्यकता—

उद्यमिता से छोटे उद्योगों अर्थात् लघु स्तरीय इकाइयों को बढ़ावा मिलता है। विकासशील राष्ट्रों को आर्थिक सम्पन्नता और औद्योगिक विकास की दर का बढ़ावा देने में लघु स्तरीय इकाइयों का महत्वपूर्ण योगदान है। ये उद्योग रोजगार के नये-नये अवसर प्रदान करते हैं। लघु उद्योगों में श्रमिकों की संख्या भी अधिक होती है। इन्हें अपेक्षाकृत कम पूँजी की आवश्यकता होती है, कम समय में स्थापित हो सकते हैं और ग्रामीण एवं पिछड़े इलाकों में आसानी के साथ स्थापित किया जा सकता है। इन्हें छोटे बाजार की आवश्यकता होती है तथा ये राष्ट्रीय आय में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। लघु स्तरीय उद्योग स्वदेशी उद्यमिता को भी बढ़ावा देती है। ये निम्न उददेश्यों की प्राप्ति हेतु महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं—

(i) राष्ट्रीय आय का अधिक समान वितरण (More Equitable Distribution of National Income)—लघु स्तरीय उद्योग, देश के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में रहने वाले दुर्बल आय वर्ग (Low income group) के लोगों को रोजगार तथा आय का स्थायी स्रोत उपलब्ध कराते हैं जबकि बड़े उद्योग एकाधिकार (Monopoly) को बढ़ावा देते हैं और धन तथा आर्थिक शक्ति कुछ ही लोगों के पास संकेन्द्रित होकर रह जाती है। इस प्रकार लघु स्तरीय उद्योग, राष्ट्रीय आय का अधिक समान वितरण करते हैं।

(ii) विकेन्द्रीकरण (Decentralization)—लघु उद्योग एक प्रभावी उन्नतिशील एवं विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था विकसित करने में मदद करते हैं। इस प्रकार ये उद्योगों के पलायन को रोकते हैं और अत्यधिक जनसंख्या प्रदूषण जैसी समस्याओं को दूर करते हैं तथा आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रक (Concentration) में कमी आती है।

Scanned with CamScanner

(iii) रोजगार का सृजन (Employment Generation)—लघु स्तरीय उद्योगों को बढ़ावा देकर रोजगार के नये-नये अवसरों का सृजन किया जा सकता है। इन उद्योगों का प्रमुख उद्देश्य बहुत बड़े स्तर पर तुरन्त तथा स्थायी रोजगार, अपेक्षाकृत कम लागत पर उपलब्ध करना है। ये उद्योग प्रति यूनिट निवेशित पूँजी पर अधिक रोजगार के अवसरों का सृजन करते हैं। लघु स्तरीय उद्योग भारत जैसे देश के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है जहाँ श्रमिकों की बहुतायत है और धन की कमी है और जो बेरोजगारी की समस्या से बुरी तरह प्रभावित है।

(vi) सन्तुलित आर्थिक विकास (Balanced Economic Development)—लघु स्तरीय इकाइयों को कम पूँजी की आवश्यकता होती है इसलिए आसानी के साथ गाँवों अथवा अर्द्ध-शहरी क्षेत्रों में स्थापित किये जा सकते हैं। इस प्रकार ये इन क्षेत्रों में रोजगार उपलब्ध कराते हैं और लोगों का ग्रामीण क्षेत्रों से बड़े शहरों की ओर रोजगार की तलाश में पलायन करना रोकते हैं। छोटे **उपक्रम आस-पास के संसाधनों का प्रयोग करते हैं और ग्रामीण अथवा विकासशील क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। इससे ग्रामीण एवं अविकसित क्षेत्रों का आर्थिक पिछड़ापन दूर होता है।**

(v) बढ़ी हुई माँग की पूर्ति हेतु (To Meet Increased Demand)—लघु स्तरीय उद्योग बाजार की बढ़ी हुई माँग को बहुत हद तक पूरा कर सकते हैं क्योंकि ये आसानी से स्थापित एवं संचालित किये जा सकते हैं।

(vi) स्त्रोतों का बेहतर उपयोग (Better Utilization of Resources)—लघु उद्योग ऐसे धन एवं कौशल को प्रयोग करते हैं जो शायद पहले अपर्याप्त प्रकार से प्रयुक्त हुआ हो। ये निकटतम स्त्रोतों का प्रयोग करते हैं जैसे कच्चा माल, निष्क्रिय बचत औद्योगीकरण करने में मदद करते हैं।

(vii) रोजगार (Self Employment)—लघु उद्योग को कम पूँजी की आवश्यकता होती है। अत: कम पूँजी वाले योग्य व्यक्ति अपना एक स्वतन्त्र व्यापार स्थापित कर सकते हैं। एक अच्छे विचारों वाला अनुभवी व्यक्ति, एक धनी व्यक्ति के साथ मिलकर साझेदारी में अपना व्यवसाय स्थापित कर सकता है। इस प्रकार वह अपनी मेहनत, ईमानदारी एवं काबलियत के दम पर अपने एवं अन्य लोगों के लिए रोजगार के अवसर उपलब्ध कराता है।

इस तरह के उद्योग में कर्मचारी एवं नियोक्ता के मध्य व्यक्तिगत सम्बन्ध बहुत सुदृढ़ बन जाते हैं और हड़ताल, तालाबन्दी जैसी अवांछनीय घटनायें नगण्य रहती हैं।

प्रशिक्षण
(Training)

प्रशिक्षण एक विधिवत् एवं योजनाबद्ध प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य अध्ययानात्मक अनुभव देना है जिससे उद्यमी एवं कर्मचारी में संगठन के उद्देश्य पूरा करने एवं विकास करने की क्षमता पैदा होती है। रिचर्ड कालहन ने प्रशिक्षण की परिभाषा इस प्रकार की है, "प्रशिक्षण एक कर्मचारी के वर्तमान व भविष्य में किये जाने वाले कार्य में प्रभाविकता को जोड़ने की प्रक्रिया होती है।"

मैथिस (Mathis) के अनुसार—"अध्ययन की वह प्रक्रिया जिसके द्वारा लोग लक्ष्य प्राप्ति के लिए कुशलता (Skills), मुद्रा (Attitude), संकल्पना (Concept) या ज्ञान (Knowledge) प्राप्त करते हैं।"

डेल्स बीच (Dales Beach) के अनुसार—"वह क्रमबद्ध प्रक्रिया जिसके द्वारा लोग किसी निश्चित उद्देश्य के लिए ज्ञान तथा कुशलता प्राप्त करते हैं।"

अत: प्रशिक्षण ज्ञान तथा कुशलता को बढ़ाने की वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी विशिष्ट कार्य के लिए कर्मचारी को अध्ययन करना पड़ता है।

प्रशिक्षण की विधियाँ (Methods of Training)

लघु उद्योगों में कर्मचारियों का प्रशिक्षण निम्नलिखित विधियों द्वारा होता है—

(i) अनुभवी कर्मचारियों द्वारा (By Experienced Workers)—इस विधि में एक नये कर्मचारी को पुराने व अनुभवी कर्मचारी के साथ काम करने दिया जाता है। नया कर्मचारी, अनुभवी कर्मचारी को देखकर तथा उसकी नकल करके कार्य सीखता है। अनुभवी कर्मचारी उसे समय-समय पर निर्देश देता रहता है। यही लघु उद्योगों में उचित विधि है क्योंकि इसमें

Scanned with CamScanner

प्रशिक्षण के लिए अतिरिक्त व्यय नहीं करना पड़ता। कर्मचारी धीरे-धीरे कार्य को समझने लगता है। यह विधि ऐसे स्थान पर अत्यन्त लाभकारी है जहाँ अनुभवी कर्मचारी को सहायक की आवश्यकता होती है। इस विधि में एक ही कमी है कि कुशल कर्मचारी में निर्देश देने की क्षमता या कुशलता न हो। यह भी सम्भव है कि अनुभवी कर्मचारी अन्य कर्मचारी को प्रशिक्षित करने का इच्छुक न हो।

(ii) कार्य पर प्रशिक्षण (On the Job Training)—इस विधि में फोरमैन नये कर्मचारी को कार्य के विषय में निर्देश देता है। फोरमैन अपने अधीनस्थ कर्मचारी को मशीनों व औजारों के उपयोग तथा विधि आदि के विषय में समझाता है। इसके उपरान्त नया कर्मचारी एक अलग मशीन पर अनुभवी कर्मचारी के समीप रखा जाता है। जब भी कभी नये कर्मचारी को कोई कठिनाई होती है तब वह अनुभवी कर्मचारी से सहायता लेता है।

यहाँ यह देखना आवश्यक है कि नया कर्मचारी शिक्षित हो अर्थात् वह कम से कम औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान से सर्टीफिकेट प्राप्त होना चाहिए। ऐसा होने पर वह कार्य को शीघ्र समझने में सक्षम होगा। यह विधि भी अतिरिक्त व्यय न होने के कारण लघु इकाइयों में अपनाई जा सकती है।

(iii) फोरमैन द्वारा प्रशिक्षण (Training By Foreman)—इस विधि में कर्मचारी का प्रशिक्षण विभागीय फोरमैन द्वारा किया जाता है। फोरमैन कर्मचारियों को कार्य की बारीकियों को समझाकर प्रशिक्षित करता है। अत: उपरोक्त दोनों विधियों से यह विधि अधिक अच्छी मानी जाती है। इस विधि में एक ही कमी है कि फोरमैन द्वारा किये जाने वाले अन्य कार्यों में हानि हो सकती है क्योंकि वह प्रशिक्षण कार्य में लग जायेगा। यह विधि भी लघु उद्योगों के लिए उचित है।

प्रशिक्षण के लाभ (Advantages of Training)

उद्योग चाहे छोटा हो या मध्यम या बड़ा, आज प्रशिक्षण प्रत्येक उद्योग के लिए आवश्यक है। आज के प्रतियोगिता के संसार में यह आवश्यक है कि न्यूनतम लागत पर अधिकतम प्राप्ति हो सके। अत: उद्योग में उच्च मानक बनाये रखने के लिए अधिकारी से लेकर श्रमिक तक का प्रशिक्षण अत्यन्त आवश्यक है। प्रशिक्षण के निम्नलिखित लाभ हैं—

1. जब कोई कर्मचारी क्रमबद्ध प्रशिक्षण प्राप्त करता है तब उसकी कार्यकुशलता बढ़ जाती है।
2. प्रशिक्षित कर्मचारी अधिक मजदूरी प्राप्त कर सकते हैं।
3. प्रशिक्षित कर्मचारियों को कम देखभाल करने वाले निरीक्षकों की आवश्यकता पड़ती है।
4. प्रशिक्षण द्वारा कर्मचारियों तथा प्रबन्धकों के मध्य सहयोग की भावना बढ़ती है।
5. प्रशिक्षण से कार्य सन्तुष्टि प्राप्त होती है।
6. प्रशिक्षित कर्मचारी कार्य को सुविधापूर्वक तथा उचित प्रकार से करके दुर्घटनाओं को कम कर सकते हैं।
7. प्रशिक्षण द्वारा, कच्चे माल की छीजन व खराब कार्य में काफी सीमा तक कमी आ जाती है जिससे उत्पादन मूल्य कम हो सकता है।
8. उचित प्रशिक्षण द्वारा उत्पादन की मात्रा व गुणवत्ता दोनों में ही सुधार सम्भव है।
9. एक प्रशिक्षित कर्मचारी मशीनों को अधिक ध्यानपूर्वक उपयोग कर सकता है, जिससे संयन्त्र व मशीनों के जीवन में बढ़ोत्तरी हो सकती है।
10. प्रशिक्षण कार्यक्रमों द्वारा, प्रबन्धक मण्डल को अपनी नीतियों, नियमों तथा उपनियमों को स्पष्ट करने का अवसर मिलता है।

प्रशिक्षण योजना (Training Plan)

एक प्रशिक्षण योजना में प्राय: निम्नलिखित सात पद मिलते हैं—

1. प्रशिक्षण आवश्यकताओं का निर्धारण,
2. प्रशिक्षण नीतियों को तय करना,
3. प्रशिक्षण के उद्देश्य तथा लक्ष्यों की स्थापना,
4. प्रशिक्षण बजट बनाना,
5. प्रशिक्षण स्थान का चयन,

Scanned with CamScanner

6. प्रशिक्षण में प्रयोग होने वाली विधियाँ तथा तकनीक,
7. प्रशिक्षण के मूल्यांकन की विधि निश्चित करना।

प्रशिक्षण की योजना बनाना (Planing for Training)

प्रशिक्षण की योजना वर्तमान तथा भविष्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर बनाई जाती है। इस योजना के अन्तर्गत वर्तमान तथा भविष्य में कुशल, अर्द्धकुशल तथा अकुशल कर्मचारियों की आवश्यकता, उनका अनुभव एवं आधुनिक तकनीक की जानकारी आदि सम्मिलित की जाती है। एक प्रशिक्षण कार्यक्रम की योजना के लिए निम्न बिन्दुओं का समावेश अनिवार्य होता है—

(i) प्रदर्शन का मानक (Standard of Performance)—प्रशिक्षण वास्तव में स्पष्ट, प्रभावी तथा उद्देश्यपूर्ण होना चाहिए, जिससे सीखने वाला अपनी सफलता, उन्नति आदि के विषय में मूल्यांकन करके उद्देश्य को प्राप्त कर सकें।

(ii) प्रशिक्षण से आत्म सन्तुष्टि (Self-satisfaction from Training)—प्रशिक्षण प्रक्रिया इस प्रकार की होनी चाहिए कि प्रशिक्षु कठिन परिस्थितियों में भी अपने प्रशिक्षण से सन्तुष्ट हो। उसे ऐसा प्रतीत हो कि प्रशिक्षण से वह बहुत कुछ प्राप्त करके अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है। इस प्रकार ही उसे आत्म-सन्तुष्टि प्राप्त हो सकेगी।

(iii) प्रशिक्षण विधियों तथा तकनीक में विविधता (Variety in Training Methods and Techniques)—प्रशिक्षण की विधि तथा तकनीक इस प्रकार बनानी चाहिए कि कोई भी प्रशिक्षु उससे उकताये नहीं। इसके लिए आजकल आधुनिकतम तकनीकों का प्रयोग करना चाहिए।

(iv) क्रियात्मक संलग्नता (Active Involvement)—प्रशिक्षु अपने प्रशिक्षण देने वाले साथी प्रशिक्षुओं, प्रशिक्षण, कार्यक्रम की विषय सामग्री के साथ लक्ष्य प्राप्ति तथा अपने प्रदर्शन में सुधार की दृष्टि से क्रियात्मक रूप में संलग्न रहना चाहिए।

(v) व्यक्तिगत उत्प्रेरणा (The Individual Motivation)—लोगों को व्यक्तिगत रूप से ज्ञान प्राप्त करने के लिए या सीखने के लिए प्रेरित करना चाहिए। सीखने वाला अपने ज्ञान के स्तर को बढ़ाने, कुशलता, आत्म सन्तुष्टि, वित्तीय सहायता, दूसरों की सन्तुष्टि एवं अपनी उन्नति के लिए तीव्र इच्छुक होना चाहिए। उसकी बुद्धि में अपना उद्देश्य व्यवहार में परिवर्तन आदि स्पष्ट होने चाहिए। इन बातों को ध्यान में रखकर ही प्रशिक्षण की योजना बनानी चाहिए।

(vi) उचित तकनीक तथा विधि का प्रयोग (Use of Appropriate Techniques and Methods)—लोगों की स्थितियाँ तथा आवश्यकताएँ भिन्न हो सकती है। अत: विशिष्ट कार्य के लिए विधि तथा तकनीक, स्थितियों तथा आवश्यकताओं के अनुसार उपयोग करनी चाहिए।

(vii) मार्ग दर्शन एवं पश्चपुष्टि (Guidance and Feedback)—यह परम आवश्यक है कि सीखने वाले को उचित मार्गदर्शन एवं निर्देश मिलते रहें जिससे प्रशिक्षण प्रभावी हो। सीखने वाले को पश्चपुष्टि भी मिलनी चाहिए जहाँ वह ठीक कार्य कर रहा है। प्रशिक्षु को रचनात्मक मार्गदर्शन एवं समीक्षा, प्रोत्साहन एवं सहायता के द्वारा मिलती रहनी चाहिए। इससे उनमें अपने प्रदर्शन में निरन्तर सुधार करने की भावना बनी रहेगी।

(viii) समय तथा अभ्यास तत्व (The Time and Practice Factor)—प्रशिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए प्रशिक्षु को उचित समय, अभ्यास तथा सीखे गये व्यक्ति की जाँच आदि के लिए समय मिलना चाहिए जिससे उसमें आत्म-विश्वास पैदा हो सकें। प्राय: प्रशिक्षण कार्यक्रमों में प्रशिक्षु को इतनी प्रशिक्षण सामग्री दे दी जाती है कि वह उसके अभ्यास में कठिनाई महसूस करने लगता है। ऐसा नहीं होना चाहिए।

उद्यमिता उत्प्रेरणा (Entrepreneurship Motivation)

प्राय: यह माना जाता है कि लोगों की गरीबी का मुख्य कारण अज्ञानता है। परन्तु ऐसा सोचना गलत है। संसार के विभिन्न भागों की आर्थिक प्रगति को देखा जाये तो सभी लोग प्रगति के अवसरों की तरफ उन्मुख नहीं होते। सिर्फ कुछ लोग ही प्रगति करने और गरीबी दूर करने के लिए मिले अवसरों का लाभ उठा पाते हैं। मनुष्य के आस-पास के वातावरण में ऐसा कुछ अवश्य होता है जो उसे स्वयं का उद्योग लगाने के लिए प्रेरित कर सकता है।

Scanned with CamScanner

"प्रेरणा एक प्रगतिशील प्रक्रिया है तथा इसका अपना एक गति-शास्त्र है।"

प्रेरणादायक सिद्धान्तों की प्रस्तावना के आधार पर यह विचार किया जाता है। व्यवहार का उद्देश्यपूर्ण होना आवश्यक है तथा यह व्यवहार किस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया जाता है। अत: "प्रेरणा से तात्पर्य है कि ऐसे सभी कार्य जो उद्देश्य प्राप्ति के लिए प्रेरित करते रहें।"

वास्तव में मनुष्य एक स्वछन्द चरित्र है जो कोई काम करते समय अच्छा या बुरा रास्ता अपनाता है। यह व्यक्ति की शिक्षा, बुद्धि एवं विवेक पर निर्भर करता है। यदि व्यक्ति को अच्छाई का ज्ञान हो जाये और वह अच्छाई के मार्ग को अपना ले तो वह अपनी व समाज/देश की प्रगति करने में सफल होता है।

उद्यमी उत्प्रेरणा एवं उद्देश्य प्राप्ति की आवश्यकता (Entrepreneurship Motivation and Need of Achievements)

सामाजिक उद्देश्यों की प्रेरणा के विभिन्न विद्वानों ने मानव व्यवहार के लिए तीन श्रेणियों को इंगित किया है—

1. उद्देश्य की प्राप्ति की आवश्यकता,
2. देखभाल की आवश्यकता, तथा
3. शक्ति की आवश्यकता।

उपरोक्त कार्य एक दूसरे से भिन्न हैं तथा प्रत्येक व्यक्ति के विचारों एवं कार्य-कलापों में भी भिन्नता परिलक्षित होती है।

1. उददेश्य की प्राप्ति की आवश्यकता—इसके अनुसार व्यक्ति, बिना किसी पारितोषिक एवं सामान के लालच के, विशेष तथा अति उत्तम कार्य करता है।

2. देखभाल की आवश्यकता—इसके अनुसार कोई व्यक्ति विशेष, अन्य लोगों से किस तरह सम्बन्ध बनाता है, उन्हें जारी रखता है तथा दृढ़ करता है यह बात अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

3. शक्ति की आवश्यकता—इसके अनुसार किसी व्यक्ति विशेष में दूसरों को नियन्त्रित करने की, उन्हें प्रभावित करने की स्वाभाविक शक्ति होती है।

उपरोक्त सभी उद्देश्य अथवा गुण किसी एक ही व्यक्ति में विद्यमान तो हो सकते हैं परन्तु किसी एक ही उसमें अधिकता होती है। प्राय: उसके सभी कार्यों में, विशेषतया उसके भविष्य के चुनाव के सम्बन्ध में जहाँ वह परिपूर्णता प्राप्त कर सकता है, यह देखा गया है कि जिनमें मानव शक्ति अधिक होती है वह नेतृत्व की स्थिति अथवा पद खोजता है। ऐसे व्यक्ति अच्छे प्रबन्धक, अधिकारी अथवा सर्वेक्षण तो हो सकते हैं, परन्तु अच्छे व्यापार संस्थापक नहीं।

इसके विपरीत जिन व्यक्तियों में देखभाल की आवश्यकता अधिक हो, वे व्यक्ति जीवन में प्राय: त्याग करते हैं और सफलता के लिए झगड़ों से दूर रहते हैं। उदाहरणतया सुखी वैवाहिक जीवन की स्त्रियाँ तथा सामाजिक कार्यकर्त्ता। स्वयं उद्यमी की आर्थिक प्रगति के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ऐसी विभिन्न आदतें, विचार एवं कार्यों की आवश्यकता होती हैं जो उस उद्यम को बनाने के लिए आवश्यक है।

ग्रामीण क्षेत्रों में उद्यमितया विकास (Entrepreneurship Development in Rural Areas)

हमारे देश के ग्रामीण क्षेत्रों में उद्यमिता विकास की परम आवश्यकता है क्योंकि हमारे देश के ग्रामीण क्षेत्रों में अनियन्त्रित जनसंख्या वृद्धि, उद्योगों का अभाव, कृषि की अव्यवस्था, कृषि की मौसमी प्रकृति, वर्षा आधारित कृषि तथा भूमि का अत्यधिक विभाजन इत्यादि अनेक कारणों से बेरोजगारी का उग्र रूप में देखने को मिलता है। ग्रामीण क्षेत्रों की स्थिति आर्थिक व औद्योगिक दृष्टि से अत्यन्त दयनीय एवं पिछड़ी हुई है।

ग्रामीण क्षेत्रों में उद्यमिता विकास, उस क्षेत्र की प्रकृति एवं बदलते वातावरण के अनुरूप होना चाहिए। भारतीय ग्रामीण समाज में परम्पराएँ, रीति-रिवाज तथा नैतिक मूल्य समानुसार बदलते रहते हैं। ग्रामीण क्षेत्रे के नवयुवकों में उद्यमिता विकास के लक्षण पाये जाते हैं। अत: यदि उनकी रुचि व प्रतिभाओं का विकास किया जाये तो वे अच्छे उद्यमी सिद्ध हो सकते हैं। पूर्व अनुभवों से पता चलता है कि भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में उद्यमिता कार्य को प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है। ग्रामीण समाज प्राय: विरोधाभास की मनोवृत्ति में लिप्त रहता है। एक ओर तो ग्रामीणों में बहुत धैर्य, साहस एवं पर्याप्त अनुभव होता है, दूसरी ओर वे प्राय: जातिगत तथा अन्य प्रकार की गुटबन्दी के शिकार भी होते हैं। इस वातावरण में उद्यमिता जैसे साहसिक कार्य की

Scanned with CamScanner

शुरुआत करना अत्यन्त अव्यावहारिक एवं कठिन है। इन कारणों से ग्रामीण क्षेत्रों में उद्यमिता विकास के लिए कोई दीर्घकालीन नीति निर्धारण करने में कठिनाई का अनुभव होता है।

कृषि एवं उद्योग क्षेत्र एक-दूसरे के पूरक है। दोनों क्षेत्र ग्रामीण अंचल के उत्पादक क्षेत्र हैं तथा इनके विकास से क्षेत्र की आर्थिक स्थिति भी सुदृढ़ होती है। अत: यह आवश्यक है कि दोनों क्षेत्रों का विकास साथ-साथ किया जाये। प्राय: यह देखा गया है कि जब-जब कृषि क्षेत्रों में आय बढ़ती है तो इस क्षेत्र से जुड़े लोगों की आवश्यकताएँ भी बढ़ती हैं। इस आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उद्योग की आवश्यकता पड़ती है। इसी प्रकार जब उद्योगों द्वारा आय का स्रोत बढ़ता है तो कृषि उत्पादों की माँग में भी वृद्धि हो जाती है। अत: दोनों क्षेत्रों के सन्तुलित विकास की परम आवश्यकता होती है।

उद्यमिता विकास कार्य
(Entrepreneurship Development Programme)

उद्यमिता विकास कार्यक्रम देश के सभी शिक्षण प्रशिक्षण संस्थानों में चलाये जाते हैं। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत व्यक्ति की उपलब्धि प्रेरणा पर विशेष ध्यान एवं उनका विकास किया जाता है। इसमें व्यक्ति की प्रेरणा उपलब्धि का विकास करने के लिए कुछ मनोवैज्ञानिक खेलों का प्रयोग एक श्रृंखलाबद्ध रूप में किया जाता है। इसके उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. व्यक्ति को स्वयं का उद्यम करने को तैयार करना।
2. व्यक्ति को उसकी स्वयं की उपलब्धि योजना बनाने में सहायता देना।
3. व्यक्ति में छिपी उद्यमिता स्तर को जगाना।
4. व्यक्ति को उद्यमिता के गुणों से अवगत कराना।

उद्यमिता विकास प्रशिक्षण संस्थानों में उद्यमी को प्रशिक्षण प्रदान करने हेतु उपकरणों तथा खेल विधियों का प्रयोग किया जाता है। प्रशिक्षार्थियों को खेल जिन प्रयोगशालाओं में कराये जाते हैं उन्हें माइक्रो लैब कहते हैं। प्रयोगशाला में निम्नांकित प्रकार की खेल विधियों का प्रयोग किया जाता है—

(i) कल्पना शक्ति अभ्यास (Thematic Apperception Test)
(ii) रिंग टॉस अभ्यास (Ring Toss Test)
(iii) टॉवर बिल्डिंग अभ्यास (Tower Building Test)
(iv) उपलब्धि नियोजन अभ्यास (Achievement Planning Test)।

(i) कल्पना शक्ति अभ्यास (Thematic Apperception Test)

यह अभ्यास प्रशिक्षार्थियों की कल्पनाओं तथा मानसिकताओं को समझने की प्रभावी विधि है।

अनुदेश—इस विधि में प्रशिक्षक द्वारा उद्यमियों को चित्र दिखाये जाते हैं और चित्र दिखाते समय निर्देश दिये जाते हैं कि चित्र का ध्यानपूर्वक देखकर अपनी कल्पना के आधार पर कहानी लिखो जिसमें चित्र में दिखाया गया प्रत्येक पक्ष विद्यमान हो। चित्र दिखाने से पूर्व प्रशिक्षार्थियों को बताया जाता है कि चित्रों के पक्षों को समझने के निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार करें और उनके उत्तरों की कल्पना करें और उस पर कहानी लिखें।

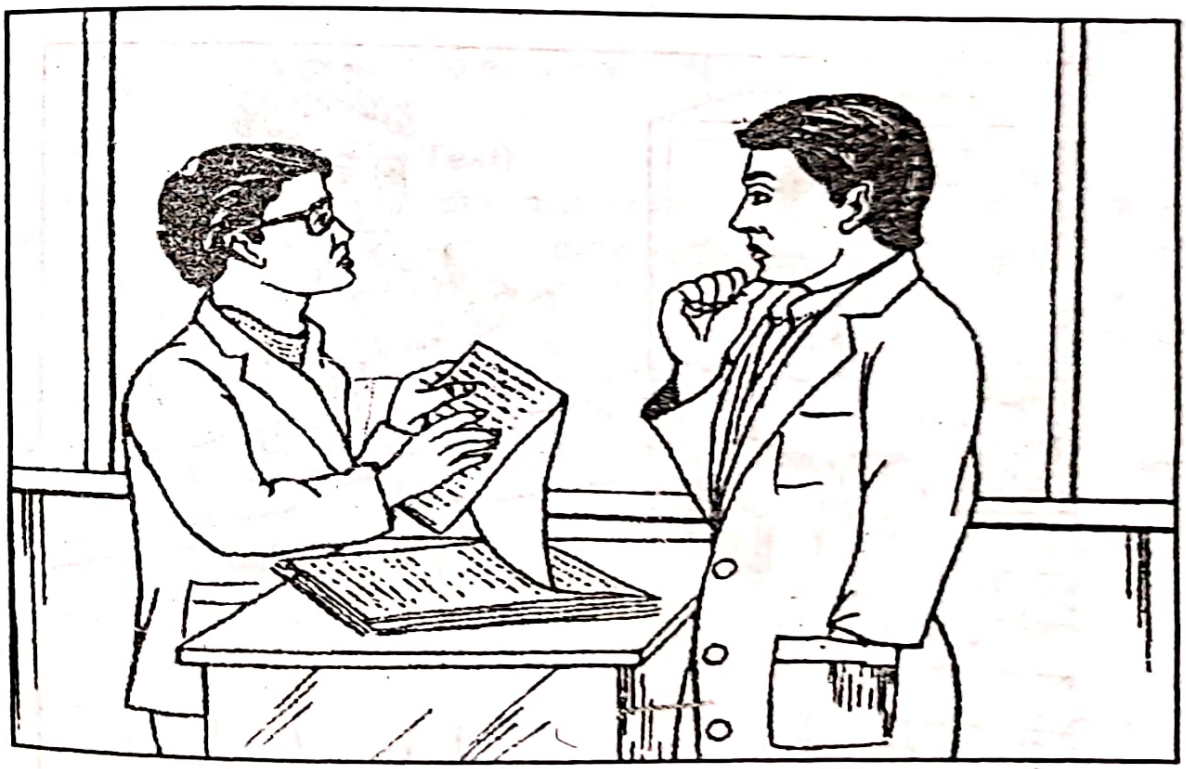
1. चित्र में क्या हो रहा है?
2. चित्र में दिखाये गये व्यक्ति कौन हैं?
3. चित्र में दिखाये गये लोगों के बीच क्या विचार किया जा रहा है?
4. इस परिस्थिति तक वे कैसे पहुँचे और पहले क्या हो चुका है?

उपर्युक्त बिन्दु प्रशिक्षार्थी को कहानी लिखने के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। बिन्दुओं के लिए पृथक-पृथक कहानी देने की आवश्यकता नहीं होती बल्कि संयुक्त रूप में कहानी दी जाती है। कहानी लिखने के लिए 5 मिनट का समय दिया जाता है और 30 सेकेण्ड तक चित्र दिखाया जाता है। इस अभ्यास में छ: चित्रों का प्रयोग किया जाता है जिनके लिए आधा घण्टा पर्याप्त होता है।

Scanned with CamScanner



चित्र 1



चित्र 2 : चित्र को 30 सेकण्ड देखकर उसके आधार पर कहानी लिखिए।

Scanned with CamScanner

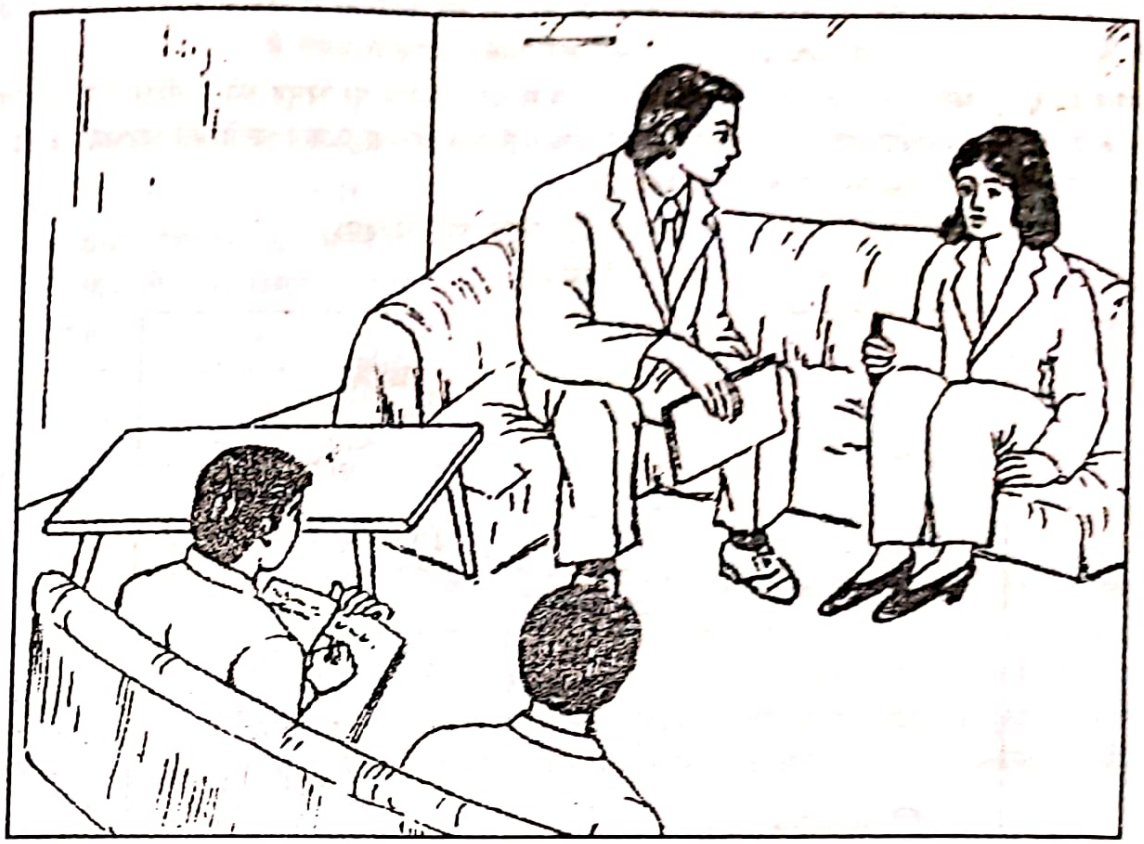


चित्र 3



चित्र 4 : चित्र को 30 सेकण्ड देखकर उसके आधार पर कहानी लिखिए।

Scanned with CamScanner



चित्र 5 : चित्र को 30 सेकण्ड देखकर उसके आधार पर कहानी लिखिए।

(ii) रिंग टॉस अभ्यास (Ring Toss Test)

रिंग टॉस अभ्यास के माध्यम से भावी उद्यमियों में जोखिम लेने की क्षमता का बोध कराया जाता है। इस अभ्यास के लिए प्रशिक्षक को इसके परिणामों पर विशेष चर्चा करने की आवश्यकता होती है। यह अभ्यास किसी खुले स्थान में कराया जाता है। तथा अभ्यासरत व्यक्ति के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों को अभ्यास प्रक्रिया की जानकारी नहीं दी जाती है।

इस अभ्यास में चार छल्ले होते हैं जो लगभग 2 inch चौड़ाई तथा 9 inch व्यास के होते हैं। इसके अतिरिक्त एक लकड़ी की बनी खूँटी (Wooden Peg) का प्रयोग किया जाता है जो लकड़ी के बने एक आधार में ऊर्ध्वाधर खड़ी होती है। इस खूँटी का प्रयोग उसमें छल्ले डालने के लिए किया जाता है।

अभ्यास का प्रथम चरण (First Step)—सबसे पहले प्रशिक्षक प्रत्येक प्रशिक्षार्थी को एकान्त स्थान पर अभ्यास की प्रक्रिया समझाता है।

प्रक्रिया के अन्तर्गत प्रशिक्षार्थियों को चार छल्ले दिये जाते हैं और इन छल्लों (Rings) की खूँटी (Peg) में पिरोने के लिए न्यूनतम 1 फुट (Foot) से लेकर 10 फुट तक की दूरी से फेंका जा सकता है।

सभी छल्लों को एक ही दूरी से फेंका जाता है तथा अभ्यास के दौरान इस दूरी में कोई परिवर्तन नहीं होता है। जो दूरी प्रशिक्षार्थी द्वारा चुनी जाती है उसे प्रशिक्षक को सूचित कर दिया जाता है। अब छल्लों को फेंकने की प्रक्रिया प्रारम्भ की जाती है। खूँटी में सभी छल्लों को फेंकने के बाद प्रशिक्षक प्रशिक्षणार्थी को निम्न प्रश्नों के उत्तर लिखने को कहता है—

(i) अभ्यार्थी ने किस आधार पर उस दूरी का चयन किया?

(ii) छल्ले फेंक लेने के बाद परिणाम के बारे में उसकी क्या भावनायें हैं?

(iii) किन कारणों से उसे यह परिणाम प्राप्त हुआ?

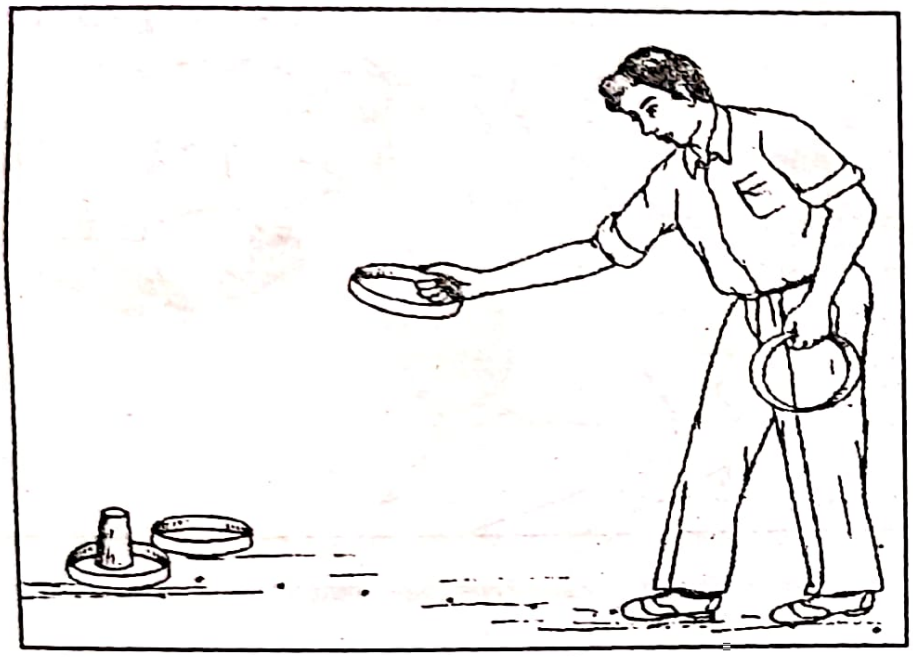
Scanned with CamScanner

इस अभ्यास में प्रशिक्षार्थी जब इस दूरी का चयन करता है जहाँ से वह आसानी से छल्ला खूँटी में फेंक सकता है, तो चयनित दूरी के आधार पर ही उसकी जोखिम लेने की क्षमता का आकलन किया जाता है।

अभ्यास का दूसरा चरण (Second Step)—द्वितीय चरण में यह अभ्यास पूरे समूह की उपस्थिति में कराया जाता है। इस अभ्यास के दौरान सभी प्रशिक्षाणार्थी परस्पर वार्तालाप कर सकते हैं और छल्ला फेंकने वाले को प्रोत्साहित भी कर सकते हैं। इस दौरान प्रशिक्षक निम्न बातों का विशेष ध्यान रखता है—

(i) अभ्यार्थियों की संख्या के अनुरूप ही क्रम से रिंग फेंके जाने चाहिए।

(ii) इस चरण की क्रियाओं में स्वाभाविकता होनी चाहिए।



चित्र 6 : रिंग टॉस अभ्यास।

इस अभ्यास के अन्त में सभी प्रशिक्षणार्थियों से प्रथम चरण के प्रश्नों का उत्तर प्राप्त किया जाता है। इसके अतिरिक्त वे अपनी सुविधा के अनुसार स्थान में परिवर्तन भी कर सकते हैं। इस अभ्यास का मुख्य उद्देश्य बदली हुई परिस्थितियों में कार्यपालन करने का अनुभव देना तथा प्रशिक्षणार्थी के व्यवहार में परिवर्तन को जानना है।

अभ्यास का तीसरा चरण (Third Step)—तृतीय चरण शुरू करने से पूर्व प्रशिक्षक यह घोषणा करता है कि जो प्रशिक्षार्थी इस चरण में भाग लेना चाहते हैं, वे प्रशिक्षक के पास पाँच रु० शुल्क के रूप में जमा करा दें। इसके साथ ही वह प्रत्येक सफलता एवं दूरी के अनुपात में एक इनाम की घोषणा भी करता है। प्रशिक्षक किसी भी एक प्रशिक्षु को बैंकर बनाकर उसे समस्त पैसा सँभालने एवं सफलता को नोट करने के लिए कहता है। इस प्रकार समस्त प्रशिक्षुओं को अधिक से अधिक छल्ले फेंकने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

रिंग टॉस अभ्यास की समीक्षा (Analysis of Ring Toss Exercise)

तीसरे चरण की समाप्ति पर प्रशिक्षार्थियों में पहले चरण में उल्लेखित प्रश्नों के उत्तर पुन: प्राप्त किये जाते हैं तथा पूरे अभ्यास की एक साथ समीक्षा की जाती है। यह समीक्षा अभीष्ट लक्ष्य की दिशा में होनी चाहिए तथा इसमें निम्न बिन्दुओं पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

(i) प्रशिक्षार्थी के व्यवहार की समीक्षा भी की जानी चाहिए।

(ii) तीसरे चरण की विवेचना करते समय पहले एवं दूसरे चरण की सूचनाओं पर भी विचार केन्द्रित किया जाना चाहिए।

Scanned with CamScanner

(iii) अभ्यास के प्रत्येक चरण की उपयुक्त विवेचना की जानी चाहिए।
(iv) समीक्षा लक्ष्य की दिशा में ही होनी चाहिए।

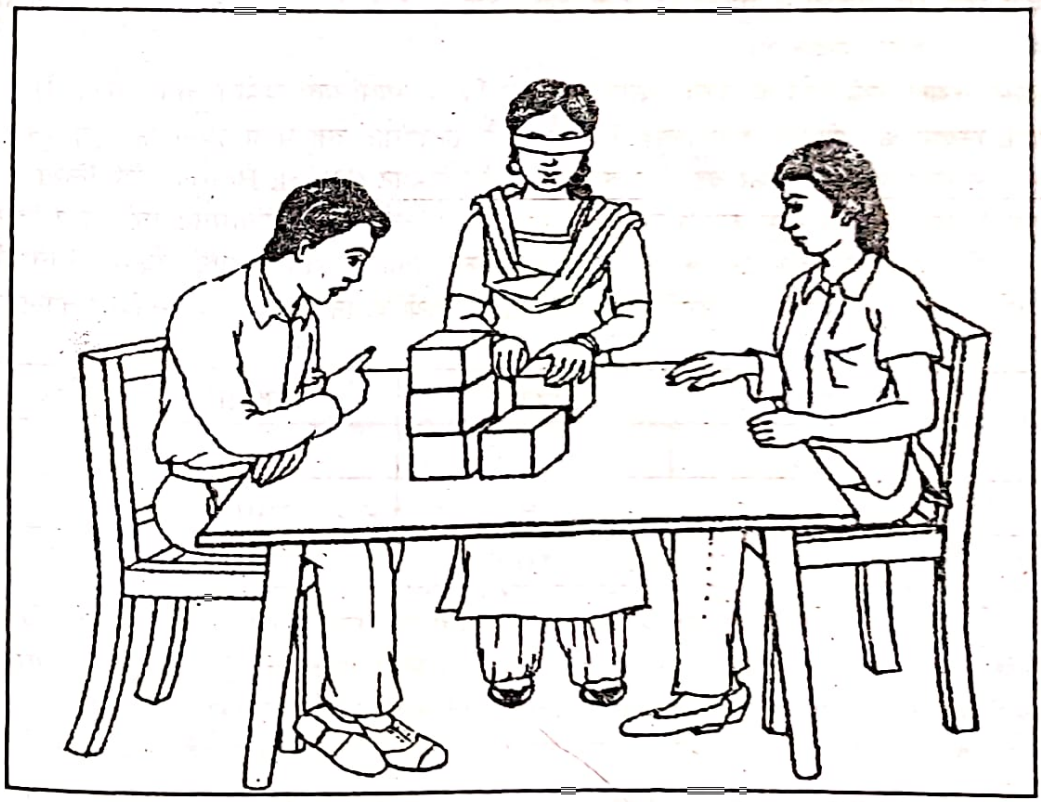
(iii) टॉवर बिल्डिंग अभ्यास (Tower Building Test)

उद्देश्य—टॉवर-बिल्डिंग अभ्यास निम्न उददेश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है—

(i) उद्यमी प्रशिक्षार्थी को अपने लक्ष्य के निर्धारण में दृढ़ता प्रदान करना।
(ii) निर्णय लेने की क्षमता व दृढ़ता में वृद्धि करना।
(iii) उपलब्धि, उत्प्रेरण एवं व्यवहार को सशक्त बनाना तथा प्रशिक्षार्थी को उसकी क्षमताओं के प्रति जागरूक करना।
(iv) उद्देश्य, निर्धारण एवं आकांक्षाओं के अन्तर को समझना।
(v) पारिवारिक, सामाजिक परिस्थितियों के बीच निर्णय लेना।

उपकरण (Equipment)—टॉवर-बिल्डिंग अभ्यास में स्तम्भ निर्माण के लिए लगभग 25 लकड़ी के छोटे-छोटे आकार के टुकड़ों का प्रयोग किया जाता है। लकड़ी के गुटके कच्चे माल का प्रतीक होते हैं तथा स्तम्भ निर्माण प्रक्रिया किसी भी परियोजना की प्रतीक होती है।

परिचय (Introduction)—टॉवर बिल्डिंग अभ्यास का परिचय करते हुए प्रशिक्षार्थियों को निर्देशित किया जाता है कि वे तीन-तीन के समूहों में बाँटा जाये तथा प्रत्येक ग्रुप में एक प्रशिक्षु उद्यमी की भूमिका अदा करेगा तथा शेष दो प्रशिक्षार्थी उसके माता-पिता की भूमिका अदा करेंगे। इसमें प्रत्येक ग्रुप के प्रशिक्षुओं को नाटकीय ढंग से अपनी-अपनी भूमिका का अभिनय करने के लिए निर्देशित किया जाता है। उनकी पारिवारिक स्थिति लघु एवं कुटीर उद्योग की सूचक होती है। तत्पश्चात् टॉवर बिल्डिंग का खेल विभिन्न चरणों में कराया जाता है। चित्र में टॉवर बिल्डिंग अभ्यास को दर्शाया गया है।



चित्र 7 : टॉवर बिल्डिंग अभ्यास।

Scanned with CamScanner

टॉवर बिल्डिंग अभ्यास के चरण (Steps of Tower Building Exercise)

टॉवर बिल्डिंग अभ्यास के मुख्य चरण निम्नांकित हैं—

प्रथम चरण (First Step)—प्रथम चरण में प्रशिक्षक निम्न प्रकार एक ग्रुप की घोषणा करता है—

आपको उद्यमी तथा उसके माता-पिता की भूमिका निभानी है। दिये हुए लकड़ी के गुटकों को कच्चे-माल का प्रतीक मानते हुए आपको स्तम्भ का निर्माण करना है। अब देखना यह है कि आप कितना ऊँचा और स्थित स्तम्भ का निर्माण कर पाते हैं।

दूसरा चरण (Second Step)—दूसरे चरण में निम्नांकित उद्घोषणएँ की जाती हैं—

(i) प्रशिक्षार्थी आपस में परस्पर वार्तालाप न करें।

(ii) उद्यमी के माता-पिता का अभिनय करने वाले व्यक्ति उद्यमी अपने विचार से लक्ष्य निर्धारित करके उद्यमी को कितने गुटकों का स्तम्भ बनाना है, किन्तु उन्हें अपना विचार चुपचाप बनाना है।

(iii) चयनित लक्ष्य को माता-पिता एक कागज पर लिख लें।

(iv) उद्यमी खुद भी अपना लक्ष्य निर्धारण कर लें तथा उसे कागज पर लिख ले।

(v) माता-पिता और उद्यमी परस्पर मिलकर अभीष्ट लक्ष्य का निर्धारण करें।

(vi) स्तम्भ को सीधा, ऊँचा और स्थिर टॉवर के रूप में बनाना है।

तीसरा चरण (Third Step)—उद्यमी का अभिनय करने वाले व्यक्ति को टॉवर बिल्डिंग बनाने के लिए केवल 10 मिनट का समय दिया जाता है। अपने कार्य के सम्बन्ध में उसे निम्नांकित निर्देश दिये जाते हैं—

(i) उद्यमी को अभ्यास के दौरान अपनी आँखों पर पट्टी बाँधनी है, ताकि उसे कुछ दिखाई न दे, जैसा कि चित्र में दर्शाया गया है।

(ii) माता-पिता को लकड़ी के गुटकों को स्पर्श नहीं करना है। यदि वे चाहें तो केवल मुँह से बोलकर ही पुत्र/पुत्री की सहायता कर सकते हैं।

(iii) उद्यमी केवल उसी हाथ का प्रयोग करेगा जिसका कि वे सामान्यत: प्रयोग नहीं करता है।

उपरोक्त सभी नियमों को प्रशिक्षक द्वारा लिख दिया जाता है। तत्पश्चात् वह माता-पिता को पुत्र/पुत्री के लिए अभीष्ट लक्ष्य निर्धारित करने के लिए कहता है। फिर वह तीनों के लक्ष्यों को श्यामपट (Black Board) पर लिख देता है। इस प्रकार अभ्यार्थियों को एक के बाद एक अभ्यास कराया जाता है और उनके लक्ष्यों को भी श्यामपट पर लिख दिया जाता है। उन्हें निर्णय की तुलना भी की जाती है कि किस तथ्य के आधार पर और किस प्रकार उन्होंने अभीष्ट लक्ष्यों को निर्धारित किया।

उदाहरण (Example)—उद्यमी तथा उसके माता-पिता द्वारा लक्ष्यों के निर्धारण को निम्नांकित तालिका में दर्शाया गया है—

चरण	माता	पिता	उद्यमी	लक्ष्य की प्राप्ति
प्रथम चरण	14	7	6	7
दूसरा चरण	9	8	10	8
तीसरा चरण	11	10	14	10

विश्लेषण (Analysis)—किसी एक ग्रुप के सभी प्रशिक्षार्थियों के क्रिया-कलापों को देखकर प्रशिक्षक इस बात का अध्ययन करता है कि लक्ष्य प्राप्ति हेतु वे किस प्रक्रिया को अपनाते हैं। माता-पिता एवं पुत्र/पुत्री को विचार-विमर्श व निर्णय लेने हेतु कुछ समय दिया जाता है। यह भी देखा जाता है कि निर्णय लेने में कौन अधिक प्रभावी सिद्ध होता है और क्यों? इसके अतिरिक्त अभ्यास में तीनों की सहभागिता का स्तर, निर्णय का स्तर तथा उत्साह का स्तर भी देखा जाता है।

सहायता/प्रोत्साहन (Help or Encouragement)—यह इस अभ्यास का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है। अभ्यास के दौरान माता-पिता का अभिनय करने वाले व्यक्ति अपने पुत्र/पुत्रों प्रशिक्षु को सहायता/प्रोत्साहन देने हेतु कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं; जैसे—'बहुत अच्छा', 'बिल्कुल ठीक', 'एकदम ठीक', तथा 'अब आगे बनाओ' इत्यादि। कभी-कभी कुछ अन्य

Scanned with CamScanner

प्रकार के शब्दों का प्रयोग भी किया जाता है। जैसे—टॉवर गिरने वाला है। 'तुम मेरे निर्देश को नहीं मान रहे हो', 'वैसा ही करो जैसा मैं कहता हूँ इत्यादि। इस प्रकार की सहायतार्थ व प्रोत्साहनार्थ टिप्पणियों का ग्रुप तीसरे पात्र पर क्या प्रभाव पड़ता है। इस बात का अध्ययन भी प्रशिक्षक द्वारा किया जाता है और अभ्यास के पूरा होने के पश्चात् सभी पात्रों को इनके प्रभाव के विषय में ज्ञात कराता है।

सावधानियाँ (Precautions)

टॉवर बिल्डिंग अभ्यास के दौरान मुख्यत: निम्नांकित सावधानियाँ बरती जानी चाहिए—

(i) पूर्वाभ्यास की अनुमति कदापि नहीं दी जानी चाहिए।
(ii) ग्रुप के बीच प्रशिक्षण द्वारा ऐसी कोई विवेचना नहीं करनी चाहिए जिससे कोई व्यक्ति निराश या हतोत्साहित हो।
(iii) उद्यमी प्रशिक्षु की आँखों पर पट्टी बंध जाने के बाद ही उसे कच्चे माल को स्पर्श करने की अनुमति प्रदान की जानी चाहिए।
(iv) प्रशिक्षक को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि ग्रुप के सदस्यों द्वारा उसके निर्देशों का अक्षरश: पालन किया जा रहा है अथवा नहीं।
(v) प्रशिक्षक को जानना चाहिए कि उद्यमी की आँखों पर बंधी पट्टी उद्यमिता की अज्ञानता तथा असहायता का सूत्रक मात्र है और दूसरे के हाथ में अभ्यास का अर्थ अनुभव व फैशन के प्रतीक हैं।

(iv) उपलब्धि नियोजन अभ्यास (Achievement Planning Test)

उद्यमी प्रशिक्षु को उसके प्रशिक्षणकाल के दौरान कराये जाने वाले इस अभ्यास में उसे अपने उद्यमीय जीवन को और अधिक सन्निकटता से देखने को मौका मिलता है। इस अभ्यास में प्रशिक्षुओं को अपनी उपलब्धि का नियोजन करना तथा अपना लक्ष्य निर्धारित करना सिखाया जाता है।

उद्देश्य (Objectives)—इस अभ्यास के प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं—

(i) यह अभ्यास उद्यमियों को अपने मस्तिष्क में उपलब्धियों को नियोजन करना सिखाता है।
(ii) प्रशिक्षु उद्यमी को अपना लक्ष्य निर्धारित करना सिखाता है।
(iii) यह उपलब्धि नियोजन पर अपने विचारों को केन्द्रित करना सिखाता है।
(iv) प्रतिस्पर्द्धा की स्थिति में कार्य करना सिखाता है।
(v) उपलब्ध समय तथा परिणामों की प्राप्ति के बीच उसे अपना व्यवहार समझने का अवसर प्रदान करता है।

आवश्यक सामग्री (Materials Required)—उपलब्धि नियोजन अभ्यास हेतु निम्न सामग्री की आवश्यकता होती है—

(i) एक श्यामपट (Black Board)
(ii) 4 वर्गाकार साइज के प्रत्येक अभ्यार्थी के लिए लगभग 20 कागज। ये कागज एक सतह पर रंगीन चमकदार या छापेदार होने चाहिए।
(iii) अभ्यास के आँकड़े नोट करने के लिए रिकार्ड शीट।

अभ्यास विधि (Practice Method)—इस अभ्यास में प्रशिक्षार्थियों को दो ऐसे उत्पादों का निर्माण करने का अभ्यास कराया जाता है जो एक जैसी प्रवृत्ति के होते हैं। जैसे—कागज की नाव बनाना तथा कागज का मून-टेंट (Moon-tent) बनाना इत्यादि।

उपरोक्त उत्पादों का निर्माण करने हेतु सबसे पहले प्रशिक्षार्थी प्रशिक्षक की मदद से उत्पाद की लागत का आगणन (Cost Estimating) करते है। इसके बाद प्रशिक्षक उत्पाद तैयार करने की प्रक्रिया प्रशिक्षार्थियों के समक्ष खुद करके दिखाता है। सभी आवश्यक संक्रियाओं को समझाने के उपरान्त प्रशिक्षक, प्रशिक्षार्थियों को निम्न चरणों में उत्पाद का निर्माण करने को कहता है—

Scanned with CamScanner

प्रथम चरण (First Step)—प्रथम चरण में प्रशिक्षक द्वारा निम्नांकित घोषणाएँ की जाती हैं—

(i) प्रशिक्षार्थी स्वयं को उद्योग का स्वामी, प्रबन्धक तथा विक्रयकर्त्ता समझे। वह एक पूर्ण विकसित उद्यमी है और उसका एकल स्वामित्व प्रतिष्ठान (Single ownership Establishment) है। इस प्रतिष्ठान में कागज की नावों (Paper Boats) का निर्माण किया जाना है। इस प्रक्रिया में प्रशिक्षक स्वयं ही कच्चे माल के आपूर्तिकर्त्ता (Supplier) तथा तैयार माल (Finished Goods) क्रेता (Purchaser) की भूमिका अदा करता है।

(ii) प्रशिक्षार्थी बनाये गये उत्पाद को बेचकर लाभ अर्जित कर सकते हैं। दी गई डाटा शीट पर प्रशिक्षार्थी को प्रारम्भिक आगणन तैयार करना है।

(iii) अब प्रशिक्षक कागज की नाव की निर्माण सम्बन्धी सभी प्रक्रियाएँ प्रशिक्षार्थी को स्वयं करके दिखाता है तथा मानकों (Standards) के सम्बन्ध में भी बताता है। फिर प्रशिक्षार्थी को आगणन तैयार करके परिशिष्ट 1 (Appendix-1) भरने को कहता है।

दूसरा चरण (Second Step)—प्रशिक्षक द्वारा प्रशिक्षार्थियों को नाव बनाने वाली पेपर शीट दी जाती है और वह कहता है कि यह शीट आपको मुफ्त दी जा रही है जिस पर आपको नाव बनाने का अभ्यास करना है। जब प्रशिक्षार्थी कागज की नाव बना लेते हैं तो उन्हें रिकॉर्ड शीट के पार्ट-B को भरने के लिए प्रशिक्षक द्वारा कहा जाता है, जिसमें वह लिए गये समय को मान भरते हैं साथ ही वे रिकॉर्ड शीट के पार्ट-C को भी पूरा करते हैं, जिसमें वे पार्ट-A के अनुमान पर पुनः विचार करके नये सिरे से अनुमान लगाते हैं। (देखिये Appendix-1)। यदि पार्ट-A तथा C में अन्तर है तो प्रशिक्षार्थी को पार्ट D भी भरने के लिए कहा जाता है।

तीसरा चरण (Third Step)—इस चरण में प्रशिक्षक द्वारा प्रशिक्षार्थियों को वास्तविक उत्पादन का प्रशिक्षण दिया जाता है और प्रशिक्षक द्वारा उन्हें निर्देशत किया जाता है कि वे उससे कच्चा-माल खरीदें, उत्पाद तैयार करें और तैयार उत्पाद को बेच कर लाभ-हानि का लेखा-जोखा तैयार करें। प्रशिक्षक उत्पादों को खरीदते समय उनकी गुणवत्ता (Quality) को परखता है और मानक (Standard) के अनुसार सही पाये गये उत्पादों को ही खरीदता है। इसके बाद प्रशिक्षार्थी गण डाटा-शीट (Data-Sheet) का पार्ट-E भरते हैं और जुर्माने (Penalty) को लागत में समावेशित करते हुए लाभ-हानि की गणना करते हैं।

एक अभ्यास पूर्ण हो जाने पर प्रशिक्षक प्रशिक्षार्थियों के गुणात्मक स्तर की विवेचना करता है और दूसरे अभ्यास के लिए उन्हें तैयार करता है।

Appendix-I

A. First Estimate :

1. How many units can you make in five minutes? ☐
2. How confident are you about this expert your confidence in term of percentage? ☐
3. How do you think so? ☐

.....

.....

.....

B. Time Trial : ☐

Time taken by you to manufacture one unit. ☐

C. Revised Estimate :

1. How many units can you make in five minutes? ☐
2. What is your investment? ☐
3. How confident are you about this capacity? ☐

Scanned with CamScanner

4. What do you think so?

.....

.....

.....

D. Penalty

1. What was the Difference (in units) between 'first' and 'Revised' Estimates?

2. What is the penalty? State the difference in 'first' and 'Revised' Estimates?

E. Performance on Production run :

1. How many units did you make?
2. How many units did you sell?
3. What was your income? (Units old × 1500)
4. What is your Profit/Loss, difference between C (2) and E (3)? Profit Loss
5. What is your Profit/Loss after penalty? Profit Loss

F. What factors are contributed to the Profit or Loss?

.....

.....

.....

Appendix-II

Penalty Chart

Penalty for the difference between 'First' Estimate and 'Revised' Estimate.	
Difference Estimate	Penalty (a)
By 1 more or 1 less	500
By 2 more or 2 less	1000
By 3 more or 3 less	1500
By 4 more or 4 less	2000
By 5 more or 5 less	2500
By 6 more or 6 less	3000
By 7 more or 7 less	3500
By 8more or 8 less	4000
By 9 more or 9 less	4500
By 10 more or 10 less	5000

Scanned with CamScanner

Investment/Profit/Loss Chart

Price of Raw Materials		Cost of Raw Materials	Selling Price	Profit
First slab @ Rs. 10,000/-per sheet	1 Sheet	10000	15000	5000
	2 Sheets	20000	30000	10,000
	3 Sheets	30000	45000	15,000
Second slab @ Rs. 9,500/-per sheet	4 Sheets	38000	60,000	22,000
	5 Sheets	47500	75,000	27,500
	6 Sheets	57000	90,000	33,000
	7 Sheets	66500	1,05,000	38,500
Third slab @ Rs. 9,000/-per sheet	8 Sheets	72,000	1,20,000	48,000
	9 Sheets	81,000	1,35,000	54,000
	10 Sheets	90,000	1,50,000	60,000

उपलब्धि उत्प्रेरणा (Achievement Motivation)

"उपलब्धि प्राप्त करने की जरूरत और प्राप्ति के बाद इसमें सुधार (Improvement) करने की उत्कण्ठा, मनुष्य की प्रवृत्ति के अंग हैं।"

विद्वानों एवं मनोवैज्ञानिकों के मतानुसार जिन व्यक्तियों के सोच-विचार में अपने कार्य को अच्छी प्रकार करने, उसमें सुधार लाने तथा अपने व्यवसाय को आगे बढ़ाने की प्रवृत्ति होती है, उनमें उपलब्धि उत्प्रेरणा के लक्षण होते हैं। ऐसे व्यक्ति उपलब्धियों के लक्ष्य को निर्धारित करते हैं, उन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कार्य करते हैं, अपने मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करते हैं और जोखिम लेने से भी हिचकिचाते नहीं हैं।

परिभाषा (Definitions)—उपलब्धि उत्प्रेरणा को कई प्रकार से परिभाषित किया गया है। कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं—

1. "मनुष्य के अन्दर छिपी हुई उसकी गुप्त मनोवृत्ति जो उसे विशेष लक्ष्य, स्तर अथवा गोल (Goal) प्राप्त करने के लिए उत्प्रेरित करती है, उपलब्धि कहलाती है।"
2. "वह सामाजिक मूल्य, जो मनुष्य को उसके अन्दर छिपी आन्तरिक इच्छाओं की पूर्णता की ओर अग्रसित करें, उपलब्धि उत्प्रेरणा कहलाती हैं।"

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि "एक ऐसी इच्छा शक्ति जो मनुष्य के कुछ कठिन कार्य करने, उसय पर महारथ हासिल करने, श्रम-शक्ति तथा अन्य भौतिक संसाधनों आदि का प्रबन्ध करने, कार्य को गतिपूर्वक तथा स्वतन्त्र रूप से करने, कठिनाइयों पर विजय हासिल करने तथा उच्च मानकों को और अग्रसर होने के लिए प्रेरित करें, उपलब्धि उत्प्रेरणा कहलाती है।"

उपलब्धि उत्प्रेरणा के लक्षण (Characteristics of Achievement motivation)

कुछ व्यक्तियों में उपलब्धि प्राप्त करने की उत्प्रेरणा बहुत अधिक होती है जिसकी पहचान निम्न लक्षणों से होती है—

(i) ऐसे व्यक्ति, नवीनता के प्रति जागरूक होते हैं।

(ii) अपनी गतिविधियों को चुस्त-दुरुस्त रखते हैं।

(iii) व्यक्तियों के पारस्परिक प्रतिद्वन्दिता के परिचायक होते हैं।

Scanned with CamScanner

(iv) प्रतिकूल परिस्थितियों में सहनशीलता बनाये रखते हैं।
(v) भविष्य के प्रति सचेत रहते हैं।
(vi) जोखिम उठाने अथवा जोखिम भरे साहसपूर्ण कार्य करने के लिए तत्पर रहते हैं।
(vii) दायित्वों को निभाने के लिए तत्पर रहते हैं।
(viii) अपने द्वारा किये जा रहे प्रयासों के परिणामों को जानने को उत्सुक रहते हैं।

10.2 उद्यमी एवं प्रबन्धक में अन्तर

प्रथम दृष्टया हम उद्यमी एवं प्रबन्धक को एक ही मानते हैं। किन्तु गहराई से विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि कार्यों, प्रकृति व विशेषताओं के आधार पर उद्यमी एवं प्रबन्धक में कतिपय भिन्नतायें पायी जाती हैं जिन्हें निम्नलिखित ढंग से समझा जा सकता है—

1. उद्यमी जोखिम उठाते हैं, कष्ट सहते हैं, तथा निवेशकों एवं अन्य संसाधन प्रदाताओं के साथ सम्पूर्ण जोखिम का वहन करते हैं। जबकि प्रबन्धक जोखिम वहन नहीं करता वरन उद्यम में एक प्रबन्धक के रूप में सौंपे गये दायित्व की पूर्ति करने की दायी होता है।
2. उद्यमी अपने अधिकार को विभिन्न स्तर के प्रबन्धकों, कर्मियों को प्रत्यायोजित करता है, अर्थात् उद्यम के समस्त कर्मचारी प्रबन्धक उसी से प्राप्त प्राधिकार से अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हैं जबकि प्रबन्धक, उद्यमी द्वारा सौंपे गये कार्य हेतु अपनी सेवायें देता है।
3. उद्यमी किसी उद्यम (व्यवसाय) का स्वामी होता है जबकि प्रबन्धक उद्यमी द्वारा नियुक्त किया जाता है।
4. उद्यम अपने (प्रायः) जन्मजात गुणों यथा: सहास, सूझ-बूझ, दूरदर्शिता, संगठनीकरण की क्षमता, आदि के कारण निर्मित होते हैं। अर्थात् उद्यम की स्थापना करते हैं जबकि प्रबन्धक अपने शैक्षणिक ज्ञान, उपाधि, कौशल के कारण इन पदों पर नियुक्त होते हैं।
5. जोखिम वहन करने अर्थात् उद्यम स्थापित करने के साहस के कारण उद्यमी को लाभ, पुरस्कार प्राप्त होता है जबकि अपनी सेवायें प्रदान करने के कारण प्रबन्धक को वेतन पारिश्रमिक के रूप में प्राप्त होता है।
6. उद्यमी अवसर को भुनाता है अर्थात् चुनौतियों में छिपे अवसर को पहचान कर उनका लाभ उठाता है जबकि प्रबन्धक उद्देश्यों का निर्माण करता है।
7. उद्यमी जोखिम वहन करता है जबकि प्रबन्धक नीतियों का निर्माण करता है।
8. उद्यमी प्रवर्तक (अन्वेषक) होता है जबकि प्रबन्धक प्रशासक होता है।
9. उद्यमी दृढ़ निश्चयी होता है जबकि प्रबन्धक आश्वस्त (विश्वासपूर्ण) होता है।
10. उद्यमी स्वप्नदर्शी (दूरदर्शी) होता है जबकि प्रबन्धक नियोजक होता है।
11. उद्यमी के प्राधिकार असीमित होते हैं जबकि प्रबन्धक के प्राधिकार सीमित होते हैं।
12. उद्यमी के कार्य, दायित्व असीमित होते हैं जबकि प्रबन्धक के कार्य एवं दायित्व सीमित होते हैं।

10.3 परियोजना प्रस्ताव (Project Proposal)

किसी भी कार्य को योजनाबद्ध तरीके से सोचे-समझे बिना प्रारम्भ कर देने पर बहुत ही कठिनाइयाँ, जटिलताएँ व समस्यायें उत्पन्न हो सकती हैं, साथ ही समय, श्रम व धन का सही रूप से उपयोग भी नहीं हो पाता है। अतः किसी भी कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने तथा उसके अभीष्ट उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये उसकी विस्तृत परियोजना तैयार करना अति आवश्यक है, ताकि कार्य में आने वाली सम्भावित समस्याओं व उनके हल के बारे में पहले से ही विचार किया जा सके।

सामान्यतः निजी उद्योग चलाने वाले उद्यमियों के पास इतनी अधिक पूँजी नहीं होती कि उसे लगाकर वह उद्योग प्रारम्भ कर सकें। वह उद्योग में अपनी पूँजी किसी वित्तीय संस्था से ऋण के रूप में लेता है, किन्तु ऋणदाता तभी ऋण देता है जबकि उसे यह पूर्ण विश्वास हो जाता है कि उसका दिया हुआ ऋण डूबेगा नहीं। इसके लिये वह उद्योग की पूरी रूपरेखा को भली-भाँति देखता है तथा सभी सम्भावित पहलुओं को गहन विचार करता है। जैसे—उद्यमी को कितने धन की आवश्यकता होगी, कितना लाभ होगा, कितने समय में वह किस ढंग से उसे ऋण की वापसी मिल जायेगी। अतः स्पष्ट है कि ऋण लेने

Scanned with CamScanner

वाला उद्यमी उद्योग-धन्धे प्रारम्भ करने से पहले ही उसमें लगने वाली पूँजी के उपयोग एवं प्रतिफल के सम्पूर्ण विवरण सहित पूरी जानकारी ऋणदाता के समक्ष प्रस्तुत करता है, जिसे औद्योगिक परियोजना प्रस्ताव (Industrial Project Proposal) कहा जाता है।

परियोजना प्रस्ताव के मुख्य उद्देश्य (Main Objectives of the Project Proposal)—परियोजना प्रस्ताव के प्रमुख उद्देश्य निम्नांकित हैं—

(i) इससे उद्योग के बारे में विस्तृत जानकारी पहले से ही प्राप्त हो जाती है।
(ii) ऋण के रूप में आवश्यक पूँजी लेना सुगम हो जाता है।
(iii) उद्योग के लिए आवश्यक भूमि, भवन, मशीनरी, शोध, विकास तथा प्रशिक्षण कार्यक्रम इत्यादि पर लगने वाला पूँजी व्यय ज्ञात हो जाता है।
(iv) इससे कार्य समयबद्ध एवं योजना बद्ध तरीके से सम्पन्न हो जाता है।
(v) उद्योग-धन्धे आदि से अन्त तक निर्बाध रूप से चलते रहते हैं।
(vi) उद्योग को संस्थापित करने व उसे चलाने में आने वाली सम्भावित कठिनाइयों व जटिलताओं के हल विशेषों से विचार-विनिमय द्वारा निकाले जा सकते हैं।
(vii) इससे संयन्त्र, उपकरण, मशीनरी एवं अन्य साज-सज्जा पर होने वाले मूल्य ह्रास (Depreciation) का आभास मिल जाता है।
(viii) कच्चे माल, श्रम, मरम्मत, अनुरक्षण व अन्य ऊपरी खर्चों पर आने वाले अनुमानित व्यय से सम्बन्धित विवरण की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त हो जाती है।
(ix) इससे उद्योग-धन्धे में होने वाले लाभ का पूर्वानुमान लग जाता है।
(x) इससे पूँजी की प्रकृति तथा विभिन्न कार्यों हेतु निवेश इत्यादि की पूर्ण जानकारी प्राप्त हो जाती है।

वित्तीय निगमों, विकास बैंकों तथा अन्य सरकारी विभागों द्वारा प्रोजेक्ट रिपोर्ट में वांछित जानकारी (Information Required by Financial Institutions, Development Banks and other Government Departments in the Project Reports)

उपरोक्त संगठनों, विभागों तथा एजेन्सियों द्वारा निम्न आशयों की जानकारी हेतु प्रोजेक्ट का मूल्यांकन कराया जाता है—

(i) उद्यमी की प्रबन्धकीय तथा उद्यमीय क्षमताएँ।
(ii) प्रोजेक्ट के शुरू होने के बाद होने वाला सामाजिक-वित्तीय लाभ।
(iii) वर्तमान एवं भविष्य में उत्पाद की माँग।
(iv) प्रोजेक्ट की तकनीकी सम्भावयता (Technical Feasibility)।
(v) प्रोजेक्ट की वित्तीय स्थिति।

उपरोक्त का संक्षिप्त विवरण निम्न है—

(i) उद्यमी की प्रबन्धकीय तथा उद्यमीय क्षमताएँ (Managerial and Entrepreneurial Capacity)—एक उद्यम की सफलता सुनिश्चित करने के लिए उद्यमी में प्रबन्धकीय तथा उद्यमीय क्षमताओं का होना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए प्राय: सभी वित्तीय संस्थायें अपने-अपने तरीके से यह जानने का प्रयास करती है कि उद्यमी में ये क्षमतायें अथवा गुण है या नहीं। एक प्रोजेक्ट रिपोर्ट में उद्यमी की शैक्षिक योग्यता, पारिवारिक पृष्ठभूमि, उद्योग व्यापार अथवा सेवा का पुराना अनुभव, दूसरे उद्योग की जानकारी तथा नये विचारों को ग्रहण करने की क्षमता आदि का विस्तृत वर्णन होना चाहिए। इससे उद्यमी की उद्यमीय प्रबन्धक क्षमताओं का पता चलता है।

(ii) प्रोजेक्ट के शुरू होने के बाद होने वाला सामाजिक-वित्तीय लाभ (Social Financial Advantages)—भारत जैसी अर्थव्यवस्था में, जहाँ स्रोत अत्यन्त दुर्लभ हैं, स्रोत का प्राथमिकता के आधार पर नियोजन तथा उपयोग करना आवश्यक है। वित्तीय संस्थाओं को प्रतिवर्ष बड़ी संख्या में ऋण हेतु आवेदन प्राप्त होते हैं। सीमित संसाधनों के कारण ये संस्थायें केवल उन्हीं प्रोजेक्ट की वित्तीय सहायता प्रदान करती हैं, जो अन्य प्रोजेक्ट की तुलना में बेहतर सामाजिक-वित्तीय लाभ प्रदर्शित करती हैं।

Scanned with CamScanner

सामान्यता इस सम्बन्ध में निम्न बातों पर विशेष ध्यान दिया जाता है—

1. प्रोजेक्ट का प्रारम्भ होना देशहित में हो,
2. किसी पिछड़े इलाके की उन्नति में सहायक हो,
3. सीधे/परोक्ष रूप से रोजगार का सृजन करता हो,
4. निर्यात की सम्भावना को बढ़ाता हो,
5. दुर्लभ और महँगे उत्पाद का उत्पादन करता हो,
6. यदि सम्भव हो तो उत्पाद किसी आयातित वस्तु का स्थान ले, तथा
7. लाभ सृजन करे ताकि अर्थव्यवस्था को मजबूती मिल सके।

एक प्रोजेक्ट रिपोर्ट में प्रोजेक्ट के सामाजिक/वित्तीय लाभों की विस्तृत समीक्षा होनी चाहिए।

(iii) वर्तमान एवं भविष्य में उत्पाद की माँग (Product Requirements)—किसी भी उद्योग/उपक्रम के स्थायित्व के लिये आवश्यक है कि उसके उत्पाद अथवा सेवा बाजार में अपनी पहचान स्थापित करे। सामान्यतया एक नये उपक्रम की सेवा अथवा उत्पाद ऐसी होनी चाहिए जो बाजार में पहले से उपलब्ध न हो अथवा भविष्य में उसकी मांग में वृद्धि होने की सम्भावना हो।

एक प्रोजेक्ट रिपोर्ट में वर्तमान में माँग, वर्तमान में मांग तथा आपूर्ति का अन्तर तथा भविष्य में होने वाली वृद्धि का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए। एक प्रोजेक्ट रिपोर्ट में निम्न जानकारियों का होना आवश्यक है—

1. प्रस्तावित उत्पाद/सेवा हेतु विशिष्ट बाजार/खण्ड।
2. बाजार की वर्तमान माँग।
3. बाजार की अल्प/दीर्घ समय तक माँग बनी रहने की सम्भावना।
4. परिलक्षित बाजारों में मार्केटिंग की नीति।

(iv) तकनीकी सम्भाव्यता (Technical Feasibility)—उपरोक्त जानकारी के अतिरिक्त एक प्रोजेक्ट रिपोर्ट में तकनीकी जानकारियों का समावेश होना भी आवश्यक है। तकनीकी जानकारी से इंजीनियरिंग एवं तकनीक के आधार पर प्रोजेक्ट की सम्भाव्यता का ज्ञान होता है। एक प्रोजेक्ट रिपोर्ट में निम्न जानकारियों का समावेश होना अनिवार्य है—

1. प्रक्रिया तकनीक (Process Technology)—एक प्रोजेक्ट रिपोर्ट में उस प्रक्रिया की विस्तृत जानकारी का होना आवश्यक है जिसे उद्यमी ने अपने प्रोजेक्ट के लिये चुना है तथा सर्वोत्तम मानता है। यद्यपि एक उत्पाद को एक से अधिक विनिर्माण तकनीकों द्वारा निर्मित किया जाता है। परन्तु मितव्ययिता और उन्नत तकनीक के आधार पर सर्वोत्तम विधि का चयन उद्यमी ही करता है।

2. इकाई का आर्थिक ढाँचा (Economic Structure of the Unit)—प्रत्येक इकाई का अपना एक न्यूनतम आर्थिक ढाँचा होता है जिससे कम होने पर प्रोजेक्ट का चला पाना सम्भव नहीं हो पाता है। प्रत्येक प्रोजेक्ट रिपोर्ट में इस न्यूनतम आर्थिक ढाँचे का स्पष्ट वर्णन होना चाहिए।

3. तकनीकी जानकारी एवं सलाह (Technical Knowledge and Advice)—कई विशिष्ट प्रोजेक्ट को चलाने के लिये तकनीकी जानकारी एवं उचित सलाह की आवश्यकता होती है। एक प्रोजेक्ट में इन तकनीकी जानकारियों एवं सलाहों का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए।

4. उपयोगी एवं पर्याप्त मशीनरी एवं प्लांट (Useful & Sufficient Machinery and Plant)—उद्यमी अपने उद्यम में कौन-कौन से मशीनों तथा उपकरणों का प्रयोग करेगा, उन मशीनों आदि की उपयोगिता, कीमत, स्पेयर पार्ट्स की उपलब्धता, चयन का आधार क्या है, आदि का विस्तृत विवरण प्रोजेक्ट रिपोर्ट में उल्लेखित होना चाहिए।

5. जानकार एवं योग्य ऑपरेटर (Qualified and Well Known Operators)—उद्यम में प्रयोग होने वाली मशीनों को चलाने एवं रख-रखाव हेतु जानकार एवं योग्य आपरेटरों की आवश्यकता होती है। उद्यम में ऐसे योग्य एवं दक्ष कर्मचारियों/आपरेटरों की संख्या तथा योग्यता क्या होगी, इनका स्पष्ट उल्लेख प्रोजेक्ट रिपोर्ट में होना चाहिए।

6. लचीलापन (Flexibility)—यदि प्रोजेक्ट लाभकारी नहीं रहता या किसी अन्य कारण से आगे नहीं चलाया जा सकता है तो प्रोजेक्ट को किसी अन्य उत्पाद के लिये प्रयोग किया जा सकता है। इसके लिए प्रोजेक्ट में पर्याप्त लचीलापन होना

Scanned with CamScanner

चाहिए। इसका प्रोजेक्ट रिपोर्ट में स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए। उपरोक्त कारकों के आधार पर वित्तीय संस्थान एवं अन्य संस्थाएं यह तय करती हैं कि प्रोजेक्ट वांछित गुणवत्ता/संख्या के अनुरूप तकनीकी रूप से सम्भव है अथवा नहीं।

(v) प्रोजेक्ट की वित्तीय स्थिति (Financial Condition of the Project)—किसी भी उद्यमी का अन्तिम उद्देश्य प्रोजेक्ट द्वारा लाभ कमाना होता है। इसलिए वित्तीय आलेखों एवं अनुपातों का विश्लेषण करके प्रोजेक्ट प्रारम्भ होने के पश्चात् सम्भावित लाभ/हानि का आकलन किया जाता है। ये वित्तीय आलेख/अनुपात किसी भी प्रोजेक्ट रिपोर्ट का अभिन्न अंग होते हैं। और इतने स्पष्ट होते हैं कि कोई भी वित्तीय संस्था अथवा अन्य एजेन्सी आसानी से प्रोजेक्ट की वित्तीय सम्भावयता का अनुमान लगा सके।

सामान्यता किसी भी प्रोजेक्ट में होने वाले दो मुख्य प्रकार के खर्चे निम्न हैं—

1. पूँजीगत खर्चे (Capital Expenditure), तथा
2. दैनिक खर्चे/कार्यकारी पूँजी (Working Capital)।

वे खर्चे, जो उद्यम को अचल सम्पत्ति जैस—भूमि, भवन, प्लॉट तथा मशीनरी, विविध प्रकार की स्थिर लागत, प्राथमिक एवं प्रोजेक्ट प्रारम्भ होने के पूर्व के खर्चे, तकनीकी जानकारी हेतु हुआ व्यय तथा कार्यकारी पूँजी की मार्जिन मनी आदि के लिए किये जाते हैं। पूँजीगत खर्चे कहलाते हैं। इन खर्चों से उद्यम की उत्पादक क्षमता का सृजन होता है।

वे खर्चे, जो सामान का उत्पादन करने में अथवा सेवा प्रदान करने में तथा उपक्रम को चालू रखने में आवश्यक हैं, कार्यकारी पूँजी खर्चे (Working Capital) कहलाते हैं।

एक प्रोजेक्ट में उद्यमी मुख्य वित्त जुआ लेने के पश्चात् वित्त को कच्चे माल में, कच्चे माल का निर्माणाधीन कार्य में निर्माणाधीन कार्य को परिष्कृत उत्पाद में, परिकृष्त उत्पाद को क्रेडिट बिक्री में तथा अन्त में क्रेडिट बिक्री को वित्त में बदलता है। इस चक्र को प्रोसेस चक्र (Process cycle) कहते हैं तथा इसको पूर्ण करने के लिये आवश्यक धन को कार्यकारी पूँजी कहते हैं।

एक प्रोजेक्ट रिपोर्ट बनाते समय न्यूनतम पाँच वर्ष के समयान्तराल के लिये वित्तीय परिणामों का प्रतिबिम्ब दिखाया जाना चाहिये। प्रोजेक्ट रिपोर्ट में प्रोजेक्ट की पुनर्भुगतान क्षमता का भी उल्लेख होना चाहिए।

एक प्रोजेक्ट की वित्तीय सम्भाव्यता की जानकारी प्राप्त करने के लिए निम्न तथ्यों की जानकारी आवश्यक है—

1. प्रोजेक्ट की लागत (Cost of the Project)
2. कार्यकारी पूँजी का आकलन (Estimation of Working Capital)
3. उत्पादन लागत का विवरण (Details of Production Cost)
4. लाभांश का विवरण (Details of Profit)
5. कैश प्रवाह का विवरण (Details of Cash Flow)
6. ब्रेक-ईवन विश्लेषण (Break-even Analysis)
7. **मुख्य वित्तीय अनुपात**—जैसे डेबिट-इक्वीटि अनुपात, डेबिट-सर्विस कवरेज अनुपात, निवेश पर वापसी का अनुपात आदि।

जब निवेशकों प्रमोटरों तथा वित्तीय संस्थाओं की राय में पर्याप्त लाभांश हो, तभी किसी प्रोजेक्ट की वित्तीय सम्भाव्यता स्थापित होती है।

परियोजना रिपोर्ट के तीन मुख्य तथ्य (Three Main Facts of Project Report)—उद्योग में पूँजी का विनियोग करने से पूर्व निवेशक उस उद्योग की वित्तीय स्थिति, धन वापस करने की क्षमता का मूल्यांकन करता है। यदि संस्था के उद्यमी का चरित्र उच्च कोटि का है एवं पर्याप्त पूँजी विनियोजित है तो व्यवसाय में पूँजी का निवेश कर सकता है। अन्यथा नहीं यह निर्णय प्रमुख तीन तथ्यों के आधार पर लिया जाता है—

1. व्यक्तित्व (Individual),
2. क्षमता (Capacity)

Scanned with CamScanner

3. पूँजी (Capital)।

व्यक्तित्व के मूल्यांकन का कोई आधार न होते हुए भी ऋणदाता को इसका मूल्यांकन करना आवश्यक होता है क्योंकि बैंक के अधिकांश ऋण सन्देह युक्त ईमानदारी के कारण डूब जाते हैं। अत: उद्यमी में स्थानीय बाजार से ऋण लेने की योग्यता होनी चाहिए।

प्रोजेक्ट मूल्यांकन के मुख्य तत्व—किसी उद्योग की स्थापना करने के लिए प्रोजेक्ट तैयार किया जाता है और उस बनाये गये प्रोजेक्ट का मूल्यांकन करना उद्यमी का महत्वपूर्ण कर्त्तव्य है। प्रोजेक्ट का मूल्यांकन करके निम्न केन्द्र बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाता है—

1. बाजार (Market)—कोई प्रोजेक्ट तकनीकी गुणों से परिपूर्ण क्यों न हो फिर भी उसके आधार पर कई प्रकार का उत्पादन किया जा सकता है। प्रोजेक्ट की सफलता के लिए केवल इतना ही आवश्यक नहीं है, वरन् उसके लिये अच्छी मार्केट भी हो अन्यथा वह सफल नहीं हो सकता। मार्केट सर्वेक्षण बड़े प्रोजेक्ट की दशा में किये जाते हैं। एक सामान्य प्रकार का बैंक भी संशोधित मार्केट विश्लेषण से परिचित नहीं होता। इसके अतिरिक्त कुछ रूढ़िवादी प्रयोग भी किये जाते हैं। इस प्रकार की खपत तथा अनुमानित कीमत पर वस्तु की माँग के विषय में बिना किसी कठिनाई के जानकारी प्राप्त की जा सकती है। यह जानकारी इकोनोमिक टाइम्स, फाइनेन्शियल एक्सप्रेस, कैमिकल वीकली व्यापारिक समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं से प्राप्त की जाती है। इस प्रकार से उपभोक्ताओं की रुचि, खपत की मात्रा, विशेष प्रकार की मण्डी में इसके सम्बन्ध में आसानी से जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

2. सामग्री (Material)—किसी वस्तु के निर्माण में पर्याप्त कच्चे माल की आवश्यकता होती है। ऐसी दशा में कच्चे माल के स्रोत, लागत एवं सरकारी नियन्त्रण आदि बातों पर स्पष्ट रूप से विचार कर लेना चाहिए। विदेशों से माल आयात के सम्बन्ध में सरकार की आयात नीति का अध्ययन करना चाहिए। यदि वस्तु देश में उपलब्ध है तो भी सरकारी नियन्त्रण का निश्चय करना चाहिए, क्योंकि कुछ समय पहले पैराफिन वैक्स तथा पी० वी० सी० आदि के सम्बन्ध में कठिनाई आती थी क्योंकि इसके लिए सरकार की आयात-नीति कठिन थी।

3. पूँजी (Capital)—यह अत्यन्त महत्वपूर्ण बिन्दु है। इस पर गहनता से विचार करना चाहिए। सबसे पहले प्रोजेक्ट की कीमतें निश्चित की जाती हैं। प्रोजेक्ट में कुल कीमत निश्चित करने में निम्न को शामिल किया जाता है—

A. भूमि एवं भवन (Land & Building),
B. प्लाण्ट एवं मशीन (Plant & Machine),
C. कच्चा माल, निर्मित माल, अर्द्धनिर्मित माल, देनदार आदि,
D. प्रारम्भिक व्यय व अन्य फुटकर खर्चे।

यदि ये खर्चे अधिक होंगे तो उपक्रम को कम लाभ होगा। अत: उद्यमी को चाहिए कि वे कीमतों पर नियन्त्रण रखें, यदि प्रोजेक्ट में कीमत को निश्चित किये बिना प्रोजेक्ट के आधार पर उत्पादन आरम्भ किया जाता है तो हानि होने के कारण कारखाना बन्द हो जायेगा। साथ ही प्रोजेक्ट का मूल्य ऋणों द्वारा पूरा किया जाता है। अत: ध्यान रखना चाहिए कि ऋण का विनियोग ऐसे स्थान पर करना चाहिए जिससे कम से कम व्यय हो और अधिकतम प्रत्याय प्राप्त हो।

4. श्रम शक्ति (Labour Power or Man Power)—भारत के एक विकासशील एवं श्रम-प्रधान देश होने के कारण श्रम शक्ति पर कोई महत्व नहीं दिया जाता और इसका गलत अनुमान लगाया जाता है जबकि प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित श्रमिक प्राप्त करने के लिये इसके स्तर का निर्धारण करना आवश्यक है। साथ ही श्रमिकों के लिए ग्रेच्यूटी, पेंशन, वेतन, भत्ते, बोनस, कर्मचारी राज्य बीमा आदि का प्रावधान होना चाहिए। ये सब बातें विश्वसनीय होनी चाहिए। क्योंकि थोड़ा सा परिवर्तन भी लाभांश में बहुत परिवर्तन कर सकता है। लक्षित उत्पादन अनुमानित क्षमता से अधिक न हो।

5. मशीनरी (Machinery)—मशीनरी उत्पादन क्रिया के लिये अत्यन्त आवश्यक है। यह तकनीकी दृष्टि से निर्माण क्रियाओं में प्रयुक्त होने वाली सभी क्रियाओं को पूर्ण करती है। कुछ क्रियाओं को वस्तु की संख्या के आधार पर बाहर से करवाना अच्छा होता है। मशीनों को क्रय करते समय संस्था में कार्यरत तकनीकी व्यक्तियों की सलाह लेनी चाहिए तथा उद्योग में लगायी जाने वाली मशीन विश्वसनीय एवं उचित स्तर की होनी चाहिए। सस्ती मशीन प्रारम्भिक लागत को तो कम कर सकती है। लेकिन भविष्य में उसके रख-रखाव पर अधिक व्यय करना पड़ेगा। अनेक बार उद्यमी मशीन की कीमत से अधिक ऋण ले

Scanned with CamScanner

लेते हैं जबकि वे उनके उचित मूल्य से परिचित नहीं होते। इसकी जानकारी जिला उद्योग केन्द्रों, सूचीबद्ध उद्योग केन्द्रों तथा अन्य संस्थाओं से प्राप्त की जा सकती है तथा वे आवश्यकतानुसार मार्गदर्शन करती हैं। मशीनों को क्रय करने के लिए लघु उद्योग सेवा संस्थान तथा राज्य के औद्योगिक विकास निगम से सम्पर्क करना चाहिए और उनकी सेवाओं का पूरा उपयोग करना चाहिए।

स्थायी सम्पत्तियों पर अधिक निवेश करने पर प्राप्ति समय में वृद्धि होती है जिससे किश्तें अदा करने तथा पूँजी वापस करने की अवधि घट जाती है। नये उद्यमी में इस प्रकार का कम मात्रा में निवेश करना चाहिए।

6. प्रोजेक्ट मूल्यांकन के अन्य आधार—प्रोजेक्ट के मूल्यांकन के लिये अन्य आधार भी विचारणीय होते हैं—

(i) लघु उद्योग की स्थिति—लघु उद्योगों की स्थिति उतनी प्रभावशाली नहीं होती जितनी कि बड़े उद्योगों की स्थिति। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि इस बात को अस्वीकृत कर दिया जायेगा कि बाजार की निकटता या कच्चे माल की पूर्ति के स्रोत अवश्य सुनिश्चित होने चाहिए। कुशल श्रमिकों की जरूरत अधिक होती है लेकिन विद्युत चालित उद्योगों में कम। खाद तथा ईंट उद्योग की माँग प्रत्यक्ष रूप से जनता पर निर्भर करती है। अत: ये उद्योग मण्डियों के निकट होने चाहिए तथा सहायक इकाइयाँ इसके पास स्थापित हों। खेल का सामान तथा हस्तशिल्प की वस्तुएँ एक विशेष कुशलता पर निर्भर करती हैं। अत: उनका उत्पादन ऐसे स्थान पर करना चाहिए जहाँ पर कुशल व्यक्ति सुलभ हों।

(ii) जल, यातायात शक्ति आदि की सुविधाएँ—एक निर्माणी उपक्रम की मूलभूत आवश्यकताएँ जल शक्ति एवं यातायात है। इनके अभाव में उत्पादन कार्य ठप्प हो जाता है। अत: ये सुविधाएँ उपक्रम को आसानी से सुलभ होनी चाहिए। तथा यातायात की पर्याप्त सुविधाएँ होनी चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो सके उपक्रम का निर्माण शहरी क्षेत्र में करना चाहिए क्योंकि यातायात की सुविधा के अभाव में उपक्रम की उन्नति असम्भव है। बिहार की दरभंगा जिले की पाइप लाइन की उन्नति न होने के कारण फैक्ट्री का सड़क से 15 किमी दूर होना है। अन्त में जहाँ तक सम्भव हो उपक्रम को जल, यातायात शक्ति उपलब्ध क्षेत्रों में स्थापित करनी चाहिए।

(iii) तकनीकी क्षमता—वस्तु के निर्माण में तकनीकी स्तर का निर्णय एवं चुनाव एक विशेषज्ञ द्वारा किया जाता है। इस कार्य के लिये बैंक के तकनीकी असफर, राज्य के उद्योग विकास निगम, लघु उद्योग सेवा संस्थान आदि की सलाह लेनी चाहिए तथा तकनीकी समस्या का समाधान कार्यकुशल तकनीकी पद्धति एवं उद्योगपतियों के सहयोग से करना चाहिए। किसी वस्तु का उपयुक्त स्तर तभी प्राप्त किया जा सकता है जब तकनीकी दक्षता को अपनाया जाये अन्यथा नहीं।

परियोजना रिपोर्ट के अंग (Components of Project Report)—राज्य उद्योग निदेशालय, औद्योगिक विकास निगमों, विभिन्न वित्तीय संस्थाओं एवं प्रोत्साहन संगठनों के नियमों के अनुसार परियोजना (Project) उत्पाद निर्माण या सेवाओं का एक नियोजित प्रस्ताव (Proposal) होता है। जब किसी उद्यमी द्वारा अपना कोई उद्योग प्रारम्भ करने की इच्छा जाग्रत होती है, तब उसके द्वारा अपने मन के विचारों को एक परियोजना का रूप दिया जाता है। उद्योग स्थापित करने की अभिलाषा रखने वाले एक उद्यमी का अपने लक्ष्य प्राप्ति की सफलता के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि परियोजना की विभिन्न प्रक्रियाओं तथा औद्योगिक प्रबन्ध के बारे में भली-भाँति पूर्ण जानकारी प्राप्त कर ले। इसी ज्ञान की परियोजना की योजना (Project Planning) कहा जाता है। एक प्रभावी परियोजना रिपोर्ट के मुख्यत: निम्नांकित अंग होते हैं—

(i) उत्पादन का चुनाव (Selection of Product)
(ii) उपक्रम का स्थल (Location of Enterprise)
(iii) परियोजना रिपोर्ट बनाना (Preparation of Project Report)
(iv) भूमि तथा भवन (Land and Building)
(v) विद्युत शक्ति/जल आपूर्ति (Electricity Power/ Water Supply)
(vi) मशीनों की प्राप्ति (Procurement of Machinery)
(vii) मशीनों की स्थापना (Installation of Machinery)
(viii) कच्चे माल की प्राप्ति (Procurement of Raw Material)
(ix) कर्मचारियों की भर्ती (Recruitment of Labour)
(x) पंजीकरण (Registration)

Scanned with CamScanner

(xi) वित्त ऋण (Finance Loan)
(xii) वैधानिक अनुज्ञापत्र (Statutory Licences)
(xiii) मजदूरी दर (Wages Rates)
(xiv) उत्पादन (Production)
(xv) बाजारण (Marketing)
(xvi) सम्पूर्तित उत्पाद का मूल्य (Price of Finished Product)

उपरोक्त का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

उत्पादन का चयन (Selection of Product)—उत्पादन हेतु किसी उत्पाद का चयन करने से पूर्व मार्केट सर्वेक्षण अत्यन्त आवश्यक है। मार्केट सर्वेक्षण द्वारा बाजारों में विभिन्न उत्पादों की माँग के विषय में जानकारी मिलती है। मार्केट सर्वेक्षण करते समय हमें यह देखना होगा कि—

(क) उत्पाद की माँग पूरे वर्ष बनी रहेगी या केवल मौसमी माँग है।
(ख) उत्पाद के प्रतियोगी कितने हैं तथा उसी प्रकार के कितने उत्पाद बाजार में उपलब्ध है। इसकी जानकारी उत्पादों की उपयोगिता, गुण तथा मूल्य के आधार पर भी करनी चाहिए।
(ग) उत्पाद का निर्यात भी किया जा सकता है कि नहीं।
(घ) उत्पाद किसी विदेशी कम्पनी के सहयोग (Collaboration) से भी किया जा सकता है।
(ङ) निम्न आधार पर बनाये जाने वाले उत्पादों का निर्णय करें—
(a) मार्केट सवेक्षण,
(b) सम्मिलित वित्तीय परिणाम,
(c) उपलब्ध तकनीकी जानकारी,
(d) उस क्षेत्र का अनुभव।

प्रतिष्ठान स्थल (Location of Enterprise)—उद्योग का चयन करने के उपरान्त एक अन्य समस्या यह आती है कि प्रतिष्ठान या कारखाना किस स्थान पर लगाया जाये। प्रतिष्ठान के लिये स्थल का चयन एक अत्यत्न महत्वपूर्ण विषय है। क्योंकि किसी प्रतिष्ठान या कारखाने की सफलता या असफलता में स्थान का विशेष प्रभाव पड़ता है। प्रतिष्ठान स्थल का चयन करते समय निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहिए—

(क) जिस स्थान पर प्रतिष्ठान स्थापित करना हो, उस स्थान पर कच्चे माल की उपलब्धि सुविधापूर्वक व सस्ते मूल्यों पर होनी चाहिए।
(ख) वह स्थान जहाँ से माल लाना हो, प्रतिष्ठान के स्थान से अधिक दूर न हो जिससे कच्चे माल को प्रतिष्ठान के स्थान तक लाने में खर्च व समय दोनों की बचत हो सके।
(ग) प्रतिष्ठान के स्थान पर बिजली व पानी की पूर्ण सुविधा हो।
(घ) प्रतिष्ठान या कारखाने के स्थान के समीप रेलवे तथा मोटरगाड़ियों की सुविधा होनी चाहिए जिससे कच्चा माल लाने व उत्पादित माल भेजने में विशेष कठिनाइयों का सामना न करना पड़े।
(ङ) प्रतिष्ठान के स्थान के समीप मजदूरों व कर्मचारियों की उपलब्धि सुविधापूर्वक होनी चाहिए।
(च) प्रतिष्ठान के स्थल के समीप बाढ़ आने, आग लगने तथा अन्य बातों जिससे कारखाने को हानि हो आदि का कोई खतरा नहीं होनी चाहिए।
(छ) प्रतिष्ठान के स्थान का वातावरण उत्पादित वस्तुओं के लिए उपयुक्त होना चाहिए।
(ज) सीवेज (Sewage) तथा कूड़ा-करकट निस्तारण (Waste Disposal) का उचित प्रबन्ध होनी चाहिये।
(झ) प्रतिष्ठान के लिये भूमि की उपलब्धि सुविधापूर्वक उचित मूल्यों पर होनी चाहिए।
(ञ) उस स्थान पर प्रतिष्ठान निर्माण पर प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिये।
(ट) प्रतिष्ठान या कारखाने के स्थान से बाजार अधिक दूर नहीं होने चाहिए जिससे उत्पादित माल भेजने में सुविधा रहे तथा व्यय अधिक न हो।

Scanned with CamScanner

(ठ) प्रतिष्ठान या कारखाने के स्थान के पास चिकित्सालय सम्बन्धी सुविधायें उपलब्ध होनी चाहिए।

10.4. परियोजना रिपोर्ट तैयार करना (Preparation of Project Report)

उद्यमियों द्वारा परियोजना रिपोर्ट इस प्रकार तैयार की जानी चाहिए कि उसमें परियोजना के समस्त विषय एक साथ दृष्टिगोचर होने चाहिए। विशेषकर निम्न बिन्दु पूर्णत: स्पष्ट होने चाहिए—

(क) तकनीकी सुगमता (Technical Feasibility)—इसमें ऐसे तत्वों का समावेश होता है जैसे उत्पादन निर्माण में ली जाने वाली विशिष्टयाँ, आवश्यकतानुसार कच्चे माल की उपलब्धता, प्रवाह प्रक्रियाकरण तालिका (Flow processing chart) सहित निर्माण विधि की रूपरेखा, गुणवत्ता नियन्त्रण उपाय, विद्युत शक्ति की आपूर्ति, जल की उपलब्धता, परिवहन सुविधायें तथा संचार नेटवर्क आदि।

(ख) आर्थिक मार्गीकरण (Economic Viability)—इसमें अनिवार्य रूप से निर्यात मार्केट तथा अपने देश के लिये माँग का एकत्रीकरण, पूँजीकरण सम्पत्ति से सम्बन्धित उचित धारिता की आवश्यकता, उत्पादन मूल्य का निर्धारण मार्केट बिक्री के आर्थिक अंश की प्राप्ति, अनुमानित कर, उचित मूल्य संरचना आदि सम्मिलित है।

(ग) वित्तीय आशय (Financial Implications)—परियोजना मूल्यांकन में अनावर्तक व्यय (Non-recurring Expenses) जैसे—भूमि व भवन, संयन्त्र तथा मशीनें, कारखाना चालू से पूर्व के खर्चे (Pre-operative Expenses) तथा आवर्तक खर्चे जैसे—कार्यकारी पूँजी की आवश्यकता, कच्चे माल की आवश्यकता, कर्मचारियों की मजदूरी व वेतन आदि विस्तृत रूप से ज्ञात किये जाते हैं। पाँच वर्षों में सम्भावित मूल्य भी निर्धारित किया जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य खर्चे जैसे—स्थायी तथा अस्थायी खर्चे जोड़े जाते हैं। हर माह लाभ के अतिरिक्त, कुल पूँजी निवेश पर लाभ का प्रतिशत, सम्भावित बिक्री पर लाभ का प्रतिशत भी ज्ञात करके प्रस्तुत किया जाता है।

(घ) प्रबन्धात्मक सक्षमता (Managerial Competence)—लघु उद्योग के क्षेत्र में एक नये उद्यमी को अपना पूरा ध्यान अपनी परियोजना पर केन्द्रित करना चाहिये। उसे सफल उत्पादन के लिये आधुनिक प्रबन्धात्मक विधि अपनानी चाहिये। उसे अन्य व्यापार चिन्हों से भिन्न अपने स्वयं के उत्पादों को मार्केट में लाना चाहिये जिससे वह लोकप्रिय हो सके। उसे वास्तविक उत्पादन तथा बिक्री के विषय में नित्यप्रति रिकॉर्ड बनाने चाहिये। एक नये उद्यमी में ग्राहक की सन्तुष्टि तथा ग्राहक बनाने का गुण होना चाहिए।

उपरोक्त समस्त पहलुओं पर विचार करके प्रारम्भिक परियोजना रिपोर्ट निम्नानुसार तैयारी की जा सकती है—

A. प्रारम्भिक परियोजना रिपोर्ट

(i) सामान्य :

उद्यमी का नाम .....

आय .....

परियोजना .....

स्थान .....

संगठन का प्रकार : स्वामित्व/साझेदारी/अन्य .....

प्रतिष्ठान का नाम .....

पता .....

(ii) शैक्षिक योग्यता—

परीक्षा उत्तीर्ण	विद्यालय/विश्वविद्यालय	उत्तीर्ण वर्ष
हाईस्कूल		
डिप्लोमा		
डिग्री		

Scanned with CamScanner

अन्य		

(ii) विशेष प्रशिक्षण—

प्रशिक्षण	इन्स्ट्रीटयूट/संगठन	अवधि	प्राप्ति

(iii) कार्य का अनुभव

संगठन	पद	कार्य की प्रकृति	अवधि

(iv) वर्तमान व्यवसाय :

(B) प्रस्तावित परियोजना का विवरण : निर्माण/सेवा/व्यापारिक

(i) माल का उत्पाद, बिक्री तथा सेवायें :

(ii) मशीनरी/साज-सज्जा

क्रम संख्या	विवरण	आवश्यक संख्या	मूल्य (रु० में)	कुल आय (रु० में)	स्वदेशी /आयातित

योग :

(iii) कच्चा माल

क्रम संख्या	विषय वस्तु	कुल वार्षिक आवश्यकता		स्रोत
		मात्रा	मूल्य (रुपयो में)	
	योग :			

(iv) उपयोगितायें

क्रम संख्या	विवरण	वार्षिक आवश्यकता	कुल वार्षिक व्यय (रुपयों में)	टिप्पणी
1.	विद्युत			
2.	जल			
3.	कोयला/तेल			
4.	अन्य			

योग :

(v) मानव शक्ति :

Scanned with CamScanner

..म संख्या	विवरण	संख्या	कुल पारिश्रमिक तथा वेतन (रुपयों में)	टिप्पणी
1.	प्रबन्धकीय/पर्यवेक्षकीय			
2.	कुशल (Skilled)			
3.	अर्द्ध-कुशल (Semi-skilled)			
4.	अकुशल (Unskilled)			
	योग :			

C. परियोजना का मूल्य

(i) स्थायी पूँजी

क्रम संख्या	विषय वस्तु	राशि (रुपयों में)
1.	भूमि/भवन	
2.	मशीनरी/साज-सज्जा	
3.	विविध स्थायी सम्पत्ति	
4.	प्रारम्भिक तथा क्रियान्वयन पूर्व खर्चे	
	योग :	

(ii) कार्यकारी पूँजी

क्रम संख्या	मद	अवधि	मात्रा	राशि (रुपये में)
1.	कच्चा माल			
2.	मजदूरी तथा वेतन			
3.	उपयोगिताएँ			
4.	अन्य			
	योग :			

(iii) वित्त व्यवस्था

क्रम संख्या	विवरण	राशि (रुपयों में)	टिप्पणी
1.	अवधि ऋण		
2.	कार्यकारी पूँजी ऋण		
3.	स्वयं का अंशदान		
4.	आर्थिक सहायता (अनुदान)		

Scanned with CamScanner

5.	अन्य		
	योग :		

(iv) परियोजना लाभ प्रदायकता विश्लेषण

क्रम संख्या	विवरण	राशि (रुपयों में)	टिप्पणी
1.	बिक्री राजस्व		
2.	निर्माण व्यय		
3.	बिक्री तथा विवरण व्यय		
4.	ब्याज		
5.	मूल्य ह्रास		
6.	लाभ [1 – (2 + 3 + 4 + 5)]		
7.	आयकर		
8.	कर उपरान्त लाभ		
	योग:		

(v) परियोजना कुल लागत

क्रम संख्या	विवरण	राशि (रुपयों में)	टिप्पणी
1.	स्थायी पूँजी		
2.	कार्यकारी पूँजी		
	योग :		

(D) पूरक विवरण

(i) मार्केट अध्ययन

(ii) क्या आपका अपना मकान/सम्पत्ति आदि है।

(iii) स्वयं की बीमा पॉलिसी

(iv) अन्य फर्मों में रुचि

(v) क्या आप आय SC/ST/OBC/PT/HT/सामान्य वर्ग के हैं:

(vi) वर्तमान मासिक आय (रुपयों में)

(vii) निर्देश (References)

क्रम संख्या	नाम	पता	व्यवसाय

दिनांक :

सम-खण्डन विश्लेषण (Break Even Analysis)—सम-खण्डन विश्लेषण, प्रारम्भिक अभियन्त्रण, अभिकल्पन अध्ययन तथा लाभ विश्लेषण में अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुआ है। यद्यपि सम-खण्डन विश्लेषण (Break Even Analysis) [illegible] से सम्बन्धित होता है जो कि उसे आय तथा खर्चों पर सामान्य प्रभाव के अध्ययन के योग्य बनाता

Scanned with CamScanner

है। प्राय: बैंकर (Bankers) अपना धन लेने के इच्छुक होते हैं जो उन्होने औद्योगिक इकाइयों में लगाया होता है। औद्योगिक इकाइयों में अधिक बचत होने पर ही धन वापिस दिया जा सकता है औद्योगिक इकाइयों में अतिरिक्त बचत कब प्रारम्भ होती है, इस प्रश्न का उत्तर सम-खण्डन विश्लेषण द्वारा दिया जा सकता है। धन की आवश्यकता के लिये विभिन्न उत्पादन स्तरों पर लाभ का स्पष्ट प्रक्षेप समय-खण्डन विश्लेषण (Break Even Analysis) द्वारा दिया जा सकता है।

सम-खण्डन विश्लेषण की धारणा (Concept of Break Even Analysis)—माल तथा मूल्य का अध्ययन कुल माल तथा कुल मूल्य की ओर ध्यान करके किया जा सकता है। सम-खण्डन विश्लेषण सूचित करता है कि कार्यविधि में किसी बिन्दु पर कुल माल कुल मूल्य के समान होता है। मूलत: सम-खण्डन विश्लेषण एक ऐसे बिन्दु को ज्ञात करना है जहाँ माल तथा मूल्य समान हो जिसे सम-खण्डन बिन्दु (Break Even Point) भी कहते हैं। यह सर्वविदित है कि कम उत्पादन करने वाली फर्म हानि तथा अधिक उत्पादन करने वाली फर्म लाभ में जाती है। परन्तु एक स्थिति ऐसी भी हो सकती है जिसमें फर्म को न कोई लाभ और न कोई हानि। अत: ऐसा उत्पादन जिसके द्वारा लाभ व हानि समान हो या न लाभ हो और न हानि वह सम-खण्डन बिन्दु (Break Even Point) कहलाता है।

सम-खण्डन बिन्दु की धारणा व परिभाषा (Concept and Definition of Break Even Point)—मूल्य का निर्णय लेते समय एक उद्यमी (Entrepreneur) को विभिन्न मूल्यों पर लाभ का स्तर पहले से ही देखने योग्य होना चाहिए। व्यापार में प्राय: कहा जाता है कि कोई औद्योगिक इकाई जब तक उत्पादन क्षमता निश्चित मात्रा नहीं प्राप्त कर लेती तब तक वह लाभ नहीं कमा सकती। इस कथन की उत्पत्ति क्या है? इस प्रश्न का उत्तर सम-खण्डन बिन्दु (Break Even Point) की धारणा को समझकर किया जा सकता है। यह अवधारणा व्यापार की कार्यविधियों की अर्थव्यवस्था को समझने के लिये एक उद्यमी के वास्ते अत्यन्त शक्तिशाली यन्त्र है। अत: सम-खण्डन बिन्दु वह उत्पादन स्तर है जिसका किसी उद्योग में न लाभ होता है और न हानि। अत: अधिक लाभ कमाने तथा हानि से बचने के लिये एक उद्यमी को सम-खण्डन बिन्दु (Break Even Point) का ज्ञान होना अनिवार्य है।

सम-खण्डन विश्लेषण का महत्त्व तथा क्षेत्र (Importance and Scope of Break Even Analysis)—निम्न प्रकार की समायोजनाओं को हल करने में सहायक होते हैं—

विक्री की मात्रा जो आवश्यक हो—

(i) पूँजी लागत पर एक न्यायसंगत वापसी के लिये,
(ii) साधारण तथा अपेक्षाकृत लाभांश के लिये,
(iii) सुरक्षा (Reserve) के लिये,
(iv) एक वस्तु का मूल्य निर्धारण, आवश्यक लाभ के लिये,
(v) प्रति इकाई अस्थायी मूल्य निर्धारण के लिये।

सम-खण्डन बिन्दु की गणना (Calculation of Break Even Point)

कुल माल (Revenue) R = मूल्य (Price) $P \times$ बेची गयी इकाइयों की संख्या (Number of Units Sold) Q

कुल मूल्य (Total Cost) C = स्थायी मूल्य (Fixed Costs) $F + Q \times$ अस्थायी मूल्य प्रति इकाई (Variable Costs per Unit) V

परिभाषानुसार, सम-खण्डन बिन्दु (Break Even Point) $R = C$

or $P \times Q_B = F + Q_b \times V$ यहाँ Q_B सम-खण्डन बिन्दु पर बेची गयी मात्रा है।

अत: $Q_B (P - V) = F$

या $$Q_B = \frac{F}{P - V}$$

अत: सम-खण्डन विक्री मात्रा = $\frac{\text{स्थायी मूल्य (Fixed Cost)}}{\text{विक्रय मूल्य (Price)} - \text{अस्थायी मूल्य प्रति इकाई (Variable per Unit)}}$

Scanned with CamScanner

सम-खण्डन बिन्दु (Break Even Point) को निम्न प्रकार भी लिखा जा सकता है—

$$\text{सम-खण्डन बिक्री मात्रा (Break Even Sales Volume)} = \frac{\text{स्थायी मूल्य (Fixed Cost)}}{\text{अंशदान प्रति इकाई (Contribution per Unit)}}$$

उदाहरण : एक कम्पनी के समखण्डन बिन्दु की गणना कीजिये। यदि स्थायी मूल्य (Fixed cost) 10,000 रु० प्रति माह है। अस्थायी मूल्य प्रति इकाई 400 रु० है। उत्पाद का मूल्य 650 रु० प्रति इकाई है।

हल—सम-खण्डन मात्रा (Break Even Volume) $= \frac{10,000}{650-400} = 40$ इकाई प्रतिमाह

इसमें समखण्डन मात्रा की इकाई के विषय में सावधानी बरतनी चाहिये। सम-खण्डन मात्रा प्रतिवर्ष इकाइयों की संख्या के रूप में भी लिखी जा सकती है जो यहाँ पर $40 \times 12 = 480$ होगी।

चूँकि उत्पाद का मूल्य 650 रु० प्रति है अत: समखण्डन मात्रा को इस प्रकार भी लिख सकते हैं—

$650 \times 40 = 26000$ रु० प्रतिमाह या 3,12,000 रु० प्रतिवर्ष

एक औद्योगिक इकाई समखण्डन बिन्दु पर न कोई हानि और न कोई लाभ देती है। परन्तु यदि उत्पादन अधिक है तो लाभ तथा यदि कम है तो हानि देती है। अत: उत्पादन के किसी स्तर पर लाभ या हानि की मात्रा निम्न वर्णित समीकरण द्वारा ज्ञात की जा सकती है—

लाभ-हानि (Profit /Loss) = प्रति इकाई अंशदन (Contribution Per Unit × एक अवधि में बेची गयी इकाइयों की संख्या (Number of Units Sold in a Period) – अवधि के लिये स्थायी मूल्य (Fixed cost for the period)

उपरोक्त उदाहरण के अनुसार यदि एक उद्यम एक माह में 60 इकाई उत्पादन बेचने योग्य है, तब इस अवधि में इसका लाभ बराबर होगा—

$$(650-400) \times 60 - 10000 = 15000 - 10000 = 5000 \text{ रु०}$$

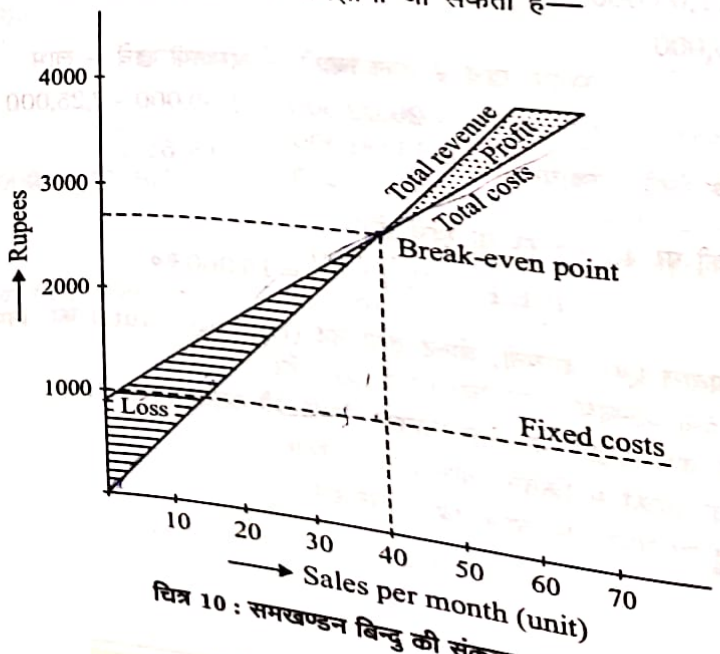
यदि यह केवल उत्पाद की 30 इकायाँ ही बेचता है तब उसे हानि निम्न प्रकार से होगी—

$$(650-400) \times 30 - 10000 = 250 \times 30 - 10000 = 7500 - 10000 = 2500 \text{ रु० हानि}$$

परन्तु समखण्डन बिन्दु (Break Even Point) पर न लाभ होगा न हानि

$$(650-400) \times 40 = 250 \times 40 = 10000 \text{ रु०}$$

उपरोक्त विश्लेषण को चित्र द्वारा ग्राफीय विधि से समझाया जा सकता है—



चित्र 10 : समखण्डन बिन्दु की संकल्पना।

Scanned with CamScanner

समखण्डन बिन्दु का सम्बन्ध निम्नलिखित स्थिति द्वारा भी दर्शाया जा सकता है—

कुल स्थायी मूल्य (Total Fixed Cost) = 1000 रु०

इकाई अस्थायी मूल्य (Unit Variable Cost) = 2 रु०

इकाई बिक्री मूल्य (Unit Sale Price) = 4 रु०

उपरोक्त धारणा (Assumptions) द्वारा उत्पादन के विभिन्न चरणों पर निम्नलिखित आँकड़े प्राप्त होते हैं—

निर्मित इकाइयें की संख्या	कुल स्थायी मूल्य (रु०)	कुल अस्थायी मूल्य (रु०)	कुल मूल्य (रु०)	कुल बिक्री मूल्य (रु०)	लाभ/हानि (रु०)
0	1000	0	1000	0	– 1000
250	1000	500	1500	1000	– 500
500	1000	1000	2000	2000	0
750	1000	1500	2500	3000	+ 500
1000	1000	2000	3000	4000	+ 1000

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि यदि 500 इकाइयाँ निर्मित की जायें तो न तो लाभ होगा और न हानि।

$$\text{समखण्डन बिन्दु (B.E.P.)} = \frac{\text{कुल स्थायी मूल्य}}{\text{इकाई बिक्री मूल्य} - \text{इकाई अस्थायी मूल्य}}$$

$$= \frac{1000}{4-2}$$

$$= 500 \text{ इकाइयाँ।}$$

उदहारण 1. फर्म अ ब स लिमिटेड से सम्बन्धित निम्नलिखित आँकड़ों द्वारा सम-खण्डन बिन्दु (Break Even Point) ज्ञात करो—

कुल बिक्री —₹ 20,00,000

अस्थायी खर्चे —₹ 11,00,000

शुद्ध लाभ —₹ 2,25,000

हल : स्थायी खर्चे = कुल बिक्री – अस्थायी खर्चे – लाभ

$$= 20,00,000 - 11,00,000 - 2,25,000 = 6,75,000 \text{ रु०}$$

$$\text{बिक्री के लिये अस्थायी खर्चे} = \frac{11,00,000}{20,00,000} \times 100 = 55\%$$

प्रति 100 रु० की बिक्री पर 45 रु० स्थायी खर्चे होंगे।

$$\therefore \quad \text{B.E.P.} = \frac{6,75,000}{45} = 15,000 \text{ रु०}$$

उत्तर

उदाहरण 2. मैसर्स अग्रवाल एण्ड कम्पनी, बोल्ट तथा नट (Bolt and Nuts) का निर्माण करती है। कम्पनी का स्थायी मूल्य 2,00,000 रु० तथा अस्थायी मूल्य बिक्री का 50% है।

(अ) 25,000 रु० का लाभ दिखाने के लिये कितनी बिक्री की आवश्यकता है?

(ब) 5,00,000 रु० की बिक्री से कितना लाभ होना चाहिए?

(स) सम-खण्डन बिन्दु पर प्राप्त होने वाली बिक्री बताइये।

Scanned with CamScanner

हल—हम जानते हैं—

$$R = F + V + P \quad \ldots(i)$$

जहाँ, R = बिक्री रु० में,
F = स्थायी मूल्य रु० में,
V = अस्थायी मूल्य रु० में,
P = लाभ रु० में।

$$R - V = F + P$$

$$R\left(1 - \frac{V}{R}\right) = F + P$$

$$R = \frac{F + P}{\left(1 - \frac{V}{R}\right)} \quad \ldots(ii)$$

हमें दिया गया है $\frac{V}{R} = \frac{1}{2}$ (∵ अस्थायी मूल्य बिक्री का 50% है।)

F = ₹ 2,00,000

P = ₹ 25,000

समीकरण (ii) में $\frac{V}{R} = F$ तथा P का मूल्य रखने पर—

$$R = \frac{2,00,000 + 25,000}{1 - \frac{1}{2}}$$

$$R = \frac{2,25,000}{1/2}$$

$$R = 4,50,000 \quad \text{उत्तर}$$

या बिक्री = 4,50,000 रु०

(ब) बिक्री = 5,00,000 रु०

अस्थायी खर्चे = बिक्री का 50%

= 5,00,000 × 50% = 2,50,000 रु०

स्थायी मूल्य = 2,00,000 रु०

5,00,000 रु० की बिक्री पर लाभ = बिक्री − अस्थायी खर्चे − स्थायी खर्चे

= 5,00,000 − 2,50,000 − 2,00,000

= 50,000 रु० उत्तर

(स) सम-खण्डन बिन्दु पर बिक्री अर्थात् $P = 0$

$$R = F + V + P$$

$$R = 2,00,000 + \frac{1}{2}R + 0$$

या $$R - \frac{1}{2}R = 2,00,000$$

∴ $$\frac{1}{2}R = 2,00,000$$

Scanned with CamScanner

$R = 4,00,000$ रु० उत्तर

लाभ मात्रा अनुपात (P/V Ratio)

लाभ मात्रा अनुपात सम-विच्छेद विश्लेषण का सबसे महत्वपूर्ण यन्त्र माना जाता है। यह अनुपात संस्था की विक्रय मात्रा एवं लाभ के मध्य सम्बन्ध स्थापित करता है। यह अनुपात यह व्यक्त करता है कि यदि किसी संस्था की कुल बिक्री में से सम-विच्छेद बिन्दु को घटा दिया जाये तो शेष बिक्री पर संस्था को कितने प्रतिशत लाभ प्राप्त होगा। यह अनुपात प्रत्यक्ष रूप से परिवर्तनशील लागतों पर निर्भर करता है। संस्था में परिवर्तनशील लागतें जितनी कम होंगी, यह अनुपात उतना ही अधिक होगा। यह अनुपात स्वयं में संस्था की लाभोपार्जन क्षमता की ओर संकेत करता है। यह अनुपात जितना अधिक होगा, संस्था की लाभोजार्पन क्षमता भी उतनी ही अधिक होगी। इसे निम्न प्रकार ज्ञात किया जाता है—

(i) विक्रय एवं परिवर्तनशील लागतों की सहायता से लाभ मात्रा अनुपात ज्ञात करना—लाभ मात्रा अनुपात प्राय: विक्रय एवं परिवर्तनशील लागतों की सहायता से ज्ञात किया जाता है। इस रूप में

$$\text{P/V Ratio} = \frac{\text{Sales} - \text{VC}}{\text{Sales}} \times 100$$

उदाहरण 1. एक कम्पनी की बिक्री 6,00,000 रु० है एवं परिवर्तनशील लागतें 3,60,000 रु० है। संस्था की लाभ मात्रा अनुपात ज्ञात कीजिए।

$$\text{P/V Ratio} = \frac{\text{Sales} - \text{VC}}{\text{Sales}} \times 100$$

$$= \frac{60,00,000 - 3,60,000}{6,00,000} \times 100$$

$$= \frac{2,40,000}{6,00,000} \times 100$$

$$= 40\%$$

(ii) स्थायी मात्रा एवं लागतों एवं सम-विच्छेद बिन्दु की सहायता से लाभ मात्रा अनुपात ज्ञात करना—

$$\text{P/V Ratio} = \frac{\text{FC}}{\text{B.E.P.}} \times 100$$

उदाहरण 2. एक कम्पनी की स्थायी लागतें 50,000 रु० है तथा सम-विच्छेद बिन्दु 2,00,000 रु० है। इस स्थिति में लाभ मात्रा अनुपात ज्ञात कीजिए।

हल—

$$\text{P/V Ratio} = \frac{\text{FC}}{\text{B.E.P.}} \times 100$$

$$= \frac{50,000}{2,00,000} \times 100$$

$$= 25\%$$ उत्तर

(iii) सुरक्षा सीमा एवं लाभ की सहायता से लाभ मात्रा अनुपात ज्ञात करना।

$$\text{P/V Ratio} = \frac{\text{Profit}}{\text{Margin of Safety}} \times 100$$

उदाहरण 3. एक कम्पंनी का 1994 का लाभ 2,00,000 रु० है तथा सुरक्षा सीमा 4,00,000 रु० है। इस स्थिति में लाभ मात्रा अनुपात ज्ञान कीजिए।

$$\text{P/V Ratio} = \frac{\text{Profit}}{\text{Margin of Safety}} \times 100$$

Scanned with CamScanner

$$= \frac{2,00,000}{4,00,000} \times 100 = 50\%$$ उत्तर

(iv) सीमान्त अंशदान एवं विक्रय की सहायता से लाभ मात्रा अनुपात ज्ञात करना—

$$P/V \text{ Ratio} = \frac{\text{Marginal Contribution}}{\text{Sales}} \times 100$$

उदाहरण 4. एक कम्पनी का सीमान्त अंशदान 6,00,000 रु० तथा विक्रय 10,00,000 रु० है। इस स्थिति में लाभ मात्रा अनुपात क्या होगा?

हल—

$$P/V \text{ Ratio} = \frac{\text{Marginal Contribution}}{\text{Sales}} \times 100$$

$$= \frac{6,00,000}{10,00,000} \times 100 = 60\%$$ उत्तर

प्लाण्ट ले-आउट (Plant Lay-out)

उद्योग में निर्माण प्रक्रम में विभिन्न यन्त्रों व संयन्त्रों की आवश्यकता होती है। उन यन्त्रों व संयन्त्रों का कार्यशाला उद्योग में स्थापन के तरीके को प्लाण्ट ले-आउट (Plant Lay-out) कहते हैं।

उद्योग में मशीनों (यन्त्रों, सयन्त्रों) को इस प्रकार से लगाना चाहिए जिससे कच्चे माल व अर्द्धनिर्मित उत्पाद को एक मशीन से दूसरी मशीन पर ले जाने में कम से कम दूरी तय करनी पड़े एवं उद्योग में सामान लाने ले-जाने में समय भी कम लगे तथा इससे लागत भी कम आएगी। मशीनों का स्थापन भी इस प्रकार से करना चाहिए जिससे प्रत्येक मशीन पर कार्यभार भी समान रहे तथा अकारण ही समान को बार-बार घसीटना न पड़े। प्लाण्ट ले-आउट पर इकाई की संभाव्यता निर्भर करती है। अत: प्लांट ले-आउट को अच्छी तरह सोच-समझकर निश्चित करना आवश्यक है।

प्लाण्ट ले-आउट को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affacting Plant Lay-out)

प्लांट ले-आउट को प्रभावित करने वाले कारक निम्न प्रकार हैं—

1. सामग्री (Material)—प्रत्येक उत्पाद के निर्माण में कच्चे माल का उपयोग किया जाता है। कच्चे माल को अन्तिम उत्पाद बनने से पूर्व कई प्रक्रियाओं से गुजरना होता है। प्रक्रियाओं के दौरान कच्चे माल व अर्द्धनिर्मित उत्पादों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक लाया जाता है। इसके अतिरिक्त पैंकिंग सामग्री (Packing Material), अपक्षय सामग्री (Waste Materials) एवं अनुरक्षण सामग्री (Maintenance Material) आदि की आवश्यकता होती है। इन सब सामग्रियों को इकाई में लाने व ले जाने का कार्य प्लांट ले-आउट को प्रभावित करने वाला मुख्य घटक है।

2. मशीनें (Machines)—उद्योग में उत्पाद को तैयार करने के लिये विभिन्न प्रकार के मशीनन प्रक्रम (Machine Process) करने पड़ते हैं। उक्त मशीन कार्य में उपयोग होने वाली मशीनों की संख्या, उनके विनिर्देश (Specifications) एवं प्रक्रमों में काम आने वाले औजार (Tools) आदि की संख्या व आकार-प्रकार पर इकाई का प्लांट ले-आउट निर्भर करता है।

3. श्रमिक (Workers)—इकाई में उत्पादन कार्य में विभिन्न स्तर के श्रमिक एवं अधिकारी कार्य करते हैं। इकाई में निरीक्षक, पर्यवेक्षक, श्रमिक इत्यादि की संख्या, उनके कार्य क्षेत्रों की योजना व उनके लिये आवश्यक स्थान आदि पर उद्योग का प्लांट ले-आउट निर्भर करता है।

4. प्रक्रम (Process)—उद्योग में कई प्रकार के निर्माण प्रक्रम (Manufacturing Process) होते हैं, जिनके कारण कम्पन, धूल, धुआँ, ऊष्मा विकिरण, शोर इत्यादि उत्पन्न होते हैं। अत: प्लांट ले-आउट उनके प्रक्रम पर बहुत निर्भर करता है।

5. स्थानान्तरण (Transfer)—उद्योग में अन्त: विभागीय स्थानान्तरण एक प्रमुख घटक है। अत: उद्योग में कच्चे माल, अर्द्धनिर्मित उत्पाद एवं अन्तिम उत्पाद को एक विभाग से दूसरे विभाग में ले जाने के लिये प्रयुक्त सामग्री प्रहस्तन उपकरणों (Material Handling Equipment) तथा उनके भण्डारण की सुविधा आदि पर भी उद्योग का प्लांट ले-आउट निर्भर करता है।

Scanned with CamScanner

6. प्रतीक्षा (Waiting)—उत्पादन क्रिया की गति को स्थिर एवं मशीनन कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए तथा उत्पादन क्रिया को तीव्र या मन्द किया जाता है। इस कारण अर्द्धनिर्मित उत्पाद को विभिन्न स्थानों पर रोक लिया जाता है, अथवा निर्माण प्रक्रिया के समय अर्द्धनिर्मित उत्पाद को कहीं रुकना पड़ सकता है। इस प्रकार की प्रतीक्षा का उद्योग के प्लांट ले-आउट पर बहुत प्रभाव पड़ता है। अत: प्लाण्ट ले-आउट निर्धारित करते समय इस घटक पर ध्यान देना आवश्यक है।

7. भवन (Building)—उद्योग में दो प्रकार के भवन हैं—(i) प्रशासकीय, (ii) कार्यशाला। कार्यशाला का निर्माण, इसका क्षेत्रफल, ऊँचाई, भविष्य में विस्तार की सम्भावना आदि के अनुसार भवन का निर्माण किया जाता है। निर्मित भवन में प्लांट ले-आउट उसके सही रूप से उपयोग से प्रभावित होता है।

8. परिवर्तन (Change)—उद्योग को किसी निश्चित उत्पाद के निर्माण के लिये लगाया जाता है। कई बार चयनित उत्पाद से उद्योग को समुचित लाभ नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में किसी अन्य उत्पाद को भी उसी उद्योग में निर्मित करने से लाभ अर्जित हो सकता है तथा कभी-कभी उद्योग का उत्पादन भी बदलना पड़ सकता है। ऐसी स्थिति के लिये प्लांट ले-आउट में लचीलापन, परिवर्तन की क्षमता आदि होना अति आवश्यक है। अत: प्लांट ले-आउट को निर्धारित करते समय निम्न बातें भी ध्यान में रखनी चाहिए—

(i) उत्पाद के आकार-प्रकार में परिवर्तन,
(ii) मशीनों में परिवर्तन,
(iii) श्रमिकों की संख्या में परिवर्तन,
(iv) अन्य उत्पाद का उत्पादन करना,
(v) उत्पाद में परिवर्तन आदि।

9. अनुरक्षण एवं सेवा (Maintenance and Services)—इस घटक के अन्तर्गत इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उद्योग में होने वाले अनुरक्षण कार्य, मरम्मत कार्य, निरीक्षण कार्य आदि करने वाले व्यक्तियों को उचित स्थान मिल सके, उनके औजारों एवं उपकरणों को रखने के लिए सुनिश्चित एवं समुचित स्थान उपलब्ध हो सके तथा उनके कार्य करते समय उद्योग में किसी प्रकार का गतिरोध उत्पन्न न हो।

प्रोजेक्ट प्रोफाइल (Project Profile)

लघु उद्योग विकास संगठन (Small Industries Development Organization or S.I.D.O.) अपनी तकनीकी परामर्श एवं विस्तार सेवाओं के जरिये लघु स्तरीय उद्यमियों को व्यापक स्तर पर सहायता प्रदान करते हैं। लघु उद्योगों को प्रोजेक्ट प्रोफाइल तैयार करने में मदद करना, उसकी सहायता सेवाओं का एक अंग है। ये प्रोजेक्ट प्रोफाइल लघु उद्योग क्षेत्र में विनिर्माण योग्य उत्पादों के बारे में कुछ आधारभूत आंकड़े प्रस्तुत करते हैं, जैसे—उपलब्ध तकनीक, मार्केटिंग, सम्भाव्यता, उत्पादन वितरण, विनिर्माण प्रक्रियायें कच्चे प्रदार्थों की आवश्यकता, कार्यकारी पूँजी, पूँजी निवेश उत्पादन लागत इत्यादि। सुगमता के लिये प्रोजेक्ट प्रोफाइलों को निम्नांकित तीन समूहों (Groups) में वर्गीकृत किया जाता है—

समूह (I) यान्त्रिक इंजीनियरी उद्योग (Mechanical Engineering Industries)

समूह (II) कैमिकल, फूड, ग्लास तथा सिरैमिक्स (Chemical, Food, Glass and Ceramics)

समूह (III) इलैक्ट्रीकल, इलैक्ट्रॉनिक्स, मैटलर्जिकल वुड, हौजरी, लैदर, तथा स्पोर्ट्स गुड्स (Electrical Electronics, Metallurgical, Wood, Hosiery, Leather and Sports Goods)

उपरोक्त समूहवार प्रोजेक्ट प्रोफाइल संकलित रूप से विकास आयुक्त लघु उद्योग मन्त्रालय भारत सरकार निर्माण भवन नई दिल्ली 110011 के पते पर उपलब्ध होते हैं।

ये प्रोजेक्ट प्रोफाइल केवल मार्गदर्शक का कार्य करते हैं। उद्यमियों (Entrepreneurs) को चाहिये कि वे निजी हित में प्रस्तावित प्रोजेक्ट की आवश्यक अन्तिम सूचनायें (जिनमें तकनीक एवं उत्पादन लागत इत्यादि शामिल हों) निकटतम लघु सेवा संस्थान (Small Industries Service Institute) से सम्पर्क करके प्राप्त कर लें।

कुछ प्रमुख इंजीनियरी उत्पादों के प्रोजेक्ट प्रोफाइल उदाहरणार्थ नीचे दिये जा रहे हैं। जिनमें 1988 तक के पुनरीक्षित आकलन (Revised Estimates) प्रस्तुत किये गये हैं।

Scanned with CamScanner

(I) बाईसिकिल के चैन कवर का प्रोजेक्ट प्रोफाइल (Project Profile of Bicycle Chain Cover)

1. उत्पाद एवं इसका उपयोग (Product and Its Use)—यह बाईसिकल का एक सहायक अंग है। इसके उपयोग के बारे में सामान्यत: सभी साइकिल सवार भली-भाँति जानते हैं कि इसे बाईसिकिल के चैन व्हील (Chain Wheel) को ढकने के लिये प्रयोग किया जाता है ताकि साइकिल सवार की पैन्ट को चेन में फँसने से बचाया जा सके।

2. मार्केट सम्भाव्यता (Market Potential)—इस आइटम की मार्केट सम्भाव्यता बहुत अच्छी है, क्योंकि इसकी माँग बाईसिकिलों की बढ़ती हुई माँग के साथ उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है।

3. उत्पादन लक्ष्य (Production Target)—उत्पादन लक्ष्य 80,000 दर्जन प्रतिवर्ष है।

4. उत्पादन वितरण एवं विनिर्माण प्रक्रिया (Production Details and Process of Manufacture)—इस उत्पाद का निर्माण साधारण क्रियाओं द्वारा सम्पन्न होता है और इसमें 22/24 गेज की C.R.C.A. Sheet को प्रयोग में लाया जाता है। शीट के निर्धारित साइज में शियरिंग मशीन (Shearing Machine) की सहायता से काटा जाता है, फिर इसे शक्ति प्रेस (Power Press) पर अभीष्ट आकार प्रदान किया जाता है। अन्त में से ऐनेमल पेन्ट से उपयुक्त रंग दिया जाता है। क्लिप्स, स्क्रू, नट इत्यादि बाहर से प्राप्त किये जाते हैं।

5. भूमि व भवन (Land and Building)

भूमि (Land)	500 वर्ग मीटर
आवरणित क्षेत्रफल (Covered Area)	300 वर्ग मीटर
किराया प्रतिमाह (Hire per Month)	5,000 वर्ग मीटर

6. मशीनरी तथा उपकरण (Machinery and Equipments)

क्र० सं०	विवरण (Description)	संख्या (रु० में)	अश्व शक्ति	मूल्य
1.	पॉवर प्रैस 50 टन क्षमता	1	5	50,000
2.	पॉवर प्रैस 50 टन क्षमता	1	3	40,000
3.	पॉवर प्रैस 5 टन क्षमता	2	4	25,000
4.	पाँच स्टेज ट्रांसफॉर्मर प्रैस 10 टन क्षमता	2	4	50,000
5.	शिविर मशीन 1000 × 3 मिली० क्षमता	1	5	60,000
6.	झुकावदार पॉवर प्रैस 3 टन क्षमता	2	2	30,000
7.	विशेष प्रयोजनी रोल फार्मिंग मशीन	1	1	10,000
8.	लेदर मशीन 1800 मिली० वैड 150 मिमी० सेन्टर ऊँचाई	1	3	50,000
9.	शेपिंग मशीन 750 मिमी० स्टोक	1	3	45,000
10.	कम्पलीट स्लोव एनेमालिंग प्लांट 6 (बैकिंग ओवन, पेन्टिंग बूथ एयर कम्प्रेशर स्प्रैगन इत्यादि के साथ)	1	1	40,000
11.	संस्थापन तथा विद्युतीकरण	—	—	50,000
12.	ऑफिस फर्नीचर तथा उपकरण	—	—	40,000
13	टूल्स, डाईज, फिक्सचर इत्यादि	—	—	35,000
			योग	5,25,000.00

Scanned with CamScanner

7. स्टाफ एवं श्रमिक (Staff and Labour)

A. प्रशासनिक तथा पर्यवेक्षकीय

क्र० सं०	स्टाफ	संख्या	मासिक दर	धनराशि
1.	प्रबन्धक (Manager)	1	15,000	15,000
2.	एकाउन्टेट /क्लर्क	1	5,000	5,000
3.	चपरासी	1	2,500	2,500
4.	चपरासी/चौकीदार	1	2,500	2,500
			योग	25,000

B. तकनीकी तथा अन्य स्टाफ—

क्र० सं०	विवरण	संख्या	मासिक दर	धनराशि
1.	फोरमैन	1	8,000	8,000
2.	परिचालक (कुशल)	10	50,000	50,000
3.	परिचालक (अर्द्धकुशल)	3	3,500	10,500
4.	सहायक (अकुशल)	6	1,500	9,000
5.	पेन्टर	1	2,000	2,000
			योग	79,500.00

स्टॉफ वेलफेयर @ 15% 11,925.00

योग 91425.00

कुल योग $(A + B) = 1,16,425.00$

8. कच्चे पदार्थों की आवश्यकता प्रतिमाह

क्र० सं०	विवरण	मात्रा	मासिक दर	धनराशि
1.	22/24 गेज की C.R.C.A. शीट्स	16.5	25,000	4,12,500
2.	विलप्स, स्क्रू तथा नट्स	500 Gross	50	25,000
3.	एनेमल पेन्ट	1,200 लीटर	60	72,000
			योग	5,09,500.00

9. अन्य खर्चे प्रतिमाह—

		रुपये
(i)	पानी तथा बिजली	8,000
(ii)	पोस्टेज तथा स्टेशनरी	1,500
(iii)	प्रायोगिक औजार	6,000
(iv)	तेल तथा स्नेहक	1,500
(v)	मरम्मत तथा रख-रखाव	1,000
(vi)	भाड़ा तथा किराया	5,000

Scanned with CamScanner

(vii)	यात्रा व्यय	5,000
(viii)	पैकिंग	26,000
(ix)	भवन का किराया	10,000
(x)	अन्य मिले-जुले खर्चे	1,200
(xi)	विज्ञान/प्रचार	2,000
	योग	67,000

10. कार्यकारी पूँजी (प्रतिमाह)

(i)	कच्चे पदार्थ	5,09,500.00
(ii)	वेतन/मजदूरी	1,16,425.00
(iii)	अन्य खर्चे	67,200.00
	योग	6,93,125.00

11. कुल पूँजी निवेश (Total Capital Investment)

(i)	कुल कार्यकारी पूँजी प्रति तीन माह	20,79,375.00
(ii)	मशीनरी तथा उपकरण	5,25,000.00
	योग	26,04,375.00

12. उत्पादन लागत (प्रतिवर्ष)

(i)	कार्यशील पूँजी (प्रतिवर्ष)	83,70,500.00
(ii)	मशीनरी तथा उपकरण पर मूल्य ह्रास (10% की दर से)	52,500.00
(iii)	पूँजी निवेश पर ब्याज (10% की दर से)	2,60,437.50
	योग	86,83,437.50

13. बिक्री विवरण (प्रतिवर्ष)

(i)	80,000 दर्जन कवर की बिक्री रु० 117 प्रति दर्जन की दर से	93,60,000
(ii)	20 अन स्क्रैप की बिक्री रु० 6,000 प्रति टन की दर से	1,20,000
	योग	94,80,000

14. लाभांश (Profitability)

लाभांश = बिक्री − उत्पादन

= 94,80,000 − 86,83,437.50 = 7,96,562.50

(a) बिक्री पर लाभांश का प्रतिशत $= \frac{7,96,562.50 \times 100}{9,48,000} = 8.40\%$

(b) पूँजी निवेश पर वापसी का प्रतिशत $= \frac{7,96,562.50 \times 100}{26,04,375.00} = 30.58\%$

15. सम-खण्डन बिन्दु (Break Even Point)

स्थिर लागत (प्रतिवर्ष)

(i)	किराया	60,000.00

Scanned with CamScanner

(ii)	पूँजी पर ब्याज	2,60,437.50
(iii)	40% वेतन	5,58,840.00
(iv)	40% अन्य खर्चे (किराया सहित)	3,22,560.00
	मशीनरी पर मूल्य ह्रास	52,500.00
	योग	12,54,337.50

$$\therefore \text{सम-खण्डन बिन्दु (Break Even Point)} = \frac{\text{स्थिर लागत} \times 100}{\text{स्थिर लागत} + \text{लाभांश}}$$

$$= \frac{12,54,337.50 \times 100}{12,54,337.50 + 7,96,562.50} = 61.16\%$$

(II) हैक-सॉ ब्लैडों का प्रोजेक्ट प्रोफाइल (Project Profile of Hack-saw Blades)

1. उत्पाद एवं इसका उपयोग (Product and Its Use)—हैक-सॉ ब्लेड दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकार के ब्लेड हाथ द्वारा चलते हैं तथा दूसरी प्रकार के ब्लेड विद्युत शक्ति (Power) द्वारा चलते हैं। इसी कारण उन्हें क्रमश: हस्त हैक-सॉ ब्लेड (Hand Hacksaw Blade) तथा पॉवर हैक-सॉ ब्लेड (Power Hacksaw Blade) कहते हैं। इनका उपयोग इंजीनियर उद्योग में व्यापक रूप से धातुओं को निश्चित आकार में काटने के लिये होता है। हस्त हैक-सॉ (Hand Hacksaw) विशेष बनावट की होती है जिसमें ब्लेड लगाकर हाथ द्वारा धातु काटी जाती है। हैक-सॉ ब्लेडों का विनिर्माण अनेक साइजों में होता है जो 6" से 12" की लम्बाई तथा 14 से 32 दाँतें प्रति इंच (Teeth per inch) तक की श्रेणियों में उपलब्ध होते हैं।

2. मार्केट सम्भाव्यता (Market Potential)—हमारे देश में तेजी से हो रहे औद्योगिक विकास के फलस्वरूप अच्छे किस्म के हैक-सॉ ब्लेड्स की माँग में पर्याप्त वृद्धि हुई है। इंजीनियरी कार्यशालाओं में इस आइटम की निरन्तर माँग बनी रहती है। चाहे वह विनिर्माण कार्यशाला हो या मरम्मत का काम करने वाली कार्यशाला, सभी में इसकी जरूरत होती है।

3. उत्पादन लक्ष्य (Production Target)—यह स्कीम सामान्यत: 500 ग्रुस (1 ग्रुस = 44 पीस) हैण्ड हैक-सॉ ब्लेड्स तथा 500 ग्रुस पॉवर हैक-सॉ ब्लेड्स प्रतिवर्ष तैयार करने के लिये बनायी जाती है। हैण्ड हैक-सॉ ब्लेड्स की विशिष्टयाँ प्रति इंच दाँतों की संख्या से व्यक्त की जाती हैं जो कि दाँतों की पिच पर आश्रित होती है तथा उसकी लम्बाई को भी व्यक्त किया जाता है जो कि 6" से 12" तक होती है। पॉवर हैक-सॉ ब्लेड्स 12" से 20" तक की लम्बाइयों में बनाये जाते हैं। इनकी मोटाई व चौड़ाई हैण्ड हैक-सॉ ब्लेड्स की अपेक्षा अधिक होती हैं।

4. उत्पादन का विवरण एवं विनिर्माण प्रक्रिया (Production Details and Process of Manufacture)—हैक-सॉ ब्लेड्स के लिये आवश्यक कच्चा माल कार्बन इस्पात की पत्ती (Strip) तथा उच्च गति इस्पात (High speed steel) की निम्न टंगस्टन वाली पत्ती पर स्वचालित मशीनों के द्वारा दाँत काटे जाते हैं तथा दाँतों को सैट (Staggered) किया जाता है। फिर ब्लेडो को ऊष्मा उपचार द्वारा कठोर किया जाता है और उन्हें 10 अथवा 12 की संख्या में बिक्री हेतु पैक किया जाता है।

5. गुण नियन्त्रण तथा मानक (Quality Control and Standards)—भारतीय मानक संस्थान (I.S.I.) द्वारा इस उत्पाद की विशिष्टियाँ मानक संख्या IS : 94 -1963 द्वारा निर्धारित की गई है। हैक-सॉ ब्लेड्स के लिये इनका अनुसरण किया जा सकता है।

5. भूमि व भवन (Land and Building)—भवन का निर्मित क्षेत्रफल 200 वर्ग मीटर 4,000 रुपये प्रतिमाह किराया की दर सर्वथा उचित है।

A.K.M.

7. मशीनरी तथा उपकरण (Machinery and Equipments)

क्र० सं०	नाम	मात्रा	मूल्य
1.	कटिंग ऑफ मशीन मॉडल EMI (क्वायल होल्डर, विद्युत मोटर तथा फिटिंग के साथ आयातित)	1	1,00,000

Scanned with CamScanner

2.	स्ट्रेटनिंग मशीन मॉडल W.G.I. (स्ट्रेटनिंग रोलर्स, इजैक्टिव रोलर्स, विद्युत मोटर तथा फिटिंग्स के साथ) आयातित	1	65,000
3.	यूनिवर्सल मिलिंग मशीन	1	75,000
4.	नॉचिंग मशीन	1	16,000
5.	ऑटोमैटिक हार्डनिंग यूनिट	1	40,000
6.	डी० ई० बैच ग्राइण्डर 8" व्हील साइज	1	9,000
7.	संस्थापन विद्युतीकरण, टूल्स, जिग्स	1	1,30,000
8.	ऑफिस फर्नीचर	1	25,000
	योग		4,60,000

8. स्टाफ तथा श्रमिक (प्रतिमाह)

क्र० सं०	पद	संख्या	रुपये
1.	प्रबन्धक	1	19,000
2.	फोरमैन	1	11,000
3.	एकाउन्टेट/क्लर्क	1	6,000
4.	स्टोर कीपर	1	4,000
5.	कुशल कारीगर @ 2,500 रुपये	4	10,000
6.	अर्द्धकुशल कारीगर @ 2,000 रुपये	4	8,000
7.	हैल्पर @ 1,800 रुपये	2	3,600
8.	वाचमैन/चपरासी @ 1,800 रुपये	2	3,600
		योग	65,200
	बोनस आदि		15,000
		योग	80,200

9. अन्य खर्चे (प्रतिमाह)

क्र० सं०	खर्चे	रुपये
1.	भवन किराया	5,500
2.	प्रयोगिक स्टोर	4,000
3.	परिवहन खर्चे	10,000
4.	मरम्मत तथा रख-रखाव	2,500
5.	पोस्टेज एवं स्टेशनरी	4,000
6.	पॉवर तथा पानी	3,800
7.	विज्ञापन तथा प्रचार	4,000

Scanned with CamScanner

8.	पैकिंग	10,000
	विविध	1,200
	योग	45,200

10. कार्यकारी पूँजी (प्रतिमाह)

	नाम	रुपये
1.	कच्चा माल	2,50,000
2.	स्टाफ तथा श्रमिक	80,200
3.	विविध खर्चे	45,000
	योग	3,75,200

3 माह के लिये कार्यकारी पूँजी 3,75,200 × 3 = 11,25,600

11. कुल पूँजी निवेश

	नाम	रुपये
1.	मशीनरी तथा उपकरण	34,60,000
2.	तीन माह के लिये कार्य पूँजी	11,25,600
	योग	16,85,600

12. उत्पाद लागत (प्रतिमाह)

	नाम	रुपये
1.	कार्यकारी पूँजी	3,75,200
2.	मूल्य ह्रास (Depreciation) मशीनरी स्टेशनरी तथा उपकरण पर 10% प्रतिवर्ष की दर से)	3,850
3.	मूल्य ह्रास (टूल्स, जिग्स, फिक्सचर आदि पर 12% की दर से)	2,500
4.	कुल पूँजी निवेश पर ब्याज (10% प्रतिवर्ष)	1,58,560
	योग	5,40,110

13. कुल बिक्री (प्रतिवर्ष)

	नाम	रुपये
1.	1300 ग्रॉस हैण्ड हैक-सॉ ब्लेड की बिक्री 250 रु० प्रति ग्रॉस (1 ग्रॉस = 12 दर्जन)	3,25,000
2.	1300 ग्रॉस पॉवर हैक-सॉ ब्लेड की बिक्री 500 रु० प्रति ग्रॉस	65,00,000
	योग	68,25,000

14. लाभांश (प्रतिवर्ष)

1.	कुल बिक्री (प्रतिवर्ष)	68,25,000

Scanned with CamScanner

2.	(–) उत्पादन की लागत (प्रतिवर्ष) $540110 \times 12 =$	– 64,81,320
	योग	3,43,680

बिक्री पर लाभांश का प्रतिशत $= \frac{3,43,680 \times 100}{68,25,000} = 5.03\%$

पूँजी पर वापसी का प्रतिशत $= \frac{3,43,680 \times 100}{15,85,600} = 21.6\%$

III. विद्युत प्रैस का प्रोजेक्ट (Project Profile of Electric Press)

1. परिचय (Introduction)—आज के युग में यह बहुत ही प्रचलित विद्युत उपकरण है। ये उपयोग करने में सुविधाजनक तथा समय की बचत करने वाली जीन्स (Gadgets) होते हैं। विद्युत उपभोक्ताओं की बढ़ती हुई आबादी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में विद्युत सप्लाई पहुँच जाने के कारण जन साधारण में विद्युत उपकरणों की माँग बढ़ रही है। गृह उपयोगी विद्युत उपकरणों में विद्युत प्रैस एक अत्यन्त लोकप्रिय उपकरण साबित हुआ है जो घर-घर में प्रयोग में लाया जा रहा है। इसलिए इस उद्योग के विकास की बहुत सम्भावनाएँ हैं।

2. आधार तथा परिसम्भाव्यता (Basic and Presumption)—प्रस्तावित स्कीम में 400 स्वचालित प्रैसों तथा 800 साधारण प्रेसों के उत्पादन का लक्ष्य रखा गया है। प्रैसों के उत्पादन में आवश्यक पुर्जे (Components) जैसे—नट, बोल्ट, हीटिंग एलीमेन्ट, हत्थे, थर्मोस्टेट आदि की व्यवस्था बाहर से किया जाना प्रस्तावित है। इलेक्ट्रोप्लेटिंग का कार्य भी बाहर से कराया जाना है। प्रयोजन के आधार पर प्रस्तावित इकाई में मुख्य रूप से शीट मैटल कार्य, ऐसेम्बली तथा टैस्टिंग कार्य ही किये जायेंगे।

3. प्रक्रम की रूपरेखा (Process Outline)—विद्युत प्रेसों का उद्योग विशेषकर ऐसेम्बली और टैस्टिंग पर आधारित है। इसके सभी कम्पोनेन्ट्स बाहर से प्राप्त किये जाते हैं। इसकी इकाई में मुख्य रूप से शीट मैटल कार्य, ऐसेम्बली तथा टैस्टिंग का कार्य होता है।

शीट मैटल कार्य के अन्तर्गत CRCA शीट्स को शेयरिंग मशीन पर अभीष्ट आकार में काटा जाता है। प्रैसों पर उन्हें अभीष्ट आकार प्रदान किया जाता है और प्रैसों पर ही आवश्यक क्लैम्प इत्यादि भी तैयार किये जाते हैं। कास्ट आयरन की प्लेट्स वांछित आकार तथा भार के अनुसार बाहर से प्राप्त की जाती है, जिन पर बाद में इलैक्ट्रोप्लेटिंग की जाती है। विद्युत प्रैसों की ऐसेम्बली के अन्तर्गत ऊपर कास्ट आयरन प्लेट तथा आधार प्लेट के बीच हीटिंग ऐलीमेन्ट रखा जाता है और थर्मोस्टेट का कनैक्शन तापमान-नियन्त्रण के लिये किया जाता है, फिर कवर इत्यादि फिक्स करके प्रैस को अन्तिम रूप से ऐसेम्बल किया जाता है और निर्धारित मानकों के अनुरूप उनकी टैस्टिंग की जाती है।

4. गुण स्तर तथा विशिष्टियाँ (Quality and Specifications)—विद्युत प्रैसों के लिये गुण स्तर तथा विशिष्टियों की व्याख्या भारतीय मानक संस्थान I.S.I. 366/1965 में की गई है। निर्मित विद्युत प्रैसों का गुण स्तर भारतीय मानक विशिष्टियों के अनुरूप बनाये रखने के लिए टैस्टिंग की जाती है।

5. उत्पाद क्षमता (Production Capacity)—इकाई में प्रेसों का उत्पादन प्रतिमाह 800 साधारण प्रैस तथा 400 स्वचालित प्रैसों को बनाने का प्रस्ताव है।

6. वित्तीय भार (Financial Aspects)—इकाई का वित्तीय भार मुख्यत: स्थिर परिसम्पत्तियों पर होता है, जैसे—भूमि व भवन, संयन्त्र व मशीनरी तथा टैस्टिंग उपकरण, इत्यादि। इसके अतिरिक्त कार्यकारी पूँजी लागत व वित्तीय भार भी होता है। इनका मदवार (Itemwise) आकलन निम्नांकित प्रकार से किया जाता है—

(a) भूमि व भवन (Land and Building)—भवन जिनमें 100 वर्ग मीटर कवर्ड क्षेत्रफल हो, का किराया 3,000 रुपये।

(b) संयन्त्र तथा मशीनरी (Plant and Machinery)

(i)	पॉवर प्रैस 40 टन क्षमता	1 नं०	75,000

Scanned with CamScanner

(ii)	गुलिटन शियर $4\frac{1}{8}$''	1 न०	40,000
(iii)	ड्रिलिंग मशीन $\frac{1}{2}$'' क्षमता (With Tapping Attachment)	1 न०	19,000
(iv)	हैण्ड प्रैस न० 2 व न० 3	1 न०	7,000
(v)	केन्द्र खराद $4\frac{1}{2}$'' बैंड	1 न०	28,000
(vi)	शियर ग्राइन्डर 18' × 6'	1 न०	43,000
(vii)	D.E. ग्राइन्डर 8"	1 न०	3,200
(viii)	औजार तथा डाई इत्यादि	1 न०	25,000
	योग		2,43,200

(c) टैस्टिंग उपकरण (Testing Equipment)

(i)	HV टेस्टर 5 kV	1	5,000
(ii)	ऐमीटर 0 से 10 amp	2	1,200
(iii)	वोल्टमीटर 0 से 300 वोल्ट	2	1,200
(iv)	वोल्टमीटर 0 से 3000 वोल्ट	1	1,800
	0 से 2000 वाट	1	1,800
	0 से 1000 वाट	1	1,800
(v)	मेगर (Megger)	1	1,200
(vi)	डिजिटल थर्मामीटर	1	800
(vii)	मिलिऐमीटर	1	650
(viii)	लीकेज करंट एयरेटस	1	1,100
(ix)	टेस्ट बैंच (एमीटर, वोल्टमीटर, वाटमीटर इत्यादि)	2	15,000
(x)	मल्टीमीटर	2	1,500
(xi)	विविध गेज	आवश्यकतानुसार	3,000
	योग		36,050
(d)	संस्थापन का विद्युतीकरण चार्ज		2,000
(e)	ऑफिस फर्नीचर तथा सामग्री		18,000
(f)	बर्क बैंच आदि		8,000
	∴ कुल स्थिर पूँजी		
(i)	संयन्त्र तथा मशीनरी		2,43,200

Scanned with CamScanner

(ii) टैस्टिंग उपकरण		36,050
(iii) संस्थापन चार्ज		20,000
(iv) ऑफिस फर्नीचर, सामग्री, बैंच आदि		26,000
योग		3,25,250

(g) कार्यशील पूँजी (प्रतिमाह) (Working Capital per Month)

(क) पगार तथा वेतन (Wages and Salaries)

(i)	प्रबन्धक	1	19,000
(ii)	क्लर्क/टाइपिस्ट	1	7,000
(iii)	स्टोर कीपर	1	7,000
(iv)	एकाउन्टेन्ट	1	8,000
(v)	चपरासी/चौकीदार	2	3,000
(vi)	उत्पादन प्रभारी (Production Incharge)	1	2,500
(vii)	कुशल कारीगर (Skilled worker)	4	4,000
(viii)	अर्द्धकुशल कारीगर (Semi-skilled Worker)	4	4,800
(ix)	अकुशल कारीगर (Unskilled Worked)	4	4,000
(x)	परीक्षण कारीगर (Testing Worker)	2	3,100
	योग		62,400
	अतिरिक्त आय 15%		9360
	योग		71,760
	Say		72,000

(ख) कच्चे पदार्थ प्रतिमाह (Raw Material Per Month)

	कच्चे पदार्थ	मात्रा	दर	धनराशि
(i)	C.R.C.A शीट	600 ग्राम	रु० 30/- प्रति किग्रा०	18,000
(ii)	थर्मोस्टेट	400 न०	रु० 25/- प्रति नग	10,000
(iii)	C.I. प्लेट्स	1200 किग्रा०	रु० 18/- प्रति किग्रा०	21,600
(iv)	हीटिंग ऐलीमेन्ट (माइका)	1200 न०	रु० 12/- प्रति ऐलीमेन्ट	14,400
(v)	बैकेलाइट हत्था	1200 न०	रु० 8/- प्रति हत्था	9,600
(vi)	इन्डीकेटर लैम्प	1200 न०	रु० 4/- प्रति बल्ब	4,800
(vii)	थ्री कोर केबिल	2400 मी०	रु० 9.5/- प्रति मीटर	22,800
(viii)	विविध सामग्री जैसे—बोल्ट, नट, वाशर तथा टर्मिनल आदि।	आवश्यकतानुसार		

Scanned with CamScanner

(ix) इलेक्ट्रोप्लेटिंग चार्जेज आवश्यकतानुसार

योग	25,000
	1,37,200
योग	3,000
	1,40,000

(ग) विविध खर्चे (Misc. Expenditure)

(i)	किराया	4000
(ii)	विद्युत	6000
(iii)	प्रचार-प्रसार तथा विक्रय खर्च	15000
(iv)	प्रशासनिक खर्च, जैसे—पोस्टेज, स्टेशनरी आदि ऑफिस के खर्चे	3600
(v)	विविध	1800
	योग	30,400

कुल कार्यकारी पूँजी प्रतिमाह

(i)	पगार तथा वेतन	72,000
(ii)	कच्चा पदार्थ	1,37,200
(iii)	उपभोज्य पदार्थ	3,000
(iv)	विविध खर्चे	30,400
	योग	2,42,600
	तीन माह के लिये कार्यशील पूँजी	7,27,800

कुल पूँजी निवेश

(i)	कुल स्थिर पूँजी	3,25,250
(ii)	तीन महीने की कुल कार्यशील पूँजी	7,28,000
	योग	10,53,250

उत्पादन लागत प्रतिमाह

(i)	कार्यशील पूँजी	2,42,600
(ii)	संयन्त्र एवं मशीनरी का मूल्य ह्रास (10% प्रतिवर्ष)	2,050
(iii)	टूल्स तथा उपकरण का मूल्य ह्रास (20% प्रतिवर्ष)	600
(iv)	पूँजी निवेश पर ब्याज (10% प्रतिवर्ष)	7,852
	योग	2,53,102
	Say	2,54,000

विक्रय से आय

(b) 400 स्वचालित प्रैसों की बिक्री रु० @ 300/-प्रतिनग 1,20,000

Scanned with CamScanner

(b) 800 साधारण प्रैसों की बिक्री रु० @ 150/-प्रतिनग 1,20,000

योग 2,40,000

∴ लाभ प्रतिमाह (Before Tax) 20,000

पूँजी निवेश पर लाभ का प्रतिशत 212%

विक्रय पर लाभ 9%

सम विच्छेद बिन्दु ((Break Even Point)

स्थिर लागत (Fixed Cost)

(i) किराया 3,000

(ii) मूल्य ह्रास 2,050

(iii) 40% पगार और वेतन 28,800

(iv) 40% अन्य खर्चे (किराया छोड़क) 10,560

योग 45,310

Say 45,000

∴ सम विच्छेद बिन्दु ((Break Even Point)

$$= \frac{\text{स्थिर लागत} \times 100}{\text{स्थिर लागत} + \text{स्थिर लाभांश}}$$

$$= \frac{45,000 \times 100}{45,500 + 20,000} = 69.2\%$$

10.5 परियोजना मूल्यांकन

(Refer to Chapter-9 Point 9.4)

प्रश्नावली

1. सफल उद्यमी के लक्षणों का वर्णन कीजिए।
2. कृषि क्षेत्र तथा औद्योगिक क्षेत्र में क्या भिन्नता है? समझाइए।
3. प्रोजेक्ट रिपोर्ट के तीन महत्वपूर्ण तथ्यों को वर्णन करो।
4. परियोजना रिपोर्ट क्या है? यह कब तैयार किया जाता है?
5. सम विच्छेद बिन्दु से आप क्या समझते हो? इसकी निर्धारित तकनीक क्या है? ***(UPBTE 2006)***
6. ग्रामीण क्षेत्र के विकास में उद्यमिता की भूमिका की विवेचना कीजिए।
7. परिवार जन्य उद्यमिता का क्या अभिप्राय है? यह औद्योगिक उद्यमिता के संवर्धन में किस प्रकार सहायता करती है? ***(UPBTE 2006)***
8. औद्योगिक प्रोजेक्ट की वित्तीय सहायता हेतु मूल्यांकन किस प्रकार करते हैं? आन्तरिक वापसी दर से क्या तात्पर्य है?
9. भारत के आर्थिक विकास में लोक उद्योगों के महत्त्व की व्याख्या कीजिए।
10. निम्न कथनों को स्पष्टत: एवं यथार्थत: समझाइए—

(अ) "ग्रामीण युवाओं के शहरी केन्द्रों की ओर वृहद् पलायन ने ग्रामीण उद्यमिता विकास कार्यक्रम को अप्रासंगिक बना दिया है।"

Scanned with CamScanner

अध्याय-11

अर्थशास्त्र के मूलभूत तत्व

[Fundamentals of Economics]

❋ ***सूक्ष्म अर्थशास्त्र, समष्टि अर्थशास्त्र***

प्रस्तावना—आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र के अध्ययन को दो भागों यथा—सूक्ष्म अर्थशास्त्र एवं समष्टि अर्थशास्त्र में विभाजित किया है। ये दोनों सर्वप्रथम टैगनर फ्रिस्क द्वारा (ओस्लो विश्वविद्यालय) 1933 में खोजे एवं प्रयुक्त किये गये।

11.1 सूक्ष्म अर्थशास्त्र

सूक्ष्म अर्थशास्त्र आर्थिक सिद्धान्तों का वह भाग है जो एक अर्थव्यवस्था में व्यक्तियों के व्यवहारों का यथा—एक परिवर, फर्म, एक उद्योग इत्यादि. से सम्बन्ध रखती है। यह अर्थव्यवस्था के संघटक तत्त्वों का विश्लेषण, गृह-परिवार, फर्म, उद्योग हैं। सूक्ष्म शब्द अंग्रेजी के **माइक्रो** (micro) शब्द का हिन्दी अनुवाद है जो ग्रीक शब्द **'माइक्रोस'** से लिया गया है, जिसका अर्थ **'छोटा'** होता है। इस प्रकार सूक्ष्म अर्थशास्त्र से आशय 'लघु का अर्थशास्त्र' से है।

परिभाषा—प्रो० बाउल्डिंग के अनुसार, "सूक्ष्म अर्थशास्त्र फर्म विशेष, परिवार (कुटुम्ब) विशेष, व्यक्तिगत मूल्य, मजदूरी उद्योग तथा वस्तु विशेष का अध्ययन है।"

लेफ्टविच के अनुसार, "सूक्ष्म अर्थशास्त्र इस प्रकार की आर्थिक इकाइयों' यथा—उपभोक्ताओं, संसाधन स्वामियों तथा व्यावसायिक फर्मों के आर्थिक गतिविधियों के अध्ययन से सम्बन्धित है।"

सूक्ष्म अर्थशास्त्र एक चयनात्मक अध्ययन है। यह व्यक्तिगत वस्तुओं के बाजार गतिविधियों तथा उस बाजार में व्यक्तिगत क्रेता एवं विक्रेता के व्यवहारों के वर्णन का प्रयास करता है। प्राथमिक रूप से यह व्यक्तिगत सामग्रियों एवं साधनों के मूल्य निर्धारण से सम्बन्धित है। यह स्पष्ट करता है कि किस प्रकार गेहूँ, कपड़े तथा अन्यान्य सहस्रों वस्तुओं का मूल्य निर्धारण होता है।

सूक्ष्म अर्थशास्त्र निम्नलिखित विषयों से सम्बन्धित है—

(A) वस्तु मूल्य निर्धारण (मूल्यन)—वस्तुओं के मूल्य का निर्धारण बाजार की शक्तियों 'माँग व पूर्ति' द्वारा होता है। अत: सूक्ष्म अर्थशास्त्र माँग विश्लेषण (व्यक्तिगत उपभोक्ता व्यवहार अध्ययन के द्वारा) तथा आपूर्ति विश्लेषण (उत्पादक के व्यवहार का विश्लेषण) करता है।

(B) साधन मूल्यन—उत्पादन प्रक्रिया इसके विभिन्न साधनों के संयुक्त प्रयास का फल है। भूमि, श्रम, पूँजी, तथा उद्यम वे घटक हैं जो उत्पादन प्रक्रिया में अंशदान करते हैं। प्रतिफल के रूप में ये पारिश्रमिक अथवा पुरस्कार, लगान, मजदूरी, ब्याज एवं लाभ क्रमश: प्राप्त करते हैं।

सूक्ष्म अर्थशास्त्र में इन घटकों का मूल्य निर्धारित रहता है। इस प्रकार यह साधनों के मूल्यन से सम्बन्धित है और इसे मूल्य सिद्धान्त अथवा कीमत सिद्धान्त भी कहा जाता है।

Scanned with CamScanner

(C) सूक्ष्म अर्थशास्त्र संसाधनों के अनुकूलतम आबंटन से सम्बन्धित है। यह विश्लेषण आधुनिक कल्याणकारी अर्थशास्त्र के आधार की रचना करता है। यह कतिपय अग्रलिखित प्रश्नों—

'क्या उत्पादन करना है? कब उत्पादन करना है? कितना उत्पादन करना है? किस प्रकार उत्पादन करना है? तथा किसके लिये उत्पादन करना है? के उत्तर खोजने का प्रयास करता है। अन्य शब्दों में यह संसाधनों की कमी तथा इनके अधिकतम सामाजिक कल्याण के उपयोग हेतु दिशा-निर्देश प्रदान करता है।

सूक्ष्म अर्थशास्त्र–प्रयोग एवं महत्व

1. आर्थिक नीतियों का निर्धारण—सूक्ष्म अर्थशास्त्र, सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने के लिए विभिन्न आर्थिक नीतियों एवं धार्मिक योजनाओं का निर्धारण (निर्माण) करता है। अर्थशास्त्र की सहायता से संसाधनों के आबंटन पर सरकारी नीतियों के प्रभाव के बारे में जान सकता है।

2. अर्थशास्त्र का संचालन—सूक्ष्म अर्थशास्त्र की सहायता से अर्थव्यवस्था के संचालन का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इस सन्दर्भ में प्रो० वॉटसन ने कहा है कि "सूक्ष्म अर्थशास्त्र बहुउपयोगी है। इनमें सर्वप्रमुख अर्थव्यवस्था के संचालन की समझ है।"

3. कल्याण अर्थशास्त्र का आधार—सूक्ष्म अर्थशास्त्र कल्याणकारी अर्थशास्त्र के आधार स्थापन का कार्य करता है। यह आर्थिक कल्याण की दशाओं का परिक्षण करता है तथा अल्प संसाधनों (वे संसाधन जिनकी उपलब्धता आवश्यकता अथवा माँग से अति-अल्प है) का वर्णन करता है जो सर्वोन्नत आर्थिक विकास के सर्वश्रेष्ठ परिणाम को प्राप्त करने में सहायक होते हैं।

4. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोकवित्त में सहायता—सूक्ष्म अर्थशास्त्र का अध्ययन अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अनेक पहलुओं यथा—तटकर का विनिमय दर निर्धारण में प्रभाव, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ इत्यादि, के विश्लेषण में सहायता करता है। इसके अतिरिक्त यह लोक वित्त के विश्लेषण, यथा कर निर्धारण एवं इसके प्रभाव, में अत्यन्त सहायक होता है।

5. सरकार के उद्देश्यों की प्राप्ति में उपयोगी—सूक्ष्म अर्थशास्त्र सरकार के आर्थिक नीतियों के निर्धारण कार्यक्रम में अति महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। कर दर का निर्धारण कर के प्रकारों का निर्धारण तथा कर की मात्रा का निर्धारण जैसे महत्त्वपूर्ण कार्यों में सरकार का मददकार होता है।

सूक्ष्म अर्थशास्त्र की सीमायें

उपरोक्त लाभों के अतिरिक्त सूक्ष्म अर्थशास्त्र की कुछ सीमायें भी होती हैं जो निम्नलिखित हैं—

1. अपर्याप्त आँकड़े—चूँकि सूक्ष्म अर्थशास्त्र व्यक्तिगत व्यवहारों का विश्लेषण करता है। अत: इनसे सटीक सूचनायें प्राप्त करना दुष्कर होता है। ऐसा इसलिये होता है क्योंकि जो तथ्य एक व्यक्ति की दशा में सत्य होता है। वह समूह की दशा में आवश्यक नहीं कि सत्य ही हो। यह भी आवश्यक नहीं कि एक व्यक्ति के व्यवहार को व्यक्ति समूह के व्यवहार के रूप में सामान्यीकृत नहीं किया जा सकता।

2. अन्य दशाओं के समान रहने तथा पूर्ण रोजगार की मान्यता—सूक्ष्म अर्थशास्त्र अपने विवेचन, विश्लेषण में यह मान्यता धारण करता है कि अन्य निर्धारित घटक अध्ययन एवं विश्लेषण की अवधि में स्थिर रहेंगे जो कि पूर्णत: अव्यावहारिक मान्यता है। इसके अतिरिक्त सूक्ष्म अर्थशास्त्र पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता को विचारित करता है। अत: यह दो मान्यताएँ यथार्थ में सूक्ष्म अर्थशास्त्र की सीमायें हैं।

3. सीमित क्षेत्र—कतिपय ऐसी आर्थिक समस्याएँ सूक्ष्म अर्थशास्त्र की परिधि (सीमा-क्षेत्रों) से परे होती हैं तथा इन सिद्धान्तों की सहायता से विश्लेषित नहीं की जा सकती है। लोक वित्त मौद्रिक एवं राजकोषिक नीतियाँ आदि सूक्ष्म अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत नहीं आतीं।

माँग का सिद्धान्त

अर्थ—माँग किसी वस्तु की दिये गये मूल्य पर, (मूल्य विशेष पर) समय विशेष पर तथा स्थान विशेष पर क्रय की जाने वाली (जो उपरोक्त आधारों पर सम्भावित क्रेता द्वारा खरीदी जा सकती है) इकाई है।

Scanned with CamScanner

माँग के तत्त्व—माँग के तत्त्व निम्नलिखित हैं—

1. वस्तु को क्रय करने की इच्छा होनी चाहिए।
2. भुगतान करने का सामर्थ्य—इच्छित वस्तु के मूल्य का भुगतान करने का सामर्थ्य होना चाहिए।
3. भुगतान करने की इच्छा—इच्छित वस्तु के लिये भुगतान की इच्छा होनी चाहिए।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि क्रय शक्ति एवं भुगतान करने की इच्छा रखते हुए किसी वस्तु के क्रय करने की इच्छा उस वस्तु के प्रति उपभोक्ताओं की माँग को प्रदर्शित करता है।

माँग का नियम—माँग के नियम के अनुसार यदि अन्य चीजें स्थिर रहें तो मूल्य बढ़ने के साथ वस्तु की माँग में कमी आती है तथा मूल्य घटने के साथ वस्तु की माँग में वृद्धि होती है।

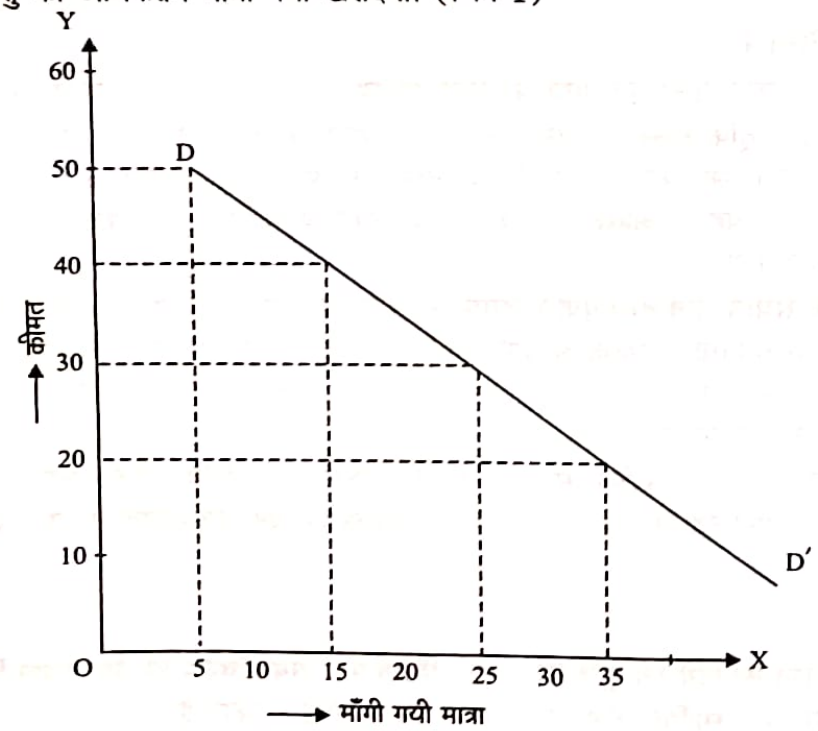
प्रो० सैमुएलसन के अनुसार, "यदि अन्य चीजें समान रहें तो व्यक्ति निम्न मूल्य पर अधिक खरीदेगा तथा अधिक मूल्य पर अल्प क्रय करेगा।"

उपरोक्त वर्णित अन्य चीजों में सम्बनिधत वस्तुओं का मूल्य, उपभोक्ताओं की आय उनकी रुचि तथा वरीयता सम्मिलित होते हैं।

माँग अनुसूची—माँग अनुसूची एक सूची है जो यह प्रदर्शित करती है कि विभिन्न समयावधि में उपभोक्ता वस्तुओं की कितनी मात्रा क्रय करेगा।

मूल्य (रुपये में)	माँगी गयी मात्रा
50	5
40	15
30	25
20	35

माँग वक्र—माँग वक्र माँग अनुसूची का चित्रीय निरूपण है। माँग वक्र यह दर्शाता है कि विभिन्न मूल्यों पर प्रति इकाई समय पर उपभोक्ता वस्तु की अधिकतम मात्रा क्या खरीदेगा। (चित्र 1)



चित्र 1 : माँग वक्र

Scanned with CamScanner

माँग के नियम के अपवाद—माँग के नियम के अपवाद निम्नांकित हैं—

1. गिफेन का विरोधाभास—गिफेन महोदय ने सर्वप्रथम यह पाया कि कतिपय निम्न कोटि की वस्तुयें होती हैं जो माँग के सामान्य नियम, अर्थात् मूल्य घटने से माँग बढ़ती है तथा मूल्य बढ़ने से माँग घटती है, के अपवाद होते हैं। इन्हें निम्न कोटि वस्तुओं की श्रेणी में रखा जाता है अर्थात् इनका मूल्य घटने पर भी इनकी माँग में कोई वृद्धि नहीं होती। चूँकि ऐसे वस्तुओं का चिह्नीकरण सर्वप्रथम गिफेन महोदय ने किया था अत: इन्हें गिफेन वस्तुयें भी कहा जाता है।

2. विशिष्ट वस्तुयें।
3. वस्तु मूल्य परिवर्तन की सम्भावना।
4. गुणवत्ता के सन्दर्भ में उपभोक्ताओं की उपेक्षा।
5. फैशन, रुचि, आदि में परिवर्तन।

माँग की लोच

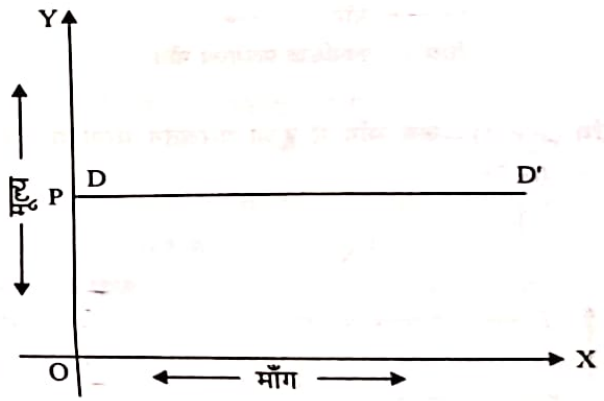
माँग की लोच किसी वस्तु के मात्रात्मक निर्धारकों में परिवर्तन की दशा में माँगी गयी मात्रा की प्रतिक्रियाशीलता का मापन करता है। माँग की लोच निम्नलिखित 3 प्रकार की होती हैं—

1. माँग की कीमत लोच
2. माँग की आय लोच
3. माँग की आड़ी लोच

माँग की कीमत लोच

माँग की कीमत लोच निम्नलिखित पाँच प्रकार की होती हैं—

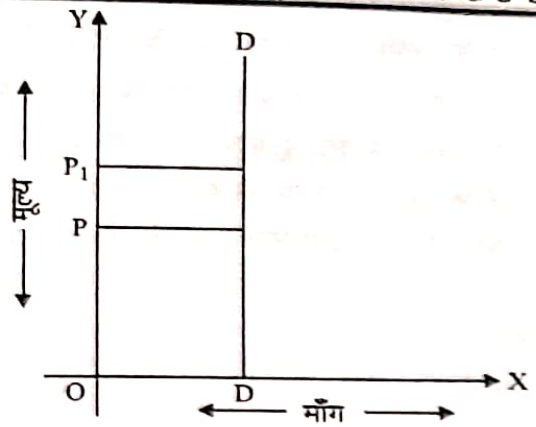
1. पूर्ण प्रत्यास्थ माँग—पूर्ण प्रत्यास्थ माँग वह माँग है जिसके अन्तर्गत प्रचलित मूल्यों पर माँग अनन्त होती है। यह वह स्थिति होती है जिसमें मूल्य में थोड़ा-सा भी परिवर्तन वस्तु की माँग को शून्य कर सकता है। (चित्र 2)



चित्र 2 : पूर्ण प्रत्यास्थ माँग

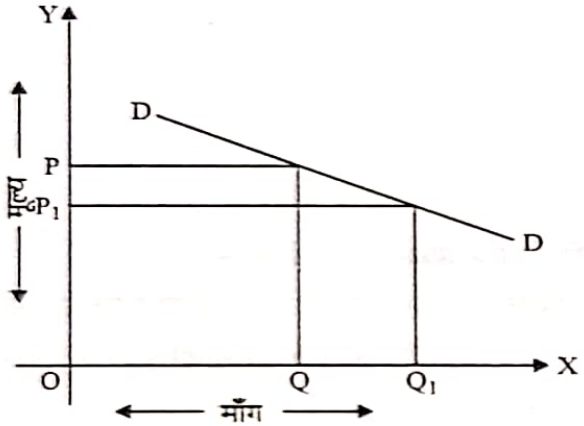
2. पूर्णतया अप्रत्यास्थ माँग—यह वह स्थिति होती है जिसमें मूल्य में बहुत अधिक परिवर्तन भी माँग को प्रभावित नहीं करती है। (चित्र 3)

Scanned with CamScanner



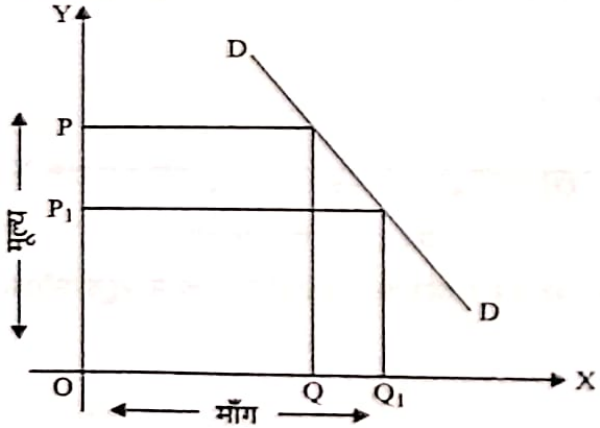
चित्र 3 : पूर्णतया अप्रत्यास्थ माँग

3. सापेक्षिक प्रत्यास्थ माँग ($e > 1$)—जब मूल्य में परिवर्तन वस्तुओं की माँगी गयी मात्रा में बड़ा परिवर्तन करता है तो इसे सापेक्षिक प्रत्यास्थ माँग कहते हैं। इस दशा में माँग की प्रत्यास्थता (लोच) एक से अधिक होती है। (चित्र 4)



चित्र 4 : सापेक्षिक प्रत्यास्थ माँग

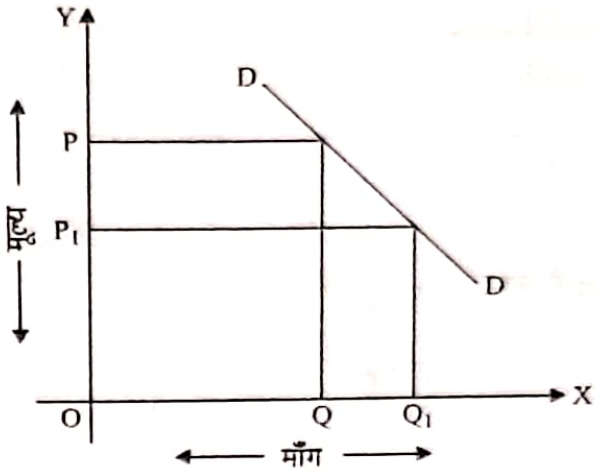
4. सापेक्षिक अप्रत्यास्थ माँग ($e < 1$)—जब माँग में हुआ परिवर्तन मूल्य में हुए परिवर्तन से कम होता है तो इसे सापेक्षिक अप्रत्यास्थ माँग कहते हैं। (चित्र 5)



चित्र 5 : सापेक्षिक अप्रत्यास्थ माँग

Scanned with CamScanner

5. इकाई प्रत्यास्थ माँग ($e = 1$)—जब मूल्य में हुआ परिवर्तन माँग में हुए परिवर्तन के बराबर होता है तो इसे माँग की इकाई प्रत्यास्थता कहते हैं। (चित्र 6)



चित्र 6 : इकाई प्रत्यास्थ माँग

पूर्ति का सिद्धान्त

किसी वस्तु/सेवा को बेचने की इच्छा व योग्यता रखना आपूर्ति कहलाता है। प्रो० बैश के शब्दों में, "पूर्ति, यदि अन्य घटक अपरिवर्तित रहें तो किसी निर्दिष्ट समयावधि में विभिन्न मूल्यों पर विक्रय हेतु प्रस्तुत किये जाने वाले वस्तुओं की मात्रा की अनुसूची है।"

पूर्ति के प्रमुख घटक निम्नलिखित हैं—

1. वस्तु का मूल्य
2. सम्बन्धित वस्तु का मूल्य
3. उत्पादन के साधनों का मूल्य
4. तकनीक (प्रौद्योगिकी) की दशा
5. सरकारी नीतियाँ
6. अन्य घटक यथा विनिमय नीतियाँ, व्यापार नीतियाँ इत्यादि।

पूर्ति का नियम

पूर्ति क्रियात्मक रूप से मूल्य से सम्बन्धित है। प्रो० लिप्से के अनुसार, "अन्य बातें समान रहने पर, किसी वस्तु का मूल्य बढ़ने पर वस्तु की आपूर्ति बढ़ेगी तथा मूल्य गिरने पर पूर्ति घटेगी।"

पूर्ति का नियम मूल्य एवं आपूर्तित मात्रा के मध्य प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करता है अर्थात् जितना ऊँचा मूल्य उतनी अधिक आपूर्ति तथा जितना निम्न मूल्य उतनी अल्प आपूर्ति। डूले के शब्दो मे, "पूर्ति का नियम बताता है यदि अन्य बातें समान रहें तो उच्च मूल्य पर अधिक मात्रा मे आपूर्ति होगी तथा निम्न मूल्य पर अल्प वस्तु की आपूर्ति होगी।"

इस प्रकार यह बताता है कि वस्तु की आपूर्ति एवं इसका मूल्य सकारात्मक रूप से सम्बन्धित है। यह नियम इस मान्यता पर कि 'अन्य बाते समान रहे' आधारित है। अन्य चीजों मे वस्तु का मूल्य, सापेक्षिक वस्तुओं (स्थानापन्न एवं पूरक) का मूल्य, तकनीक आदि सम्मिलित है।

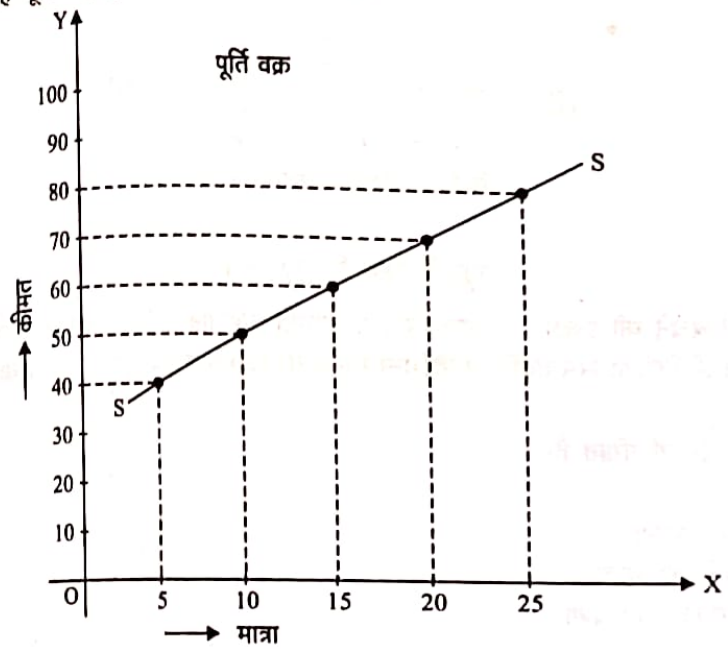
पूर्ति अनुसूची—यह एक तालिका है जो वस्तुओं के विभिन्न मूल्य तथा उनकी संगतता में आपूर्तिकर्त्ता द्वारा विक्रय करने की मात्रा को दर्शाती है।

Scanned with CamScanner

पूर्ति अनुसूची (Supply Schedule)

Price (₹) per quintal	Supply (in quintals)
40	5
50	10
60	15
70	20
80	25

आपूर्ति वक्र—यह पूर्ति अनुसूची का चित्रीय निरूपण है।



चित्र 7 : आपूर्ति वक्र

बाजार सन्तुलन

सामान्य अर्थों में साम्यावस्था से आशय विश्राम की स्थिति अथवा विपरीत बलों में सन्तुलन से है। बाजार विश्लेषण के सम्बन्ध में सन्तुलन (साम्यावस्था) से आशय उस अवस्था से है जिसमें वस्तु की माँगी गयी मात्रा, वस्तु की आपूर्ति की मात्रा के बराबर होती है। माँग व पूर्ति का यह सन्तुलन एक साम्य मूल्य का निर्धारण करता है। यह वह मूल्य है जिस पर किसी वस्तु की माँगी गयी मात्रा उसकी आपूर्तित मात्रा के समतुल्य होती है।

बाजार मूल्य का निर्धारण—मुक्त बाजार वह प्रणाली होती है जिसके अन्तर्गत वस्तुयें एवं सेवाओं का मूल्य माँग एवं पूर्ति के बलों द्वारा संचालित किया जाता है तथा इसमें सरकार का कोई हस्तक्षेप नहीं होता। मुक्त बाजार में वस्तु का साम्य मूल्य माँग एवं पूर्ति घटकों द्वारा निश्चित होता है। इस उद्देश्य हेतु माँग व पूर्ति वक्र का एकीकरण आवश्यक है। सन्तुलन मूल्य निर्धारण करने हेतु माँग एवं पूर्ति घटकों में एकीकरण की प्रक्रिया को मूल्य तन्त्र कहा जाता है।

लागत एवं लागत संकल्पना—उत्पादन लागत से आशय उन समस्त मौद्रिक व्ययों से है जो वस्तु के उत्पादन में हुए हों।

कुल लागत—डूले के अनुसार, "कुल उत्पादन लागत, निर्गत की दी हुई मात्रा (प्राप्त) के उत्पादन में हुए कुल व्ययों का योग है। यह स्थिर लागत एवं परिवर्तनशील लागत का योग है।"

Scanned with CamScanner

स्थिर लागत—यह वे लागतें होती हैं जो एक सीमा तक उत्पादन के स्तर से अप्रभावित रहती हैं अर्थात् उत्पादन अवस्था कुछ भी हो (एक निर्दिष्ट सीमा तक) स्थिर लागतें सदैव एक समान रहती हैं। इन्हें न्यूनता-पूरक अथवा परिशिष्ट लागतें भी कहते हैं। **उदाहरण**—किराया, ब्याज, कर, वेतन।

परिवर्तनशील लागत—यह वे लागतें होती हैं जो उत्पादन में परिवर्तन के साथ परिवर्तित होती रहती हैं। ये उत्पादन की इकाई में वृद्धि के साथ बढ़ती हैं तथा कमी के साथ घटती जाती हैं। इन्हें प्रधान लागतें (मुख्य लागतें) भी कहते हैं।

उदाहरण—प्रत्यक्ष श्रम, कच्चे माल की लागत इत्यादि।

कुल लागत = स्थिर लागत + परिवर्तनशील लागत

अल्पावधि एवं दीर्घावधि संकल्पना—यह दोनों वास्तव में दशाओं के समुच्चय हैं। ये कैलेंडर समय को निरूपित नहीं करते। अल्पकाल में उत्पादन के कतिपय संसाधन स्थिर तथा अन्य चलनशील होते हैं, जबकि दीर्घकाल में उत्पादन के समस्त घटक चलनशील होते हैं। अल्पकाल एवं दीर्घकाल प्रत्येक उद्योगों के लिये पृथक्-पृथक् होते हैं। यह उस उद्योग में संयंत्र की प्रकृति, आवश्यक निर्गत के प्रकार एवं प्रयुक्त तकनीकी पर निर्भर करता है।

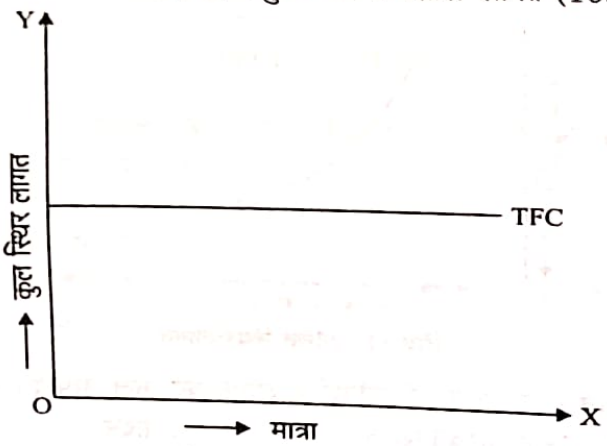
अल्पकाल में कुल लागतें—इसे दो भागों, अल्पकाल में कुल स्थिर लागत तथा अल्पकाल में परिवर्तनशील लागत, में विभाजित किया जा सकता है।

$$TC = TFC + TVC$$

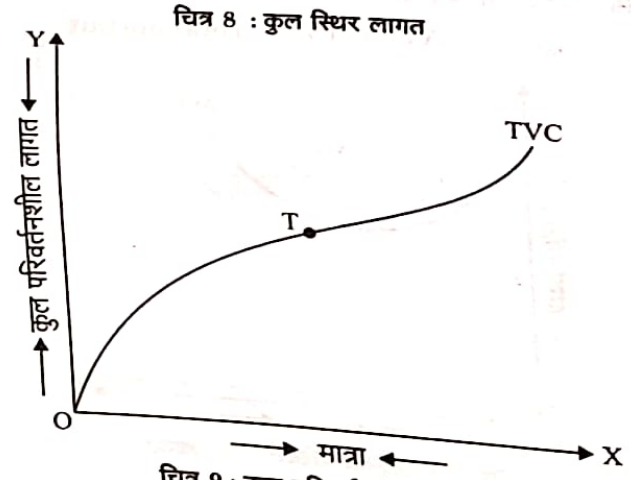
TC = कुल लागतें (Total costs)

TFC = कुल स्थिर लागत (Total fixed cost)

TVC = कुल परिवर्तनशील लागत (Total variable cost)

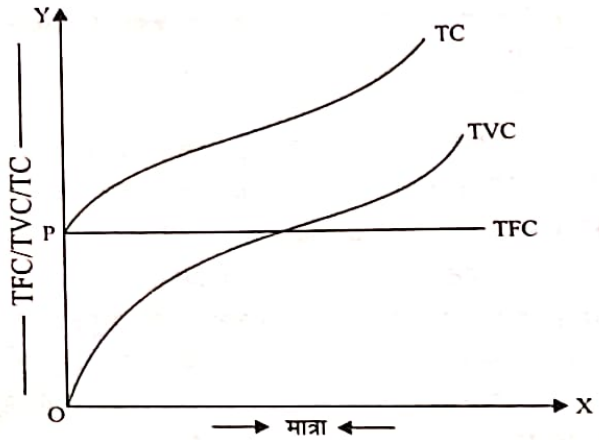


चित्र 8 : कुल स्थिर लागत



चित्र 9 : कुल परिवर्तनशील लागत

Scanned with CamScanner

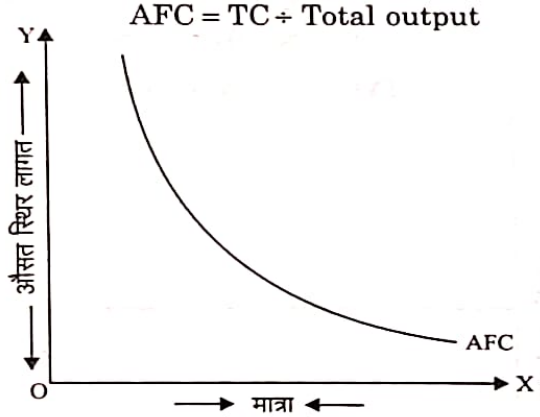


चित्र 10 : कुल लागत

औसत स्थिर लागत—यह कुल स्थिर लागत को कुल उत्पादन से विभाजित करके प्राप्त होती है।

औसत स्थिर लागत = कुल लागत ÷ कुल उत्पादन

AFC = TC ÷ Total output

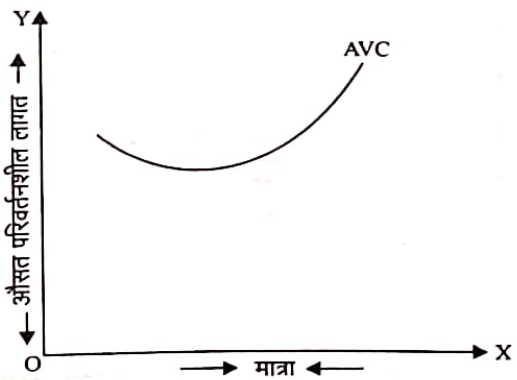


चित्र 11 : औसत स्थिर लागत

औसत परिवर्तनशील लागत—यह कुल परिवर्तनशील लागत को कुल उत्पादन से विभाजित करके प्राप्त होती है।

औसत परिवर्तनशील लागत = कुल परिवर्तनशील लागत ÷ कुल उत्पादन

AVC = TVC ÷ Total output



चित्र 12 : औसत परिवर्तनशील लागत

Scanned with CamScanner

औसत लागत—यह या तो कुल लागत को कुल उत्पादन से विभाजित करके या औसत स्थिर लागत और औसत परिवर्तनशील लागत के योग द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

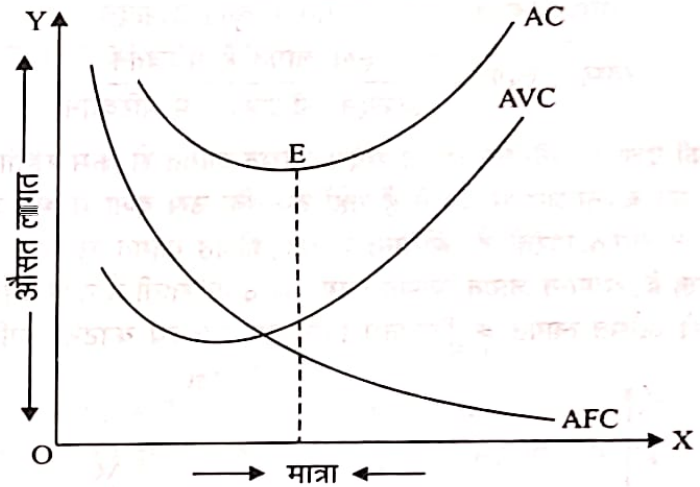
$$\text{औसत लागत} = \text{कुल लागत} \div \text{कुल उत्पादन}$$

$$AC = TC \div \text{Total output}$$

or

$$\text{औसत लागत} = \text{औसत स्थिर लागत} + \text{औसत परिवर्तनशील लागत}$$

$$AC = AFC + AVC$$

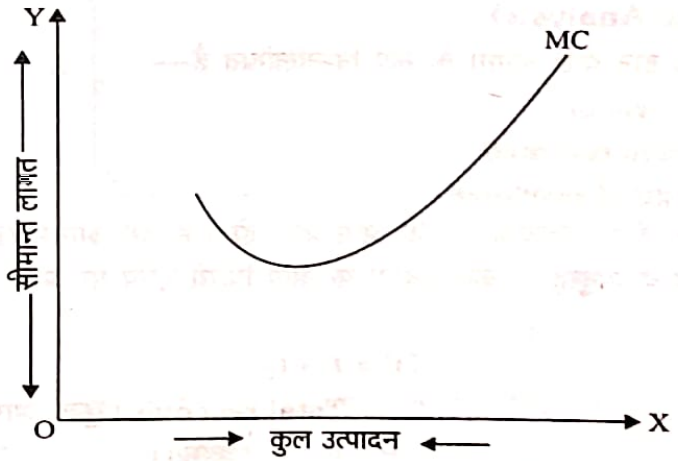


चित्र 13 : औसत लागत

सीमान्त लागत—इसे दिये गये उत्पादन की मात्रा में एक इकाई के परिवर्तन के परिणामस्वरूप कुल लागत में आये परिवर्तन के रूप में परिभाषित करते हैं। सैमुएलसन के अनुसार, "उत्पादन के किसी स्तर पर सीमान्त लागत से अभिप्राय एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन में होने वाले व्यय (अतिरिक्त लागत) से है।" इसे उत्पादन की मात्रा में इकाई परिवर्तन के फलस्वरूप कुल परिवर्तनशील लागत में हुए परिवर्तन के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है। चूँकि, स्थिर लागत समान रहती है। अत: सीमान्त लागत स्थिर लागत पर नहीं वरन् परिवर्तनशील लागत पर निर्भर करती है।

सीमान्त लागत गणना हेतु सूत्र—

$$MC_n = TC_n - TC_{n-1}$$
$$= (TVC_n + TFC) - (TVC_{n-1} + TFC)$$



चित्र 14 : सीमान्त लागत

Scanned with CamScanner

$$= TVC_n + TFC - TVC_{n-1} - TFC$$
$$= TVC_n - TVC_{n-1}$$
$$MC_n = TVC_n - TVC_{n-1}$$

MC = Marginal cost (सीमान्त लागत)

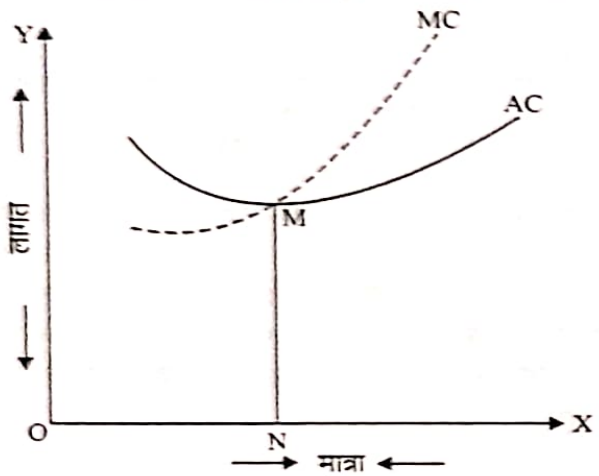
औसत लागत एवं सीमान्त लागत के मध्य सम्बन्ध

1. उत्पादन की कुल लागत से, औसत लागत एवं सीमान्त लागत दोनो को प्राप्त किया जा सकता है—

$$\text{औसत लागत} = \text{कुल लागत} \div \text{कुल उत्पादन}$$

$$\text{सीमान्त लागत} = \frac{\text{कुल लागत में परिवर्तन}}{\text{उत्पादन की इकाई में परिवर्तन}}$$

2. औसत लागत गिरने की दशा में, सीमान्त लागत सदैव औसत लागत से कम रहती है। हालांकि जब सीमान्त लागत निम्नतम होती है तब यह बढ़ना प्रारम्भ करती है यहाँ तक कि उस दशा में भी जबकि औसत लागत गिर रही हो लेकिन जब तक औसत लागत गिरती है, सीमान्त लागत औसत लागत से नीचे रहती है। (चित्र 15)
3. जब औसत लागत बढ़ती है, सीमान्त लागत औसत लागत से ऊपर रहती है तथा औसत लागत से तेज बढ़ती है।
4. सीमान्त लागत वक्र को औसत लागत के निम्नतम बिन्दु पर अवश्य काटना चाहिए।



चित्र 15 : औसत लागत व सीमान्त लागत के मध्य सम्बन्ध

आगम विश्लेषण (Revenue Analysis)

आगम विश्लेषण में प्रयुक्त होने वाले आगम के रूप निम्नलिखित हैं—

1. कुल आगम (Total revenue)
2. औसत आगम (Average revenue)
3. सीमान्त आगम (Marginal revenue)

जब वस्तु का विक्रय होता है तो उत्पादक को जो आय प्राप्त होती है उसे आगम (Revenue) कहते हैं।

1. कुल आगम—पेंगुइन के अनुसार, "कुल आगम या आय किसी मूल्य पर बेची गई इकाइयों से गुणा करके ज्ञात किया जाता है।"

$$TR = P \times Q$$

जहाँ

TR = Total revenue (कुल आगम)

P = Price (कीमत)

Scanned with CamScanner

Q = Quantity sold (बेची गई कुल मात्रा)

2. औसत आगम—औसत आगम से अभिप्राय की प्रति इकाई आगम से होता है। औसत आगम उत्पादन की दी गयी इकाइयों की मात्रा की बिक्री से प्राप्त कुल आगम का उन्हीं इकाइयों से विभाजन है।

$$\text{औसत आगम (AR)} = \frac{TR}{Q}$$

TR = कुल आगम

Q = बेची गई कुल मात्रा

3. सीमान्त आगम—सीमान्त आगम से अभिप्राय किसी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई के विक्रय से कुल आगम में होने वाली वृद्धि को कहते हैं।

$$MR = TR_n - TR_{n-1}$$

MR = सीमान्त आगम

TR_n = n इकाइयों से प्राप्त कुल आगम

TR_{n-1} = $(n-1)$ इकाइयों से प्राप्त कुल आगम

बाजार संरचना

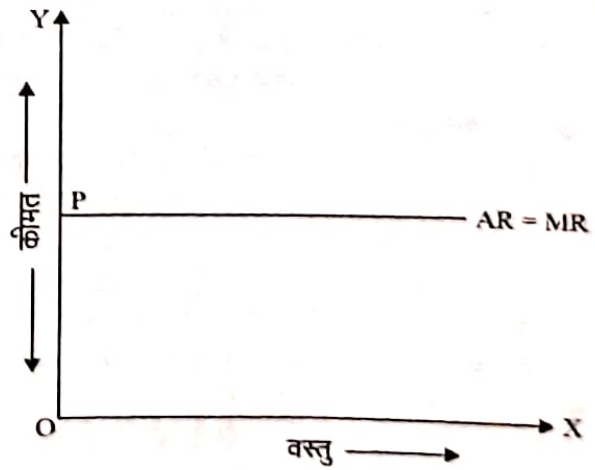
सामान्यत: बाजार उस स्थान को कहते हैं जहाँ क्रेता तथा विक्रेता वस्तुओं को बेचते और खरीदते हैं। परन्तु अर्थशास्त्र में बाजार का अर्थ उस समस्त क्षेत्र से है जिसमें क्रेता और विक्रेता फैले हुए हों और उनमें प्रतिस्पर्द्धात्मक सम्पर्क हो।

अर्थशास्त्री **ऐली** (Ely) के अनुसार, "बाजार का अर्थ हम उस साधारण क्षेत्र से लगाते हैं जिसके भीतर किसी वस्तु-विशेष की कीमतों का निर्धारण करने वाली शक्तियाँ कार्यशील हैं।"

I. पूर्ण प्रतियोगिता (Perfect Competition)—पूर्ण प्रतियोगिता से तात्पर्य है कि इसमें कोई भी एक क्रेता या विक्रेता व्यक्तिगत रूप से बाजार मूल्य को प्रभावित नहीं करता है, वस्तु का एक ही मूल्य होता है।

लक्षण

(i) विक्रेताओं तथा क्रेताओं की अत्यधिक संख्या।
(ii) वस्तु विशेष समरूप (homogeneous) होती है।
(iii) फर्मों को उद्योग में प्रवेश तथा बहिर्गमन की पूर्ण स्वतन्त्रता।
(iv) किसी प्रकार की परिवहन लागत नहीं होती।



चित्र 16 : AR एवं MR वक्र पूर्ण प्रतियोगिता में।

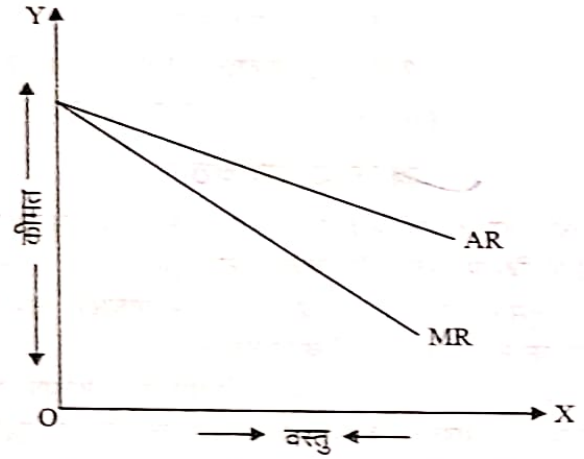
Scanned with CamScanner

II. शुद्ध एकाधिकार (Pure Monopoly)—शुद्ध एकाधिकार शुद्ध प्रतियोगिता को ठीक विपरीत स्थिति को दर्शाता है।

प्रो० बोल्डिंग के अनुसार, "शुद्ध एकाधिकारी फर्म वह फर्म है जो कि यदि कोई ऐसी वस्तु उत्पादित कर रही है जिसका किसी अन्य फर्म की उत्पादित वस्तुओं में कोई प्रभावपूर्ण स्थानापन्न नहीं होता है।"

लक्षण

1. इस स्थिति में केवल एक ही उत्पादक या विक्रेता होता है।
2. विक्रेता का पूर्ण नियन्त्रण होता है।
3. एकाधिकारी उद्योग में अन्य फर्में प्रविष्ट नहीं हो सकतीं।
4. इस स्थिति में फर्म तथा उद्योग में अन्तर नहीं रहता है। इसमें फर्म ही उद्योग है तथा उद्योग ही फर्म है क्योंकि इसमें एक ही फर्म उत्पादन करती है।



चित्र 17 : AR एवं MR वक्र शुद्ध एकाधिकार में।

III. अपूर्ण प्रतियोगिता (Imperfect Competition)—बाजार की इस स्थिति में विक्रेताओं की कम संख्या व वस्तु की इकाइयों में कम अन्तर के साथ विक्रेताओं में वस्तु के प्रति अज्ञानता भी होती है।

बेन्हम के अनुसार, "अपूर्ण बाजार उस दशा में कहा जायेगा जब क्रेताओं और विक्रेताओं को या कुछ विक्रेताओं को एक-दूसरे के द्वारा दिया हुआ या माँगा हुआ मूल्य का ज्ञान नहीं होता है।"

IV. एकाधिकारिक प्रतियोगिता (Monopolistic Competition)—यह अपूर्ण प्रतियोगिता की एक विशिष्ट स्थिति है जो पूर्ण प्रतियोगिता के निकट है। दोनों में अगर कोई अन्तर है तो यह कि पूर्ण प्रतियोगिता में सभी फर्में एक ही वस्तु की सह-जातीय तथा एकरूप इकाइयों का उत्पादन करती हैं जबकि एकाधिकारिक प्रतियोगिता में सभी फर्में एक ही वस्तु का अलग-अलग किस्मों या वैण्डों का उत्पादन करती हैं।

भूमि का अर्थ—साधारण बोलचाल में भूमि का अर्थ पृथ्वी की ऊपरी सतह पानी मिट्टी से लगाया जाता है, किन्तु अर्थशास्त्र में 'भूमि' शब्द का आशय व्यापक रूप से लिया जाता है। अर्थशास्त्र में भूमि से आशय नि:शुल्क प्राप्त प्राकृतिक वस्तुओं से है, जो भूमि पर, भूमि के भीतर जल में और आकाश पर मिलती है।

मार्शल के शब्दों में, "भूमि का अर्थ उन सब पदार्थों तथा शक्तियों से लिया जाता है, जो प्रकृति मनुष्य की सहायता के लिए भूमि और पानी, हवा और प्रकाश तथा गर्मी के रूप में नि:शुल्क प्रदान करती है।"

भूमि की विशेषताएँ—उत्पादन के अन्य साधनों से अलग कुछ स्पष्ट विशेषताएँ भूमि में पायी जाती हैं।

1. प्रकृति का नि:शुल्क उपहार—प्रकृति ने मनुष्य को भूमि नि:शुल्क उपहार के रूप में दिया है। मनुष्य को इसके लिए प्रारम्भ में कोई कीमत नहीं चुकानी पड़ी है। भूमि मनुष्य द्वारा निर्मित नहीं है और न ही हम आप उसे निर्मित कर सकते हैं।

Scanned with CamScanner

2. सीमित मात्रा—भूमि की मात्रा सीमित है। उसे घटाना और बढ़ाना मानव और विज्ञान की शक्ति के परे है। श्रम और पूँजी की मात्रा के आवश्यकतानुसार बढ़ाया और घटाया जा सकता है, परन्तु पृथ्वी के धरातल का क्षेत्रफल अधिक या कम नहीं किया जा सकता है।

3. स्थिरता—भूमि अगतिशील होती है, जिसे एक स्थान से दूसरे स्थान को नहीं ले जाया जा सकता। दूसरे साधनों जैसे श्रम और पूँजी को इसी कारण भूमि के पास जाकर कार्य करना पड़ता है। भूमि स्वयं श्रम या पूँजी के पास नहीं आती, परन्तु भूमि का प्रयोग अवश्य बदला जा सकता है।

4. निष्क्रियता—भूमि उत्पादन का निष्क्रिय साधन है। यह स्वयं कुछ नहीं करती। इससे उत्पादन प्राप्त करने के लिए श्रम और पूँजी को लगाना पड़ता है। यदि किसान खेतों की जुताई और बुआई न करे, तो भूमि स्वयं अनाज प्रदान नहीं करती।

5. भिन्नता—अलग-अलग भूमियों की अलग-अलग उर्वरा शक्ति होती है। कोई भूमि अधिक उपजाऊ होती है, कोई औसत दर्जे की तो कोई बहुत कम। भूमि उत्पादन और भौगोलिक आधार पर विविध प्रकार की होती है। कुछ भूमि के टुकड़े खेती के लिए उपयुक्त होते हैं, तो कुछ मकान बनवाने के लिए। कुछ सूखे से तो कुछ वर्षा से पूर्ण होते हैं। इनकी जलवायु अलग-अलग होती है। इसी कारण से भूमि के टुकड़ों का लगान एक समान नहीं होता है।

6. अविनाशी—रिकार्डो ने लगान सिद्धान्त में भूमि की शक्ति को अविनाशी बताया है। भूमि का कभी नाश नहीं होता। भूमि के लगातार प्रयोग से उसकी ऊपरी सतह के उर्वरा शक्ति में कुछ कमी हो सकती है।

7. मौलिक साधन—भूमि उत्पादन का प्राथमिक साधन माना जाता है। संसार के समस्त कार्यों में भूमि की आवश्यकता होती है। कृषि, उद्योग, परिवहन सब भूमि पर ही आधारित है। भूमि के बहुतेरे प्रयोग सम्भव हैं।

पूँजी का अर्थ—दैनिक बोलचाल में पूँजी का अर्थ रुपया-पैसा और धन-सम्पत्ति होता है। यदि किसी व्यापारी से उसकी पूँजी के बारे पूछा जाए तब वह सम्भवत: अपने व्यापार का मूल्य रुपये-पैसे में बताएगा। परन्तु अर्थशास्त्री 'पूँजी' शब्द का प्रयोग एक विशेष अर्थ में करते हैं। अर्थशास्त्र में पूँजी मनुष्य उत्पादित धन का वह भाग है, जो अधिक धन उत्पन्न करने के प्रयोग में आता है।

मार्शल के शब्दों में, "प्रकृति के नि:शुल्क उपहारों को छोड़कर वह सब सम्पत्ति जिसके द्वारा आय कमाई जाती है, पूँजी कहलाती है।"

पूँजी की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं—

1. पूँजी का निर्माण मनुष्य द्वारा होता है—पूँजी प्रकृतिदत्त वस्तु नहीं है। पूँजी बचत का परिणाम है और बचत मानव द्वारा किया जाता है। इस प्रकार पूँजी मानवकृत है।

2. पूँजी उत्पादन का अनिवार्य साधन नहीं है—भूमि और श्रम उत्पादन के अपरिहार्य साधन है, जबकि बिना पूँजी के भी उत्पादन हो सकता, भले ही कम मात्रा में सम्भव हो सके।

3. पूँजी उत्पादन का निष्क्रिय साधन है—भूमि की तरह पूँजी उत्पत्ति का एक निष्क्रिय साधन है। बिना श्रम के पूँजी बेकार और निष्क्रिय रहती है।

4. पूँजी की मात्रा स्थिर नहीं है—पूँजी की मात्रा घट-बढ़ सकती है। मशीन, मकान, फर्नीचर जैसे पूँजी में घिसावट के कारण कमी आ सकती है। परिश्रम और बचत के द्वारा पूँजी की मात्रा बढ़ायी जा सकती है, पूँजी की पूर्ति लोचदार होती है , जो माँग के अनुसार समायोजित की जा सकती है।

5. पूँजी बहुत गतिशील होती है—भूमि में गतिशीलता नहीं होती और वह जड़ होती है। श्रम में भी थोड़ी गतिशीलता होती है। उत्पत्ति के दूसरे साधनों की तुलना में पूँजी को एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाना सरल होता है।

6. पूँजी आय प्रदान करती है—पूँजी आय प्रदान करने वाला साधन है। लोग पूँजी एकत्रित करके भविष्य में उससे धन कमाने की आशा करते हैं। इसलिए गड़े हुए धन को पूँजी की परिधि के बाहर रखते हैं।

2. श्रम की विशेषताएँ एवं महत्त्व—प्रो० मार्शल के अनुसार, "श्रम का अभिप्राय वृद्धि या शरीर के कार्य से है, जो आंशिक अथवा पूर्ण रूप से आनन्द की प्राप्ति के लिए न होकर लाभ प्राप्ति के लिए किया जाता है।" अर्थशास्त्र में कुशल व अकुशल, मानसिक व शारीरिक कार्य श्रम माने जाते हैं, जो आय कमाने के लिए किए जाते हैं।

1. श्रम उत्पत्ति का सक्रिय साधन है—भूमि तथा पूँजी निष्क्रिय साधन है। श्रम उत्पत्ति के सब साधनों में सबसे अधिक सक्रिय है। संगठन एवं साहस को भी हम श्रम की श्रेणी में रख सकते हैं। बिना श्रम के और साधन बेकार होते हैं और कोई उत्पादन नहीं हो सकता।

Scanned with CamScanner

2. श्रम को श्रमिक से अलग नहीं किया जा सकता—श्रम और श्रमिक पृथक् नहीं हैं। श्रम प्रदान करने के स्थान पर श्रमिक को स्वयं उपस्थित रहना पड़ता है। यह नहीं हो सकता कि श्रमिक घर पर बैठा रहे और कारखाने में उसका काम हो जाए।

3. श्रम नाशवान है—उत्पत्ति के अन्य साधनों की तुलना में श्रम अत्यन्त नाशवान है। बीता हुआ समय फिर से लौटकर वापस नहीं आता है। यदि श्रमिक किसी दिन काम न करे तो उसका श्रम बेकार चला जाता है। श्रम का संचय नहीं किया जा सकता।

4. श्रम की मोलभाव करने की शक्ति कमजोर होती है—नियोक्ता की तुलना में श्रमिक की सौदेबाजी की शक्ति कम होती है। श्रम नाशवान होता है। अत: श्रमिक मालिक के द्वारा कम मजदूरी दिये जाने पर भी काम करने को तैयार हो जाता है। श्रमिक जानता है कि यदि वह श्रम को आज नहीं बेच पाया, तो उसे उस दिन के प्रतिफल के रूप में कुछ भी नहीं मिलेगा। श्रमिक की कोई सुरक्षित कीमत नहीं है। दूसरे श्रमिक अशिक्षित, निर्धन और असंगठित भी होते हैं। मालिक श्रमिक की असमर्थता का लाभ उठाकर कम मजदूरी देता है।

5. श्रम की पूर्ति में धीरे-धीरे परिवर्तन होता है—श्रम की पूर्ति को मन्द गति से घटाया-बढ़ाया जा सकता है। श्रम की पूर्ति बच्चों की जन्म दर, पालन-पोषण, प्रशिक्षण आदि पर निर्भर करती है। कुशल श्रमिक की पूर्ति बढ़ाने में अधिक समय लगता है, जबकि अकुशलता या शिशु श्रम में कम। मन्दी की दशा में श्रमिकों की माँग कम होती है, परन्तु उनकी पूर्ति को कम करना सम्भव नहीं होता। अत: मजदूरी कम हो जाती है।

6. श्रमिक अपना श्रम बेचता है न कि स्वयं को—श्रम का क्रय-विक्रय किसी वस्तु की तरह नहीं होता। श्रमिक अपना केवल श्रम बेचता है, परन्तु अपने शरीर, योग्यता, गुण आदि पर श्रमिक का अधिकार बना रहता है।

व्यापक (समष्टि) अर्थशास्त्र

समष्टि अर्थशास्त्र अर्थव्यवस्था के व्यापक पहलुओं का अध्ययन करता है तथा अर्थव्यवस्था को एक इकाई (पूर्णत:) मानकर उसका अध्ययन करता है। समष्टि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत आर्थिक गतिविधियाँ तथा कल्याण का समूह स्तर, राज्य स्तर अथवा राष्ट्रीय स्तर पर अध्ययन किया जाता है।

अत: कहा जा सकता है कि व्यापक अर्थशास्त्र अर्थव्यवस्था को एक इकाई मानकर उसकी विभिन्न धाराओं का तथा उनके अन्तर्सम्बन्ध का अध्ययन करता है।

समष्टि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत निम्न विषय सम्मिलित होते हैं—

1. आर्थिक विकास प्रतिमान, 2. राष्ट्रीय आय, 3. मौद्रिक नीति, 4. राजकोषीय नीति, 5. बैंकिंग, 6. मुद्रा स्फीति एवं अवस्फीति

व्यापक अर्थशास्त्र के लक्ष्य

1. पूर्ण रोजगार, 2. उच्च जीवन स्तर, 3. मूल्य-स्थायित्व, 4. आर्थिक विषमता को कम करना, 5. तीव्र आर्थिक संवृद्धि, 6. स्थायित्व पूर्ण (सुदृढ़) विदेशी विनिमय अवस्था, 7. अनुकूल भुगतान संतुलन

समष्टि एवं सूक्ष्म (व्यष्टि) अर्थशास्त्र में अन्तर

	अन्तर का आधार	समष्टि अर्थशास्त्र	सूक्ष्म अर्थशास्त्र
1.	अर्थ	इसका अर्थ व्यापक होता है अर्थात् इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण अर्थव्यस्था को एक इकाई मानकर उसका अध्ययन किया जाता है।	इसका अर्थ सूक्ष्म होता है अर्थात् इसके अन्तर्गत व्यक्तियों, समूह का अध्ययन किया जाता है।
2.	क्षेत्र	इसमें राष्ट्रीय आय, मूल्य-स्तर, राष्ट्रीय उत्पादन इत्यादि का अध्ययन किया जाता है।	इसमें गृहधारी विशेष, फर्म विशेष, उद्योग विशेष, सामग्री विशेष, मूल्य विशेष का अध्ययन किया जाता है।

Scanned with CamScanner

3.	उद्देश्य	इसका उद्देश्य पूर्ण रोजगार, मूल्य-स्थायित्व, आर्थिक संवृद्धि, अनुकूल भुगतान सन्तुलन प्राप्त करना होता है।	इसका उद्देश्य उपयोगिता को अधिकतम करना, लागत को कम करना, लाभ को अधिकतम करना होता है।
4.	आधार	इसका आधार राष्ट्रीय आय, उत्पादन, रोजगार एवं सामान्य मूल्य-स्तर होता है जो कुल माँग एवं कुल आपूर्ति से संचालित होता है।	इसका आधार मूल्य संरचना (प्रशासन) है जो माँग व पूर्ति के बलों की सहायता से संचालित होता है।
5.	सिद्धान्त/मान्यता	यह सामान्य सन्तुलन (साम्य) की तकनीक पर आधारित होता है जो सम्पूर्ण आर्थिक चरों एवं उनके अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन करता है।	यह सेटिरिस परिबस सिद्धान्त की मान्यता पर आधारित है अर्थात् यह आंशिक साम्य (सन्तुलन) की तकनीक पर अवस्थित होता है।
6.	विश्लेषण	यह गतिक विश्लेषण होता है। यह समय अन्तराल, परिवर्तन की दरों एवं चरों के भूत एवं अपेक्षित (अनुमानित) मूल्यों को समाहित करता है।	यह स्थैतिक विश्लेषण होता है। यह समय तत्त्व का विचार नहीं करता।
7.	समस्या	इसकी मूल समस्या/ध्यान केन्द्र विषय आय निर्धारण है।	इसकी मूल समस्या मूल्य निर्धारण है।
8.	लक्ष्य/उद्देश्य	सम्पूर्ण संसाधनों का पूर्ण नियोजन व्यापक अर्थशास्त्र का आधार है।	यह संसाधनों के अनुकूलतम आबंटन (वितरण) पर आधारित है।

प्रश्नावली

1. सूक्ष्म एवं व्यापक अर्थशास्त्र को सोदाहरण परिभाषित कीजिए।
2. "सूक्ष्म अर्थशास्त्र महत्वपूर्ण होते हुए भी कतिपय सीमाओं से बंधा है।" व्याख्या कीजिए।
3. सूक्ष्म अर्थशास्त्र एवं व्यापक अर्थशास्त्र के महत्व का वर्णन करते हुए इनके मध्य अन्तरों को स्पष्ट कीजिए।
4. माँग का नियम क्या है? उपयुक्त रेखा चित्रों की सहायता से स्पष्ट कीजिए।
5. माँग के नियम के अपवादों का वर्णन कीजिए।
6. सीमान्त लागत व औसत लागत के मध्य अन्तर स्पष्ट कीजिए।
7. माँग की लोच से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिए।
8. व्यष्टि अर्थशास्त्र के प्रमुख तत्वों (घटकों) का वर्णन कीजिए।
9. उत्पादन के साधनों का वर्णन कीजिए।
10. पूर्ण प्रतियोगिता से आप क्या समझते हैं?
11. फर्म के साम्यावस्था की दशाओं का वर्णन कीजिए।
12. कुल लागत, कुल स्थिर लागत एवं कुल परिवर्तनशील लागत पक्षों की व्याख्या कीजिए।
13. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—(a) साधन मूल्य सिद्धान्त, (b) अपूर्ण प्रतियोगिता, (c) एकाधिकारी दशा, (d) अल्पाधिकार, (e) पूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं फर्म का साम्य, (f) अल्पकाल एवं दीर्घकाल।
14. आपूर्ति वक्र की सहायता से आपूर्ति की नियमों की व्याख्या कीजिए।
15. रेखाचित्र की सहायता से माँग की लोच के प्रकारों का वर्णन कीजिए।
16. बाजार संरचना से क्या आशय है?
17. मजदूरी को परिभाषित करते हुये इसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए। ***(UPBTE 1994)***
18. पूँजी, भूमि को परिभाषित करते हुये इनकी विशेषताओं को उल्लखित कीजिए।

Scanned with CamScanner

अध्याय-12

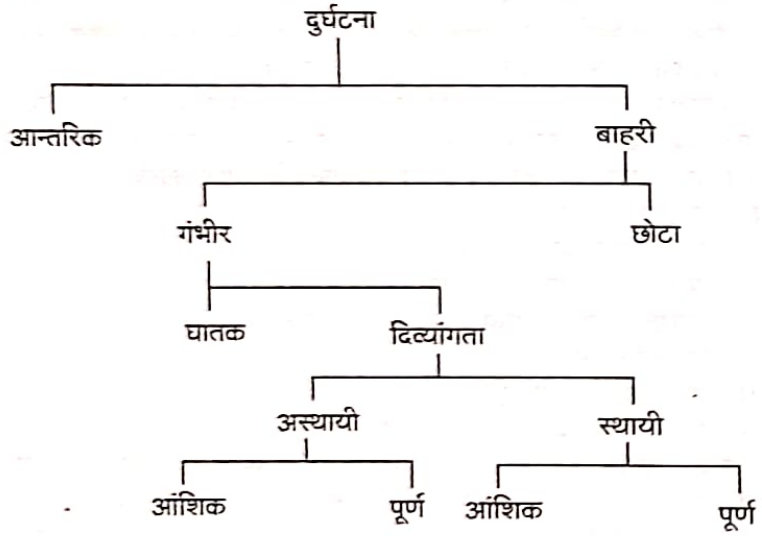
दुर्घटना एवं सुरक्षा

[Accident & Safety]

12.1 दुर्घटनाओं का वर्गीकरण (Classification of Accidents)

दुर्घटना एक अचानक एवं अकल्पनीय घटना है जो औद्योगिक कार्यालय में घटित होकर, कार्य की प्रगति में रुकावट उत्पन्न करता है।

कारखाना अधिनियम 1948 के अनुसार दुर्घटना कारखानों में होने वाली एक ऐसी घटना है जो उसे सम्बन्धित व्यक्ति को शारीरिक रूप से क्षति पहुँचाती है और उसे अगले 48 घंटों में कार्य पर लौटने में असक्षम बनाती है।



दुर्घटनाओं का वर्गीकरण

दुर्घटनाओं के प्रकार—दुर्घटना के प्रकार, चोट की गम्भीरता, स्थायित्व एवं मात्रा पर निर्भर करता है।

आन्तरिक—शरीर के भीतरी अंगों में लगी चोट, आन्तरिक चोट है (जैसे—हड्डियों का टूटना)

बाहरी—जब कर्मचारी की चोट बाहरी अंगों पर लगे, तब वह चोट बाहरी चोट कहलाती है। (जैसे—कटना)

गंभीर (मुख्य)—स्थायी दिव्यांगता या प्राणघातक दुर्घटनाओं को गंभीर दुर्घटनायें कहा जाता है।

छोटी (हल्की)—हल्की चोट या हल्के रूप से छिलना, को छोटी दुर्घटनायें कहा जाता है।

दुर्घटनाओं के द्वारा हुई दिव्यांगता, आंशिक हो सकती है, पूर्ण हो सकती है, घातक हो सकती है या घातक नहीं हो सकती है।

Scanned with CamScanner

अस्थायी—जब कर्मचारी दुर्घटना के द्वारा कुछ समय के लिए कार्य करने में असमर्थ हो जाता है, तो वह अस्थायी दुर्घटना है।

स्थायी—जब कर्मचारी किसी दुर्घटना की वजह से पूर्ण रूप से दिव्यांग हो जाता है तब वह दुर्घटना, स्थायी दुर्घटना कहलाती है।

12.2 दुर्घटनाओं के कारण एवं प्रभाव

कोई भी दुर्घटना अपने आप से घटित नहीं होती। दुर्घटना का कोई एक कारण नहीं होता परन्तु कई कारण हैं जो आपस में जुड़े होते हैं, उसके पीछे—

(i) असुरक्षित परिस्थितियाँ (कार्य से सम्बन्धित)
(ii) असुरक्षित अधिनियम
(iii) अन्य कारण

(i) असुरक्षित परिस्थितियाँ (कार्य से सम्बन्धित)—असुरक्षित परिस्थितियों में कार्य, दुर्घटनाओं का एक बड़ा कारण है। ये सम्बन्धित है, खराब औजारों से, उपकरणों से, यन्त्रों से एवं सामानों से। इस खामी को तकनीकी खामियाँ भी कहते हैं। इसका उदय तब होता है जब, उपकरणों पर ध्यान नहीं दिया जाता, खराब गोदामों का इस्तेमाल, कार्यालयों की खराब बनावट एवं अवस्थितियाँ, विद्युत की अनुप्लब्धता, सुरक्षा के संसाधनों की अनुप्लब्धता आदि हो, तब थकावट, चिन्ता, निराशा, अधिसमय कार्य करना भी दुर्घटना के कुछ और कारण हैं।

(ii) असुरक्षित अधिनियम—कर्मचारियों पर थोपे गये चन्द नियम भी दुर्घटना के कारण बनते हैं। ऐसे नियम परिणाम होते हैं जानकारी के अभाव के, गलत व्यवहार के एवं अन्य शारीरिक दोषों के।

इसके उदाहरण हैं—अधिकारी के बिना ही नियम लागू करना, निजी सुरक्षा उपकरणों के उपयोग में असफलता, वस्तुओं को लापरवाही से कार्यालय में फेंकना, कार्य को गलत रफ्तार से करना (काफी तेज या काफी धीरे) इत्यादि।

(iii) अन्य कारण—ऐसे कारणों का उदय असुरक्षित मौसमों एवं हालातों के कारण होता है। जैसे अत्यधिक आवाजें, काफी उच्चतम तापमान, आर्द्रता के कारण, अस्वस्थ वातावरण, फिसलन वाली जमीन, अत्यधिक रोशनी, धूल एवं मिट्टी, अधिकारियों का उद्दण्डता भरा स्वभाव इत्यादि।

12.3 दुर्घटना पीड़ित कर्मी

दुर्घटना से पीड़ित होने को अक्षमता भी कहते हैं। कोई भी कर्मचारी नौकरी करते हुए घायल नहीं होना चाहता और अधिकतर कर्मियों को चोट से बचने के लिए प्रशिक्षित भी किया जाता है। परन्तु चोट फिर भी लग जाती है।

दुर्घटनाग्रस्त होने से सम्बन्धित घटक हैं—लापरवाही, आवेग, जोखिम उठाने की प्रवृत्ति, अदक्षता, भुलक्कड़पन एवं अवचेतन इच्छा।

दुर्घटना से पीड़ित होने के निम्न कारण हो सकते हैं—

- सुरक्षा उपकरणों की पूर्ति में विफलता।
- औजारों की जगह हाथों को उपयोग करना।
- कार्य असुरक्षित रफ्तार पर करना।
- असुरक्षित औजारों को काम में लाना।
- गन्दगी भरी जगह पर काम करना।
- सुरक्षा मानकों की अवहेलना।

उपचार

(अ) कम से कम एक संचालक को हर स्वास्थ्य एवं सुरक्षा समिति सम्मेलन में, घटना जाँच प्रणाली में तथा कार्य क्षेत्र निरीक्षण में भाग लेना ही चाहिए। इससे स्वस्थ संदेश जाता है।

Scanned with CamScanner

(ब) सहलेखकारों को भी सुरक्षा सम्मेलनों को आयोजित करवाते रहना चाहिए। उसे कर्मियों द्वारा रोजाना उठाये जाने वाले खतरों को उजागर करना चाहिए।

(स) कर्मियों को सभी सुरक्षा मानकों का पालन करना चाहिए।

12.4 बिजली के झटके लगने तथा आग लगने की स्थिति में किये जाने वाले कार्य

बिजली के झटके लगने पर सुरक्षा मानक

- खराब उपकरणों को बदलना
- दस्तानों का इस्तेमाल
- उपकरणों के सही सुरक्षा मानक
- देखभाल
- अर्थिंग का देखभाल

आग लगने पर सुरक्षा मानक

- पास के ही अग्निशमन सेना को सुरक्षा के लिए बुलाना
- बाहर जाने वाले रास्तों को भीड़ से दूर रखना
- धुआँ पहचान यन्त्रों को लगवाना
- आग से बचने के तरीकों का अभ्यास करना

सुरक्षा लिहाज़ से कानूनी नियम (खण्ड : 21–40)

कारखाना अधिनियम 1948 निम्न सुरक्षा नियमों पर ध्यान देता है—

- मशीनों का घेराव (21)
- चलती हुई मशीनों पर या उसके पास कार्य करना (22)
- युवाओं को रोजगार (23)
- बिजली के प्रवाह को रोकने के लिए उसे सम्बन्धित उपकरणों (स्ट्राइकिंग गियर) का प्रयोग (24)
- स्वचालित मशीनों का उपयोग (25)
- नई मशीनों को नियन्त्रण करना (चलाना) (26)
- महिलाओं एवं बच्चों को कॉटन मिलों में रोजगार (27)
- रख-रखाव (28)
- मशीनों को जंजीरों एवं रस्सियों की मदद से उठाना (29)
- घूमने वाली मशीनें (30)
- तल, सीढ़ियाँ एवं उपयोग के साधन (32)
- गड्ढे, नालियाँ एवं जमीन में छेद (33)
- अत्यधिक भार (34)
- आँखों की सुरक्षा (35)
- धुएँ एवं रासायनिक गैसों का दुष्प्रभाव (36)
- विद्युत धारा को लेकर बचाव (36 A)
- ज्वलनशील गैसें या कण (37)
- आग की स्थिति में बचाव के प्रयास (38)
- मशीनों एवं ढाँचों की सुरक्षा (40)

Scanned with CamScanner

सुरक्षा

सुरक्षा का अर्थ है—खतरे से, चोट से या नुकसान से आजादी। कार्यालय सुरक्षा का अर्थ ही है कर्मियों की खतरों या दुर्घटना से सुरक्षा। कार्यालय सुरक्षा दर्शाता है, कार्यालयों में दुर्घटना से सुरक्षा।

सुरक्षा को लेकर सर्तकता—खतरों को लेकर सतर्कता तथा जोखिम को लेकर भिज्ञता ही इसका अर्थ है। यह एक व्यक्ति के कार्यों को प्रभावित करता है जो कि उसके जीवित रहने की तथा स्वस्थ रहने की इच्छा पर निर्भर करता है।

सुरक्षा को लेकर सर्तकता बनाये रखने के लिए अगर निम्न कदम उठाये जायें तो जीवन कई मौकों पर बच सकता है, जैसे—

- कार्य एवं कार्य योजना से अवगत होना।
- अपने परिवारवालों को, समकक्षों को और अन्य लोगों को दुर्घटना से बचाव के तरीकों से अवगत करायें।
- कार्यस्थल पर सुरक्षा उपकरणों को इस्तेमाल करने की जिम्मेदारी उठायें।
- सुरक्षा सम्मेलनों में सम्मिलित होना।
- अपने कार्य को इस प्रकार से करें कि वह किसी और व्यक्ति के लिए खतरा न बने तथा दुर्घटना होने से बचा जा सके।
- प्राथमिक उपचार देने का प्रशिक्षण लें तथा कृत्रिम श्वास देने का तरीका सीखें।

12.6 सुरक्षा विधि

सुरक्षा विधि क्रमानुसार सुरक्षा के तरीके होते हैं। यह लिखित होने चाहिए जिससे पारदर्शिता रहे, कार्यस्थल पर और उसे वहाँ पर दर्शाए। उसमें कार्य करने वाले समूहों को, सुरक्षा सलाहकारों को एवं स्वास्थ्य के महत्व को बताना चाहिए।

- स्वास्थ्य एवं सुरक्षा सम्बन्धित मामलों का निपटारा।
- कर्मियों से स्वास्थ्य एवं सुरक्षा को लेकर बात करना।
- कर्मियों का स्वास्थ्य एवं कार्यस्थल पर ध्यान देना।
- प्रशिक्षण व जानकारी उपलब्ध कराना।

12.7 देखभाल

कार्यालय की देखभाल का यह अर्थ कमरों की सफाई करना, धूल-मिट्टी हटाना या व्यवस्था करना नहीं है। कार्यस्थल की देखभाल अति आवश्यक है। यह चोट से बचाव में उत्पादन बढ़ाने एवं विश्वास बढ़ाने में सहायक है।

खतरनाक पदार्थ, ज्वलनशील कण तेल एवं कई ज्वलनशील पदार्थ दुर्घटना को आमन्त्रण देते हैं। सही सुरक्षा संसाधन को हर कार्यस्थल पर होना चाहिए और हर कर्मी को उसकी देखभाल में सहयोग करना चाहिए। संगठन को कार्यस्थल के देखभाल के प्रति जिम्मेदार होना चाहिए।

निम्न परामर्श कार्यस्थल के देखभाल के लिए प्रभावी हैं—

सफाई एवं बचाव—सभी कार्यस्थल साफ-सुथरे हालात में होने चाहिए। जमीन रोज साफ एवं सूखी होनी चाहिए। फिसलन, पानी का गिरना एवं गड्ढों को भर देना चाहिए।

आग के खतरे को खत्म करना—अनावश्यक ज्वलनशील पदार्थों को कार्यस्थल से दूर रखना चाहिए।

धूल के कणों का नियन्त्रण—धूल नियन्त्रक एवं अन्य यन्त्रों की मदद से धूल का नियन्त्रण करना चाहिए एवं उन्हें मिटाना चाहिए।

सामानों को गिरने से बचाना—जाल लगाके या गत्ता लगाके समान को गिरने से बचाया जा सकता है।

व्यवस्था करना—किसी भी व्यक्ति को अनावश्यक चीजों के इस्तेमाल से बचना चाहिए या उसे साफ कर देना चाहिए। इससे चाल सुरक्षित हो जाएगी।

सामानों का रख-रखाव—समान को सही ढंग से रखना चाहिए और औजारो को उनकी जगह पर रखना चाहिए।

Scanned with CamScanner

सही दर्जे के सुरक्षा उपकरणों का उपयोग—कर्मियों को सुरक्षा उपकरण, जैसे—जूते, चुस्त कपड़े इत्यादि पहनना चाहिए। सुरक्षा के लिहाज से।

हस्तलिखित नियम—कार्य के नियम कार्यस्थल पर लिखित रूप में होना चाहिए। उसमें यह बताया जाना चाहिए कि कौन-से औजारों, सफाई यन्त्रों या तरीकों का इस्तेमाल होना चाहिए।

कूड़े का निपटारा—रोजाना कूड़े को इकट्ठा करना एवं उसको फेंकना कार्यस्थल की देखभाल में काफी मदद करता है।

देखभाल की बारम्बारता—कार्यस्थल की देखभाल रोज़ होनी चाहिए। कर्मी को ढूँढ के सफाई करवानी चाहिए और अनावश्यक सामान को कार्य के अन्त में हटा देना चाहिए।

प्रश्नावली

1. दुर्घटना के प्रकारों के बारे में विस्तार से बताइए। उसके कारकों एवं प्रभाव को भी लिखिए।
2. संक्षेप में लिखें—
   (a) स्थायी एवं अस्थायी दुर्घटना
   (b) दुर्घटना पीड़ित कर्मी
3. कारखाना अधिनियम 1948 के अनुसार, क्या कानूनी फायदे दिये गये हैं?
4. निम्न स्थितियों में क्या बचाव करना चाहिए—
   (क) विद्युत के झटके
   (ख) आग एवं
   (ग) मशीन की तेज गति।
5. सुरक्षा विधि के बारे में संक्षेप में लिखिए—
6. कारखानों में देखभाल की जरूरत को परिभाषित करिये। कारखानों में देखभाल को कैसे प्रभावी बनाया जा सकता है?
7. जीवन की सुरक्षा को लेकर सर्तकता बरतने के तरीके लिखिए।

Scanned with CamScanner

वार्षिक परीक्षा प्रश्न-पत्र 2016

औद्योगिक प्रबन्ध एवं उद्यमिता विकास

(Industrial Management and Entrepreneurship Development)

Code No. : DE-3/Engg-0022

Time : 2 : 30 Hours **Maximum Marks : 50**

नोट—सभी प्रश्न कीजिए। प्रत्येक प्रश्न के अंक समान हैं।

1. निम्न में से कोई दो कीजिए— **(2× 5= 10)**

(अ) प्रबन्ध तथा प्रशासन में भेद कीजिए।

(ब) "नियोजन एवं नियन्त्रण अपृथकनीय है।" विवेचना कीजिए। नियन्त्रण की प्रक्रिया भी समझाइये।

(स) अभिप्रेरणा का क्या अर्थ है? अभिप्रेरणा की तकनीकें समझाइये।

2. निम्न में से कोई दो कीजिए— **(2× 5= 10)**

(अ) सम्प्रेषण की परिभाषा दीजिए। सम्प्रेषण की बाधाओं का वर्णन कीजिए।

(ब) व्याख्या कीजिए—

(i) तनाव प्रबन्धन

(ii) नेतृत्व की शैलियाँ

(स) व्यवहार का क्या अर्थ है? व्यक्तिगत व्यवहार तथा सामूहिक व्यवहार में अन्तर बताइये।

3. निम्न में से कोई दो कीजिए— **(2× 5= 10)**

(अ) मानव संसाधन प्रबन्ध की परिभाषा दीजिए। इसके कार्यों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

(ब) एक अच्छी मजदूरी भुगतान पद्धति की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

(स) स्थायी लागत तथा परिवर्तनशील लागत में सोदाहरण भेद कीजिए।

4. निम्न में से कोई दो कीजिए— **(2× 5= 10)**

(अ) कारखाना अधिनियम 1948 की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

(ब) उद्यमिता की परिभाषा दीजिए। हमारे देश में नियोजन की दशाओं के सन्दर्भ में उद्यमिता की आवश्यकता का वर्णन कीजिए।

(स) समन्वयन की आवश्यकता एवं इसकी तकनीकों का वर्णन कीजिए।

5. निम्न में किन्हीं चार पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए— **(4× 2 1/2= 10)**

(अ) ई० ओ० क्यू०

(ब) बिन कार्ड

(स) जीवन-वृत्ति विकास

(द) कार्यशील पूँजी

(य) पेटेन्ट्स का इतिहास।

Scanned with CamScanner